

आदिकाल के अज्ञात
हिन्दी रास काव्य

डॉ० हरीश

मं ग ल प्र का श न

गोविन्द राजियों का रास्ता

जयपुर १

प्रकाशक

म ग ल प्र का श न
बोबिन्द रात्रियो का रास्ता,
जयपुर-१

मूल्य

१५-०० [पन्द्रह रूपण मात्र]

प्रथम छपाई [पुन मसारावित] १९७४

मुद्रक

म ग ल प्रे स
नाहर गढ़ रोड, जयपुर-१

समर्पण

श्रद्धेय डॉ० माता प्रसाद गुप्त
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
[राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर]
को सादर

हरीश

अपनी बात

यह भ्रातृकान है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल, जिसे विद्वानों ने अनेक नामों से अभिहित किया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मुझे इस काल पर शोध करने का अवसर मिला है और 'भ्रातृकाल का हिन्दी जैन साहित्य' विषय पर एक अधिनिराच प्रस्तुत कर चुका हूँ। मुझ इस काल के साहित्य के सम्बन्ध में अधिक कुछ नही कहना है, समय ध्यान पर उससे आदिकालीन साहित्य के अनुमधितसु स्नातक का पर्याप्त मताप होगा। यहाँ तो केवल अपना इस प्रस्तुत कृति के सम्बन्ध में पाठा सा परिचय मात्र दे रहा हूँ।

आदिकाल की कृतियाँ य, यू तो अनेक प्रसिद्ध काव्य रूप हैं। काव्य रूपों में मेरा तात्पर्य साहित्य का उन प्रसिद्ध विधाओं में है, जिसमें अनेक प्रबन्ध काव्य लिख गए हैं। ऐसी ही काव्या में एक प्रति प्रसिद्ध काव्य रूप है "रास"। हिन्दी साहित्य के इस तथ्यांकित 'वीर गाय काल में' इस साहित्य के इतिहासकारों ने अनेक रामा की ओर इंगित किया है। जिन पर कई बार चर्चा हुई है और उनमें विद्वानों ने कई निर्णय लिए हैं पर कुल मिला कर आद्यावधि यह निष्कर्ष निकला कि तथ्यांकित वीर गाय। काल में कोई भी ऐसी रचना नहीं है जिनका आधार पर इस काल का नामकरण 'वीर गाय काल' किया जाय। खैर इस तरह यह चर्चा भी पुरानी हुई हम्मीर रासो बासल देव रासो, परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो, प्रभृति, रास काव्या की प्रामाणिकता भी सदिग्ध हो गई और अभी भी ये कृतियाँ शाश्वत का विषय बनी हुई हैं। कालान्तर में सम्भव है इनका सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य स्थापित किये जायें। हमें उनका प्रतीक्षा है। पर तब तक आदिकाल के सम्बन्ध में जो नया साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसमें उपलब्ध रास-काव्या की क्या स्थिति है, विद्वानों का ध्यान अपने इस नये प्रयास की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

इन नये रास काव्या का संक्षिप्त वखन विवरण इस छोटी सी कृति में प्रस्तुत कर रहा हूँ। ये उपलब्ध रास काव्य आदिकाल के हैं। इन रामों ने आदिकाल के साहित्य का प्राचीनतम निधि को सुरक्षित रखा है। इन रास कृतियों के लिये मुक्त-कण्ठ तथा पूर्ण हृदय से हमलिये भी कहना चाहता हूँ कि इनकी प्रामाणिकता, रचना काल और रचनाकारों के सम्बन्ध में विवादास्पद स्थिति बिल्कुल नहीं है ये प्रचलित लगभग सभी गत्यविराधा में मुक्त हैं। इनकी प्रामाणिक मूल हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। गुजरात और राजस्थान के अनेक भंडारों में इन रास-कृतियों की प्रतियाँ का परीक्षण सभी प्रकार से किया जाता है। शाश्वत ही इनकी प्रवृत्तियाँ भी पूर्ण स्पष्ट हैं। उसकी स्थिति बहुत सुलभ हुई है। इनके लिये कही भी सन्देह का स्थान नहीं

जिन्हाई पड़ता। धन इन्हें एक दम बिद्वन्मनीय माना जा सकता है। वस्तुतः इन्हीं कृतियों के आधार पर हम ज्ञान का मर्मज्ञ परीक्षण होना चाहिये।

प्रस्तुत कृति में आए लगभग सभी 'राम काव्य' पर विचार में ही न साहित्य के पाठकों के लिये एक नया नवान तथा ज्ञान में हैं। यह हमलिये भी मय है कि इन पर मात्र तब किमा गाय-नानाव न भास नहा उठाई। इन में से कई प्रवागिब भी हुए पर उन्हें भाष्यप्रणयित मममा गया हो प्रयवा किमी विद्वान् ने भाषा के कारण इन्हें हिन्दी के क्षेत्र में दूर का समय दिया हा क्याकि ये सभी प्राचीन राजस्थानी प्रयवा जूनी गुजराती के हैं। जा हा ये रामकाव्य इयोनिष अर्थात् पढ रहे। मात्र जबकि हिन्दी साहित्य अवन प्राचान गौरव का सुरणा के लिए इन कृतिया की भार दस्त नगा है, मात्र जबकि उनका परिमर इतना विमान हा रहा है मात्र जबकि वह उत्तर प्रपन्न (Post Abhramsa) का लगभग सभी कृतिया का अानी कह कर सनोष की साग ल रहा है मुझे हिन्दी जगत के सामन इनका एक हा कृति म एक साथ सामाय परिचय दे कर रमन हुए पर्याप्त हर्ष का अनुभव हा रहा है। अब उत्तर प्रपन्न की कृतिया राजस्थानी प्रयवा प्राचीन गुजराती की ही नहीं हिन्दी के भादि ज्ञान की मान ना गई है, श्री राहुन साङ्करायन, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० भाता प्रसाद गुप्त तथा गुजरात के अनेक विद्वाना न इस भार पर्याप्त प्रकाश काना है। अतः ऐसा स्थिति में इन कृतिया का मूल्यावन होना चाहिये।

एक प्रश्न और है उनका म्पटीकरण भी आवश्यक लग रहा है और वह यह इन कृतियों के अधिकांश तपक कवि जैनी प्रयवा जैन धर्मावलम्बी हैं हमलिये इनमें साम्प्रणायिकता प्रयवा धार्मिकता या उपगामता मात्र है। ऐन मवान कई बार उठाये गये हैं परन्तु इन सब बातों का निर्णय विद्वान् और मुधी पाठकों के लिये छाड रहा हूँ 'कबहु कि कात्रा साङ्करान्दि छौर मिषु बिनगाय इस तरफ के शोधोपसु ता साहित्य का अवन कृतिया पर विचार जा सनन हैं। हमल सच्च आनाचक ता व हैं जा मुना मुनाई बाता पर विवान न कर इनका स्वरूप के अन्नरान में प्रविष्ट हाकर इसका नीर क्षीर विवेन करेंगे। मर विचार में धर्म और उपगाम इतम केवन मात्र प्रेरणा के रूप में हैं। वस्तुतः ये रचनाएँ साहित्यिक मवल्य निग हैं प्रयवा इस महात्मिकान की काई स्थिति ही सामन नहा पा पाता।

'आत्मिकान के अनात हिन्दी राम काव्य' में मैं कुछ ही प्रसिद्ध राम कृतिया का बिद्वन्मण प्रस्तुत कर रहा हूँ या ना इन कान्या पर और भा विस्तार में विचार किया जा सकता है। अनेक रचनाएँ इसलिये छाड दी गी गई है। मायापठ इनमें एक सहज परिचय हिन्दी साहित्य के विद्वाना छात्रा, पाठकों तथा गाय प्रेमी मित्रों का हा इस सभी उद्देश्य में इनका सामन ला रहा हूँ। इनमें कई राम ऐतिहासिक

कई पौराणिक कथाओं पर आधारित तथा कई कवियों के जीवन मत्र सत्या पर। आनाचना के साथ ही इन कृतिया में म तीन राम कान्यों भरनकर बाटवनी राम, पञ्च पाण्डव चरित राम तथा कुमार पान राम का पाठ जैसा भी जिस रूप

में उपलब्ध हैं साथ में दे रहा हूँ ताकि तत्कालीन भ्रम लौकिक रचनाओं के साथ इनकी भी गणना हो सके। इन काव्यों की भालोचना का अधिकांश भाग मेरे शोध ग्रन्थ में संगृहीत है। केवल कुछ कृतियाँ का विवरण तथा रासों का पाठ इसमें और जोड़ कर प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन कृतियों के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सभी पहलुओं पर मैंने यथा-सम्भव प्रकाश डालने का प्रयास किया है, फिर भी कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर शायद चिन्तन नहीं हो सका हो, उनके लिये पाठकों के सुझावों का विनम्रता से सदैव स्वागत करूँगा।

रास काव्यों के ये पाठ मुझे प्रकाशित तथा कठिनाई से उपलब्ध होने वाली कृतियों से मिले हैं। सभी रचनाओं का पाठ इस छोटी सी कृति में देना सम्भव भी नहीं था। या इन पाठों में पाठविज्ञान के जिनानु स्नातकों के लिये पर्याप्त सामग्री है ऐसा मेरा विश्वास है। इनका पुनर्निर्माण भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। भाषा है, वे इस ओर प्रेरित हो कर ऐसी मनेका में प्रसिद्ध, मजान तथा भडारों में दबी पड़ी प्रादि कालीन कृतियों के पाठोद्धार कार्य को वैज्ञानिक रूप से सम्पादित कर प्रकाशित कराने में रुचि लेंगे।

इन कृतियों को पुस्तक रूप देने का सारा श्रेय भाई उमराव सिंह मगल को है जिन्होंने भयंकर परिश्रम से इसका प्रकाशन किया है इस के लिये उनका अनुग्रहीत हूँ। श्रीदेव गुरुवर डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसके मूल में रहे हैं। विद्वद्वर श्री भगवन्त नाहटा की कृपा से इन में से भनक कृतियाँ तथा उनके पाठ उपलब्ध हुए हैं। 'भर तैस्वर बाहुबली रास' तथा 'कुमार पाल रास का पाठ' उन्हीं के सौजन्य से उपलब्ध हुआ तथा श्री डा० भोगीलाल साडेसरा डायरेक्टर, भारिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बडौदा ने 'पंच पाण्डव चरित्र रास' का पाठ प्रकाशित-करने की अनुमति दे कर उत्साह बढ़ाया है, इसके लिये मैं इन दोनों विद्वानों का हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। रासों की भालोचना के लिये जिन राजस्थानी तथा गुजराती विद्वानों की कृतियों से जो सहायता मिली है उसके लिये उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। साथ ही साथ अपने स्नेही मित्र प्रो० हरिराम धार्या श्री मगल तथा प्रो० एच एल भारद्वाज का भामारी हूँ जिन्होंने इस कृति के प्रूफ देखे हैं, प्रिय चन्द्र प्रकाश तिवारी, कल्याण एम० ए०, प्रकाश बाजयेयी तथा शील सचेती सभी की भालोपता ने इस कार्य में प्रेरणा दी, और यह प्रयास सामने आ सका। यो तो सारा ही श्रेय 'मगल प्रकाशन' को है। यदि हिन्दी साहित्य के आदिकाल में ये रास काव्य कुछ श्री वृद्धि कर सके और सुधी पाठकों को परितोष दे सकें, तो प्रयास को प्रेरणा उपलब्ध होगी।

५ लक्ष्मी राम का बाग,
मोती झरनी रोड, जयपुर

'हरीश'

निराई पढ़ता। भक्त इन्हें एक दम विश्वमनाय माना जा सकता है। वस्तुतः इन्हीं कृतियों के माध्यम पर हम बाबू का गहन परिशीलन करना चाहिये।

प्रस्तुत कृति में आए लगभग सभी 'राम काव्य' मेरे विचार में ही नहीं साहित्य में पाठकों के लिये एक नया तथ्य प्रदान में हैं। मैं इसलिये भी सत्य है कि इन पर मात्र तब किसी 'गाय-स्नातक' ने ध्यान नहीं उठाई। इन में मैं कई प्रयोगों में भाग ले रहा हूँ। पर उन्हें साधनात्मक समझा गया हो भ्रम था कि विद्वान् ने भाषा के कारण इन्हें हिन्दी के क्षेत्र में दूर का समय दिया है क्योंकि यही सभी प्राधान्य राजस्थानी प्रभाव की ओर झुकती है। जो है। यही रामकाव्य इलाक़ों में प्रसारित पड़े रहे। मात्र जबकि हिन्दी साहित्य अपने प्राचीन गौरव का सुरक्षा के लिए इन कृतियों की ओर दखल लगा है, मात्र जबकि उसका परिमल इतना विनाश हो रहा है, मात्र जबकि वह उत्तर प्रदेश (Post Abhimata) की लगभग सभी कृतियों की अपनी कला के स्तोत्र की साथ ले रहा है। मुझे हिन्दी जगत के सामने इनका एक ही कृति में एक साथ सामान्य परिचय दे कर रखने हुए पर्याप्त रूप का अनुभव हो रहा है। अब उत्तर प्रदेश की कृतियाँ राजस्थानी प्रभाव प्राचीन गुजराती की ही नहीं हिन्दी के आदि काल की मान ली गई है। श्री राहुन साहूपायन, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० माना प्रसाद शुक्ल तथा गुजरात के अन्य विद्वानों ने इन ओर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मैं ऐसी स्थिति में इन कृतियों का मूल्यांकन हूँ। चाहिये।

एक प्रश्न और है उसका स्पष्टीकरण भी आवश्यक लग रहा है और वह यह इन कृतियों के अधिकांश तब तक कवि जैनी प्रभाव जैन धर्मावलम्बी हैं इसलिये इनमें साधनात्मकता प्रमुख धार्मिकता या उपनिषद्मयता मात्र है। ऐसे सबका कई बार उल्लेख है परन्तु इन सब बातों का निर्णय विद्वान् और मुझे पाठकों के लिये छोड़ रहा हूँ। जबकि कि कौन सी सीकरन्धि और मिथु बिनगाय इस तरह के स्तोत्रोपनिषद् साहित्य की प्रकृति कृतियों पर विचार जा सकता है। इसके संबंध में आलोचना के हैं जो मुता मुताई बातों पर विचार न कर इनके स्वरूप के अन्तर्गत में प्रविष्ट नगर इसका नार क्षीर विषय करेंगे। मेरे विचार में धर्म और उपनिषद् इनमें केवल मात्र प्रेरणा के रूप में हैं। वस्तुतः ये रचनाएँ साहित्यिक मूल्य लिए हैं। अथवा इस महात्मनिकान की कई स्थिति ही सामने नहीं आ पाती।

'आत्मिकान के प्रभाव हिन्दी रास काव्य' में मैं कुछ ही प्रसिद्ध रास कृतियों का विवेचन प्रस्तुत कर रहा हूँ या तो इन काव्यों पर और भी विचार में विचार किया जा सकता है। अनेक रचनाएँ इसलिये छोड़ दी गई हैं। सामान्यतः इनमें एक सहज परिचय हिन्दी साहित्य के विद्वानों छात्रों, पाठकों तथा गायत्री मित्रों को है। इस इन्हीं उद्देश्यों में इनका सामने ला रहा हूँ। इनमें कई रास ऐतिहासिक कई पौराणिक कथाओं पर आधारित तथा कई कथियों के जीवन गत सत्यों पर। आलोचना के साथ ही इन कृतियों में मैं तीन रास काव्यों भरत-वर बाहुबली राम, पञ्च पाण्डव चरित राम तथा कुमार पान राम का पाठ जैसा भी जिस रूप

में उपलब्ध हैं साथ में दे रहा हूँ ताकि तत्कालीन श्रेय लौकिक रचनाओं के साथ इनकी भी गणना हो सके। इन काव्यों की आलोचना का अधिकांश भाग मेरे शोध ग्रन्थ में संशुद्धित है। केवल कुछ कृतियों का विवरण तथा रासा का पाठ इसमें और जोड़ कर प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन कृतियों के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सभी पहलुओं पर मैंने यथा-सम्भव प्रकाश डालने का प्रयास किया है, फिर भी कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर शायद चिन्तन नहीं हो सका हो, उनके लिये पाठकों के सुझावों का विनम्रता से सदैव स्वागत करूँगा।

रास काव्यों के ये पाठ मुझे प्रकाशित तथा बठिनाई से उपलब्ध होने वाली कृतियों से मिले हैं। सभी रचनाओं का पाठ इस छोटी सी कृति में देना सम्भव भी नहीं था। या इन पाठों में पाठविज्ञान के जिज्ञासु स्नातकों के लिये पर्याप्त सामग्री है ऐसा मेरा विश्वास है। इनका पुनर्निर्माण भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। आशा है, वे इस ओर प्रेरित हो कर ऐसी अनेकों अप्रसिद्ध, अज्ञात तथा भट्ठारा में दबी पड़ी आदि कालीन कृतियों के पाठोद्धार कार्य को वैज्ञानिक रूप से सम्पादित कर प्रकाशित करान में रुचि लेंगे।

इन कृतियों को पुस्तक रूप देने का सारा श्रेय भाई उमराव सिंह मगल को है जिन्होंने अथक परिश्रम से इसका प्रकाशन किया है इस के लिये उनका अनुग्रहीत हूँ। श्रीदेव गुस्वर डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसमें मूल में रहे हैं। विद्वद्वर श्री भगवन्त नाट्टा की कृपा से इन में से अनेक कृतियाँ तथा उनके पाठ उपलब्ध हुए हैं। 'भर-तेश्वर बाहुबली रास' तथा 'कुमार पाल रास' का पाठ उन्हीं के सौजन्य से उपलब्ध हुआ तथा श्री डा० भोगीलाल साहसरा डायरेक्टर, भारतीय लिटिच इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, ने 'पंच पाण्डव चरित्र रास' का पाठ प्रकाशित-करने की अनुमति दे कर उत्साह बढ़ाया है, इस के लिये मैं इन दोनों विद्वानों का हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। रासा की आलोचना के लिये जिन राजस्थानी तथा गुजराती विद्वानों की कृतियों से जो सहायता मिली है उसके लिये उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। साथ ही साथ अपने स्नेही मित्र प्रो० हरिराम भाचार्य श्री मगल तथा प्रो० एच एल भारद्वाज का धामारी हूँ जिन्होंने इस कृति के प्रूफ देखे हैं, प्रिय चन्द्र प्रकाश तिवारी, कल्याण एम० ए०, प्रकाश बाजयेयी तथा शील सचेती सभी की आभारमयता ने इस कार्य में प्रेरणा दी, और यह प्रयास सामने आ सका। या तो सारा ही श्रेय 'मगल प्रकाशन' का है। यदि हिन्दी साहित्य के आदिकाल में ये रास काव्य कुछ भी वृद्धि कर सके और सुधी पाठकों को परितोष दे सकें, तो प्रयास को प्रेरणा उपलब्ध होगी।

४ लक्ष्मी राम का बाग
मोती नगर रोड, जयपुर

'हरिदास'

अनुक्रम

१-विषय प्रवेश	१-२०
२-भरतेनर बाहुवनी राग	२१-३६
३-भरतेनर बाहुवनी राग (मृग पाठ)	३७-४६
४-धन बाता राग	४५-५८
५-धूनि भद्र राग	५९-६५
६-देवन गिरि राग	६६-७६
७-नैमिनाथ राग	७५-७८
८-गयमृकुमान राग	७९-८७
९-वच्छिनी-राग	८३-८६
१०-मयणरेहा राग	८९-९७
११-श्री जिन पदमूर्ति पट्टाक्षिपत्र राग	९८-१००
१२-कुमार पाल राग	१०१-१०६
१३-कुमार पान राग (मृग पाठ)	१०७-११३
१४-पञ्च पाण्डव राग	११४-१२१
१५-पञ्च पाण्डव राग (मृग पाठ)	१२६-१४८
१६-गोनम राग	१४९-१६२
१७-कान्तिमान राग	१६४-१६६
१८-गानहकारण राग	१७६-१७७

विषयप्रवेश

आदिकाल —

हिन्दी साहित्य का आदिकाल विभिन्न काव्य रूपा के उद्भव और विकास में सम्बद्ध है। काव्य रूपा की विभिन्नता इस साहित्य की मौलिकता है। या तो अपभ्रंश साहित्य में अधिकतर काव्य रूपा की शृङ्खला के बीज विद्यमान हैं, पर उत्तर अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी के इस साहित्य ने काव्यरूपा के इतिहास में नवीन क्रांति उपस्थित की है। इस तरह एक ओर आदिकाल में जहाँ विभिन्न प्रकार की काव्य प्रवृत्तियाँ का समुचित विकास और पूर्ववर्ती साहित्यिक विधाओं की परम्परा का निवाह मिलता है, दूसरी ओर काव्य के विभिन्न रूपा में अमाधारण विविधता के दर्शन हात हैं। अद्यावधि विद्वानों एवं आलोचकों ने काव्य रूपा को खण्ड-काव्य, महा-काव्य और प्रबन्ध-काव्य आदि का रूप देकर ही उनका अध्ययन किया है परन्तु आदिकालीन उपलब्ध साहित्य ने काव्य रूपा की दृष्टि से नये मांड प्रस्तुत किये हैं। ये काव्य रूप छन्द प्रधान भी हैं और विषय प्रधान भी। यद्यपि ये काव्य खण्ड-काव्य, नचा-काव्य, एकाध-काव्य और प्रबन्ध काव्या आदि के अतः वर्गीकृत हो जाते हैं, पर विगुह रूप में शैली और शिल्प की दृष्टि से इनका पूरा कृत वर्गीकरण बहुत समीचीन नहीं प्रतीत होता। अस्तु—काव्य रूपा पर नये रूप में विचार किया जा रहा है। वस्तुतः आदिकालीन साहित्य में जिस विज्ञान सभ्यता में काव्य रूप मिलते हैं वह अपने आप में आदि काली की एक बहुत ही बड़ी उपलब्धि है। इस काल में शताधिक से अधिक काव्य रूप उपलब्ध हुए हैं।^१ जिन पर विस्तार में अत्यन्त विचार विस्लेषण गया है यहाँ उन विशिष्ट काव्य रूपा में से केवल मात्र 'राम' पर ही विचार किया जा रहा है। यों तो शैली की दृष्टि से राम सार्व रचनाओं को खण्ड-काव्य, प्रबन्ध काव्य आदि के अतः वर्गीकृत रखकर उनका मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु ऐसा करना बहुत भगत नहीं प्रतीत होता, वस्तुतः काव्य रूपा के अतः वर्गीकृत होने वाले जो अनेक रूप या विधाएँ हैं, उनमें प्रत्येक पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन अर्पित है। राम, पाण्डु चरित चउपई, प्रबन्ध, पदावे, विवाह-वैलि,

१- दलित नेल्स का शोध प्रबन्ध आदि काल का हिन्दी जैन साहित्य' अग्रका शित (इलाहाबाद यूनिवर्सिटी लायब्रेरी में संग्रहीत)।

"हरिवंश पुराण"^१ और विष्णु पुराण^२ में भी "राम" शब्द की ओर कुछ सक्त मिल जाता है। धनञ्जय ने अपने दशरूपक में रास पर प्रकाश डाला है।

महाराज भोज व सरस्वती वण्टामरण और गृहार प्रकाश में भी राम सजा का उल्लेख मिलता है।

इस उक्त विवरण में हल्लीमन गान विशेष दृष्ट्य है। हल्लीमन गान के साथ भामि व नाटक और पुराण साहित्य में गान गापिकाया का साथ होना और क्रीडा करना ता स्पष्ट होता है पर अथ सगीतात्मकता अथवा उभय भामि किसी गित्य जय वशिष्ठय का उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह लगता है कि इन प्रयकारा व समय राम क्रिया सारोरिक अथवा स सम्बन्धित जन-नृत्य या क्रीडा मात्र थी। वस्तुतः उभय समय राम का सोधा सम्बन्ध पुरातन नृत्य मात्र में रहा होगा। सम्भावना है कि आन्तिम नृत्य भी इसी राम का एक रूप रहा होगा। यह भी सम्भावना है कि सगीत के सत्त्वानीन गाल्बीय नियमा के विधान का अभाव ही इसका मूल कारण रहा है। जा भी है यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उभय काल में यह जन-नृत्य या वय-नृत्य अथवा लाक-नृत्य विशेष व रूप में प्रचलित रहा होगा। एक आनाचक न इसी सम्भावना पर रास गान का अर्थ जार में बिलाना स्पष्ट कर उभय जगता या आदिम पुराण का सारोरिक क्रिया या वय-नृत्य बनाया है।^३

१-हरिवंश पुराण विष्णु पर्व, अध्याय २०, के ये उद्धरण -

(क) एक म वृष्णा गापीना चक्रवातेरनकृत ।

(ख) चक्रवाले ? मण्डने ? हल्लीमका क्रीडनम एतस्य पुंभी बहुमि स्नाभि
क्रीडन सेव रास क्रीडा ।

इन विवरण में विद्वान् टीकाकार न "चक्रवाल" शब्द का अर्थ सम्भवतः 'राम' किया है।

२-विष्णु पुराण, (माता प्रम) ५।१३।४७ ५० व ये उद्धरण ।

(क) रराम रामगाण्डीभिह्वार चरिता हरि ।

(ख) हस्मन गृह्य चैवता गापीना राममण्डनम् ।

३-दलिये टाइम्स आफ सन्कृत टाइमा पृ० १८१ ४४ में था वकड का यह उक्ति
It is not to be derived from रम but from रास the root
which means to cry alone, which may refer to
be very primitive form of this dance when the
proportion of music & artistic movements may
not have been still realistic and when it must have
been practised as wild dance'

हस्तीपद 'ग' का व्याख्या न व्युत्पत्ति अन्तः सम्बन्ध व विद्वाना न का है । राम म गात, नृप, क्राण व मगात का समन्वय सिद्धान्त माने अन्तः विद्वाना न राम व गिरा का विवरण किया है त्रिपदा राम व अनुराग परितोष हान माने हर का पर्यवक्षण किया जा सकता है । वस्तुतः यह हस्तीपद 'ग' विभिन्न विद्वाना के द्वारा भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है त्रिपद 'राम' में अन्तः नमान तावा का समन्वय जाता है उनका भगैर में विवरण न्य प्रकार है ।

बाणभट्ट न अन्तः समन्वय सर 'राम' म नृप को आशयना जाता बताया है । इस तरह व विभिन्न नृप व आशयना व प्रमाण हई चरित^१ में अन्तः भिन्न जान है । राम व अनुराग का हरिवंश पुराण व टोकावली न त्रिपद प्रकार चरित^२ का मना भी है उन्हीं प्रकार बाणभट्ट न रामनुराग व निम्न आशय^३ 'ग' का उद्देश्य चुना है । न्य प्रकार अनुरागना म स्पष्ट होता है कि बाण व समन्वय म 'राम नृप' जन साधारण म प्रचलित न गया था । अन्तः बाणभट्ट न न्य एक 'अनुराग-विचार' कहा है ।

राम व नृप प्रयुक्ता वाच्यार्थ न भा हस्तीपद अथवा राम नृप व माय गात व आशयना का भा उल्लेख किया है ।

भावप्रकाशकार आशयना न रामन म नायिकाया व रामन व आशयना म नायिकाया का मन्त्र का विधान किया है । अनुरागना है कि विष्णु वचन व मान नायिका १६, १७ तथा ८ का मन्त्र में जा नृप करता है उम राम कहन है ।^४

अभिनेतृ शुभ न मन्त्र म जा नृप किया जाय उन्हीं का हस्तीपद कहा है ।^५ रामन का उभय रूपक बतान हूण बाणभट्ट न किया है कि टाम्बिका भाण प्रभात भागिका प्ररुण-गिराव रामा काट हस्तीपद था यन्मि रामन गाष्टी प्रवृत्तानि-मगानि । न्य परिचारा म य तथ्य स्पष्ट हान हू —

१—सामान्यतः य शब्द न्य है ।

२—अनुराग म न रामन ना एक रूपक है ।

३—हय चरित एक मास्त्रुति अध्ययन-अनुपद अध्ययन ।

४—कहा भवत न्व रामन मन्त्र । सरानाच न्व नृप मीन करण ।

५—हस्तीपद कान्तकगवत ।

६—यादव द्वापराणा व दम्भिन्नुर्थात गयिका गिरा वगैरि त्रिपद ?

रामन नृपान्तम-भावप्रकाश-आशयना म ।

७—मन्त्रैरनुपद हस्तीपद विभिन्न मन्त्रम् ।

८—न्य बाणभट्ट कृत काव्यानुपमन पृ० १८० ।

३-इनमें संगीत तब का पूर्ण समावेश है ।

४-नृत्य और अभिनय भी इनमें प्रधान हैं ।

हल्दीसर क विषय में एक सक्त यााधर वत काम गास्त्र की जयमगला टीका में मिल जाता है, वह 'मडल' में हान चान स्त्रिया व उस नृत्य को जिसमें एक नायक हाता है, हल्दीसर कहता है और प्रमाण में वह गापिया के हरि का उगाहरण बता है ।^१ हमचन्द्र के कायागुणामन (पृ० ४४२-४४६) में हल्दी सर और रामक गान का उल्लेख मिल जाता है । उपदेग रमायन् रास के टीकाकार न रामक के गित्य की मरनता के सम्बन्ध में बतलान हुए लिखा है कि चर्चरी और रामक ये प्राकृत प्रबन्ध इतने सज्ज व सरल हैं कि कोई भी विद्वान् पुरस् इन् पर टाका नहीं निबना चाहता ।^२

श्रामद्भागवत की रामपद्याध्यायी का प्रसिद्ध ही है ।^३ अन्दुन रहमान क संग रामक में रास की जगह रामय या रामउ मिलत है जा सम्भवत रामक का ही अनन्त है । गुमकर न गाप क्रीडाया की ही राम कहा है ।^४ और जय श्व का 'राम हरिहर सरम वसत तक कह डानत है ।

एक नया तथ्य उपदेग रमायन राम क टीकाकार न रास का राग या गीता की भांति गाया जान माना कहकर भी बताया है । जिसमें स्पष्ट हा जाता है कि प्राकृत भाषाया में रचा गई चर्चरी और रासक सज्ज प्रबन्ध प्रयाप्त सरल हाते थे और व दश्य भाषा में अनक राग में गाय जा सकत थ । टीकाकार न उसमें अनक छ्वा का हाना भा बनाया है ।^५ रासन गद क लभणा का विस्तृत विवचन बाभट्ट न और स्पष्टता स किया है ।^६ जिसक अनुमार ये परिणाम निकाने जा सकत हैं —

१-रासक समृण रचना थी ।

२-इसमें अनेक नतिकाए हाती था ।

१-मण्डलेन च यतस्त्राणा नृत्य हल्दीसर त तन

नता तन भवत्का गाप स्त्राणा यथा हरि ।

२-चर्चरी रामक प्रत्य प्रबन्ध प्राकृत विन,

वृत्ति प्रवृत्ति नायत प्राय काऽ अपि विन तण ।

३-श्रामद्भागवत-गान, स्तु-ध १

४- कचिद्भवति गानाना ब्राह्मरामक मत्वपि

५-अत्र पद्धटिका बधे मात्रा पापश पादता

अयममर्चेषु रागेषु गायते भातवादि ।

६-अनर नर्तका याज्य चित्र तान नयार्तिनम्

आचतु पटि युगनीधामक मसु-णाढन बाभट्ट, कायागुणामन पृ १८० ।

३-यह उद्धृत ११ गीत था ।

४-धनक तादा म मर्मा वग हाया था ।

५-रगमे एक निर्विषय गीत हाया था ।

५-बाटा करन बान मुल्ता (जहिया) का गीत ६६ गीत हाया था ।

ये ११ गीत क विरचित रसक का उम बान म राग बान का गीत भा गीत था ।^१ धीरेगा प्रारुण म भा राग माहिण का उमग मिनता है परन्तु यह आपाद मुनि मन्त्र नही प्रमाण हाया ।^२

उक्त गमक विरचन हजामत राग धीरे रागक रस क संस्कृत-बानान स्वक धर्म धीरे परिभाषा का सममन क विर विषय हाया है । राग रस विग प्रकार बानानर म धनता रस परिचिन करता हाया इनक कर्मित विषय क धनयन म मुविधा हा हाया ह्रीं म संस्कृत बान क प्रमन विषया क विविध उपायगा द्वारा प्रस्तुत करता उचित प्रमाण हाया ।

राग क संस्कृत बान म उगी बाग क ह्रीं-परिम म राग का रस विरचन मिनता है बगी धनान रागक रसान का उमग भा हाया है । रस बान म रगिबाया द्वारा उनक बनावुन परिष्ट प्रमिया क विर जिनका विषय नाम विर या धनयन रस गान का उमग है ।^३ परन्तु रस बानु-परग धनयन मे एक दूसरा बान हजामत क गवय म हाया है कि उगता उद्गम हाया मन् क धान-गान बानान क मृग विग-रसानिधन-म हाया है । हाया क राग मृग धीरे हजामत मृग इन गाना का परम्पराया म सम्भवा विगा गमय परम्पर संबध हा गया ।^४

पर यह मध्य कहा तब मध्य है यह कहा कहा जा गयता हग मध्य म धन का धन-बाग्य प्रमाण धीरे जनभूतिया का भी प्रमाण है । इन गाना बाना म हजामत क उद्गम बाना बान ता मन्त्र हा रसान परता है । ही यह धनयन कहा जा गयता है कि राग-मृग का मध्य सम्भवन विगा जगता जानि धनयन गान जानि म धनयन धनयन धानि म हा गया हा । जा भा हा धन तब गनना धनयन मध्य हा गया है कि बाग क मगय तब राग

१-नयानर प्रमाण राग बागि विविधनम्

नानारग मनिवाध क-वाध नि मृतम् मध-वागानुगमन पृ ६६ ।

२-मिय मुत्रराना मन्त्र रस विरचन-भा क० म० मु १० पृ० ८० ।

३-बाकिता रस मन्त्र बाना का मदानावि ग विगना कानुमनाय नान रागक रसानि माहय । विग रसवित्र एक माहृति धनयन ।

४-वहा रस पृ० १०-११ ।

म नृत्य क भाव गेय तत्त्व पूर्णतया प्रचलित हो गया था और हल्लीभक्त या रामक क गित म उक्त सभी विद्वानों के विचारों म सुगुना, मया ताना और गाव गाविया का सम्बन्ध परिरक्षित होना है । अतः राम के अष्टम श काल क पूर्व नृत्य स्त्रीका रूप और गेय रूप ही अधिक प्रचलित प्रतीत होते हैं । श्री मद्भागवत म वर्णित कई स्थल राम क गेय रूप का पुष्टि करत हैं । राम गान का प्रमाण भा दृष्टम् है^१ तथा कुट्ट नाका म तो रचनाकार ने राम म मगीत क रागा का उल्लेख भी कर दिया है । ध्रुपद राग पर भागवतकार ने उम प्रमग म प्रमाण जना है ।^२

परवर्ती काल और रास —

मस्तुत काल के पश्चात् राम म इन तत्त्वों का समावेश किन अंगों में बना रहा, यह कहना बहुत कठिन है तथा साथ ही यह भी नहीं जाना जा सकता कि उमक गित म उक्त तत्त्वों म क्तर किन तत्त्वों का समावेश हुआ और वह भा किस अनुपात म पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आगे की कई गानाभ्यां तक (जब तक कि राम, रामक अष्टम ग काल म नहीं पहुँच) उम उक्त तत्त्वों का समावेश आदि अथवा स्पष्ट अस्पष्ट अनुपात में अवश्य मिलता रहा है । मस्तुत काल क इन रामों की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी राजस्थान म उपलब्ध विक्रम सं० १६२ का रिपुनारण राम है ।^३ जो अद्यावधि उपलब्ध रामों म सबसे पुराना है और यह राम संभवतः हमचन्द्र में भी बहुत पहले का है । रामक^४ क गित पर राजस्थान म उपलब्ध होने वाले रामों म प्राचीनतम होने म यही अच्छा प्रकाश डालता है । पर अभिनव, नर्तन और गान ये तीन तत्व रिपुनारण म भी मिलते हैं । अतः राजस्थान में मिलने वाले रामों म प्राचीनता की दृष्टि में भले ही इस राम का महत्व हो, पर गित म इसका कोई नवान् योगदान नहीं लगता ।

१—श्री मद्भागवत, दशम स्कन्ध सैंतामवें अध्याय के निम्न श्लोक —

(क) सप्रारभत गाविन्दा रामक्रीडामनुव्रतं । २ ।

(ख) रामोमव सम्प्रवृत्ता गापीमण्डलमण्डित । ३ ।

(ग) सप्रियाणामभूच्छ्रमस्तुमुना राममण्डल ॥६॥

२—(क) स्वयं मुख्य कवररमनाश्रय कृष्णवदो

गायत्यस्त तद्वित इव ता मेघ चक्रे विरेडु । यही, दशक सं० ८ ।

(ख) तत्रैव ध्रुवमुनिन्य तस्ये मान च बहवदान्—यही, श्लोक सं० १० ।

३—विद्ये—मरभारती वर्ष ४, अक्ष २ म रिपुनारण राम निबध डों
दशरथगमा, पृ० ५७ ।

मेमा स्थिति म आर ग र धाभ गार य ना राव ग मम ५, निम
रामा व दनर प्रसार मिने । धाभ गार मानिय म मिताव मस्या म मिमि
मान म्म प्रमुत वारन वाव राम ग्रय वरध हू है । जिह गिय म म्म
तथा प्राकृत व राम ग्र या का धा ता अधिग प्रगति व नुनता ५ ।

अपने समावन राम न २६ में पत्र म "ताता रातु तदुग या नटा
रामु' नामक २१ प्रचार क रागा का तद मितना ६ । १ कपू रमं नरा म भी
तातारामु श्रीर नटा राम का मरत मितना ६ । २ उ० १० पाच० मंगित न
म्यादियर बाग का मर पंगि म चिचिन नटा राम का रमं न मिना ६ । ३ एन
मय्या म य मय्य हाता ६ रि मय्यन न ताद म राम काना म तादिया श्रीर
ददिया म मरत का प्ररा भी प्रचरित २ मड पा ।

बानांतर म राम ब्रह्म र गम्भीर म यन् भी त्वय मिता ३ रि
जैन मन्त्रि म श्रावक धामि नाम रात्रि व गम्भ म रात्रिया र माथ (नात
स्वर) रामा का माया करन ५ । ६ अम नार जिग जा सप्तावना र राग्ग
रात्रि म ताता राम का निषध रिता गा ३ । गा प्रसार जिन म पुण्या का
मित्रों क माथ मनुजा राम करन (श्रित्या र माथ पूय करन ह्य राम गान)
का भी अनुचित बताया गया है । अन मन्त्रि म य राम १४ रा गतात्तर
भव जाते थे । ६ एव महवपुण जान यन् मा ३ रि त्वया व गय त्या का भी ना

१-माहिती मत्तु पुता १८/१ म रागा व अथ वा अमिव विवाग नम
डॉ० मारुय नामा ।

२-नानासामु विनिति स्यगिर्णिः श्विनिवि नन्ना सम म) तुरिर्निः-

७०६० ग्रा० गज २६ ।

३-(क) स्वयंसा तावामुत्पन्नं साध्या तुभ्यंते शर्मिन् शान्ता (ख) नृपान् रमु
अहि परिमृदि शिष्टिं वारिन् स्वयं शान् । वपु र मन्त्रा ६१०-७० ।

4-We now come to the fourth Scene plate D consisting of a double group of female musicians. The left hand group comprises seven women standing around an eight figure, evidently a dancer. The next three musicians are each engaged in beating a pair of wooden sticks called danda in Hindi and Tipri in Marathi. Painting by Dr J Ph Vogle page 49 51

१-भिय-आ० प्र० पत्रिका, वर्ष १८, अंक ८, पृ० ८० तथा अगस्त
माहका पृष्ठ ।

किं जन मुनि प्रस्तुत करते थे 'राम' सना दो जाने लगी । उपदेश रमायन राम म जितन्त मूरि के अनन्त गेय उपदेश राम बन गये हैं । स्त्री और पुष्पा के एक साथ राम नहीं खेनन के जो उल्लेख मिलते हैं ।^१ उनमें यह बात तो स्पष्ट है । हा जाती है कि राम लीला अपभ्रंश और अपभ्रंश गैतर काना म स्त्री पुष्प दाना म समान उल्हाह व साय सम्पन्न होती थी और राम विष्णु अवमरा पर जनता उल्लसित होकर खेनती थी । अत नृत्य और गीत तत्त्व रामा म समान अनुपात से ११ वा शताब्दी तक तो देखने की मिलता है ।

यहाँ यह प्रश्न स्वामाखिक रूप में उठता है कि नृत्य और गीत में मे कालान्तर में रामा में गीत मात्र ही बरा रह गया ? नृत्य क्रिया क्या गिथिल हो गई ? इसका कारण जैन रामो रचनामा के गिल्य का परिणीलन करने पर मिल जाता है । अपभ्रंश गैतर कान में जैन मुनि जिन उपदेशों का श्रेष्ठ भाषा म जनसाधारण का गा-गा कर सुनाते थे उनकी रमीली गीति और चर्चरी सगक उपदेशात्मक रचनाएँ धीरे-धीरे रास बनती गई । जैन साधका की गम प्रधान जीवन बितान से विशेष उल्लास और राग, रग नृत्य, अभिनय से वैराग्य रचना पड़ता था अत नृत्य का तत्त्व धीरे धीरे उपक्षित हान लगा । अनुश्रुतिबद्ध परम्परा के कारण ये गीतियाँ तनी घनीभूत होकर प्रचलित हुई, कि जन मानस समस्य हा उठा और नृत्य का लाग उपक्षा की दृष्टि से दलन ली । अथवा कर्पूर मजरी व विचित्र बंध में तान लय, प्ररम्पन के आधार पर नृत्याभिनय करती हुई नायिकाया का बणन मिलता है ।^२ इन नर्तकियों का समबाहु समाभिमुख आति अनन्त भिन्न भिन्न मुद्राया का भी उल्लेख मिलता है ।^३ वस्तुतः ११वा शताब्दी तक पहुँचने-पहुँचने राम गेय काव्य मात्र रह गया । क्योंकि इन गीतियाँ और चर्चरियों को ही जनसाधारण में अत्यन्त अधिक प्रचलित दबकर जैन मुनियों ने उपदेश का माध्यम चुना और ये चर्चरियाँ और गीतियाँ इतनी अधिक प्रसिद्ध हुई, कि इनके नामा से विभिन्न छन्द विधाया का निमाण हा गया । कालान्तर में चर्चरी और गीत नाम से स्वतन्त्र छन्द हो बन गये । अब जनता इन रामा की खलने की अपक्षा ध्वरण करने में अधिक रस

१-अत्रिण-अपभ्रंश का अत्रयो श्री लानचन्द भगवान गाधी, पृ० ३६ ।

२-माहिंय सन्देश पुताई १६५१, में डॉ० दगर्थ आमा का 'रामा के अर्ध का क्रम विनाम-गीतक लेख ।

३-कर्पूर मजरी, ४१० ११ का यह उद्धरण -

सम समीमा सम वाहुल्या रेहा विमुद्धा अवराउतेति ।

पताहि दोहि लगतान बंध प्रपराणपर साहिमुही हुबति ।

मेने लगी और इयातिग श्रम काथ्य का उत्पत्ति का उत्पन्न ११वां गतात्मा
 बना गया है।^१ विद्वान् धातारत न इस कथन का पुष्टि भा का है कि गता
 उत्पत्ति बहुत राधा क कारण मेर राम कथन धारा श्रम राम मान १२ गत
 मृत्यु म उनका सम्बन्ध सर्वथा सिद्धि हू गया।^२

११वां गता तब तो राम रामन की यह स्थिति रहा। पर ह्वाय का
 समय जब जन मानस न राम का हस्त का रूप का विधा और मेगा माना है
 कि गतात्मान कस्तु स्थिति का उत्पत्ति ह। समकाल न प्रम कथ्य क धारात्मा
 रागत का मेर रूप क धेरा म ग लय माना है। गितात्मा उत्पत्ति उत्पत्ति जा
 पुता है। मस्तु उदय और मिश्र य तान भय। इन तान क धारात्मा ह।
 उन्हीने शम्भिका भाग्य प्रस्थान गिग भागित्ता प्ररग रामाजीट ह्वायत्मा
 रागत गार्गी धाति उत्पत्ति विद्य है। इनम रागत और ह्वायत्मा उदय गत
 ह्वाय क धारात्मा मान है। इनम उदय तत्वा का गमात्मा धाति या और
 मस्तु का धाति। धत अनुमानन यह बना जा गता है कि रामन और
 ह्वायत्मा म उदय तत्वा की धातिवता ह। जान क कारण उमका फाटा म या
 राम जय गित म र्म या वारत्मा का गमात्मा ह। गता ह्वाय और या या
 उमकी रग्य प्रधान प्रवृत्तिया बहना गत। य रामन वारत्मा प्रधान वारत्मा बन गत
 और दूसरा धार क रामन त्रिनम मस्तुत्ता का तत्वा धाति या धार धीरे
 कामनता प्रधान हान गत। फल कामन प्रवृत्तिया वारत्मा रामन रामन रूप म
 बन रह और यह परम्परा धात भा हम पायु क रूप म गुरुति मितना है।

कस्तुन जन शक्ति क इस कथन हूण प्रभाव क कारण रामन म उदय
 तत्वा का वृद्धि मेवता तथा मृत्यु हान म क लय गता प्रधान लक्ष्य हो
 गया।^३ धन १२वीं गतात्मा म ह। राम लक्ष्य माना जान गता। नाथ्य
 दर्शन जैम प्रसिद्ध प्रथा का उत्पत्ति पर उत्पत्ति नाथ्य राम और रामन का
 उल्लेख मित जाता है।^४ रामन में धमिनय का प्रधानता बड़ा और माहिप
 दर्शन म भी नाथ्य रामन और रामन गता का उत्पत्ति उत्पत्ति य कता जा
 सकता है कि उस समय जनता म रामन का रूप क रूप म पदात्त प्रचलन ह।
 गया था। रत्नावता नाथिका में भा 'राम' का गीति नाथ्य का गता ग गत है।

१-माहिप मस्तु पुनार् १६/१, 'रामा क धर्म का धमिन विराग मेम।

२-यही धृष्टु वरी मय।

३-हिग माहिप का धातिवता, डॉ० ह्वायत्मा द्विती पृ० ६० ६१।

४-नाथ्य दर्शन (प्राच्य विद्या मन्दिर बनारस मुम्बय), पृ २१२ १६।

पर यहाँ तक राम व पास कोई नया विषय नहीं था। वही नृत्य, गान और अभिनय हा घुमा फिरा कर उसकी विषय वस्तु बनता जा रहा था। भूत १२वीं शताब्दी ने विषय वस्तु के रूप में भी एक नई उत्क्रान्ति प्रस्तुत की। गीतिया में चर्चरी मूलक रास रचनाओं में धीरे धीरे क्या तत्व का समावेश होने लगा। भूत क्या तत्व के आने से चरित्र-संकीर्तन बढने लगा। विशेष रूप से अपभ्रंशोत्तर जन रासों में शृषम देव, नमीनाथ, महवीर, जम्बू स्वामी, गौतम स्वामी, स्थूति भद्र, आदि के वर्णन मिलते हैं साथ ही थोड़ा धावका व दानवीर पुरुषों के ऊपर यथा-वस्तुपाल, तेजपाल पेयड, समरसिंह तथा तीर्थों आदि के नाम पर भी अनेक क्या प्रधान रास रचे गये जिनका विश्लेषण आगे के पृष्ठों में किया जायगा। भूत कवि इस क्या तत्व का विविध छाना में बाधकर अर्थात् "रामावध" रूप देकर जनता के समक्ष रखने लगे। अपभ्रंशोत्तर इन रासों में छाना का इस विविधता के साथ-साथ रासावध के कारण "रास या रासा" भागे चलकर एक छंद ही हो गया। एतदर्थ यह कहा जा सकता है कि क्याकि हर एक राम में गेय तत्व व रसमय तत्वा की प्रधानता रहती थी और इस गेय तत्व ने जब अनवरत वृद्धि पाई, तो यह समस्त रास ग्रंथ एक राम छंद के लिए ही रूढ हो गये हैं। वस्तुतः यह 'रासा छंद' इतना प्रचलित हुआ कि तत्कालीन लोक कान्या में भी इसका समावेश हो गया।

इस प्रकार १२वां शताब्दी तक में मिलने वाले इस विशाल जैन साहित्य में शिल्प, उसकी मुख्य प्रवृत्तियाँ, विशेषताओं और उसकी विकास की कड़ियाँ का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से किया जा सकता है।

१—संगीत व नृत्य कला के रूप में।

२—छाना की दृष्टि से।

३—विषय की दृष्टि से।

४—साहित्यिक रूप की दृष्टि से।

५—धर्म का दृष्टि से।

१ जहाँ तक संगीत का प्रश्न है उक्त विवेचन में हमने यह चर्चा की है कि अनन्त युगों तक सगात रास या रासक का एक प्रधान तत्व था। सस्कृत काल और अपभ्रंश काल के संधि युग में तो रास में उसका संगीत तत्व ही प्रधान हा गया था इसके बाद भी जैन कवियों ने जो उपदेश प्रधान चरित्रों और गातियों गाई हैं, वे संगीत तत्व का उत्कृष्टता से राम का प्रचार करने व जन कण्ठ हार बनाने में सहायक हुए थे। एक आवश्यक बात यह भी है कि 'रास' की रामा छंद बनाने में सम्भवतः संगीत ने भी सहायता की हो। वस्तुतः उक्त

अनक विद्वानां न 'गात, नय श्रीर तात' का महत्त्व राम या रामक व निग
 स्पष्ट किया है। अत राम श्रीर संगीत परम्पर अया-याथिन हैं। आ स्वामिहारा
 गान्धारी राम का एक नृत्य निगव मानत हैं तथा एक प्रकार का काव्य श्रीर
 रूप भी।^१ आवाय हमच न ता राम काव्या म विभिन्न राम रागनिया का
 व्यवहृति हान म राम के निमित्त स्वम्भ का राम-काव्य ही यह किया था।
 हमक प्रतिरित "राम" जब गेय उय रूप का प्रकार था, ता उमम अनक छा
 छा उमि गीता का समावग आनस्यक का श्रीर वही उमि-गात सगात व अनू
 गंग थे। जा राम नाम म प्रयुक्त हा रद थे। अन स्पष्ट है कि राम न गगात
 बना के क्षेत्र का भी उन्नति की भार बढ़ाया।

नृत्य कला का भी राम म पर्याप्त सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। नृत्य
 कला का प्रगति व चरम पर पहुँचान वाला ताव नर्तकी या नृत्यकार होता है
 श्रीर राम म नृत्य आवश्यक था। "अनन नर्तका याग्य चित्रतात-नयान्वितम्
 वगहरण म यह स्पष्ट हा जाता है। हर्लीमक श्रीर रामन का हमचन्द्र न दगा
 नाम माना (८-६२) तथा धनपान न पाइयनठो नाममाना (११ ६७२)
 म सामान्यत गाय-गापिया का क्रीडा कहा है— 'रामयमि ह्यमा रामक',
 मण्डनेन स्त्राणा नृत्य' अत स्त्रिया व नृत्य का उत्तम स्पष्ट भिन्नता है। अब
 तक राम नाम म जानी जान वाली मलय प्राचीन ब्राह्म कृष्ण गापिया का हा
 रहा है। उसा प्रकार नटराज गकर भी अपन उदत ताण्डव नृत्य विभिन्न रूप
 म स्वय मुख्य नन्दनर बनकर चलते थे। परन्तु श्रीकृष्ण व हम मसुल राम
 का सम्बन्ध 'लाम्य' नामक नृत्य म भी पर्याप्त सम्बन्ध रखता है। आगे राम
 का लाम्य भा बना किया गया ऐसा उन्नेम भिन्नता है। राम या लाम्य रमपूर्ण
 गीत मात्र न नहा, उमम नृत्य व माय अनक काया का भी समावग होता है।
 हमचन्द्र मूर्ति व गिप्य, न १०वा गताग म रच नाम्य-र्पण म लाम्य व
 अवातर भग का उत्पन्न किया है।^२ श्रीर तिमम विभिन्न दस्य दृष्टि हा नास्य
 व भग उपभोग म परिवर्तन करता रही है। स्वय गागमर न अपन अय गगात
 रत्नाकर म सं० १२०० ई० व आम-याम मोराष्ट की नारिया व राम नृत्य का
 उत्पन्न किया है। अत 'नाम्य' नृत्य भी कानातर म राम का म्यान ग्रहण किए
 रहा। नास्य की परम्परा म गगात रनाकर म वर्णित उया अनिरुद्ध, अभिमयु

१—'निय प्रियगा' अङ्कवर १८५७ वष ३, अङ्क १, पृ० १३ पर श्री 'याम
 प्रियारा म स्वामा का स्वामा प्रियाम श्रीर रामनातानुकरण गीर्पन नव।

२—भाव भेदा 'नाम्य' भग बहुधा मयन युध

तन्म निरुद्धोंन दगा रज्य प्रवर्तितम्

—नाम्य दाय

की पत्नी उत्तरा का बड़ा हाथ रहा है। स्वयं अर्जुन के ऊपर भी नृत्य रास के सस्कार का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। मणिपुर-नृत्य लास्य-नृत्य का ही प्रकार माना जाता है। सौराष्ट्र और गुजरात प्रदेशों में लास्य या नृत्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा स्वरूप में एक ही रही है। सौराष्ट्र में आज भी "रासदा लेवा" शब्द अब भी प्रचलित मिल जाता है। क्याकि रास ने नृत्य कला को पर्याप्त सहायता दी है, अतः संगीत की भाँति नृत्य व अभिनय रामक में एक दम अयोन्याश्रित है। यह भी सम्भव है कि श्रुत्य की अनेक कलाएँ वाद्य तथा संगीत रामक में समाविष्ट रही हों। अतः रामक में लास्य को व लास्य ने रामक को परस्पर बड़ा ही बल प्रदान किया है। अतः नृत्य-कला भी रामक का प्रमुख रूप रही है।^१

छंदों की दृष्टि से—

राम का मूरपावन छन्दों की दृष्टि से भी किया जा सकता है। ११वीं शताब्दी तक ये राम गेय रूप में इतने अधिक प्रचलित हुए कि "रास" नामक एक छन्द विशेष ही बन गया। या विद्वानों ने रास छन्द में केवल एक छंद का विवेचन न कर अनेक छन्दों का समाहार किया है। अतः यह स्पष्ट है कि रास परम्परा में अनेक रास छंदों की दृष्टि से भी लिखे जाते थे। उदाहरणार्थ सदेश रामक में प्रयुक्त राम छन्द। इस प्रकार छंद की दृष्टि से राम या रामक कहलाने वाली रचनाओं के लिए छन्द एक विचार-सारणि या कसौटी ही बन गया। ध्यान से देखने पर यह लगता ही है कि रामों ग्रन्थों में रासा छंद प्रमुखता से प्रयुक्त हुआ है। राम छन्द के इस प्रकार से तत्कालीन सभी काव्यों में यह विशेषता उनका नाम में ही आ गई और बहुधा वे नाम उनके शीर्षकों के अनुसार विविध काव्य रूप बन गये—उदाहरणार्थ—पेचड रास, समरारास आदि में रास छन्द प्रमुख है तो चतुष्पदिका में चतुर्पद और स्थूलि भद्र पागु तथा अनेक नेमिनाथ पागा में "पागु" छन्द मिल जाता है। राम छन्द का शास्त्रीय अध्ययन करने अथवा रामक के काव्य रूपा व शिल्प के विषय में हम बिरहाक के "वृत्त जाति समुच्चय" (४।२६ ३७) और स्वयम्भू के छंद से बड़ी सहायता मिलती है। इन दोनों छंद शास्त्रियों ने रासक की परिभाषा दी है। बिरहाक के अनुसार रासक अनक अडिल्ला, दुव-हवा मानाग्रा, रड्डाग्रा और डासाग्रा से मिलकर बनता है। इसके अतिरिक्त मानाग्रा रड्डा दाहा अडिल्ला तथा दोमा की उसने अलग परिभाषा दी है। सम्भवतः बिरहाक ने रामक की दो प्रकार की लोक प्रियता बताई है तथा यह निता है कि—रास बंध के वाक्य ही उन्होंने 'रामा'

नामक स्वतन्त्र छन्द की परिभाषा यह है जिसका कुछ मात्राएँ टॉ० हरिवल्लभ भाषाणों ने मन्त्र रामक का भूमिका में दर्शना है, छन्द ढगिया, पढ़ाईया, घता चोराइ, रहु आत्मा, अटिल आदि अनन्त छन्दों का अनुतापत में प्रयोग करने वाली रचनाओं का रामक नाम दिया है। इस प्रकार मन्त्रा परिभाषाओं में प्रयुक्त तथ्या का समीक्षा मान कर चर्चन में जब हम आन्विकानान हिन्दा जैन साहित्य का राम रचनाओं में 'राम' छन्द का ढूँढने हैं तो हम राम छन्द इन लक्षणों से प्रत्यक्ष हैं छन्द लगता है और उस स्वतन्त्र छन्द का दाहा, दामा, अटिल आदि छन्दों में स्वतन्त्र रूप मिश्र होना है तथा परस्पर काई साम्य भी नहीं निम्नाद पड़ता। अतः यही कहा जा सकता है कि इन विभिन्न छन्दों का कृतिप्राप्ति का रामक नाम द दिया जाना होगा। रामक और राम छन्द के लिए अद्यावधि प्राप्त प्रमाणों का आधार पर इसमें अधिक कुछ कहना बहुत समत नही लगता, पर यह स्पष्ट है कि रामक और राम मन्त्र अनन्त कृतिप्राप्ति में 'राम' एक छन्द विषय के रूप में सूत्र मिलना है।

अपने गतर जान में रामा के विषय में विस्तार रूप। अनन्त विषयों पर राम रचना हृदय निरम में कुछ प्रमुख विषय अग्रवर्ति हैं -

- १-उत्तमभूतक (यथा उत्तम रमायन राम)।
- २-चरित प्रधान (यथा-पषट राम)।
- ३-प्रवचन या दीनभूतक (यथा अबू स्वामा गौतम स्वामा और स्थूलि मद्र राम)।
- ४-उत्तम य वैभवा-चरित-भूतक (यथा भरत-वर-चरित-राम)।
- ५-उत्तम प्रधान राम (यथा भरत-वर-चरित-राम)।
- ६-कथा प्रधान-रामायण महाभारत पर (यथा पाण्डव चरित राम)।
- ७-नौचरों पर व ताव यात्राओं पर-प्रवा रक्षतगिरि राम तथा आबू राम, मस्तकप्रदाय राम।
- ८-मन्त्र वर्णन (यथा-ममरा राम)।
- ९-मकार्तन-जय तथा मैट्रातिक (यथा-मानह-वारण राम)।
- १०-ऐतिहासिक राम (यथा-ममरा राम)।

इस प्रकार चरितों के शृङ्गा का वर्णन करने उनके लक्ष्य का हानि यात्रा वर्णन करने के निमाण करने मन्त्रों का जोर्णोदर करने दी ता उत्तम हनु जय वाच आदि व निष्ठा हैं राम ग्रंथों का रचना का जाना था। इसमें अनिश्चित व भौगोलिक सामाजिक साम्प्रदायिक तथा चरित भूतक हानि था। जैन रामा साहित्य जिनका है चरित भूतक होना था उत्तम है एतिहासिक भा होना था।

इस प्रकार राम ग्रन्थों के विषय में व्यापकता आ गई और विषयों की सीमा का कोई बंधन नहीं रहा। अतः उन जैन साधकों ने लोक साहित्यपर ग्रन्थों जन भाषा में और गान्धर्व भाषा में नारायण रचना की।

विषय की दृष्टि से—

रास परम्परा में वैष्णव व जैन नाना धर्मों में बड़ा योग दिया है। वैष्णव धर्म में कृष्ण भक्ति नामा के गान गण्टन व कृष्ण भाषितों ने राम की चरम पर पहुँचाया और राज के रास तो गान्धर्व में प्रसिद्ध हैं। इनमें गान्धर्व परव, भक्ति-परव और गोमय सभी प्रकार के राम मिलते हैं।

जैन धर्म ने भी विज्ञान मर्याद सत्कृतिवाच के रामों को सुरक्षित रखा है। अनेक कीर्तनगी जैन मुनियों तथा राजपुत्रों के दीक्षा ग्रहण करने के अवसर पर भी रामों की क्रीडाएँ होती थीं। स्त्री और पुरुष इन रामों का बड़ी श्रद्धा में खेलते थे और अपनी प्रकृति प्रदत्त अनुभूति का अभिनय व संगीत में जुड़ा कर साधारण व सार्वक करता थे। मुनिकर सवाम ग्रहण ही नहीं करते थे, उनका समय-श्री के साथ विधिवत् विवाह होता था और इन जैन रासों में से अनेक रासों का उद्देश्य आचार्य-श्री का मजमसिद्धि से वर्णन करना होता था यथा—जिनद्वर सूरि दीक्षा विवाह-वर्णन राम। इस गुण अवसर पर अथवा पर्व पर उनके अनुयायी आकर भला वचन मानते ? के उत्पुल्ल हाकर मृत्यु, लय, तान, गीत आदि द्वारा आचार्य-श्री का श्रद्धाजनि देते थे अतः राम का आयोजन होता स्वाभाविक था।

साहित्यिक रूप और नित्य योजना

साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर रास या रामक संगीत, मृत्यु लय, तान, छन्द, क्रीडा अभिनय, उक्त सभी अंगों के समन्वय का समूह है। वस्तुतः रामक का सम्बन्ध उक्त अंगों से ऊपर दिखाया जा चुका है। रासक या रास का स्वरूप उद्भूत-मेघ-उपरूपक के रूप में उल्लेख प्रधान होता है। अतः साहित्यिक दृष्टि से इसके कितने जय तत्वा का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

- १-रामक मेघ उपरूपक है, जिसकी वृद्धा गद्य में कम व पद्य में अधिक अर्थात् अधिकतर पद्य में ही होती है।
- २-उममें अनेक नर्तकियाँ हैं।
- ३-विभिन्न रासों का समावेश हो।
- ४-अनेक छन्द हो।
- ५-लय तान का सुन्दर समन्वय हो।

६-अनेक प्रकार के अभिनय हैं ।

७-यह मण्डना में निमित्त है ।

८-मनन युगल न, जो गाय आना करें ।

९-पुष्प अलग, मित्रया अलग धयना ममनेत नृत्य ।

१०-वस्तु में रस या ममिकरण अनिवार्य रूप से है ।

११-विभिन्न प्रकार के नृत्या का समावेश है ।

१२-एक या रामन एक निश्चित स्थान या मंत्र पर हो ।

निश्चित स्थान में तात्पर्य रंगमंच में लिखा जा सकता है । यद्यपि रंग मंच की सूचना क्या भी स्पष्ट रूप में राम और रामक माहिष का उल्लेख करने वाला प्राचीन मसूदा व अपभ्रंश कृतियां में नहीं मिलती, परन्तु राम के गीत में स्थान-विशेष नृत्य-विशेष सुझा, हान भाव, तथा स्थिति-विशेष प्राप्ति तथा का स्वरूप यह कहा जा सकता है कि रंगमंच का स्पष्ट उद्देश्य नहीं हान पर भा राम में मंच गीत का स्थिति अस्वरूपी ।

वर्तमान काल में रास की स्थिति—

“राम” जैसा गेय उपलब्ध आज भी अपनी जायज विधाया का तेवर विविध रूप में हमारे सामने सुरजित है । हमारे रूप का ताक ससृष्टि अनुपम है । राम जैसा साहित्यिक गेय उपलब्ध की आयोजना रूप में हर प्रयोग में विभिन्न गीतों में गयी जा सकता है । जहाँ तक राजस्थान का प्रश्न है राजस्थान में राम खनन का प्रयास भी है । मण्डलाधार बनाकर गीत भवमरा पर मयत्र गीत का मज्जाकर उसी पर डेढ़ा में व डान बाध पर राम खनन है । विभिन्न मण्डलियां में भी राम खनन की प्रथा है । ‘रामधारा’ एक मण्डल उत्तम प्रसिद्ध है । राम गीतों भी जाना है परन्तु पुष्पा की अपेक्षा मित्रया में हमारा प्रचार अधिष्ठ है । मित्रया के समाज में राम की स्थिति विविध प्रकार की है । राम का यह वर्तमान रूप अत्यन्त प्रसिद्ध है । या राम के गीत का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करने वाला यहाँ का नृत्य विशेष नहीं है, परन्तु उसमें पाये-पाये तत्त्व विभिन्न प्राणा के नृत्य विधाया में बँट गये हैं । राजस्थानी राज नृत्या में जो भीगा और भीता के नृत्य बलुजारा के नृत्य, नटा का वनाण बागडिया और गरामिया के नृत्य वाजवतिया के नृत्यगो पकरिया, और पगिहारा का भागायन अभिनयामक और नृत्य प्रधान समातामक-नृत्य, भव-नृत्य रामधारिया का चाराण तुराविनगा के अभिनय प्रधान नाच, बोकानर के अभि नर्तक, जानीर के डान नर्तक, टीटनाणा और पावरण का तैरातानी (तात राम) मारवाड की कच्छा घाडिया का नृत्य, गात, अभिनय,

पारोरिक अवयवा की कला, नृत्य तथा वाद्यों से समन्वित मारवाड का कठपुतली नृत्य, पावूजी की पड्डे, काहू गूजरी के नृत्य विनोद तथा कुचामणी ध्यान, अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। साथ ही राम के अभिनय की उसी आदिम स्थिति में पहुँचाने का प्रयत्न करने वाले और भी कई जंगली नृत्य हैं जिनमें डफ व नृत्य, सासिणी के नृत्य, बंजर नायका, चमारा व मेहतरा व नाच प्रसिद्ध हैं। दासावा की प्रदेन व चौक जानणी और मदिरा के कीर्तन और नृत्य भी अपना महत्व रखते हैं। आंगिक रूप से राम के तत्त्वा का प्रतिनिधित्व करने वाले नृत्या में राजस्थान की श्रिया का 'धूमर या भूमर नृत्य' नहीं भुनाया जा सकता। धूमर नृत्य में श्रिया 'गवर' या पार्वती की प्रतिमा के सामने भैंकड़ा की सभ्या में बजाकार मण्डला में विभक्त हा, घंटा नृत्य में लूब जाती है जिसमें वाद्य की मधुरता गीत का प्रवाह स्वर व संगीत की रम्य अभिनय की उत्कृष्टता तथा भावाभेप दर्शनीय है। पर इसमें, युगलों में पुरुष भाग नहीं ले सकत। यह विनोदकर होना गणगीर और दीपावली जैसे त्योहारों व अवसरों पर मध्यमवर्गीय श्रियो द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। धूमर का उत्पत्ति स्वरूप संगीतमय है। जाधपुर का धूमर कलात्मक है पर उसमें अङ्ग संचालन का अभाव है और काठ बूंदी के धूमर में अपूर्व जीवट और प्रभाव होता है। इन नृत्या में 'लाला रास' 'दण्ड रामु' आदि सब रूप देखने की मिल जात है। अतः धूमर राजस्थान का एक राष्ट्रीय नृत्य है।

पुजराज और मानवा में रास की वर्तमान स्थिति, वहाँ के 'गरवा गरवो' या गरबी नृत्य प्रस्तुत करते हैं। 'गरवा' एक ऐसे घड़े को कहते हैं जिसमें सक्ड़ो घेन हात हैं। श्रिया उन्में दापक जनाकर तान अभिनय संगीत आदि व आधार पर उसका सम्पन्न करती हैं। यह नृत्य राम का सही रूप आज भी प्रस्तुत करता है।

रास के वर्तमान स्वरूप की सुरक्षा करने वाले रासा में वृज व रामो का भी बड़ा महत्व है। मथुरा वृन्दावन आदि स्थानों पर राधा कृष्ण और गायिका के रूप में विविध लीलाओं तथा कृष्ण द्वारा विष्णु रामो की आयोजना होती है। यहाँ तक कि अनेक महिलाओं ने तो इसे अपना पेशा ही बना लिया है। राम वृज की प्रमुख वस्तु है और कृष्ण उसके जन्मदाता। यज्ञ में रास का वर्तमान रूप कब प्रचलित हुआ? उसके प्रारम्भकर्ता कौन थे? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता साथ ही अनेक मतभेद भी हैं।

नारायण मन्त्र, वज्रमार्ग हरिनाम तथा धमस्तव का स्मृति प्रवक्तव्य में उचित मितता है।

यह व इन रागा व ११ प्रमुख प्रकार हैं —

१-गान्धाय वजन युक्त तथा

२-गान्धाय वजनमुक्त तथा नृत्य विधा नान्यथा श्रीर वरमाना की पुत्ररिषा विविध मुद्राया म नृत्य करना हर्ष हताम्य का वास्तविक रूप प्रस्तुत करना है नियम बाध नष्ट होना। परन्तु गायन वना ही कल्याणजनक होता है। यह नृत्य ममवन सम्यक् प्रमाण ग ममान हा गया है। उक्त नेत्र मटना वार नृत्य अन्तर आन भी वक्तव्य प्राप्त है।

अथ का गान्धाय नृत्य ११ प्रकार ता है —

१-राम और २-मन्त्रा गान। 'राम' रागमडविषा करना है तथा महाराज कृष्ण न ११ गायिका म १२ कृष्ण या १३ कृष्ण व बीच एक गायी के रूप में किया था। जब व्रज का मन्त्रिया राम करता है ता भरत के नाच्य गान्धाय म वगुण नाना रामरा का मिश्रण स्वन का मिल जाता है। १ आन जो व्रज म राम पन्नि है व २००-६०० वर्षों म अधिष्ठ पुरानी प्रणीत नहा हानी। इसमें मगतावरण व गान मारगा पञ्चजन चिन्तन भाव और मजीरा व आधार पर मगान गान जाता है और मन्त्र नृत्य करने है।

अथवा भाषा म राम का स्वल्प 'रमिया' के रूप म मितता है। शिल्पा म नर वर्ण हान वान साम्प्रति लार-नृत्या म 'इष्टा व अवधा के रमिया नृत्य का महत्व मा ॥ यन् अधिष्ठ है जिसमें अभिनय नृत्य बाध गान वग परिवर्तन मच और अभिनय मन्त्र का समिश्रण मितता है। अवधी और व्रज व स्थाय भी राम व मन्त्र अ म की पूति करने है। इसमें अतिरिक्त व्रज व नौव

❧ (ग) आकृष्णराज वाजपेयी का व्रज नाच सङ्कृति म २००५ पृ० १३८ ४७ पर राम देख।

(ग) रामनारायण अग्रवाल का रामनाचा व अध्याय वर्ता नव व्रज-भारती वष १ अध १।

(घ) गोडार अभिनयन ग्रन्थ पृ -१३ १७ म नारविन हाइन का "रामनाचा व विष्णु स्मृति लेख।

१-विश्व-व्रज का इतिहास भाग २, आकृष्णराज वाजपेयी पृ० ११५ पर भाई वनोवाचन गय का देख।

नृत्या मे रास के सम्प्रदायी, ब्रज की चरखा, सप्तमनिया चाचर, भूना नृत्य, नरसिंह नृत्य ढाडा ढाडा नृत्य आदि सावि-वत्सलमा नृत्य मत्पत प्रसिद्ध है जो रास परम्परा का भी सुरक्षित करत है। जयदेव का भीत ताविन्ध और चैतन्य का कृष्ण भक्ति प्रेमलीला वर्णन विसा राम मे वम रही है।

यंगान मे श्री भगवान कृष्ण के रास का रूप प्रचलित है, जिसमे उनका वेश ब्रज से भिन्न हाता है, पर इगम अभिनया भवता बडा उरदृष्ट हाती है।

मासास मलिपुर क इलाक मे वग नूपा, अभिनय और भावुनता सीना तत्वा की रास मे प्रधानता है। वहा भी वमत राम, नत्त राम और महा राम ये तीन प्रकार के होत हैं। सी प्रकार दक्षिण मे तमिल, तन्नू, बन्नड मनयालम आदि प्रदेशों के साव-साहित्य राम का प्रतिनिधित्व करत है। वस्तुत रास की परम्परा आज भी विभिन्न साव-वत्सलमा अनर नृत्या के रूप मे सुरक्षित है। वस्तुत तत्वालीन अपभ्र शैतर कालीन जैन रामा का वर्तमान स्वरूप जन समाज में आज भी प्रचलित है परन्तु उसका आदि रूप हो दृष्टिगाचर हाता है। दीक्षा के समय जैन मुनि का समय-श्री के विवाह के रूप के रूप मे सब क्रियाए पूरी की जाती हैं पर रास नृत्य और उल्लास के साथ नृत्य अभिनय प्रब रक गया है। निर्फ अपनी उल्लास प्रधान अभिनयवित का के संगीत प्रया के माध्यम से प्रकट कर देत हैं। हां सीधों आदि मे स्त्रिया का नृत्य उल्लेखनीय है। वस्तुत रास नृत्य आदि के प्राचीन मानक आज बलत जा रहे है, पर जैन मुनिया मे राम बनाते और उनकी गाकर उनका उपदेश देना आज भी प्रचलित है। सौराष्ट्र और गुजरात के जैन मुनि सा आज भी राम बनाकर गाते हैं। ऐसा लग रहा है कि आधुनिक जन-राम पुन अपनी प्राचीन गेय व उपदेशात्मक स्थिति का, जो हमच द स पूर्व धी, प्राप्त करते चने जा रहे हैं। राजस्थानी भाषा मे जा परवर्ती रास मिले है उसमें रासा' द' का ही अर्थ पकर्थ होगया है और व युद्ध वणनात्मक काय व भी सूचक है। सी कारण राजस्थानी मे रामा' का प्रयाग लडाई भगडे या गडवड घाटाले के अर्थ मे भी प्रयुक्त होन लगा। १७वां सातादी के उत्तराद्ध मे तथा १८वीं सातादी मे कुछ विनोदक रचनाए जस उत्तर रामो, माकड रासा आदि रासा की रचना हुई है। १७ डॉ० हजारोप्रसादी का कथन है कि 'रामक' वस्तुत एक विशेष प्रकार का मनोरंजन है। राम मे वही भाव है।^२ आज के रास, विषयो की

१-देसिये नागरा प्रचारिणी पत्रिका, स० २०११ अंक ८ पृ० ४२० पर श्री

अगरबद नाहटा का प्राचीन भाषा का या का विविध गजाए 'लेख।

२-देसिये हिन्दी साहित्य का आधिकार, आचार्य हजारोप्रसाद त्रिवेदी, पृ. १००।

सामाजिक बंधन में नष्ट हो जनता अपने मुख्य-धर्म का प्रथम धर्मोपदेश, गृहकार किया धार्मिक मंत्री तथा म प्रस्तुत कर स्व व्यक्त जीवन में मूल अनुभव करना है।

जो माता है उक्त विवेचन में राम की परम्परा, उद्देश्य, परिभाषा, गिनती धार्मिक तत्त्वा का पूरा-पूरा सूच्यजन प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक ने किया है। पर अथवा अन्तर का अथवा प्राधान्य हिन्दी में जो धार्मिकता की विभिन्न गतावस्था में विज्ञान गत्या में राम रचनाएँ प्राप्त होती हैं उनका का-य का अध्ययन करना आवश्यक होगा। उक्त विवेचन में धार्मिकता की हिन्दी जैन साहित्य में प्रादुर्भाव गतावस्था में विवेचन करने हिन्दी जैन सामाजिक का मुख्य प्रवृत्तियाँ गिलागत स का सत्ता का-य तथा का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। धार्मिकता की हिन्दी रामा का समझन में समय पर्याप्त सहायता मिल सकेगा ऐसा लेखक का अनुमान है।

भरतेश्वर बाहुवली रास

राम परम्परा में सर्व प्रथम और सबसे विस्तृत पाठवाली रचना भरतेश्वर बाहुवली रास है। प्राचीन काल में हिन्दी जन साहित्य में यही कृति ऐसी है जो पर्याप्त प्राचीन तथा जा अपभ्रंश की परवर्ती भवस्या और पुरानी हिन्दी (प्राचीन राजस्थानी और जूनी गुजराती) के बीच की कड़ी है। परिशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी जैन साहित्य की राम परम्परा का भरतेश्वर बाहुवली रास सर्व प्रथम राम है।^१ अचार्य मुनि जिनविजय जी तथा गुजराती विद्वान् इसी रचना का सर्व प्रथम रचना मानते हैं। पर श्री मगरचन्द नाहटा द्वारा शोध पत्रिका में लब्ध प्राचीन रास श्री अक्षसेन सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुवली घोर' प्रकाशित किया गया है जो इनमें भी प्राचीनतम है, पर रचना अकेली तथा सक्षिप्त होने से यह रास जय प्रवृत्तियों की प्रमुखता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में भरतेश्वर बाहुवली रास को ही हिन्दी साहित्य का सर्व प्रथम राम माना जा सकता है।

प्रस्तुत कृति का सम्पादन मुनि जिनविजय जी ने किया। रचनाकार श्री नासिमद्रसूरि हैं और रचना काब स० १२४१। प्रति बडादरा के एक विद्वान् नासिमद्रसूरि जी की है तथा कागज की है। अनुमानत ४०० या ५०० वर्ष पुरानी होगी। मुनिजी का यह पाठ पूर्ण प्रामाणिक प्रतीत होता है। इसी पाठ का राहुल साठ्यायन ने भी उद्धृत किया है।^२

दूसरी कृति का सम्पादन श्री लालचन्द भगवान गाधी के द्वारा सम्पन्नित है। श्री गाधी न प्राच्य विद्या मन्दिर का तथा आगरा संग्रह की श्री विजय धर्म सूरि के आधार पर कृति सम्पन्नित की है। श्री गाधी का पाठ मुनिजी का सम्पन्नित कृति से स्थान स्थान पर बीटा भिन्न भी मिलता है। तथा छन्द क्रम में भी अन्तर है, पर दोनों अपन अपन रूप में प्रामाणिक हैं।

१-भारतीय विद्या भाग २ अंक १, स० १९९७, पृ० १-१६ सं० मुनि जिनविजय।

२-हिन्दी का म धारा, श्री राहुल साठ्यायन पृ० ३६८ ४०८।

३-भरतेश्वर बाहुवली रास, स० श्री लालचन्द भगवान गाधी, प्रकाशक प्राच्य विद्या मन्दिर बडादरा, वि० स० १९९७।

प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन करने में पूर्व दो और महत्पूर्ण बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। एक तो यह कि यह कृति प्राचीन परिचयी राजस्थानी का है तथा दूसरी बात अन्य भाषा और जन भाषा के आधार पर यह कृति पुरानी हिन्दी की है। गुजराती विद्वान् अन्य पुरानी गुजराती की मानते हैं जब कि ११०० वि० के पूर्व गुजराती का स्वनम प्रसिद्ध हुआ नहीं था तथा शैली एक ही भाषा या और यह राम द्वि० म० १०८१ का है अतः प्राचीन राजस्थानी और गुजराती का पृथक्ता का प्रश्न विज्ञान का विषय ही नहीं है।

भरतेश्वर बाहुबली राम के कला विद्वान् जनाचार्य गान्धिभद्र हैं जो अपने समय के विद्वान् कवि थे। भरतेश्वर और बाहुबली ज्ञाना ध्यान प्रसिद्ध चरित नायक राजपुत्र रहें। इन ज्ञाना ग सम्बन्धित अनेक रम्य रचित रचनायाँ प्राणि बहूत या पुराने ज्ञाना में उपलब्ध हैं। ज्ञान यह परम्परा अब तक मिलता है।

भरतेश्वर-बाहुबली पर रचित साहित्य

इस साहित्य की परम्परा ८वीं शताब्दी तक मिलता है। तथा कदाचित् एक-सी है वगुन तथा धन्याना में परम्परा अभिन्न भी मिलता है। कहा भरत का वगुन अवन मिलता है और कहा बाहुबली का। कुछ स्पष्ट इस प्रकार है —

जम्बू द्वार प्रज्जि नामक जन ज्ञाना गुप्त में भरत शत्रु के साथ चक्र-वर्ती भरत के ६ वगुन या वगुन का वगुन है। भरत और बाहुबली का अधिकार वगुन विमल गुरि कृत पठम चरित में १ वा शताब्दी में श्री मध्याम गणि रचित वामुख ज्ञि १ नामक प्राकृत की कथा में प्रथम के साथ ज्ञानों का वगुन है। २ वा शताब्दी का जिन्या गणि की प्राकृत भाषा का पूर्णि नामक व्याख्या में ज्ञाना का चरित वगुन है। ज्ञाना के परम्पर युद्ध के वगुनों का जिन ज्ञाना में उपलब्ध है ३ है—रविश्याचाय का पञ्चपुराण धन-दरमूरि तथा १ वा शताब्दी में जयमूर्ति कृत धर्मोपनिषद् भाषा के साथ-साथ जिनमन के प्राणि पुराण २ पुस्तक के त्रिपठि महापुराण गुणाकार तथा समस्त के त्रिपठि ज्ञाना चरित (प्रथम पठि) तथा म० १०८१ के सामप्रदाया के कुमारपाठ

१—विज्ञान-धामान जैन ज्ञाना भाषा म० म० ८० म० मुनि चतुर्विध्य म० १८८६ नावनगर जैन धामान ज्ञाना द्वारा प्रकाशित।

२—माणिक्यचन्द्र शिखर जैन ज्ञाना भाषा ममिति द्वारा प्रकाशित म० १९४८ पृ० ८१-८२।

प्रतिबोध १ और विनयचमूरीर वृत्त आदिनाथ चरित म मिलता है। परवर्ती साहित्य म १४वीं गताब्दी म जिनेद्र रचित पद्मनन्द महाकाव्य २ सग (१६१७) स० १८०१ मे मेरुतुल्ल रचित रत्नमन्द प्रबन्ध मे, १८३६ व जय शेखर मूरि वृत्त उपांग चित्तामणि की टीका में तथा म० १५३० म गुणरत्न मूरि के भरतेश्वर बाहुबली पवाडा म तथा स० १७१५ व चित्तामणि के गुजरानी 'गद्य गय राम' मे भरत बाहुबली का चरित्र वर्णित है।

वस्तुतः दोना चरित गाथा के वृत्त बड़े म्यात है और यह कथा परम्परा १८वीं गताब्दी तक मिलती है। इन बहिरंग प्रमाण म इनकी कथा बड़िया का गरनता मे अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। उक्त प्रमाण म भरतेश्वर बाहुबली की कथा म स्मृत, प्राकृत अपभ्रंश पुरानी हिन्दी (राजस्थानी-गुजराती) आदि सभी भाषाभा म विस्तार मे भिन्न जाता है। प्रथा म ही नहीं, भारत के विभिन्न मंदिर तीर्थों स्तूपा चित्रा तथा अनन्य स्मारका के लिए भी बाहुबली आर्पण के विषय रहे हैं। उदाहरणार्थ मैसूर के श्रवण बेलगोत्र म ५६ फुट के लगभग अद्भुत शिखर बलामय बाहुबली की ध्यानस्थ खड़ी हुई प्रतिमा है। तथा आठवीं स० १०८८ की बिमलवस्ती की गिल्फ बला मे भरत और बाहुबली युद्ध के दृश्य गिल्फ चित्रा म लिखाए गये हैं। ३

भरतेश्वर बाहुबली राम वीर-रम-पूर्ण प्रबन्ध है। या शांति और अहिंसा प्रेमी जनाचार्यों का वीर और शृंगार रम से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता परन्तु परम्परा के कारण उह ऐसे वाक्या की रचना करनी पड़ी। राम म उस्माह रूप, स्वाभिमानपूर्ण उक्तिया तथा वीर राम का सतत उमड़ता है। इस रास की मौनिकता यह भी है कि यह प्रबन्ध युद्ध प्रधान व वीर रम पूर्ण होते हुए भी निर्वेदात है। जैन रचनाकारो न विरोधी रास का समन्वय बड़े कौशल से किया है। यहां तक कि यह बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य है कि रास या फागु जैसी शृंगार प्रधान रचना भी निर्वेदात है।

प्रस्तुत राम म रचना स्थान कवि का कही नहीं दिया है पर एतदथ गुजरात या राजस्थान व किमी भी युद्धवीर या युद्ध प्रेमी नगर की कल्पना की जा सकती है। राजस्थान ता या भी युद्ध वीरा का जन्मस्थान और युद्ध प्रधान प्रदेश रहा है।

१-गायिका प्राच्य ग्रन्थ माला न० १४ म प्रकाशित।

२-वही न० ५८ म प्रकाशित (गायिका प्राच्य ग्रन्थ माला)

३-भरतेश्वर बाहुबली राम, श्री गांधी, प्रस्तावना पृ० ५३-५६।

कथा भाग

राम का कथा वस्तु श्लेष में निम्नलिखित है -

जम्बूद्वीप के अध्याध्यातगर में श्रुपम त्रिनेत्र के मुनियों और मुमगता में दो पुत्र क्रमशः वाटुयनी और भरत यगन्वी और पराक्रम उत्पन्न हुए। भरत अग्र-ये। श्रुपभस्वर भरत का अध्याध्याता तथा वाटुयनी का तपस्विता का राज्य गोपितर निरक्त हागा। उन्हें वैराग्य ज्ञान प्राप्त हो गया। त्रिनेत्र उन्हें वैराग्य ज्ञान प्राप्त हुआ भरत का आयुष्य गाता में 'श्रिय चक्रवर्त्त' उत्पन्न हुआ। भरत ने पत्नी पिता को पत्नी करके त्रिनेत्राय प्रार्थना की। आगे प्राण चक्रवर्त्त पाए पाए मना। अनेक राजाओं का विजय करके जब वे पुनः 'गो' तो चक्र अध्याध्यातुरी के वाटुयनी के गया। भरत के मत्वा ने इसका कारण उत्तर बताया कि जानना के काम में नग्न करना बताया। मय की हृष्टि वाटुयनी की छार पड़ गई। भरत ने छद्म हाथर वाटुयनी का शून्य माय अपनी अध्याध्यातुरी स्वीकार कर पीरा में प्रणाम करने का कहा। गौगात के उत्काश मागे। वाटुयनी भी क्रुद्ध हो गये और कथा श्रुपभस्वर ने जय मयका समान रूप में राजपण लिया है तब तक मत्वा मत्वा हो और दूसरा भाई समक अध्याध्यातुरी यत्न सम्भव नहीं है। शून्य का उगने पत्वार कर वागम 'गो' लिया। दाता और म सुद्ध की तयारिया हुई।

१३ त्रिनेत्र के भयंकर युद्ध में रक्त का जल पड़ गया। तब भरतवर्त्त की मना में चन्द्रमूढ और 'नरु' विजयाध्यातुरी ने विनय का। इन्द्र ने भारत युद्ध बन्द कराया और कथा कि भाई भाई की पारस्परिक पटार्त्त मना का महार दय्य हो रहा है। अतः अच्छा तो यह हो कि इन्द्र युद्ध हो कर विजय का निगम हो जाय। वक्ता युद्ध इन्द्रियुद्ध (नेत्र युद्ध) और स्पष्ट युद्ध निश्चित हुए और तीनों म जय वाटुयनी विजया हुआ तो भरत ने क्रुद्ध हो कर उन पर भयानक ताड़ कर चक्रवर्त्त चक्रा लिया। अतःपि समक उनका युद्ध माहानि नहीं हुई पर वे चक्रवर्त्तों के सम-यत्वार में समक युद्ध हुए और उन्हें विरक्ति हो गई। उन्होंने त्याग प्रणय करती। युद्ध बार का निर्णय हो गया। राय-श्री उन्हें तुच्छ जान पड़ी। चक्रवर्त्तों भरत ने उत्तर चरणा में मग्न हो कर समयाति कृत्य द्वारा सम्पन्न भूत को स्वागत किया तथा मया वाचना की। पर वाटुयनी का ता निरु ने अपना दिया था। अनेक वर्षों तप करके वे कवेय जानी हो गये। भरत ने भी धूमधाम में नगर में प्रवेश किया। उत्सव हुए नगर तांरग्य मजामे गये। आयुधगाता में आकर चक्रवर्त्त भा गान हुआ और चक्रवर्त्त भरतवर्त्त का यत्न हो गया।

१० " राम की प्रिया यही है । रचना अनेक बंधा म निम्नी गई है और कुन मिला । कर २०५ छन्दा म समाप्त हुई है । प्रबध परम्परा का यह एक महत्व पूर्ण खण्ड काय है । स० १२४१ का यह राम अथ उपलब्ध अनेक हिंदी रासा में सब से बड़ा है । इसके बाद इतनी बड़ी राम रचनाएँ १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध म ही मिलती हैं । यह प्राप्त कृतियां मे स्पष्ट होता है । अस्तु २५० वर्षों के स० १२४१ से १५०० तक के इतने बड़े मान की साहित्यिक प्रवृत्तियां, तथा भाषा आदि का प्रतिनिधित्व यह अवैला राम करता है । प्रस्तुत प्रबध खण्ड की रचना भास-सग या पव आदि मे विभाजित नहीं है । यो प्रबध काव्य को परम्परा मे ही कुछ भागा म विभक्त कर दिया जाता है । महाकाव्य सर्गबद्ध होते हैं ^१ । प्राकृत म प्रबध काव्या के सर्गों का नाम 'आश्रवाम' ^२ है । अपभ्रंश काव्या म सधि ^३ का प्रयोग हुआ है । सधि के प्रारम्भ म ध्रुवक और उसके भागे कुछ कडवक तथा प्रत्येक कडवक के बाद घंटा रखा जाता था । कहीं कहां प्रक्रम ^४ नाम भी मिलता है । हिंदी-जैन-साहित्य के परवर्ती अथ रामा में भी ये नाम विभिन्न प्रकार से मिलते हैं । उदाहरणार्थ कच्छूनी रास मे वस्तु या 'वस्त', ^५ जम्बू स्वामी चरित मे कडवक, ^६ एवं ठवणी (स्वापनी) ^७ समराराम में भाम, ^८ तथा पयड रास म ताण, ^९ नाम दिए गये हैं । इसके अतिरिक्त सर्गों के नाम बाढ ^{१०} य पर्व ^{११} भी मिलते हैं ।

१-साहित्य दर्पण विश्वनाथ-"सर्ग बंधो महाकाव्यो तत्रैको नायक सुर"

(१) पृ० ३०२-३ ।

२-मर्गा आश्रवास सगका-साहित्य दर्पण, पृ० ३०४-५ ।

३-साहित्य दर्पणकार ने इसे "कडवक" कहा है । पर वास्तव म यह सधि है ।

यह सधि कडवक समूहामक होती थी । 'कडवक समूहामक सधि' देखिए ना० प्र० प० वर्ष ५६, अ० १, स० २०११ ।

(४-देखिए सदस रामक अर्धुन रहमान वृत्त भूमिका भाग ।

५-प्राचीन गुर्जर काव्य, स० मुनि जिन विजय, पृ० ५६ ।

६-जम्बू-स्वामी-चरित तथा प्रा० गु० का० स०, पृ० ४१ ।

७-समराराम मुनि जिन विजय वृत्त-जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य सचय पृ ११७

८-प्राचीन गुर्जर कवियां-माहालाल नसाई वृत्त तथा प्रा० गु० का० परिशिष्ट, भाग २८ ।

९-तुलसी वृत्त रामचरित मानस म बातराण्ड, अयाध्याकाण्ड, सुंदरकाण्ड तथा काण्ड आदि ।

१०-अग्निये-महाभारत म गाति पर्व, युद्ध पर्व आदि नाम ।

भरनेश्वर बाहुवनी राम भी इभीतरह वस्तु, ठवणी, वाणि, ^१ आदि में विभक्त होता चलाता है । यद्यपि क्या म वही भी कविवृत्त सर्ग यति या समाप्ति नहीं है, फिर भी क्या का विभाजन, भरतकी निविजय, भरत व बाहुवनी का युद्ध, बाहुवनी का दोषा ग्रहण आदि इन तीनों गीर्वाणों में सरलता से किया जा सकता है ।

प्रस्तुत राम के वर्त्ता श्री गणेश ने राम का प्रारम्भ भगनाशरण में ही किया है । कवि ने श्रृणुम जिनेश्वर व शरण म प्रणाम करके, भरतस्वती का मन म स्मरण करके, गुरु प वचना व पञ्चाल ही काव्य का प्रारम्भ किया है ।

रिम जिणेसर पय पणुमवी

सरमति सामणि मन ममरेवी ।

नमवि निरतर गुरु शरण

नाटकीय सत्ताप

राम म कई स्थान म कवि की नाटकीय सत्ताप-याचना स्पष्ट होती है । मवा वने प्रमावगानी और मरम हैं । यथा-मतिमागर भरतेश्वर-मवाद दूत-बाहुवनी मवा आदि सत्ताप म पव नाटकाय याचना है । पर्याप्त गेयता तथा उमा ^२ । कवि ने इनके द्वारा काव्य म अभिनय भगिमा का समावेश किया है । दोना मवा व उमा-रगु लमिग -

मतिमागर निगि वात चक्क न पुरि श्रवेमु करइ

तु नि मन्नाह राजि धुरि धरीय धारि धुरह ^३

-(प्रश्न)

बोलइ मनि मयकु सम्मलि सामाय । चक्कधर ^४

नवि मान नूय भाणु बाहुवनि बिह बाहुवने

तिगि कारणि नर दव । चक्क न आवइ निय नियरे ^५

-(उत्तर)

इसी प्रकार दूत बाहुवनी का सत्ताप उल्लेखनीय है -

दूत-दूत पमणु दूत पमणुइ बाहुवलि राउ

भरहेसर चक्क धक्क वहि न कवणि दूतवणु कीउइ

१-दणिए-भरतेश्वर-बाहुवनी राम, श्री गांधी पृ० १६ २७ आदि ।

२-भरतेश्वर-बाहुवनी राम श्री गांधी पृ० १८, पद ४५ ।

३-वही पं ४३ ।

४-वही, पं ५० ।

वेगि सुवेगि बोतिह सभलि बाहुबलि । १ - (प्रभ)

विण बधव सवि सपइ ऊणो, जिम विण सवण रमोइ मनुगो ।

तुम बसणि उत्कठित राउ, नितुनितु बाट जोह भाउ २

भोर दूत ये यह कहने पर बि चला भरतखबर की अधीनता स्वीकार करो, नहीं तो यह तुम्हारा बध करेगा—बाहुबली सत्त्वान उत्तर दत्त है —

राउ जपइ राउ जपइ सुणिन सुणि दूत - (उत्तर)

जबिहि तिहीउ भातयसि तजि सोह इहनाइ पामइ

भरि रि । देव न दानव महि मडलि मडलव मानव

काइ न सपइ सहीयालीह, सामइ अधिव न मोछा दीह ३

विबिध वर्णना में नगर-वर्णन, मेना-वर्णन, दिग्विजय-वर्णन, शकुन वर्णन हाथी, घोडा, सवारो आदि के वर्णन मिलते हैं । इनके कई वर्णन ऊहात्मक और भक्तिगयाक्ति प्रधान है । शेष वर्णन साधारण हैं परन्तु उनकी भाषा में पर्याप्त सरसता है । शेर रस प्रधान वर्णनो में 'लित्व' और 'टकार' प्रधान भाषा बनती है । इन वर्णनो में एष जीवट, भोज और जीवतपन है । शब्दों में प्रवाह, सरसता, और उत्साहभरा है । शब्द चयन अनुप्रासात्मक है । कुछ वर्णन देखिए —

हाथिया का वर्णन—

(क) चलिय गयवर चलिय गयवर गहिर गजजत

(ख) गजउ फिरि फिरि गिरि मिहरि भजइ तरवर डालि तु
मकुग बस भावइ नहीय, करइ मपाट जि मालि तु

घोडा व सवारा का वर्णन—

(क) हूकइ हसमस हण हणइ तरवरत ह्यघटट चलिय

(ख) फिरइ पैवारइ फोरणइ ए फुड केणाउलि फार तु
तरणि—तुरगम सम तुलइ, तेजिय तात ततार तु

(ग) हीसइ हसमसि हण हणइ ए, तरवर तारतोतार तु
खू दई खुरतइ सढवीय, नइ मानइ मगवार तु ४

मेना वर्णन—बटव न कवणि हि भरह तणउ भाजइ भेडि मिडत तु
रेतइ रयणायरह जिमि राणो राणि न उ त तु

१—वही, पद ७८ ।

२—वही, पद ८३, पृ० २८ ।

३—वही, पृ० ८, वस्तु १६ ।

४—भरतखबर बाहुबली रास, श्री गांधी, पृ० १० ।

“गुरुन” वगन भी साथ गाँव की पम्परा को बिगड़ित करता है। दूत का बाटूवनी व पाग जाना और रामन में तामड़ी, गियार, मय, घाँस का मिचन-वगन बड़ा ही प्रमाणित है। गुरुन की धनुषामारमना उन्मेषनीय है -

- क जा रय जायाय जाय मुजि घाग मि नरवर
फिर फिर गाम्हूँ बाद वाम मुगय वाहिणी लण्ड (१० ५९)
ग काजक-नान विटान घाविय घाटिह डारण
जिमण्ड जम विरान गर गर गर-रन उछाय- (५३)
ग मुकाय वाहन दावि, नवि बयन मुरवर
मणीय भावम भाव भूत पुनरार्ह गहिण्ड - (१८)
ग जिमण्ड गमद विपासि फिरिय फिरिय गिर पवर
टावा य उजान गाँसि भैरव भैरव गर गर -

इसा तरह बिन्ना गथा गय घाट का मयना, मुला टावा पर गेवि [पानी बिगड़] का बाटना, गाँसि पुक [टूटू का बाटना] और तामड़ी [गिर] का बार बार सामने फिर फिर कर भगवतुन करना आदि चित्रण यथाय है।

धनुष उल्लिख

धीर रम की दग और उगाह प्रधान उल्लिखी धन्यन मुन्दर है जिममें जावन के निग पयाण जावट का ममारण है। ग्यारनम्बन और स्वाभिमान पुग कुण्ड उगाहरण हृद्य है -

- क परह घाग गिणि वारण काजक मायम मदवर मिदि रराज
होउ मन्द नार ह दायार - जि वार लण्ड उरिार १

[दूतरे का आगा क्या का जाय ? मायम म मय्य हा मिदि की वगण करना वाहिण। पाग म दृढ हृय और हाथ म हृयियार ही ता वारा का परिवार हाठा है] किनना न्य ग्यारनम्बन और पुनपान पुग उक्ति १।

- ग मिर मरम म पनम न गमाजक माँ नात्र पण्ड न ममाह २
ग काइ न नात्र विन्या माँ ।
घ मामाय विममउ वरम-विपाउ -
ङ धिक धिक ए लय ममार ।

१-मारताय विद्या, वय २, अष्ट १ पृ० ८, टवणि ८, पद १०९।

२-मराठकर-बाटूवनी राम, पृ० ६६ पं १४३।

३-बहा प्रय, पृ० १८३, पं ८२।

प्रस्तुत राम मे गेयता है । वस्तु प्रवाह के साथ गेयता का मिश्रण रास का सोन्दर्य और बढ़ा देता है । भरतेश्वर बाहुवली रास विविध रागो मे बंधा है अतः यह अनेक प्रकार से गाया जा सकता है । अधिक विस्तार से होने से समयाधिकता सम्भव है, परन्तु इसके प्रवाह को दस्त कर किसी भी वीर के भुजण्ड फड़क उठेंगे ।

भरतेश्वर बाहुवली राम भाषा, रस ध्यजना, अलंकार-योजना और छंद-योजना आदि की दृष्टि से भी पर्याप्त महत्त्व का कृति है ।

भाषा विचार — भरतेश्वर बाहुवली राम की भाषा 'देसिल बयना सब-जन मिट्ठा' उक्ति की सार्थकता सिद्ध करती है । भाषा का शब्द अर्थ ध्वन्यात्मक और अनुप्रासात्मक है । अतः काय की नाट्यात्मकता स्पष्ट है । शब्द जैसे एक ही सावे में ठहरे ह । पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी दोनों ही बिभाषाएँ, इन्हे अपना काव्य कहती है । परन्तु अधिकांश अच्छे राजस्थानी के ही है । साथ ही अपभ्रंश के परवर्ती रूपा का भी प्रभाव है । भाषा का कुछ परिचय इस प्रकार है —

उत्तर अपभ्रंश — रिसय, जिणैसर, नयर, भरह, पयड, चक्क, रयण, गयवर, आदि । क्रियाएँ — बिज्जीय, मिल्लीय, चल्लीय, उल्लीय के साथ धूजीय, चालीय, आनीय, चलिय आदि रूप सरल राजस्थानी के हैं ।

राजस्थानी के जूना गुजराती — वान, परवस, धारो, कुमर, भाणव, धूजीय, गाजत, गणह, भणह, दडवडत, भडवडह, घड्यडत, भागलि, निहाण, गयण, भाण, दलहि, भिडत, सिउ, सगों, गमो, डामो, जिमणइ, बिनाउ, मुजभाण, लमु, पठवियइ आदि सज्ञा एवं क्रियाया के रूप ।

पुराने शब्द — पणमयी, समरेवि, नभिवि, नरिन्ह, बधवह, भणिपु, रासह, छनिहि रयणिहि, रासय, रामु, निनु, काड, भडाह, नर आदि शब्द हमचंद्र के अपभ्रंश रूपों में शुद्ध प्रत्यय याने शब्द है, पर साथ ही भाषा में नये शब्दों का भी समाना अपभ्रंश के सस्वार से दृष्टा है ।

नये शब्द — पय, बार, वरिस, हिव भातिहि, साभनउ, गच्छ सिए गार, पाटभर, तीणि तणउ, फागुण, छनिहि आदि में नूतनता का आग्रह स्पष्ट है ।

तत्सम शब्द — प्रस्तुत कृति में पुराने रूप धीरे धीरे कम होत गये है

धीरे उनके स्थान में प्रयुक्त तत्सम शब्दों की प्रायोजना ^१ दृष्ट्य है तथा-चरित, मुनि, निरंतर, मुक्त-चरण, धमर पुरा, पुण्य गण्य भंडार प्रादि ।

प्रस्तुत रास की भाषा परिवर्तन के इन नियमों का तथा ध्वनिया प्रादि के परिवर्तन पर स्वतंत्र रूप से भाषा ध्वनित्व विमर्शण की प्राप्ति है । उक्त उदाहरणों द्वारा यह तो जाना ही जा सकता है कि भाषा सरल पुरानी हिन्दी है तथा प्राचीन राजस्थानी शब्दों की भरमार है । साथ ही प्रत्यक्ष प्रयोगों से स्पष्ट रहती हुई एक तत्सम शब्द ग्रहण करना प्रतीत होती है । ११वें शताब्दी की कृति मत्स्यपुराण महावीर उत्साह की सुचना में इस रचना का भाषा में प्रयुक्त मरम्मा प्रतीत होता है । भाषा का मरम्मा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत —

क हा कुन मडणु हा कुन वार हा ममरगणि माग्ग धीर (१४४)

ल सामाय । विममउ करम शिपाउ (१७)

ग कहि कुण उगारि का जइ रागु । एजि नीजइ नेवइ शिगु (१५९)

रस-ध्वजना

भरतचरित वाङ्मय का रस में प्रधान रस वीर है परन्तु एक आश्चर्य यह है कि कवि ने वीरता का ब्राह्मण में प्राप्त रस का समाहार किया है । या या कहें कि वीरता का उपयोग कम न किया है । रस के निर्वैयर्थ्य अर्थ में समार, राय, वीर और श्री की नवरेखा पर प्रयोग होता है । रस में भरत वाङ्मय की प्रायः प्राप्ति मुद्र का संघर्षा एक उत्तम वचन उद्घोषन तथा परस्पर दाना तथा में उक्ति उत्साह स्थापना भाव है । गंगा वर्णन, रण वर्णन, मुद्र तथा यादादा के गौराविक स्वयं अनुभावा और संवारीया के प्रताप ^२ । वीर रस, वीर्य रस तथा शांत रस के कुछ उदाहरण दृष्ट्य ^३ —

वार रस — क हूँइ हममग हगु हगुइ सरसरन हय धट्ट वनीय
पायक पयमरि रन रनीय मरु माग मम मणि मउड मुल्लाय

■ सउ कापिउ कलकमिउ वान ववाय वानानय

कवाङ्गी विमरापाया करिवाय महावद

ग सुदइ मिहइ भइहइइ वणि सउमइइ सडा लडि

1-Adelinite tendency to replace Apbhramsa form of words by its sanskrit equivalent comes in to existence-Gujrati and its literature by Sri K M Munzhi—page 86

प कपिय विघ्नर कोडि पडीय हरण हडहडिया

मारद मुरडीय मू छ माहि नभ मच्छर भरिया ^१

घोर भयकर युद्ध हुआ, रक्त की नन्ही बह गई तथा बीभत्स का परिपाक हमारे सामने हा जाता है ।

बीभत्स रस—व उड़ीय खेड न सुम्भइ सूरनवि जाणीम सवार भसूरवढई
मुहड धड धावइ धसी, सणइ हणा हरिण हावइ इमी

• ख बहुइ ल्हिर नइ सिलर तरइ, टी टी टी रणि रापमु
करई । ^२

(लुधिर की नदी में तैरने वाले मिरा को देखकर राक्षसा की भयानक भावाजें कर प्रसन्न हुना बीभत्स प्रस्तुत करता है)

शांत रस—युद्ध के पश्चात् जब दोनों भाइयां म परस्पर “नैत्र युद्ध, जल युद्ध और मत्त युद्ध होता है, तो भरत हार जाते हैं और कुछ हा बाहुबली पर चक्ररत्न से प्रहार कर मठठ हैं । इस राज्य व दिग्विजय के लिए धर्मर्यादित कार्य को देखकर बाहुबली का निर्वेद हो जाता है और राम के वीर रस प्रधान सारे मालम्बन क्षांति म बल जाते हैं । इस एवम् हूए परिवर्तन को विद्वान कवि ने बड़े सभार से सजाया है जिसम वही भी रस बाध नहा हा पाता । उदाहरण दृष्टव्य है—

धिकधिक ए एय ससार धिक-धिक राणिम राज रिद्धि

एवहु ए जीव महार, की धड कुग विरोध वसि ^३

अपनी पराजय जीव-हानि आदि बाता ने आई का अपने ही सहोदर पर धर्म युद्ध के स्थान पर चक्र का प्रहार एवम् अधर्म युद्ध या । इसी धर्मर्यादित रूप ने ही बाहुबली के हृदय में गम की सृष्टि करदी । ये दीक्षा ले लेते हैं । भरतेश्वर की आलें आमुष्मा से भर जाती हैं और वह उनके कदमा पर नैड जाता है—

सिरि बरि ए लाव करेउ कामगि रहीउ बाहुबले

भंसुइ भाखि भरेउ, तस पणमण भरह भडो । ^४

उक्त उद्धरण की भाषा सरल, पदावली सरस व छन्द गेयता प्रधान

१-भरतेश्वर बाहुबली राम, श्री गांधी पृ० ३८ ।

२-भरतेश्वर बाहुबली राम श्री गांधी पृ० १८१ ।

३-वही, पृ० ८२, ठवणि १४ पद १६३ ।

४-वही पृ० ८२ पद १६५ ।

प्रतिशयोक्ति —(क) बंप्पिय पय भरि गोप रहितु विण साहि उन जाइ तु
एवं प्रत्युक्ति मिर डोनाउइ घरणि हि ए टन टनीय दूक गिरि अ ग तु ।

दृष्टान्त तथा—(क) मडिय मणिमय दड मेघाड बर सिरि परिय
उदाहरण जस पयड भुय दड जयवन्ती जय सिरि वगइए

(ख) विण बंधव सवि संपइ उणी जिमि विण लवण रसोइ मलूणी

इसी प्रकार व्यतिरेक, अपहृति, विभावना आदि के उदाहरण भी मिल जाते हैं—

छंद-योजना

मानाच्य राम की छंद-योजना बड़ी विस्तृत है, पर प्रमुख छंद 'रास' है। 'रास नया छंद' नहीं है। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की छंद-योजना पुरानी हिंदी में पूर्णतया सुरक्षित है। विशेष तौर से हिन्दी ने सा अपभ्रंश के कई छंद का अपनाया है। अपनाया ही नहीं, उन्हें दुनार कर अपनी सम्पत्ति ही बना लिया है। रास छंद में अष्टल रहमान ने पूरा सदेश रासक लिखा। श्री गालिअद सूरि ने प्रारम्भ में ही अपना छंदगत मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।

प्रारम्भ—कु हिव पभणिमु रासह छदिहि

ते जण मण हर मन भाएरहि भाविहि भवीयण माभनमो
मौर माय ही रचना की समाप्ति पर भी —

मत—गुण गणह ए तणउ भडाव सातिभद सूरि जाणीइ ए
कीधउ ए तोणि चरिणु भरह नरेमर रामु छदिहि

अन कवि का मन्तव्य तो राम छंद के लिये स्पष्ट है, पर विद्वान् इस मत से सहमत नहीं। प्रारम्भ के अवतरण म १६+१६+१३ और १६+१६+१३ मात्राओं की द्विपदी मिलती है। इस प्रकार का मिश्र बंध पूर्व कहा भी देखने में नहीं आया। नीच की कदिया सारठा की हैं तथा 'वु' और 'ए' वर्णों के प्रयोग से ही रास छंद की पहचान की जा सकती है। डॉ० ह० व० भाषाणी रास में अनेक छंद मानते हैं जिनका उल्लेख राम परम्परा विवेचन में पहिले किया जा चुका है। श्री अमरचन्द नाट्य 'राम' छंद को अनेक छंद का मिश्रण स्वरूप नहीं मान कर एक स्वतंत्र छंद मानने हैं। डॉ० हजारी प्रमाण द्विवेदी

रागत को २१ मात्राया का १५ माना है। प्रमाण में ये सादेन रागन का मद्
छंद उपात करने है—

‘तू जि पहिय दिव्यावितु पिच उषर् तिरिय
मयर गय मरमा दधि उतावनी थतिय
तुम्भगुहर वनतिय वषन रमण भरि
दुखि विमिय रगजायनि विविण ख पमिरि—१

पर सादेन रागन व हम छंद को प्रस्तुत राग छंद से भिन्नाने पर प्रतीत
दिखाई पड़ता है—

ऊतू ए वनन नाणु राउ विहरद रिगहेम सिउ ए
मायिउण भरह गरि मिउ परणहि भवमागुरिए

दाता की मात्राया १५ पर्याप्त प्रतीत है। ध्या रख है कि इस राग
छंद का गीत सादेन रागन व छंद में लक्ष्य मित्र है और सम्भवत इसी
मिन्नता व कारण श्री क० का० गान्धी ने ‘हम प्रसार का मित्र बंध पूर्व
रूपने में नहीं आया’ निम्न लिया है।

दो० द्वितीय निम्न है कि—‘निराला ने अपने वृत्त जाति समुच्चय में
दो प्रकार के राग काया का उल्लेख किया है। एक में विस्तारित या द्वितीय
और विनारी वृत्त हाथ थे और दूसरी में अदिष्टन पदा टट्टु और डोरा
छंद हुआ करने थे। २ ध्या यज्ञ सम्भव है कि प्रस्तुत राग छंद इन्हीं दो
प्रकारों में से एक हो, क्योंकि द्वितीय दृश्य भी मिलती है।

परंतु हम राग छंद की गीत त्रय स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत हानी
सम्भावित स्थिति व आधार पर कवि की ही उक्ति का पूरापूर माना जा
सकता है और तब हम छंद को ‘राग’ कहने में कोई आपत्ति नहीं लगती।

आनंदीय राग व छंद का परिचय इस प्रकार है—

सोरठा—मतिमागर । निगुि वाज वनन न पुरि प्रवेमु करद

॥ जि मन्नारह राजि पुरि धरीह धीरि धुरद

अठपद—घोराई अगिल का हा दूमरा रूप है—

चंदबूद नित्रानर राउ निगुि वाजद मनि बहद विमाउ

हा कुन मंडन । हा कुनवीर । हा ममरगणि मादम धीर ३

१—द्वितीय साहित्य का आन्विषान, श्री हजारी प्रकाश द्वितीय, पृ० १०० ।

२—भरनेदकर-बाहुवती राग श्री गान्धी पृ० ६६ ।

३—बही, पृ० ३८, पं० ६३ ।

वस्तु—एक प्रसिद्ध छंद वस्तु का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है ।

५ चरणा के इस छंद में नीचे के दो चरणों की मात्राएँ ता दोहे की ही भाँति २४ होती हैं । नीचे के दो चरण, लगता है कि, दोहे की ही भाँति है—

राउ जपइ राउ जपइ सुणि न सुणि दूत
भरह खड भूभि सरह भरह राउ अम्ह सहाँदर
भत्रि महाभर मडलिय, भतउर परिवार
सामतह सोमाउ सह बहिन सुकुमान बिचार

अन्तिम दो चरण बिल्कुल दोहा के ही हैं । इसके प्रथम चरण में (sl) और १५ मात्राएँ, द्वितीय चरण तथा तृतीय चरणों में १३+१५=२८ मात्राएँ होती हैं । मात्राओं की कुल संख्या ११६ है । प्रथम चरण की सात मात्राओं की प्रायः प्रावृत्ति कर दी जाती है । उस अवस्था में प्रथम चरण में २२ मात्राएँ हो जाती हैं । १ वस्तु छंद पर विचार करते हुए एक दूसरे विद्वान् ने इसका संस्कृत नाम वस्तुक या वस्तु तथा अपभ्रंश नाम वस्तुभ्रंश या वस्तु किया है । इसका दूसरा नाम रड्डा भी है । छंद 'गास्त्र' में इसके अनेक भेद किए गये हैं । प्राचीन राजस्थानी साहित्य में विनापत जैन साहित्य में इसका खूब प्रयोग हुआ है । २

इन छंदों के अतिरिक्त गौण रूप में निम्नांकित छंदों का प्रयोग भी हुआ है—

बाटक या बूटक—इस छंद के चरण भा ६ ही होते हैं—

वर वरईं सर्ववर वीर, आरेणि साहम धीर
मडलीय मिलिया जान, हय हास मगल गान

हय हास मगल गानि गाजिय, गयण गिरि गुह गुम गुमद
धम धमीय धरयन ससीय न सकइ, मस कुल गिरि कम कमई
भस धसीय धायइ धार धावलि, धार वीर बिहडए
सामंत समहरि समु न सहइ, मडलान न मडए ^३ (१४५)
प्रस्तुत रास में यह छंद कई बार आया है ।

सरस्वती धवल —इस छंद को धवल भी कहते हैं । इसमें चार चरण होते हैं—

'राहीउ राउत जाइ पातानि, विज्जाहर विज्जा बलिहि

१-दिल्लिये-राजस्थान भारती, भाग ४, अङ्क १, परिशिष्ट २, पृ० ५५ ।

२-भरतेरवर-बाहुबली राम, श्री गांधी, पृ० ३८, पद ६३ ।

३-भारतीय विद्या, सम्पादक श्री मुनि जिनविजय, वध २, अङ्क १, पृ० १४, पद १४५ ।

धन्य पहुँचरा पूठि तिलि तालि, वानए वनवाय सहग नरवा
रे र रहि रहि कुपीउ राउ, जित्यु जाइति तित्यु मारिखु ए
तिहुयए काइन भवए भग्य जय जापिम जीणइ जीवहए १

ठवणि—प्रस्तुत राम म ठवणि प्रयोग कई जगह आया है। जा संस्कृत स्थानी
गल का अपभ्रंश है। यह कई छन्द विशेष नहीं है। मात्र नये
छन्द की स्थापना करने या छन्द वर्णन के नियम प्रयुक्त हुआ है।

निष्कर्षतः भरतस्वर-बाहुवना राम म शतन ही छन्द प्रयुक्त हुए हैं।
ग्रन्थिकारान हिन्दी जैन साहित्य की राम परम्परा अथ सब काव्य रूपा या
काव्य परम्पराओं म भिन्न है। १३वीं, १४वाँ और १५ वाँ गतान्ती के अनन्त
प्रकाशित, अप्रकाशित तथा अप्रसिद्ध रामा का अध्ययन आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत
किया जायगा। अनन्त जैन ग्रन्थों म अथावधि उपरन्ध सेकड़ा जैन रामा में
सबसे प्राचीन यही भरतस्वर-बाहुवना राम है। इस सम्बन्ध में सेनक का एक
गाथ निबन्ध प्रकाशित भी हो चुका है। २ राम का सरन और मुष्पासित पाठ
यहाँ दिया जा रहा है जिसम उसका काव्य-शौण्डव का अध्ययन किया जा
सकता है।

१-भरतस्वर-बाहुवनी राम, श्री गांधी, पृ १५०।

२-हिन्दी अनुशासन वध अष्टक सप्तक का भरतस्वर-बाहुवना राम
एक अध्ययन, गांधी संस्करण।

तिणि दिणि आउधसानह चक्को, भावीय अरोपण पडोय धसहो
भरह विमासइ गहमहोउ ॥ १३ ॥

धनु धनु हु घर मडलि राउ, भाज पढम जिणवर मुभ ताउ
वेवन तच्छि अलकीयउ ॥ १४ ॥

पहिलु ताय पाय पणमेसो, राज रिदि राणिमा फल लेसो
चक्करयण तव अणमरउ ॥ १५ ॥

ॐ

वस्तु—चलीय गयवर चलीय गयवर, गङ्गीय गज्जत
ह पत्तउ रासभरि, हिण हिणत हय घटट हल्लीय
रह भय भरि टल टनीय मेरु, मेमुमणि मउठ सिल्लीय
सिउ भरनेविहि सचरीय, कु जरी चडिउ नरि ।
समोसरणि सुत्तरि सहिय, बदिय पढम जिण ॥
पढम जिणवर पढम जिणवर, पाय पणमेवि
भाणविहि उच्छव नरीय, चक्करयण वलि वनिय पुज्जइ
गडमड त गजकेसरीय, गह्य नहि गजमेह गज्जइ
बहिरीय अम्बर तूर रवि वनिउ नीसाणे वाउ
रोमचिय रिउ रायवरि, सिरि भरहेसर राउ ॥ १७ ॥

ठवणि १

ग्रहि उगमि पूरवदिसिहि, पहिलउ चालीय चक्क तु
धूजीय धरयेन धरहर ए, चनीय कुलाचल चक्क तु ॥ १८ ॥

पूठि पीयाणु तउ दियए भयवलि भरह नरिद तु
पिठि पचायल परदलह, इलियलि अवर सुरिद तु ॥ १९ ॥

कज्जीय सयहरि संचरीय, सनापति सामत तु
मिलीय महाधर भडलीय, गाढिम गुण गज्जत तु ॥ २० ॥

गडमडतु नयवर गुडीय, जगम जिम गिरिण तु
मुड दंड चिर चालवइ, वलइ अगिहि अङ्ग, तु ॥ २१ ॥

गजई फिरि फिरि गिरि सिहरि, भजइ तस्वर डालि तु
॥ कस वसि आवइ नही य, करइ अपार अणालि तु ॥ २२ ॥

हसइ हसमिसि हणहणइ ए तरवर तार तोपार तु
धू दई खुरलइ खडवाय, मन मानइ असुवार तु ॥ २३ ॥

भरतेश्वर-बाहुवली रास (गतिभद्र सूरि, स० १२४१)

रिमह जिलेसर पय पणमवी सरसति सामिली मनि ममरेनि
नर्पावि निरतर गुरु-वरण ॥ १ ॥

भरह नरिन्ह तणु वरितो, ज जुगा वसहा-वनय वगता
वार वरिप विहुं बपवह ॥ २ ॥

हृ हिन पभलिमु रामह छंनिहि तें जन मनहर मन प्राणनिहि
भाविहि भवापण समलेउ ॥ ३ ॥

जहुनोवि उवभाउरि नयरा, धलि कलि कचलि रपाणिहि पगरा
अवर पवर किरि अमर परो ॥ ४ ॥

करह राज ठहि रिमह जिलेसर, पावतिमिर मय-हरण दिलेसर
तजि सरणि कर ठहि तपइये ॥ ५ ॥

नामि मुनइ मुमगल देवि, राय रिमहेसर राणी बवि
रवरेहि रति प्राति जिन ॥ ६ ॥

बिबि बेटी जनमी मुनन्, तह जि तिरूपण मन आनन्
भरह मुमगन रवि तणु ॥ ७ ॥

॥ बवि मुनन् मंदन बाहुबनि, भजइ भिठइ महाभट भूषनि
अवर कुमर वर वीर धर ॥ ८ ॥

॥ पूवर सात तणि तयामी, राजतणा परि पुहवि पयामी
जुग जुग मारण गलाउ ए ॥ ९ ॥

॥ उवभापुरि भरहसर धाराय, लक्षिणा बाहुबनि आराय
अवर अठाणु वर नयर ॥ १० ॥

दान दियइ जिलेसर सबसर विसय विरत बहुइ संजमभर
सुर अमुरा नरि सवोइए ॥ ११ ॥

॥ परमतात पुरि कचल नाणु लस ऊपनू श्रगट प्रमाणू
जाण हनु भरहसह ॥ १२ ॥

- पालर पलि कि पखस्य, ऊडाऊडाहि जाइ तु
 हुँफइ तलपई ससई धसइ, जठई जकारीय धाइ तु ॥ २४ ॥
- फिरई फेवारई फोरणई, फुड फेणाउलि फार तु
 तरणि सुरंगम सम तुलई, तेजीय तरल ततार तु ॥ २५ ॥
- धडहडत धर द्रम दमीय, गह रुभइ रहवाट तु
 रव भरि गणई न गिरि गहण, पिर धोभइ रहपाट तु ॥ २६ ॥
- चमर चिच घज सहलहइ ए, मिस्हइ मयगत भाग तु
 वेगि बहता सोह तणई ए, पायल न सहइ साग तु ॥ २७ ॥
- बडबडत दह दिसि दुसह ए सरिय पायक चक्क तु
 म गो म भिइ म गमइ धरीयणि मसणि मणत तु ॥ २८ ॥
- तावई तलपई तालि मिलिहि, हणि हणि हणि पभणत तु
 मागलि कोइ न भयइ भु ए, जे साहमु भूमत तु ॥ २९ ॥
- दिसि दिसि दारक सचरीय, बेसर बहइ अपार तु
 संख न नामइ सैन तणी, कोइ न नहई मुधि सार तु ॥ ३० ॥
- बंधक बंधवि नवि भिनइ ए, न बेटा मिलइ बाप तु
 सामि न नेवक सारवइ, आपहि आप बिपाप तु ॥ ३१ ॥
- गमवडि चडीउ, चक्कधरो पिडि पयड भूमवड तु
 चालीम चिहुदिमि चलचनीय दिई देसाहिब दड तु ॥ ३२ ॥
- बज्जीय समहरि द्रम द्रमीय, वण निता निताण तु
 सकीय सुसरि सग सवे, धवरह कमण प्रमाण तु ॥ ३३ ॥
- ठाकठूक नवक नणइ ए, गाजीय गयण निहाण तु
 पड षडह पंडाहिवह, चालतु चमकीय भाण तु ॥ ३४ ॥
- भेरीय रव भर तिहुँ भूमणि, साहित किमइ न माइ तु
 कपिय पम भरि खोप रहिउ, विण साहीउ न जाइ तु ॥ ३५ ॥
- सिर डोलावइ घरणि हि ए दूक टोल गिरि गुग तु
 सायर सयन वि भलमनीय, गहलीय गग सुरंग तु ॥ ३६ ॥
- नर रवि छुदीय मेहरवि महिपनि मेहघार तु
 उज्ज भानइ आउध तणई भानई राय-नघार तु ॥ ३७ ॥
- मडिय मंडलवइ न मुहे ससि न बवइ सामत तु
 राठठ राठतवर रहीम, भनि भूभई मतिवत तु ॥ ३८ ॥

कटव न वनगिहि भर तणु, भावइ भेहि भिद्यत तु
 रेनइ रयणायर जमन, राखोराणि नमत तु ॥ ३६ ॥
 माठि महम मवच्छरई भरम भरह छ मण्ड तु
 ममरगणि माधद मघर, वरनइ प्राणु अलखट तु ॥ ६० ॥
 बार भरिम नमि तिमि, भट भिद्योव तालायाय आन तु
 पावानी तदि गग तणुइ पामद नवह निहाणु तु ॥ ६१ ॥
 छनीम महम मठुय मिठ, चउ रयणु मण्यत तु
 धाविउ गग भोगीय, एव सम्म वरमाउ तु ॥ ४२ ॥

छवणि २

तउ तिहि आण्य मान आरइ आण्यरा नवि
 तिगि निगि मणि नूयान भरइ भय नानावदमो ॥ ४३ ॥
 बारिदि वय अणानि अन्न प्रायाय अन्निमि वरइ ए
 अनि उतयाउ अवानि, आणन न वरि नयडु ॥ ४४ ॥
 मति सागर विगि वानि चवत त (न) पुरि पवम वरइ
 तइ जि अण्यइ इ राजि धाराय धर धरीउ धरइ ॥ ६१ ॥
 नव ति अमाठ एव कवणि कि आनव मानगिहि
 एउ आनि न मुम भट वयराय वार न नई ॥ ६६ ॥
 वानइ मनि मयक मभनि मामीय वरत धरो
 अवर नना वाइ वहु वरतरयण नना तणुउ ॥ ६७ ॥
 संकाय मुरवर मामि भरमर नूय नूय मवणे
 नाम नि मुणाय नामि दानर मानर कहि कवणि ॥ ४५ ॥
 नवि मानइ नूय आण्य आण्यनि न्नि आण्यने
 वीर वयर विनाणु विममा वर वीर वरा ॥ ६८ ॥
 तीगि वारणि नरन, चकन न आरइ नीय नयरे
 विणु वधव नूय मर मृ वान सामीय माचवद ए ॥ ५० ॥
 ति मुणीय नाण्य तानि वराउ रा मराम भर
 भमइ चानाय आनि पनणु माणि भूदि मृ ॥ ५१ ॥
 जुन मान भम आणु ववणु मु पनीइ वाटन
 नानइ नमु ए राणु भव भुव भारिहि तिमि ॥ ५२ ॥

- ॥ मति-सागर मति, बलि बसुहाहिव वीन बइ
नवि मनि कीजइ खनि, बधव सिउ कहि कवण बना ॥ ५३ ॥
- दूत पठावोयइ देव, पहिलउ बात जणावोइ ए
खु नवि आवइ देव, नु नरवर कटवई करउ ॥ ५४ ॥
- तं मनि मानीय राउ, वेगि सु वेगह, भान-सइए
जईय सुनदा-जाउ, भाणु मनावे भाषणीय ॥ ५५ ॥
- जां रय जोशिय जाइ, सुजि भाऐसिहि नरवरह
फिरि फिरि साहमु थाइ, वाम तुरीय बाहणि तरणउ ॥ ५६ ॥
- भाजल-काल बिराल, भावीय भाडिहि उतरइ ए
जिमणउ जम बिकराल, खरु खु रय उछलीय ॥ ५७ ॥
- सूकीय बाउल डालि, देवि बइठोय सुर करइ ए
भदीय भाल भकालि, धुक पोकारइ दाहिण भो ॥ ५८ ॥
- ढावीय डगलइ सादि, भयरव भैरव खु करइ ए
जिमण इ गमइ विपादि, फिरीय फिरीय शिव फकरइ ए ॥ ५९ ॥
- बड जखनइ कानीयार, एकउ बेहु उतरइ ए
नोजलीउ भ गार - सखरता साहमु हुइ ए ॥ ६० ॥
- काल भुयंगम वान, दतीय दमण दाखवइ ए
भाज भकूटउ बाल, घूटउ रहि रहि इम भणइ ए ॥ ६१ ॥
- जाइ जाणी दूत, जीवह जोवि, भागमइ ए
जेम भमतउ सूत, गिणइ न गिरि शुद्ध वख महण ॥ ६२ ॥
- सईउ नेसमि वेस न गिणइ न दह नोभरण
लघीय देम भमेम गाम नगर पुर पाटणह ॥ ६३ ॥
- बाहिरि बहूय भाराम सुरवर नइ ता नाभरण
मणि तारण भभिराम रेहइ धवनाय धवनहरो ॥ ६४ ॥
- पोयण पुर दोसति दूत सुवेग ॥ गहरा हीउ
धवहारीया बसति, धणि नणि कचणि मणि पवरो ॥ ६५ ॥
- धरणि तरणि ताढंक, जेम तुग जिगडु सहइ ए
एह कि भभिनव लक सिरि नोसीसा वखुयमय ॥ ६६ ॥
- पोढा पाणि पणार, पान पार न पाभीई ए
संख न सीहडु यार, दीसई देउल दह दिसिइ ॥ ६७ ॥

पेम्बवि पुरह प्रबसु, दूत पट्टत रायहरे
 सिउ प्रतिहार प्रबसु पामीय नरवर पय नमइ ॥ ६८ ॥
 चउकीय माणिव वम माहि बइउठ बाहुवले
 वपिहि जिसेय रम, चमर-हारि चालई चमर ॥ ६९ ॥
 मटीय मणिमइ दड, मेघादम्बर तिरि धरिय
 जस पपडे भूयुदहि, जयावती जयसिरि वसइ ॥ ७० ॥
 जिम उन्वाचलि मूर, तिम तिरि सोहइ मणिमुकुटी
 बगतुरीय कुमुम कपूर, कुचूवरि महमइ ॥ ७१ ॥
 भनवड ॥ कुडन कानि, रवि गणि महीय किरि भनर
 गगाजल गजगानि, माडिम गुण गज गुडमडइ ॥ ७२ ॥
 उरपरि मोतीय हार वीरवमल वरि मलहनइ ॥
 तवन भनि सिणगार सलक ए टोडरवामा ॥ ७३ ॥
 पहिरणि जाणर वीर ववानइ वरिमाल वर
 गुरुउ गुणि गमीर, दीठउ भवर वि चक्रपर ॥ ७४ ॥
 रजिठ चित्ति सु दूत दमोय रणिम तनु तणीय
 धन रिमहरपूत जयवतु छुगि बाहुवले ॥ ७५ ॥
 बाहुवनि पुछइ कुवण, वाजि तुहि आवीया ॥
 दूत भगइ निज वाजि भरहेसरि भन्हि पाठव्या ॥ ७६ ॥
 वस्तु—राउ जपइ, राउ जपइ मुखि न मुखि दूत
 भरहण्ड भूमीसरह, भरह राउ भम्ह सहोयर
 सवावाडि कुभरिहि सहाय, मूरकुमर सहि भवर नरवर
 मति महाभर मंडलिय भसठरि परिगारि
 सामसहमीमाड सह कहि न कुमल सविचार ॥ ७७ ॥
 दूत पभणइ, दूत पभणइ, बाहुवनि राउ
 भरहसर चक्रपर, वहि न ववणि दूहवणह विज्जइ
 जिह तह वधव तूय सरिमण्डपड त गज भोम गज्जइ
 जइ धधारइ रवि विरण्ण, भड मजइ वर वीर
 तु भरहेसर चमर भरि जिणइ माहरी धीर ॥ ७८ ॥

टवणि ३

यगि मुवेगि सु नुन्दइ, सम्भलि बाहुवनि

राउत कोइ तुह तुल्लइ, ईसिइ अउइ रवितलि ॥ ७९ ॥
 जा तब बधव भरह नरिदो, जसु भुइ कप सगि सुरिदो
 जोलइ जोता भरह छे सड, म्नेच्छ मनाव्या आण अउड ॥ ८० ॥
 भडि भडत न भुयबलि भाजइ, मडयडतु गडि गाडिम गाजइ
 सहस वतीस मउडाया राय, तू य बधव सवि सेवइ पाय ॥ ८१ ॥
 चऊद रयण घरि नवइ निहाण, सख न गयघडु जसु बेकाण
 हूय हवडा पाटह अभिपेका, तू य नवि आवीय नवण विवेका ॥ ८२ ॥
 बिण बधव सवि सपय ऊणा जिम बिण नवण रसाइ अमूणी
 तुम देमण उतठिठि राउ, नितु नितु वाट जोइ तुह भाउ ॥ ८३ ॥
 बडउ सहोयर भनइ बड वीर, देवज प्रणमइ साहस धीर
 एक सीह भनइ पालरोउ, भरहेसर नइ नइ परबरोउ ॥ ८४ ॥

ठवण ४

तु बाहूबलि जपइ कहि वयण म काउ
 भरहेसर भय कपइ, ज जगवु साउ
 समरगणि तिसि सिउ कुण नाछइ, जहि बधव मइ सरिसउ पाछइ
 जावत जडुनीवि तसु आण, ता अम्ह कहीइ कवण ए राण ॥ ८६ ॥
 जिम जिम सुजि गड गाडिम गलउ, हूय गय रह वरि करीय सनाउ
 तस भरधासण आपइ इ दो, तिम तिम अम्ह मनि परमाणदो ॥ ८७ ॥
 जुन आव्या अभिपेकह बार, तु तिसि अम्ह नवि कीधा सार
 बडउ राउ अम्ह बडउ जि भाई, जहि भावइ तिहा मिनिसिउ जाइ ॥ ८८ ॥
 अम्ह ओनगनी वाट न जोई, भड भरहेसर विवर न होइ
 मम्ह बधव नवि फोटइ कीमइ लोमीया लाक अणइ सख ईम्हई ॥ ८९ ॥

ठवण ५

आलिम लाइसि वार बधव भेटीजइ
 चूकि म चीति विचार भूय वयण सुनीजइ ॥ ९० ॥
 वयण अम्हारु तूय मनि मानि, भरह नरेमर गणि ठाजदानि
 संतूठउ दिइ कवण भार, गयघड तेजोय तुरल तुपार ॥ ९१ ॥
 गाम नयर पुर पाटण आपइ, देसाहिव चिर थोमीय थापइ
 देय अदेय न दतु विमासइ, सगपणि कह नवि किपि बिणसइ ॥ ९२ ॥

जाण राउ धानगिउ जाणइ, माण्णहार विराविइ मारइ
 प्रतिपन्नर प्रगट प्रति पानइ प्रारंभित नवि घड़ी विमरानइ ॥ ६३ ॥
 तिगि सिउ दव न बाजइ साइउ, मुजि मनाविइ माइम भाइउ
 हं हितनारणि बहं सुजाण हूत बहू तु भरहेमर धाण ॥ ६४ ॥

बल्लु

राउ अपइ, राउ जेवर मुणि न मुणि दूत
 तविहि लहीइ मान्हनि त जि साथ भवि भविहि पामइ
 ईमइ नोसत नर ति (नि) गुण, उतमाग जण जणइ नामइ
 बम पुरणर मुर भगुर तिह न लपइ बोइ
 लपइ भविन न उण पणि भरहेमर गुण हाइ ॥ ६५ ॥

ठवणि ६

नेमि निरसि नमि परि मंनिरि जवि थवि जंगलि गिरि दूत बन्नि
 निमि निमि देसि देमि दीपतरि लहाउ लामइ कुनि सभरा थरि ॥ ६६ ॥
 धरिउरि दूत मुणि देवन दानव, महिमइनि मंडल बेमानव
 बोइ न लपइ लहीया लीह, लामइ भविन न उछा दीह ॥ ६७ ॥
 धण वण बंभल नवइ निहाण, गणपइ तेजीय तरल बेराण
 सिर सारवत सततंग गमोज, ताइ निमत पणइ न नमोजइ ॥ ६८ ॥

ठवणि ७

दूत भणइ ण्हमाई पुनिहि पामीजइ
 पइ लामीजइ भाई भणइ बहाउ बीजइ ॥ ६९ ॥
 भवर प्रठाणु पु जई पहिनु मिनिंसइ तु तुम मिंसिउ न सयलु
 कहि विनव गुण कारणि बाजइ नाम म निगमि थार बजाजइ ॥ १०० ॥
 बार बरगह बरसण फनीजइ ईगि बारणि जई बहिहा मिनाइ
 जाइ ॥ मन सिउ वात विमासी, धाणइ धाम्म वात विणामा ॥ १०१ ॥
 मिलिउ न विहा बन्क मेलावइ तउ भरहेमर तइ तेनाइ
 धाण रणे बोइ मूळ वरे सिण सहु बाइ भरह जि हियइ धरेसिइ ॥ १०२ ॥
 गार्जता गाडिम गज भीम, त सवि देमह तीघा सीम
 भरह भयइ भाइ मोनावउ, तउ तिणि सिउ न बरीजइ दावउ ॥ १०३ ॥

बलु

तब सु जपइ तब सु जपइ, बाहुबलि राउ
मपह बाह भजा न बल, परह आम नहइ कबण कीजइ
सु जि मूरख भजाण पुण अवर दखि वरवयइ ति गज्जइ
हु एवत्तउ समर भरि, भड भरहेसर घाइ
भजउ भुजबलि रे भिडिय, भाह न भडि न घा ॥१०४॥

ठवणि ॥

जइ रिसहेसर केरा पूत, अवर जि मपह सहायर दूत
ते मनि मान न मेहइ कीमइ, आनईयाणम भक्तिपि ईम्हइ ॥१०५॥
परह आम किरि कारणि कीजइ, साहस सर वर सिद्धि वरीजइ
हीउ मनइ हाथ हत्वीमार, एह जि बीर तणउ परिवार ॥१०६॥
जइ कीरि सीह सियालिइ लाजइ, तु बाहुबलि भूयबलि भाजइ
छु माइ बाधिणि पाई जइ, मर दूत तु भरह जि जोपइ ॥१०७॥

ठवणि ६

छु नवि मपसि आण, बरबह बाहुबलि
ससिइ तु तू आण, भरहसर भूयबलि ॥१०८॥
जस छनवइ कोडि छइ पायव, कोडि बहुतरि फरकइ फारक
नर नरवर कुण पामइ पारा सहा न सकीइ सेना भारो ॥१०९॥
जीवता बिहि सह सपाइइ, छु तुडि चडिसि तु चडिउ पवाडइ
गिरि कदरि भरि छपिउ न छूटइ तू बाहुबलि भरि म अछूटइ ॥११०॥
गय गइह हय हड जिम अन्तर सीह मीयाल जिमिउ पन्तर
भरहेसर अन्नइ गूम बिहरउ, छूटिसि किम्हइ करत न निहइ ॥१११॥
सखसु सु पि मनानि न भाई कहि कुणि कूडी कूमति विलाइ
मु कि म मूरख भरि न गमार पय पणमीय करि करि न समार ॥११२॥
गड गजिउ भड भजिउ प्राणि, तइ हिव सारइ प्राण विनाणि
भरे दूत मोली नवि जाण, तु ह आब्या जमह प्राण ॥११३॥
कहि रे भरहेसर कुप कही, म सिउ रणि सुरि असुरि न रहीइ
जे चकिइ चक्रवृति विचार, अम्ह नगरि कू भार अपार ॥११४॥
भाणणि गगा तीरि रमता धसमस धू धनि पढीय धमता

नइ उतावीय गयणि पट तउ, कम्पना कराय बना भासतउ ॥११७॥
 त परि काइ गमार बोमार, तु सुहि चटिमा तु जागिणि सार
 जउ मरुण्ण मरुड उतारउ, मरिह रिनि जुन हयगय सारउ ॥११८॥
 जउ न मारउ भरुण्ण राउ, तउ भाजइ गिम्भर ताउ
 मरु मरुण्णर जई जगान हय मय रइ वर वणि बनार ॥११९॥

यन्तु

दून जण दून जण मुनि न मुनि राउ
 तइ निवम परि म न गिगुमि गग-भीरि निन्वत जिगि निगि
 वल्लतइ न्न भारि जगु, मम मान सनमवइ पणि मणि
 ईमई धाणु म मानि रणि, भरुण्णर छइ दूरि
 माराणु वेडिउ मणु बानि उगत मूरि ॥१२०॥
 दून चनिन दून चनिनउ कणाय न्न जाम
 मनिगरि पितविउ, नु पमाउ दूतह निवार
 मवर धणुणु कुमर वर, वाइ गाण वन्तु पचार
 तह न मनिउ भाविउ बनि भरुण्णरि पामि
 ममई म मामिय मधिबन वधवगिउ म विमामि ॥१२१॥

छवणि १०

तउ बाविहि बनकनाउ बान क म बासा नउ
 केकारइ बाणबायउ करमान महाबल
 बान बनपनि बनगतत मरुहाया मिनीया
 बनह तणुइ कारणि धरान बाविहि पण्डनाया ॥१२०॥
 हुउय बाणान गहमहाटि गयणगणि गज्जिय
 मंधरिया मामत मुण्ड मामहणाय मन्त्रीय
 गहमह त गय गणाय गेवि गिरिवर गिर डारइ
 भूगनीया शुनगण चनत करिय उतारइ ॥१२१॥
 जुडइ भिउ मन्तरु वनि महमहइ सदावहि
 पालाय धुणाय धामवइ न्नुमनि नान [नडा] डि
 मुरतनि साणि मगति वनि तजाय तमरिया
 समइ धमइ धमममइ माणि पयमइ पानरिया ॥१२२॥
 वंधणन वेवाणु कवा वरइइ कदीयानी

रणराइ रवि रण वरर मरवर धण घाघरीपात्री
 सीघाणा वरि सरइ फिरइ मरइ पाजारइ
 उदइ आदइ धगि रगि अमवार विचारइ ॥१२३॥

धमि धामइ बडहडइ धरणि रधि सारधि माडा
 जडोय जाय जडजाड जर मश्राहि सत्राड
 पसरिय पायल पूर वि गुण रलीया रणार
 लाह लहर वर वीर वयर बहवटिइ अवापर ॥१२४॥

रणणीय रवि रण तूर तार प्रवप बह प्रहीया
 ठाय ठूव ठम ठमीय ठान राउन रहरहीया
 नेव नीघाण निनादि नीमरण निरभीय
 रण भेरी भुकारि भारि भूयवनिहि वियभीय ॥१२५॥

चल चमाल करिमान कुत कटतत्र वाड
 कलकइ साबल सबर मेल हर मसल पर्यउ
 मागिनि गुण टकार मलि बाणावलि तणइ
 पर्यु उलालइ एरि धरइ भारा उलालइ
 सीरीय तोमर मिहमान डबतार कमबध
 मागि सक्ति सरुमारि छुरीय अनु नायतिबध
 हय सर रवि उछनीय खह खार्इय रविमडल
 धर धूजइ कमवलीय कोल कापिउ काहंगल
 टनडलीय गिरिटैक टोन खेचर खरमनीया
 कडहाय कूरम कधमंधि सायर कनहलीया
 चलीय ममहरि सेव मिसु सलसनीय न सबकइ
 कवण गिरि कधार भरि कमकमीय कमकइ ॥१२६॥

कपीय किनर काडि पढाय हरगण हडहडीया
 सकिय सुरवर समि समय दाणव दडवढाया
 अति अलब लहकइ अलब बल विध चिहु दिसि
 सचरिया सामत सीस सीकिरिहि कसाकसि
 जार्इय भरहु नरिद कटक मूछह बल घल्लइ
 कुण वाहवलि जे उ वरव मइ मिउ बल कुल्लइ
 जड गिरि कदरि विचरि वीर पइमनु त छूइ
 जइ बनी जगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अमूटइ ॥१२७॥
 मज साहनि सचरीय महुणर वणाय पायणपुर

बानीय बूब न बन्वाय बानुबनि नरवर
तमु मदिमनि नरु गड ममानोड गातु
॥ अत्रिमामिड किड वाड धात्रनि तड कानु ॥१३१॥

बधव मिड नरवार वाड म्म अतर पाड
नू बधव नीय जाव जम कडि काड न मम्भ
न मनि चित्तु राव किमिड एव काव पराष्टोड
धानरी उवनि वार राड र्नाड अवागेड ॥१३२॥

मय आनाया मन-मनत पाड ह्य काम
हुइ ह्यमम मरन्नाड करा आवास
एकि निरन्तर बहड नार एकि ई धगु आगुई
एक आत्रमिड परतगु पागु आगुिड तुगु तगुण्ड ॥१३३॥

एकि उत्तारा कराव नुरीय तनमार बाध
इकि भरहइ कवागु मागु इकि वार राधड
इकि नानीय नन नारि तीरि तनीय बानारड
एकि वाक अमवार मार मागु वनावड ॥१३४॥

एकि आकुनादा ठारि तरत तडि बनीय मनावड
एकि गूढर मागुगु मुग्ग चडरा निवरावड
धारीव मामि न मामि आन्निगु पुन एमम
कमनुराय कुकुम कपूरि चानि वनवाम ॥१३५॥

पूत बराड बजरयगु राड, बग्ग नू जार्
बानीय मम अमम गड आन्ना मवि धाई
मदनव मद्रुध मु (मु) हट नाम ममत
मर ह्यि न्यिड तवान वगुय वङ्गु कवकन ॥१३६॥

बम्भु

दूत बनाड दूत बनीड, बाटुबनि पामि
नगुइ नूर नरवर नि मुगि, भरु राव पयमव बाजड
नारिन् माम न कवागु रीगु, ए निरन्त नूर नारि मग्गड
ज नवि मूरय एट ठगो, मिरवरि धागु बन्नि
मिड परिकरिड ममर नरि, मद्र मवरि मन्मि ॥१३७॥

राड कुन्वर, राड कुन्वर मुनि न मुगि दूत
नाय पाय पगुमतय मुन बधव अनि मरन् मग्गड

तु भरहेसर तसतणीय, वहि न कीम भूमिह-सुख निज्जइ
भारिइ भूयबलि जुन भिडउ, भुज भुज भडिवाउ
तउ लज्जइ तिहूयण घणा, सिरि रिसहेसर ताउ ॥१३८॥

ठवणि ११

चलीय दूत भरहेसरह तेम वात जणावइ
कोपानलि परजलीय बीर साहण पलणावइ
लागो य लागि निनादि वादि भारति भसवार
बाहूबलि रणि रहिउ रोसि माडिउ तिणिवार ॥१३९॥

ऊड कडारण रणत सर बैसर फूटइ
भतरालि भावइ ई याण तोह भत भसूटइ
राउत राउति याव-याधि पायक पायकिहि
रहवर रहवरि बीर बीरि नामक नायकिइ ॥१४०॥

वेडिक विडइ विरामि सामि नामिहि नरनराया
मारइ मुरडीय सूछ भेच्छ मनि मच्छर भरीया
ससइ मसइ भसमसइ, बीर घड वड नरि नावइ
रापस रीरा रव करति रुहिरे सवि राचइ ॥१४१॥

चापीय घुरइ नरकराडि भुयबलि भय भिरडइ
विण ह्यामार कि वार एक दातिहि दल करडइ
चालइ चालि चम्माल चाल करमाल ति ताऊइ
पडइ बिध भूमइ ववध सिरि समहरि हाकिइ ॥१४२॥

रुहिर रहिनतिहि तरइ तुरग गय गुडीय भूमइ
राउत रण रसि रहित बुद्धि समरंगणि सूमइ
पहिणइ दिणि इम भूम हवु सेनह मुख मडण
सभ्या समइ ति वारणु ए करइ भट बिहु रण ॥१४३॥

ठवणि १२ — हिव सरस्वती धउल

तउ तहि बीजए दिणि सुविहाणि, उठौउ एव जी भनलवेगा
सडवड समहरे वरम ए बाणि, छयल सुत छलिमए छावडु ए
भरीयण भगमइ भगामि गि राउ तो रामति रणि रमइ ए
लडसड लाडउ चडोय चउरभि आरयणि सयवर वरइ ए ॥१४४॥

त्रुटक

वरवरइ सयवर बीर आरेणि साहस धार

महनीय मित्रिया जान, हय होन मान गान
 हय हाम भगत गानि गानाय गदगु गिरि शुभ शुभमद
 धमधमीय धरयन सनाय न मरइ सन कुनगिरि कमकमइ
 धत धसाय धायइ धारया बनि धार वार विरहण
 सामत समहरि सधु न नहइ मडनाक न मडए ॥१४५॥

घटन

मडए मानए महियनि राग गहिन गय घड टानव ए
 पिडिनर परदत प्राय भड घट नरनए नाचवइ ए
 कान ककान ए करि करनान नाना नूनिहि मनहनइ ए
 भाजए भड घट निम नन नन पचागग गिरि गडयड ए ॥१४६॥

घटन

मडयन गाननि माहु आरणि धरन अवीह
 धमममाय हयन धाट नटनडड मय भडिवाइ
 मड-हडइ भय नटनार नुबनि भराय हु निम भीमरी
 तहि कड कूट पुन परनि धपिउ नरवइ नर नरठरी
 धममनीय नगु वीर बीनमू नन मर निहाण ए
 रट रट र हरि हरि मउनु अरड पायक पाय ॥१४७॥

घटन

पाडीय मुखय सणावए दंत पूठिहि निहाय रगुरणाय
 मूर कुमारह राग पवत निगए नृपण्ड बग
 नयणिहि निरमीय कुपीपट राग चककरमणु तट मभरइ ए
 मेल्लइए तह प्रति प्रति अकसाउ अनववाग तहि बितवइ ए ॥१४८॥

नृप

चितवनीय मुग्ध राग जा अ टपुऊ माउ
 हिव मरण ए नि नाम रजइअ चक्रवृति जाम
 रजइअ चक्रवृति जाम इम अणि चक्र कुट्टिहि पडयग
 सचरित मूर मूर मडनि चक्रपुनव तेनि वना
 पडपडाव नगु चड कूट, चन्द्रमदन माट ए
 नननीय नानि नमानि तुट्टिहि चक्र तहि तहि राह ए ॥१४९॥

घटन

राटीउ राग जाइ पात्रानि विहार विग्रा बनिहि

चक्र पहुँचए पूठि तीणि तालि बोलए बलवीय सहम जसो
 रे रे रहि रहि कुपीउ राउ, जित्थु जाइसि जित्थु भारिखु ए
 तिहूयणि काइ न अछइ उपाय जय जोषिम जोणइ जीवीइ ए ॥१५०॥

ब्रूटक

जीविना छडीय मोह, मनि भरणि मेल्हीय बोह
 समरीय तु तीणि ठामि, इकु घाति जिएवर सामि
 [इकु घादि जिएवर सामि] समरीय, बज्जपजर अणसरइ
 नरनरीउ पायलि फिरीउ तस मिरु, चक्र सेइ सचरइ
 पयवमल पुज्जइ भरह भूपति, बाहुबलि बल खलभसइ
 चक्रपाणि चमकीय बीति बनयलि, बसह बारिणि बिलमिलइ ॥१५१॥

धउल

कल गिलइ चक्रधर मेन सग्रामि बोनए कवण सु बाहुबले
 तउ पोयण पुर केरठ सामि, बरवह निमए दस गुण ए
 कवण सो चक्र रे कवण सो जाल कवणसु कहीइए भरह राउ
 सेन सहारीय सोघउ साप, आज मल्हावउ रिमह बसो

ठवणि १३ हिव चउपइ

चक्र चूड विज्जाहर राउ, तिणि वातइ मनि बिहीय बिसाउ
 हा कुल मडण हा कुलवीर हा समरगणि साहस धीर
 कहिइ कहि १इ निसिठ घणु कुल न नजाविउ तइ आपाणउ
 तइ पुण भरह भलाविउ आप भलु भलाविउ तिहूयणि बापु
 मुजि बोनइ बाहुबलि पासि देव म दाहिनु ई हीइ विमासि
 कहि विण उपरि कीजइ रोमु, एहिजि देवह बीजइ दोमु
 सामीय विमसु करम विपाठ काइ १ छूइ २क न राउ
 काइ न भाजइ लिहिया लीह पामइ अधिक् न भोज्या दोह
 भजउ भूयवलि भरह नरिण मइ सिउ रणि न रहइ सुरिइ
 इम भणि बर वीय बावन वीर सेनइ समहरि साहस धीर
 धसमस धीर धसइ धडहडइ, गाजइ मजलि गिरि मडयडइ
 जमु भुद मड हउ हउइ भडक्क दल धउ वडइ जि चड चडक्क
 मारइ दारइ खल दा खणइ, हेठ हयोहीणि हयन हणइ
 मनल वेग कुण कूखइ अछइ इम पचारीय पाडइ पडइ
 नरु निरुवइ नरनरइ निनाणि वीर विणासइ वादि विवादि

तिनि माग एवढलठ मिह, तउ पुणु पुरउ चढह पढइ
 चऊ वाडि विद्यापर साभि, तउ भूरह रतनारी गामि
 दल दगेलिउ दढव वरीम, तउ चरिउ तमु छीय सास
 रतन भूढ विद्यापर घमइ, गंजइ मयपट द्विपटइ हगइ
 पमन जय भट भरहु नरि, गु जि मंहारीय हगइ गुरि
 बाहुलीव भरहेमर तणु, भट भाजगीय भीदीउ घणु
 गुरगारी बाहुबलि जाउ, भटिउ तणु तहि पटीय टाउ
 भमित बेत विद्यापर मार, जग पानीय न पोर पार
 चमिउ चक्रपर माजइ भ मि भूरिउ चमिहि चमिउ चउरंगि
 समर ५५ भनइ बीरइ बध मिनीउ ममहरि विहुं मिउ बंध
 सात माग रहीया रंगि बउ गई गहगहाया भयछरा लेउ
 मिर ताना दुरताना नामि, भिहइ महाभट बउ मंप्रामि
 भाम्या बरवहं बापाबापि परभवि पुढना सरणा गामि
 महेद्र बूढ रघूबूढ नरि भूभ १८८८ हसइ गुरि
 हाकइ तहइ तुनपइ तुलनइ आठि मामि जं जिमपुरि भिनइ
 दंड सई पगीउ युरगि भरतपूत नरनरद विनामि
 गंजीउ बनि बाहुबनि तणुउ, वस मन्हारिउ तागि भापणु
 तिहरण उठीउ हाफत भमित गणि भंपिउ आरत
 तिनिमाघ भट धुजिउ जाम भरइ राउ मनि वगिउ रागु
 भमित तेज प्रतापइ तहि तजि मिउ गारगि मिगिउ हजि
 पाइ धीर हगइ वे बागि एव माग निवडया नायागि
 कु डरीव भरहेमर जाउ लग भटत १ पाट्टउ पाउ
 इटगीय दमि बाहुबनि राय, तउ मय पक्क प्रगमीय ताउ
 गुरिजमीम ममर हाकत, मिदिया तानि गामर ताकत
 पाव वरिम भर भोनीय पाइ नीय नीय गामि निवारिमा रा ॥१७२॥
 इकि छुरइ इकि चंडइ पाय गकि डार ११ मारइ पाइ
 मन् भयत भूभइ मयम धनु धनु रिममेरनु धम
 शकमारी भरहेमर जाउ रण रमि रोइ पहिउ पाउ
 गिणुइ न गांइ मरम हगइ मगरमि धीर पाणार पाणुइ
 बीग बोडि विद्यापर मिमी ठठिउ मुगति नाप विनिमिपी
 शिव नंनना मिउ मिमाउ तासि बागडि निबग बिहुं जमनाजि
 बोपि चडिउ चि यउ चक्रपाणि भारउ मयरी बाणु विनागि
 मंडी रहिउ बाहुबनि राउ भउउ भणुइ भरहु भटिवाउ ॥१७३॥

बिहू दलि बाजि रणि बाहनी, खनदल सोणि से खन भनी ॥१७७॥
 उढीय सेह न सूम्इ भूर नवि जाणि भगार धमूर
 पढइ सुहड धड धामइ घसी, हणइ हणोहणि हानइ हमी ॥१७८॥
 गढयड गषधड बीचा दलइ, गुना समा तुरग भग तुनइ
 बाजइ धणुही तणा धानार, भाजइ भिडत न भेडिगार ॥१७९॥
 वहइ रुहिर भइ मिखर तरइ, री री यारड रायस बरइ
 हयन हाकइ भरह नरि, तु माहगु सहइ भनि मुरि ॥१८०॥
 भरह जाठ सरमु सग्राभि, गाजइ गजनन धामनि धामि
 तर निवस भड पडिउ धाइ धुणि साग बाहुबलि राइ ॥१८१॥
 तीह प्रति अपइ सुरवर सार नखि एवहु भड सहार
 काइ मरावउ सम्हि इम जोव पडसिउ नरवि करता रीव ॥१८२॥
 गज ऊगारीय नधव बैठ, मानिउ वयण मुरिन्ह तेउ
 पइमइ मानावाडइ धीर, गिरिवर पाहिइ सबल गरीर
 वचन भूकि भड भरहु न जिणइ, दृष्टि भूकि हारिउ कुण धणइ
 वडि भूकि भड भपीय पडइ, बाहुपासि पडिउ तडफडइ ॥१८४॥
 गूढा समु धरणि भभारि, गिउ बाहुबलि मुष्टि प्रहारि
 भरह सबज तइ तीणइ धाइ बैठ मगाणउ भूमिनि जाइ ॥१८५॥
 कुपीउ भरह छ खण्डह धणी चक्र पठावइ भाइ मणी
 पावलि फिरी सु धलीउ जाम, वरि बाहुबलि धरिउ ताम ॥१८६॥
 मोनइ बाहुबलि बलवत लोह खडि तउ गरवीउ हत
 चक्र सरीमउ चूनउ करउ, सयलह गोत्रह कुन सहरउ ॥१८७॥
 तु भरहेमर चिनइ चीति भइ पुण लोणीय माईय भीति
 जाणउ चक्र न गोत्री हणइ माम महारी हिव कुण गिणइ ॥१८८॥
 तु मोनइ बाहुबलि राम (उ) भाईय भनि म म धरसि विसाउ
 तइ जीतउ भइ हारिउ भाइ अमह गरण रिमहेसर पाय ॥१८९॥

ठवणि १४

तउ तिहि च चितइ राउ, चडिउ सवेगइ बाहुबले
 दूरविउ ए भइ वडु भाय अविभागिइ अविबेक वति ॥१९०॥
 धिग धिग ए एय ससार धिग धिग राणिम राजमिद्धि
 एवहु ए जीव सहार नीवउ कुण विरोधवसि

कोजइ ॥ बहि कुणु बाजि, जउ पुणु बपन भावरइ ए
 बाज ॥ १ ॥ ईगुइ राति धरि पुरिनपरि न मन्दिहि ॥१६७॥
 गिरार ए नाव करे बागमि रहीउ बाहुबने
 पगूउ ए ममि भरेउ, तम पम पणुमए भरहु भटा ॥१६८॥
 बंधव ए बाई न बाव ॥ बबिमानिउ मद बिउ ए
 मरिहम ए भाई गिान ईगि भवि हुं हिन एवमु ॥ ॥१६९॥
 कीजई ॥ भाज पगाउ छटि न छनि न छपन छना
 न्निहइ ॥ म परि विगाउ भाई य अन्ह विरगोया ॥ ॥१७०॥
 भाई ॥ नवि मुनिराउ मौन न मन्दि मनवीय
 मुनर ॥ न नौय मागु, वरम न्दिम निरमाण रहीप ॥१७१॥
 •भिउ ॥ मुदरि बउ भावीय बपन बूमवइ ॥
 उतरा ॥ माग—गर्दइ तु वरतिमिरि मागुमर ॥ ॥१७२॥
 उतर ॥ बवनतागु तु विरर रिमग मिउ
 भावी ॥ मर नरि मि परगि भवभुरी ए ॥१७३॥
 हरिपीया ॥ हा गुरि भारण व उरुन वरइ ॥
 बाज ॥ जान बसान पदह पगान्न गमगम ॥
 भाव ॥ भावुध मान बका रयगु तउ रग भरे
 मन् न ॥ जम वरागु गयनह उवर रागिमह ॥१७४॥
 नम निमि ॥ वरन माग भट भरुमर गगान्द ॥
 राग ॥ गन्नु गिरगार बपरमेण मुरि पाण्परो ॥१७५॥
 गुणगगह ए तागु भनार भाविभद्र मुरि जाणीइ ॥
 बीधउ ॥ गीगि धरिनु, भर नरनर राउ छनि ॥ ॥१७६॥
 जा ॥ १७६ ॥ वमन् वनेन ता नरा नितु नव निरि नह ॥
 भवन ॥ बार (१७) एवनानि (४१) पाणुगु गवभिई ॥ नौउ ॥ ॥१७७॥

चन्दन वाला रास १

सामानित कथा वस्तु को प्रस्तुत करने वाले रासों में १३वीं गतांकी का एक महत्वपूर्ण रास "चन्दन वाला रास" है। जन भाषा में कवि भासगु ने इस कृति की रचना की है। चन्दन बाना जैन आधिकारिकों में एक धार्मिक एवं चरित्रवान महिला भक्त रची है जिसे अपने ब्रह्मचर्य सत्तात्व भयम और पवित्रता के लिए स्वयं का उत्कर्ष कर दिया। कवि भासगु राजस्थानी हैं और राजस्थान के ही नगर जातौर में इस रास की रचना हुई है। यह रचना जैसल मेर के बड़े भण्डार में सुरक्षित है तथा इसकी प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में है। जो यह रास अब प्रकाशित भी होया है।

कवि भासगु का एक रास "जैन-रास" है।^१ यह कृति भी स० १९५७ के भास-यात्र की ही है। परन्तु बहुत अधिक महत्व की न होने और अधिकतर धर्मोपदेश से सम्बन्धित होने से इसका साहित्यिक महत्त्व नहीं है। चन्दनबाना रास की एक विशेषता यह है कि इसमें कृति का लेखक लेखन काल तथा लेखन स्थान सभी की कवि ने स्पष्ट कर दिया है। कृति की एक ही प्रति उपलब्ध होने से पाठ कही कही भ्रष्ट रह गया मिलता है। यह पाठ स० १४३७^३ की स्वाध्याय पुस्तिका से मिला है।^४

चन्दनबाना रास एक कथात्मक कृति है जिसमें घटनाओं के कुतूहल बड़े विचित्र हैं। रास की मुख्य संवेष्टा चारित्रिक पवित्रता, स्त्री समाज में नारी

१-दिल्लिये - राजस्थान भारती भाग ३, अङ्क ३-४, पृ० १०४-१११ पर श्री अगारवाल नाहटा का लेख 'कवि भासगु रचित चन्दन बाना रास'।

२-भारती विद्या श्री मुनि जिनविजय, भाग तृतीय, अङ्क १, पृ० २०६।

३-दिल्लिये - पुष्पिका लेख स० १४३७ बसन्त सुनी २ मुगुरु श्री जिनराज मूरि सदुपदेशन व्य० देया पुत्र्या देव मुवित्रा चिन्तामणि भूषित मस्तक या भाऊ आधिकारिक आत्म पुण्यार्थ श्री स्वाध्याय पुस्तिका लेखिता (जैसलमेर बड़े भण्डार की प्रति, पन्ना ३७१ से ३७४)।

४-जैसलमेर बड़े भण्डार की प्रति पन्ना ३७१ से ३७४।

के सम्मान की धारणा, अध्याचार का ज्ञान तथा ज्ञान से मानव की सर्वांगीण प्रगति धारिणी का प्रचार करना है ।

राम का प्रारम्भ हा कवि ममलाचरण के साथ करता है —

“जिण अभिणव मरमइ भणए
पुनर्विह भरह—अदि ज वीत
धार जिणह पारणए
निमुणउ चन्-वान चरिण १

चन् वाना चम्पानगरा क राजा अधिवाहन और राना धारिणी की लक्ष्मी था । चम्पानगरा पर कानाम्या क राजा गजानीक न चलाई कर दी । भयवश युद्ध क बाद गजानीक का एक मन्त्राति धारिणा और चन् वाना का हरण कर ले गया । धारिणी न चाम सम्मान का मन्त्र म दत्त अपमान कर लिया । मन्त्राति न चन् वाना का गार्ह क हाथ बंध लिया । मठ की स्त्री ने उस कोरागार का नाम समझ बताया । चन् वाना अपने सतीत्व समझ क चरित्र पर चन् रनी ज्ञान महावार का अपने हाथों बाधन कराया और अंत में उन्हा म नाम ग्रहण करके कैलास ज्ञान का प्राप्त हुई ।

कृति की ज्ञान सक्षिप्त तथा म कवि न कान्य धारा बहाई है । ३५ छन्द का इस छान्दमा रचना में ज्ञान प्रवर्धामकता का सफ ज्ञान निवाह किया है । उसका क्या तत्त्व धनक पुनर्ज्ञान म युक्त एवं ज्ञान में पूर्ण है ।

धारिणा क चन् वाना क रूप चित्रण क उदाहरण दलिए—

(क) अधिवाणु गणिगी मु वाणिगा ज्ञानतमा धारिणा राणी
तु म पयान्तर सारमर, कुटिल कम नृप नयण मुचगा
हम गमणि सा भुग नयणि नव जावण नव नह मुरंगा

और धारिणा चन् वाना का चरित्र जीवन और भाग्यन कवि को ज्ञान गैरी का मरमना क मरमना का प्रभाव है —

भु भर भाता सा मुकुमाना
ना नान्द तम चणु वाना

(२१)

पाय धारिणा भमकारा ज्ञान रुतत माइ हार
चन् वान म मरमिया तमु मिरि लव कम वाना
धगुवइ पाय स चणु, नागिय न्ह पणाम पाउ

(२२)

सेठ ने चन्दन बाना का दासी के रूप में कय किया था, पर उसके सहभाव विनम्रता और चारित्रिक उत्कृष्टता से उसे पुत्री की भाँति दुलार करने लगा । वह भी उसे पिता की भाँति पूजने लगी । एक दिन अपने घर घाने समय सेठ ने उसके बालों को अपनी गानी में रख लिया । सेठ की स्त्री यह देख कर भाग बगूला होगई । उसने सेठ की अनुपस्थिति में उसका सिर ॥ डबाकर हथकड़ी, बेड़ी पहिना कर तहखाने में डाल दिया । तीन दिन तक उसने स्वयं को "जिन" की तपस्या में लोन रखा । घन का कण उस नहीं मिला । कवि ने हदन करती सर्वज्ञ बाना का चित्रण किया है —

‘माइ ताय मति बुडि ए लाधी

पर घर मइए दुखे दाधी

माधी लडा तप विष्ठा निव माभइ बहु सुख निहाणु

पूठि रे हियडा । मज्जमघे मन्ह जप्पि नदिन्याणु (२६)

इधर था महावीर स्वामी न भी सिर मुड़े हुए, कैद में हथकड़ी बेड़ी, तीन दिन का भूखी 'मज्जम तप' करने वाली रोजी हुई स्त्री के हाथ से ही पारणा करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, अतः अन्दरूँ वाला न उसे पूरा किया ।

महावीर को भाजन कछन पर इन्द्र ने १२॥ करोड़ स्वर्ण मुद्रामा की वर्षा का और इन्ही मुद्रामा का दान कर चन्दन बाना न कैवल्य प्राप्त किया ।

वस्तुतः कवि ने राम में बार वरदान और दात रस का परिपाक किया है । युद्ध के समय तथा लूटपाट का कवि ने अच्छा चित्र खींचा है —

१ वज्जिय डक्क बुक्क नीसाण, वेणवी खनिय तुरिम वेवाण
बलिया मइत्तिक मउठधार मलकु तु घण बगिसइ मेहू —

— मूम् करइ सग्राम भरि, अगा अगी भिटीया बेठ

धीर उस दुन्दु मुद्ध के बाँ विनयी ने घर का लूट लूटा । जिस जिस ने गो जा खाहा लूट म लूटा । वर्णों की सजीवता दृष्ट-०२ है —

हत्थि कु भ मने खिवियउ पाउ, मयपडियउ दहि वाहण राउ

— घोडइ चडि नासिउ मयउ सारि चितउ पूणइ वाउड
तुरय मउठ मय घड लइय तउ जीवउ स्त्रयगिय राई (१४)

वेणवि लडा रयण भडार वेणवि वचरा तण्ण कुठार
वणवि पडिउ घनु मण लूसउ चोर चरउदहदडिया
पाहुकु अकु फिरतु ददि धीर, महित धारिणि पिउपटिया (१५)

वस्तुतः कवि ने इन दणों में म घनाभा की प्रधानता व कुतूहल को

मुष्णता प्रदान की है। पूरी क्यामक कृति में घटनाओं व चार बड़े मोड़ हैं।
कृति निर्वेग है। भाषा सरल और गद्य चयन में गेयता है।

क्यामकना जन रामा व बहुधा मुरलिन मितनी है। यह राम क्या
प्रधान चरित्र काव्य है। द्रष्टा और अन्तर्कार का दृष्टि में कृति का विवेक
महत्त्व नहीं समझता। परन्तु भाषा तथा सरल भाव पूर्ण गद्यावली व कारण
राम का महत्त्व बत जाना है। भाषा का प्रमुख विषयता यह है कि उसमें
गुजराती और राजस्थानी का मिश्रण है। राजस्थानी और प्राचीन गुजराती व
गद्य का भरमार है। एसी भाषा का सरलता व पुरानी हिन्दी कहा जा
सकता है।

कवि न राम का मुख्य सङ्गता का ग्रन्थ धर्म काम और मोक्ष में स
मन व कर्म का प्राप्ति व साधक किया है जो काव्य का प्रयोजन है।

मक्षपिणि जिणु निरुत्तातु वार निरुत्तुह ववन नातु
वन्तु पन्त पवतिगिय परमपरह निव्वाणह जति
वर्तीमा मय विगुत्तु निरुत्तु मूत्तु मिदिहि मार्गति— (३४)

अतः स कवि न समस्त परमा का विजय निम्नकर रचना व मन्त्रव्य
और राम के दर्शन का भी स्पष्ट किया है—

एतु रामु पुण वृद्धि जति भाविहि भगतिहि जिण हर्तिनि
पन्त पदाव जे मुणु तह भवि दुक्खइ व्हयह जति
जानठर नररि आमणु भणु जम्मि जम्मि मत्त मरमति (३५)

अतः राम ललन मान पन्त पन्त तथा मुने के लिए लिखा गया
है। रचना की गौरी वर्णनात्मक सरल व स्पष्टलीय है। भाषा की सरलता व
गद्यावली का प्रवाह स्पष्ट है। जन भाषा काव्य का दृष्टि में कृति का महत्त्व
और अधिक बत जाना है। शब्दों गद्यावली का क्यामक तथा घटना प्रधान
कृतिमा व भाषा व गौरी का दृष्टि में चयन जाना राम का महत्त्व अतः हा
प्रसार का एक प्रामाण्य है।

वस्तुतः ऐसी ही राम का मानवता चरित्र-निर्माण तथा सम्मान तथा
जावन का दृष्टिमा प्रगति का दर्शन दिया है।

स्थूलिभद्र रास ^१

१३वीं शताब्दी में बनाया गया रास की हा भांति एक घटना के प्रमाणों प्रधान रास स्थूलिभद्र रास मिलता है। स्थूलिभद्र का जीवन जन्म-मरण में नमिनाय और जम्बू स्वामी की भांति शृंगार से सम्बद्ध रहा है। स्थूलिभद्र और काशा वैश्या के प्रति अनेक शृंगारिक तथा उपदेश प्रधान कथाओं की रचना की गई है।

प्रस्तुत रचना की दो प्रतिया उपलब्ध हैं। जिनमें पटली अभय जैन प्रन्थालय, बीकानेर में तथा दूसरी स० १४३७ में लिखी हुई है और जैसलमेर नगर में सुरक्षित है। पहली प्रति भी १५वीं शताब्दी की है।

स्थूलिभद्र रास के नामक स्थूलिभद्र पर काव्य लिखने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। स्थूलिभद्र का जीवन आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थ के परिशिष्ट पर्व में मिल जाता है।^२ सस्कृत में भी इनके जीवन पर अनेक ग्रन्थ तथा सूर्य चन्द्र पर रचित गुणमाला महाकाव्य आदि रचे गये हैं। कालान्तर में तो गुजराती, राजस्थानी या पुरानी हिन्दी में स्थूलिभद्र पर लैकड़ों का सत्कार रचे रास काण और गीत मिलते हैं। स० ६८६ में गऊडार का जीवन चरित्र हरिद्वेष के बृहत् कथा काण के अन्त में 'शकटाल मुनिव्यानकम्' नाम से प्रकाशित है। अतः इस रास की कथा वस्तु के लिए बृहत् कथाकोष व परिशिष्ट पर्व आदि ग्रन्थों में पर्याप्त सहायता ली जा सकती है।

रास के कर्ता ने अपना नाम स्पष्ट नहीं किया है पर अन्त में एक शब्द 'जिणधाम' आता है जिसमें अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम सम्भवतः जिनधम गूरि था। स्वर्गीय श्री मोहनलाल देसाई ने प्रस्तुत रासकर्ता का नाम धर्म दिया है।^३ साथ ही उन्होंने इसका रचना काव्य भी स० १२६६ के आस पास बताया है।

१-हिन्दी अनुसूचन वर्ष ७, अंक ३, पृ० ६० पर श्री अमरचन्द्र नाट्य का लेख- स्थूलिभद्र रास

२-बही, प्र० २६।

स्युनिमद रान घटना प्रधान है जिनम कवि न अनेक कौतूहल का समावेश किया है। राम बना प्रधान है। यत्रि यन् स्युनिमद व जायन तथा उनकी मापना पर माया प्रकाश तथा टावता परतु, कवि न अनेक कौतूहल द्वारा कुन्द अनातर घटनाया या सज्जन कर स्युनिमद का लाह्य व फल म समय का मा ता अन्तार हा मित्र कर दिया है।

कवि ने राम का प्रारम्भ नामन गीत और बागीचर का स्मरण कर दिया है तथा प्रारम्भ में ही गङ्गा और उरुचि पण्डित का संघर्ष लिखा है। संघर्ष का कारण बदन यह था कि उरुचि की गाथा राजाभा का बड़ी प्रिय था और मन्त्रा गङ्गा (मन्त्रा) का राजा द्वारा उरुचि का शिष्य माना गीक नहा लगा। उसने अपनी दाहिना। द्वारा उसकी गाथा का मान करना शिष्य का एक बार दूसरा का २ बार और तीसरा का तीन बार। इस क्रम में गङ्गा का कह दिया न उरुचि का निज नदीन कही जान वाली गाथा को मान करना पुराना मिथ्य कर दिया। पण्डित उरुचि ने भी गङ्गा के विरुद्ध राजा का भटकाया कि यह मन्त्री राजा का भरोसा कर उग्र स्थान पर अपने नहक का राज बनाना चाहता है। राजा यह सुनकर क्रोधित हो गया। गङ्गा ने अपने नहक का मित्राश्रय प्रथम की है या करान में ही परिवार का पलायन समझा। मन्त्री गङ्गा का क्रोध नष्ट न मार कर परिवार के नामने (उसके नहक के मामने निम्न भवन गिता के कहने के अनुरोध उनको भरोसा कर स्वयं का राज भक्त निष्ठ शिष्य था) मन्त्रि का प्रान रना। ह्युनिमद के पाप भी यह प्रान दुखा। उस प्रान का गङ्गा के दर्शन भाविज रना करत थे। मान का राग्यकिता के प्रान का राज गङ्गा उरुचि नदी मानावित्तु का मनुमानावित्तु कहकर अपने का उग्रान होने तथा विरल होकर गङ्गा करत। कवि ने कहा म उग्रान निष्यन करत के निरुही राजा का मन्त्रा शिष्य है। गङ्गा अपने प्रान शिष्य तथा परवर्ती प्रानों

इक सयिबि सयिय वाला ज त्रि सयिय जपइ
वर रुचि रुडउ राउमणु रासिहि बपइ—

वरगचि पण्डित ने गवटार की मृत्यु के लिए हव्य देकर अपने शिष्या
की सहायता से अनेक पद्यों में किये उसी का वर्णन देखिये —

तावह पडितु बाहिरि बाइउ, द्रम्य थवइ नितु गगह जाइउ
पसरह लायह द्राम निखानइ, नरनइ वह अमह नवि पालइ
अत्यतरि महतण नउ द्रम उत्तरिय,
पडित उच्छउ घाउतलि दोरउ सारिय

तउ पडित कापानल चडियउ, घाठउ हीयउ मूनउ घीयऊ
तउ केनु कोपिराया पोसइ नहु हण्डिउ सिरियउ राउ होसइ
नयर देवारे ससे नसइ मभालियउ
महता रुठउ राउ अछतउ नितु टलियउ

जाव महतउ अवसरि आवइ ताव पुठि न्यिइ पुणुनरवइ
मुहतइ जाण्डि मून विणसइ, बमण नयण नरवइ रुमिउ
सिरियउ भण्डि न घूनउ घाउ जोविउ साधि तियइ जउ राउ
महतइ धरह कुडुकहु स्वामिउ असिउ हलाहलु रयसिह नामिउ
सिरियउ कहइ नरिह जाइउ अमह धूनमदु जेठउ भाइउ
तसु तणि म २ अमह नवि छाजइ भामिणि विरहु किमइ जइ भाजइ
तउ निसुखेविणु नरवइ जाण्डि मुद्र कहइ सइ धुनिमद्र घाण्डि
रायह मगिरि धूलिमद्र पण्डित, 'माणुप्राणाधित' भाग विरतउ (२२१)

उक्त उद्धरण में कवि ने राजकीय दयप्रदा और कर्मचारियों की पारस्परिक ईर्ष्या तथा राजा की 'क्षयि स्था' क्षयि दुष्टा वाली प्रकृति को स्पष्ट किया है। भोगलिप्त स्थिति के जीवन में एक विपरीत अभ्यास का प्रारम्भ यही से हो जाता है। दीक्षा लेने पर उनके अग्र गुरु भाई भी चतुर्मास के स्थान कोश साप के त्रि पर काई मिह का गुफा पर काई कु के पान मागता है पर स्थूलिमद्र उमी बीणा वस्या ने यहाँ जान हैं। स्थूलिमद्र और कोशा के वर्णना में इस राम में कवि का मन तिलकुन नहीं रमा है। न उसने कोशा के मुखशिल्प का सौन्दर्य का ही वर्णन किया है। आगे कवि एक अग्र कथा में राम जाना है, जो स्थूलिमद्र के हा एक गुरु भाई से सम्बद्ध है। स्थूलिमद्र ने मन्त्र का पूरा दान किया के ५५ व्रत का पान कर पक्के सधमी हो गये। यही नहीं, उन्होंने बीणा वस्या की आमलचूरी बन लिया। जब चतुर्मास करके सब मुनि पून आय का गुदजा ने स्थूलिमद्र को ही सबसे श्रेष्ठ बताया। इस पर एक मुनि

श्रुत ही गये और उन्होंने भी दूसरा खुर्मास उभी बाधा के यहाँ जाकर किया। पर वे कामामत लाये। बाधा ने उन्हें रत्न सम्बन्ध ज्ञान नष्टाने भेजा। काम विमान्ति मुनि ने यह सब किया, पर अंत में बाधा ने ही उन्हें हार माननी पड़ी। बाधा का मुनि का उद्देश्य मुनि की काम विमाहित ध्वरणा, रत्न सम्बन्ध के लिए धन के कष्ट पाने पर मुनि का उमम कामतृप्ति की माधना, बाधा द्वारा उनको भर्त्सना, समय तथा का महत्व और स्थूनिभद्र की जितन्द्रिय स्थिति का क्षयाकरण करना आदि धन के विषयों के बिना ही न बड़ा ही मार्मिकता से सजाये हैं जिनका भाषा प्रसाहमय भाव प्रत्यक्ष सरल तथा विनोदक है। यावत्—
 अत्र म कामाप्ति मन की चयन स्थिति और मुनि की विषयित अवस्था तथा बाधा के सौन्दर्य के प्रति हुए व्यापार का कथन के लिए —

बस लभि वयसि मिग नयसि नव जावली
 मुविधि परिविविह परि णिटठ मुणि सायली
 प्रावह मुणि कहठ मुणि वस तुम्ह दुस्तही,
 परिजइ तुम्हि मुग्गइ अम्हपरि गनिव परिजइ तुम्हि मुग्गइ
 मग्गु मयणउ गुह वयणव परतु जइ भारय,
 वम धरि पाउम भरि त निवमु प्राविय
 गावण मनिन मुणि मान संवातिर्य,
 सयन तुम वर सणिवित्तु उम्पूनिथ
 भादवउइ धणु गुग्गउ जनहरा गजमे,
 चरित्त पुह पाण्डुरमयण महभजर्म
 ईरा परिवम धरि मुणिहि मणु गजिय,
 रमइ नर धनिकि परि पिक्खे विवजिय
 भार वापियठ किरि बातइ मुणि छम्भिठ,
 अय विणु वम पुणु निद्रुर वह छम्भिठ'

बाधा ने मुनि से पस मागे और कहा कि बिना धन के यही रहना सम्भव नहीं है। और काम विमाहित मुनि उन्मत्त हो गये। उन्होंने बाधा की भर्त्सना महा उनके समा प्रकार का विक्षिप्त गारारिक अवस्था का वर्णन करके न उन्हें रत्न सम्बन्ध ज्ञान के लिए नष्टाने तक भत्का कर दिया है। मुनि सम्बन्ध तब तो बाधा ने उसे पैरा में पाछकर फेंक दिया —

वमा पमगे तिलु ममणा नविणु जाह राय मग्गिह रयणु
 तुहु अथ विद्रुणउ हिन्द पाणु, मग्गु धरि वम्पु बरेसिजठ
 'ताम मुनि मधु पुणु मग्गइ न चल्लिन् वलिहिन् जल्लहिन् नइहि ॥ पिज्झिइ

काम धारु मत्त तारु भमइ पुटिठ लम्पइ, नेपाल देसि भउ रमए कवलह मग्गइ
 वेग करि, पय भरिचलिउ मुणिए भाविउ, वेस लइ नमइ जइ कहवि लवाविउ
 भाणिए मुणिए कवल रयणु खोसि माल्हिउ कहइ,
 पाउ में लाइ धणिए लवणु द्रम्मह तहइ
 लानु लोचन मुणिए दिटठु कउडो गमइ, वस भुगवत जसु जम्मि चित्तु रमइ”

यहाँ तक ही नहीं, वैश्या कोशा श्रुत में इसे गुरु बनकर सहायता करती है और स्थूलिमद्र का वैशिष्ट्य स्पष्ट करती है। मुनि की रत्न कम्बल लाने पर वैश्या ने इच्छा पूरी नहीं की, तो वह निश्वास लेने लगा। वैश्या उस शील की महिमा बतलाती है। काम विमाहित मुनि के हृदय में भरे मोहाभकार में कोशा स्थूलिमद्र की विजितेन्द्रियता से प्रभावित होकर प्रकाश विरण प्रदान करती है और इस प्रकार मुनि को वह चरित्र रत्न को हृदय में धारण करने की शिक्षा देती है। कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक विद्या का बड़ी सफलता से स्पष्ट किया है। कवि का प्रत्येक मनोभाव इन वाक्यों में उसके काव्य-कौशल और काव्यगत सरलता का द्योतक है —

निपतरिण जउ मुणिए दीणउ धामे, जणा भवविणु मिरिय कुलाअे
 इह गई लमु करीरिह भाजइ स्थूलिमद्र जा गति कहविन छाजइ
 वह नेपालउ दस भणीजइ बढइ कठिन सहि पुणु जाइजइ
 तइ मूरख नवि जाणिउ भेउ लवख रयण मुणिए कवल घेहु (४०-४१)

और वैश्या ने उस कबले से पैर पीछे कर कीचड़ में पक गिया और कहा कि अपने चरित्र रत्न को तो सभाला वह हमने भी गदी जगह में जा रहा है। उसने रूपक द्वारा यह स्पष्ट किया कि नेपाल दस कितना दूर था वहाँ जाना कितना कठिन है यदि हे मुनि तुम। रत्न कबल लेने नेपाल चले गये तो क्या अपने चरित्र रत्न और समय रत्न की प्राप्ति उम अपूर्व आनन्द निर्वाण की प्राप्ति हेतु नहीं कर सकते ? उक्त पंक्तियाँ में इसी प्रकार की ध्वनि है।

दिटठ रयल ज कहम भरियउ, हियडउ मुग्रह सहं बीसरियउ
 तउ मुणिवरु मेल्हहि नीसासा मज्जु तणी नवि पूरा धामा
 ज जिण धम्मह किज्जइ मूखु त तरणत्तणि पालिउ मौखु
 इमउ वयण सुहियडउ घरइ मयण माह चित्तह उत्तरइ
 चित्तइ मुणिवरु हियइ तिरण, सज्जमतए मह रूपइ भग
 धनु धनु स्थूलिमद्र सा सामिउ, पाउ पणामइ लइ यइ नामिउ (४०-४४)

और मुनि प्रसन्न, आत्म-ग्लानि और पश्चात्ताप से भर जाता है।

उमका जान दृष्टि कोणा के गुरु बचना म सुन जाता है और वह बचा बागा
क कहन म चरित्य रत्न को हृदय में धारण करता है तथा गुरु के पास
जाकर पुन दीप्ति होता है और वही मुनि स्युनिमद की कृपा से दब जाक
प्राप्त करता है —

तमु उपरि मइ मच्छर बायट, तिणि बारणि मइ पतु पामोयड
तुह तुह तुह बागा महु माया हउ पट्टिवाहिउ भाणि, उठाया
मइ जागिउ ठउ बियउ धक्कम्पु, धालि बहिउ गठ माळुम जम्पु
बना गागा बाउद घेइ धजिउ मुगिरर मन करि लेउ
चारित्त रयगु हिउहु घरहि गुरु ह पाति घानायण सेहि
बहुत बान भजय पाववि चउड पूरव न्यिइ घेउवि
स्युनिमद जिा धम्म बहवि दवनावि पतुउ जाघेवि—(४५-४७)

बस्तुतः श्री प्रकार कवि न स्युनिमद क संयमित जीवन की श्रि
मुद्रमा पर प्रकाश होता है । नाम म कही भा उमक (गिल्ल पर) गाये जान या
क्रीडा करन क रूप पर प्रकाश न्यो होता मया है । निफ स्युनिमद क उत्कृष्ट चरित
पर मुनि का कथा क द्वारा प्रकाशंतर म प्रकाश होना हा कवि का मतलब
है । बागा का बागा रूप क रूप म सामन आता है । ४७ छंदा का म
छागी मा रचना म कवि न बहुत मार भरा है । बागा म अग्रभग क गला क
प्रभाव क साथ साथ अधिकांश का सम्माना क है ।

कवि क वाक्य मरन क रूप चदन प्रभाव प्रदण है । कवि न काय
काम म अतद्गुह आत्मभ्यानि तेना पचाताम क चित्रा पर सम्यक् प्रकाश
होता है । एवं न छंदा का दान र पूरा रान बोधद दद म विद्या मया है ।

श्री नव कथा रति और मानिदया का प्रभाव है प्रस्तुत राम बहा
महत्प्रभु है । १५वा गताया म मितन बान स्युनिमद राम या स्युनिमद
पाशु १ का नाति कवि न कही ना स्युनिमद क बागा का शृंगारिक बहान
नया किया है । इन काय म शृंगार आश्रित रूप म हा आया है । अत म
कृति निर्वोक्त होता है । कवि न उरगवि को कथा, मुनि का व्या नपात
जाकर काम विनाशिन स्थिति में रन बदन जाना आति धन्य भवान्तर
रखा है त्रिम्बक पूरा मुद्रन प्रभा है ।

१—स्युनिमद पर विस्तार क लिए लिंग अन्ता म १८५८ में लेखक का
आति बान का एक शृंगारिक खंड काव्य था स्युनिमद पाशु
गायक लेख ।

छोटी-छोटी सूक्तियाँ यथा—भामिणि विरहु त्रिमइ जइ भाजइ, बल्लिउ
 घणकण रयण चम्मेविणु असिउ हनाहलु रयसिरु नामिउ, सयल दुम वद
 क्षणि चित उम्मितिय सावण सनिल मणि सोल स बोलिय, चण भरवेविणु
 मिरिय कुरवामं, अकरनइउ सजय भारुदुप्पानउ, इह खमु करीरिहि भाजइ,
 तथा चारित्त रयणु हियडइ घरेहि, गुरुहुपासि आलायण लेहि प्रादि अनक्
 सूक्तिया हैं। रास की मुख्य सवेदना उपशात्मकता तथा धर्म प्रचार है। शैली
 वरणात्मक है। काव्यात्मकता में सरस स्थल पाड़े हैं, परन्तु घटना वचिग्य और
 वयात्मकता ने कृति की सफ़रता में सहायता की है।

रैवतगिरि रास १

रैवतगिरि रास १३वाँ गान का प्रसिद्ध ऐतिहासिक रास है। रास क रचयिता या विनय मंग गूरि २। रास का विनय धारित है तथा कवि न रचनगिरि उन ता० का महारूपी विनयन किया है। यह रास लार्ड क प्रति प्रसार थड़ा रचन काय मरवा का प्रसार पूर्ण रूप तथा नृ-नृतर धर्म-रति है जिस कवि न काव्यात्मक सुखमा म मंजारा है। प्राधान काय म हा म ऐतिहासिक स्थान का मन्त्र रण है। रचना का रचनात्मक मन्त्रा गान का उत्तरार्द्ध प्रसार मं० १०८८ है। प्रस्तुत काव्य का नरानन्दम मन्त्रा म प्रसारण दो० इतिहास मांगता है किया है।

रचनगिरि रास नाम का एक एक घोर वा बना म्मा है। इसका प्रति पाण्डु क संघवा पाटा क प्रसार म है। जिसका मरवा का था नादुराम प्रमा प्राधान म्मा बनात है। यह रास अनुपात-मन्त्रा क सुख विनय मंग गूरि न मं० १०८८ क वाचना का था म्मम विनय का घोर वन क उन मन्त्रा क जगुंठार का वगत है। रचनगिरि का रचनमन्त्र म्मम सुखरानी क विनय न वा प्रारण प्रय म किया है। ३

यथा वस्तु म्मि नात्र तथा धय म्मना का धयन करन ममय रास का ऐतिहासिक घोर माग्दुति है म्म म्म नात्र नात्रा है। रैवतगिरि रास प्रसिद्ध ता० म्मान है। यह म्म कि म्मका प्राधानता क उन्मल म्ममराण म्म म्म म्मन है। म्मम म्मि वरित नात्र का प्रतिमा क धय वस्तु सौम्य का वरित किया गया है वह अनिया क २२ वें तीथर आ म्मिनाय है।

१-प्राधान सुखर काय मन्त्र, था मा० दो० गान पृ० १-३।

२-हि० अ० मा० का रचनगिरि था नादुराम प्रमा पृ० २६ वि० मं० १८३३ का मन्त्राण।

३-विन-प्रारण कविता था क० वा० गात्रा २ जैन सुखर कविता, श्री माह्वनाय देवा।

नेमिनाथ का वृत्त ख्यान है, जिस पर अपभ्रंश में मिलन वाली कृति हरिभद्रकृत 'नेमिनाथ चरित' है । ^१

प्रस्तुत रास में यात्रा वर्णन, सधवर्णन तथा मूर्ति स्थापना वर्णन है । राम की कथा वस्तु धार्मिक है । राम गेय है तथा इसमें तीर्थ एवं यात्रा के महात्म्य का सुन्दर दायात्मक वर्णन है । इस कान में जन रासा की विषय वस्तु में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था । मन्दिर, शिल्पकला, तथा उनकी प्रतिष्ठा कराने वाले धनपति धावक का गण गान वर्णन करना भी 'रास' में प्रारम्भ हो गया था । रवतगिरि रास की ही भाँति १३वीं शताब्दी में हम कवि राम द्वारा स० १२८६ में लिखा हुआ एक छाबू राम ^२ मिलता है जिसमें छाबू के प्रसिद्ध तीर्थ व सधयात्रा आदि के वर्णन हैं । रवतगिरि रास में भी सारथ दण के प्राचीन मन्दिरों तथा प्रसिद्ध पौरवाड्डुल या प्राग्वाट कुच का वर्णन है । ^३ वस्तुपाल और तेजपाल इसी कुल के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हैं जिन पर १५वां शताब्दी तक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं । अतः राम की ऐतिहासिकता में अनेक अंतरंग तथा बहिरंग प्रमाण मिलते हैं । राव खगार जयसिंह दत्त एवं गुजरान के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल का भी प्रस्तुत रास में उल्लेख है जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं । ^४ यत्र और यक्षिणिया के अनेक चित्र जनिया के प्राचीन तायकरा की मूर्तियाँ के साथ आज भी बन मिलते हैं । यक्ष वर्णन रवतगिरि राम में भी मिलता है । ^५ इसके अतिरिक्त अनेक बहिरंग प्रमाण राम की ऐतिहासिकता सिद्ध करने में कुछ स्पष्टिगिमी इन प्रकार हैं —

(१) तेजपाल गिरिनार तने तेजलपुर निय नामि ^६

तेजपाल ने वहाँ अपनी माँ के नाम पर आमाराम बिहार शिणदवालय उपसनगढ में बनवाया ।

(२) सुवर्ण रखा नदी के किनार पचम हरिदामात्र का वपुष्व मन्दिर भी उस समय था यह उल्लेख कवि ने प्रस्तुत राम में किया है । इसके अतिरिक्त कुमारपाल श्रीमान्ना कुन सभय ने अम्ब का सौराष्ट्र का दण्ड नायक बनाकर स० १२२० में गिरिनार के सायान बनवाये थे —

१-हिल्ली के विकास में अपभ्रंश का याव, श्री नामवरसिंह पृ० २१८ ।

२-देखिए -राजस्थानी वर्ष ३ अङ्क १ श्री आरचद नाट्य का लेख 'छाबूराम' ।

३-देखिए -प्राग्वाट इतिहास (भूमिका भाग) लेखक अणरचद नाट्य ।

४-रवतगिरि रास, डा० हरिवल्लभ भाषाणी, पृ० २, पन् ६ ।

५-वही पृ० ८ पद ८ ।

६-आपणा कविया श्री क० वा० नास्त्री पृ० ११८ ।

"बुमारपान भूपान जिणु सामणु मटणु

॥ बघा विर मिरिमान कुन मभरा, पान मुविमान तिणि नठिय
अ तर धवन पुणु पर व मराविय १

जयसिन् दव न मोरान्द्र पर मगर का बधवर अधिकार करन न वा
माजण मन्ना का वृत् का लुटनापक निरुक्त कर म० ११८५ में गिरनार उपर
नमिताय का मन्दिर बनाया —

' मिरि जयसिन् दव पवद पुशामर हणुवि तिणि राव पगारउ
महिणुवु नमिनिणि' तिणि भवणु कराविय ।

इनके अतिरिक्त मानव व मावद गान का सर्वांगुल मगावताना बनाने
का उल्लेख, बमार व अतिर एव रत्न नागक मान्या का वृत् मत्र लकर
माना, तथा वम्पुपान नमगन का मन्त्रमन्त्र मन्दिर धार्मिक बनाना धार्मिक
धर्मात् रास व एतिहासिक महान का मन्त्र करना है । २

प्रस्तुत रचना ८ कवका म विमल है । कवका का काव-मय या
स्वतंत्र उक्त नग्न लकर का विनाशन का मुख्य गान है । अन्तर्गत क मधि
काव्या म अन्तर्गत कवका मिनत है । माहिणु लणुकार न अन्तर्गत काव्या म
कवका सों का कहा है । परम्पु पत्रम चरित् रित्तन पुराण धार्मिक प्रयोगों
में ला मर्ग मधि कहनात है । प्राय इन काव्या म अन्तर्गत मधियां जाना या और
एक-एक मधि म अन्तर्गत कवका मिनत है । दूसरे गान म क कवका मिनत
एक मधि का बनाने व । अन्तर्गत मधि का कवका का एक मन्त्र बना जा सकता
है । ' हमकद न कवका का ता विववन किना है ' मन्त्र अनुमार का कवका
क मध्य म वर्णित धत्ता उक्त कवका का ममाधि का मुख्य है । प्रस्तुत राम क
कवका का वर्णन क एक भाग का अन्त और दूसरे नय सों व अन्तर्गत का
मन्त्र समाना जा सकता है । अन्तर्गत प्रथम कवका क मन्त्र म बना समान
होती है और प्रथम कवका क काव का प्रारम्भ ।

१-प्रा० पु० का० मन्त्र, आ गान पु० २ ।

२-प्रा० काविका का० का० मन्त्र पु० ११८ ।

३-अन्तर्गत मन्त्र अस्मिन् मन्त्र कवकाभिधा ।

४-कवका मन्त्रमन्त्र मन्त्र ।

५-मन्त्रगिरिरास म० २० पु० मानाग्या मन्त्रान्ति, पु० १-८ ।

' सप्तमो कवकाव व मन्त्र मन्त्रि मन्त्रा मन्त्र बना या ' मन्त्र ।

रेवतगिरि रास चार कडवका मे विभक्त है। इन कडवको मे कोई विशय कथा सूत्र नहीं है, चारो कडवको मे गिरनार, नेमिनाथ, सधपति, अ बिका, यक्ष तथा मन्दिरों का वर्णन है। वस्तुपान तेजपान के सध द्वारा नेमिनाथ की प्रतिष्ठा का महामहोत्सव हाता है। एक विशेष बात यह है कि इस काव्य मे प्रत्येक कडवक मे स्वतन्त्र वर्णन है जिसका पारस्परिक कोई सम्बन्ध नहीं। इन कडवका मे जयसिंह, कुमारपाल, दण्डनायक, मालव के मावड शाह के वर्णन हैं तथा कश्मीर के अजित और रत्न नामक भाइया की सध यात्रा-वर्णन, दानवीरता, सध तीर्थों के शिल्प, मूर्ति का पराक्रम तथा चमत्कार पूर्ण घटनाओं का वर्णन है। श्रावक भक्ता को धर्मशील बनने का आग्रह और धर्म प्रचार ही राम का उद्देश्य है।

प्रस्तुत रास की एक प्रति पाटण भण्डार मे है जो ताड पत्र पर लिखी हुई है। डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने अपना पाठ सम्पादन श्री सी० डी० दलाल के प्राचीन गुजराती काव्यसंग्रह से ही किया है।^१

रेवतगिरि रास गीति प्रधान रास है। गेय तत्व नृत्य मे सहायक होता है विशेषतया महोत्सव मे अदालु भक्ता के ये राम एक अमृतपूर्व उल्लास की सृष्टि करत थे। धर्म ने हमारे समाज के मनुष्या मे एक जीवन्त विश्वास की सृष्टि की है। इह लोका और परलोक का नाम, अहिंसा और अध्यात्म से प्रेम आस्तिका की अदा के ही परिणाम हैं। अतः समाज की इसी विशिष्ट मनोवृत्ति ने ही समय समय पर अनेक साहित्यिक विधाओं और पोषकतत्वा का निर्माण किया है।

रेवतगिरि राम के वर्णनो मे प्रगाढ तन्मयता है। कवि की पन्नावली कात मुमनोहरा और प्रसाद गुण सम्पन्न है। कृति मे सर्वत्र भक्ति रस व्याप्त है। अदा स्निग्ध प्राणिया मे शांत रस का प्रवाह पूरा पडता है। भाषा समास बहुला है।

प्रारम्भ मे ही कवि मंगलाचरण करके आगे बढ़ता है। मंगलाचरण की परम्परा भारतीय प्रबंध काव्या की प्राचीन परम्परा है। कवि ने गिरनार के सौन्ध्य के कई मधुर चित्र खींचे हैं। अनुभूति की सरसता उधे और भी मार्मिक दना देती है। कवि गिरनार का ससार यात्रा के साथ रूपक बाधता है —

जिम जिम चडइ तडि कडणि गिरनार तिमि तिम ऊडइ जखभवण ससार
जिम जिम सेड जलु ॥ गि पानाटए, तिम तिम कलिमलु सयलु ओहटटए^२

१-रेवतगिरि रास, डॉ० ह० व० भायाणी सम्पादित पृ० १-४।

२-वही ग्रन्थ, द्वितीय कडवक।

वही की नीतन रागु दोनों तार हरण करन बानी है —

जिम जिम बायइ बाउ तहि निम्बर सीयनु
तिम तिम भव गाना तववणि तुटटइ निचवु १

पश्चात् व मधुर उर्ध्वन वाक्त्रो की मिठाम, मयूर का कलख भ्रमरा का गुंजार और निर्भरा का नाच गारे प्रात का भजन कर लेता है । वर्णन की ध्वन्यात्मकता और वाक्यात्मकता दृष्टव्य है —

‘कोपन कनयना भार करारधा सम्मग महपर (२) मधुर ॥ जारवो

जनद जान बवान नीमरणि रमाउनु केरु नजिन मिन्ह अनि कज्जन सामनु
बहन बह धानु म भेगो जत भव हन सायन मइ मडणी
उत्प नपति निवोग ही सुनरा निरवर शय गभीर गिरि करारा
जाउ पुनु विमलतो ज कुमुभिहि गहुन दासरा,
हम निमि निवमा किरि तारा मडनु २

(मिठा व जन मयूर म प्रगल्भ रमणीय निर्भर अतिवजन गिरि श्यामल गिरि की गाना अनन धानुधा एव रमा म युक्त स्वर्णमया मन्दिनी धर्यान् औषधिया म परिपूर्ण बनु परा और विरमित पुन पुसुमा का दन माना निगाआ का नज मण्डन ३) छात्र प्रमान काम वाक्त्र क तथा कवि की उत्प्रेक्षा भी शक्ति लक्षन है ।

समान घटुना अनुप्रासमय रा और गरम पनावना म कवि न नीरस पत्यरों म भी रम न मान उमडा ४ । निम्नांकित पत्तिया व प्रकृति वर्णन मे जयदेव के गाता व गाना-चान व गानन का पनावना का स्मरण हा आता ५ —

मिदिय नवन वनि ननु तुमुम भव ननिपा
ननिप मुर महि नवग वनग तन तादिपा
गलिय धन ममन गयर नन कोमना
विन्द मिदरट साति तनि ममना ३

प्रकृति वर्णन म कवि ने नाम परिगणनामय रूप का प्रयुक्त किया है । अनेक वस्तुतया का परिगणन अपनी निम्नान गाथ दृष्टि एव दृष्टता की परिचायक है और गान अनुप्रासात्मक और नाचामय है । एक ही अक्षर म प्रारम्भ होने जाने अनन वृत्त व नामा का तथा कवि का बचता का दायि —

१-वही पृ० ३ कदव ७ पं ५ ।

२-रेवतगिरि राम टा० इन्द्रिजम भाषाणी पृ० ३ ।

३-वही, पं ५ पृ० ३ ।

१ "अ गुण ॥ जण भाबिनीय, अ बाढय अ कुल्लु,
 ॥ वक अ बरु आमलीय, अगरु असोय अहल्लु
 करवर करपट करणतर, वरवदी करवीर,
 कुडा कडाह कयब वड, करब वदलि कपोर
 बेयुल बबुल वजन बड, बेउल बरण बिदग,
 वारासी वीरिणि विरह, वासियाली वण वग
 भीसम सिवलि सिर (स) सभि, सिधुवारि सिरखड
 सरल सार साहार सय, सागु सिधु मिण दंड
 पल्लव पुल्ल फुल्ल सिय, रेहइ ताहि वणराइ,
 ताहि उज्जिल तलि घम्भि यह, उल्लटु अ गि न माय ३

अनुप्रास, यमक, रूपक, उपप्रेक्षा आदि अनक अलंकारों का स्वाभाविक निरूपण हुआ है। कृति में विशेष कर अनुप्रास, रूपक व उपप्रेक्षाओं की तो घटा ही उमड़ी पड़ती है —

अनुप्रास —

- (१) निम्मल सामल सिहर मरे
- (२) तस सिरि सामिउ सामलउ सोहग सु दर भार
- (३) अ गुण ॥ जण अ बीलीय अ बाढय अ कुल्लु

उपमा रूपक व उपप्रेक्षा —

- (१) जिमि जिमि बडइ तडि बडिणि मिरनारह
 तिमि उडइ जण भवण ससारह
- (२) जाह कु द बिहसता ज कुमुमिहि मकुल्लु
 बीसइ दम दिसि दिवसा किरि तारा मडलु
- (३) जतय सिरि नेमि जिणु अचछरा अचछरा
 असुर सुर जरय किरय विज्जाहरा
 मउड भणि किरण पिज्जरिय गिरि सेहरा २

उल्लेख वरणन क्रम तथा स्वाभावोक्ति —

- (१) अइरावण गयराय पाय मुदा मम टाउक
 दिण्ठ गयदन कु ड विमल निम्मेर सम अकिउ
- (२) गयण गग ज सयल तित्त्य अवयार भणिज्जइ

१-वही, पृ० २, पद १८-१७।

२-रेवतगिरि राम श्री मायाणी, द्वितीय बडवक।

पञ्चनिवि तहि म दुख जन म जनि जिन्ह

(३) गहगण ए भाहि (?) जिम भाणु पाय माहि जिम मर गिरि
तिहु भुयण तम पनाग लिय मोहि खनगिरि

(८) नयण मनुगउ नमि जिणु १

नयण मनुगउ प्रयाग विनता उत्तु है ।

धोर अन्न म कवि न प्रकृति क उपायाना द्वारा नमिनाय का अभिप्रेत कराया है । नमिनाय क रूप वरुण कर्ण म कवि क वाच्य कौतव्य का परिचय मिलता है । अनिरजना म एकत्र रहित हैं । जैसा स्वाभाविक भाव निष्पन्न हुआ उसको ज्या का त्याग मजा लिया है ।

नामर (ग) म चमर इति मयाहवर गिरि धरीय

नित्यह म मउ खनि मिहामगु नय नमि जिणु २

गुजराती विद्वाना न प्रति पावन भार्गव में उपलब्ध हान म इस प्राचीन गुजराती क विकास का कटा बनाया है । परन्तु यह भा स्पष्ट है कि प्राचीन गुजराती का उद्भव न प्राचीन राजस्थानी का उद्भव है । अतः हमें बात का बाद स्वतंत्र मन्त्र नग प्रस्तान गता । अतः इति कवन प्राचीन राजस्थानी की हति म मन्त्रगुण है ।

छन्द क क्षेत्र म खतगिरि राम का मौखिक योग है । चारो बहक में क्रम २० १० ११ धोर २० पद हैं । प्रथम बहक क बीमा छन्द दाह छन्द म वर्णित है । अन्त अन्त म और अन्त का दाहना छन्द है । कवि न उस बड़ी हा मभा म निभाया है ।^३

द्वितीय बहक में एक प्रकार का मिश्र छन्द है जिनम पहली दो पक्तियों का छन्द नयणा क आधार पर ठीक नग बठजा और तब चार पक्तिया म "मृगगा" है जा २० मात्राओं का हाता ॥ ४

तृतीय बहक का छन्द राता ५ है । यह छन्द ११ पदों का है ।

१-वही, पृ० ६ पं १८-२० ।

२-वही पृ० ६ पं २० ।

३- परमसर तिखसर पर पवन प्रणुमवि

मणिमु राम खतगिरि अविज जिमिमुमरवि-पं १, बहक प्रथम ।

४-खतगिरि राम-दा० नायणा-पं १ कवक २ ।

५-प्रमुद विजय गिरि पुनजायव कुन मङ्गु

जराभिष नमनगु नहनागु विदगु ।

डा० भायाणी ने उसे २२ पक्तियाँ में विभक्त किया है। रोला छंद भी अपभ्रंश परम्परा का प्रमुख छंद है। चतुर्थ कडवक की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पूरा कडवक ही सोरठा छंद में लिखा गया है। इस छंद में वर्णित "ए" वर्ण रचना को भीतात्मक बनाता है और इसे हटा लेने पर सोरठा की भाँपाएँ बराबर ठीक बैठती हैं। कवि का वर्णन चातुर्थ इसी छंद में है।^१

प्रस्तुत राम की रचना का उद्देश्य सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रकाश में जीवन में निर्वेद का महत्व तोषों और चरित नायकों के धादसों की सहायता से स्पष्ट करना है। जीवन निर्माण में यह रास एक आध्यात्मिक सन्नेह देता है। इस दृष्टि से तत्कालीन जैन राजाओं की साहित्यिक प्रवृत्ति और धार्मिक प्रवृत्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत रास की भाषा में सरलता, प्राज्वलता और जयदेव की दाणी की भाँति प्रसाद और मधुरता है। शब्दों की विकासात्मक प्रवृत्ति तथा भाषा में तद्भव व तत्सम शब्दों की मेलन स्पष्ट है। प्रयुक्त राजस्थानी और गुजराती के शब्दों में भी नवीनता का प्रयोग है। सासु परब, तूखड़, सामिण, उजिल, भवर पाज, दीसड़, गिरनार, भाय, धरिउ, पालाट, भठाई, सीह दीठु भगुण आदि। कुछ शब्दों का विशेष विश्लेषण देखिए —

- (१) सुमय या सुपम—सुसम से सूझ हो गया।
- (२) सुलभ—सुखमय—सुहृद—सुहृद—सूझ।
- (३) रेवतगिरि प्रयाग पंथी विभक्ति का संगत है। "ए" का रूप सस्कृति 'गिरे' से मेल खाता है। गिरि का गिरे बना दिया है। ऐसा भी समभव है कि गिरे सप्तमी विभक्ति का हो।
- (४) भविउ, गलियु नमभीर भन्वहलइ, गलइ, रासु कप्पिउ जइजइकार, भावन्, धरिउ, बलतउ, ठामि ठामि आदि स्पष्ट अपभ्रंश शब्द हैं जिनमें अधिकांश रूप सप्तमी के हैं।
- (५) कडवक शब्द की उत्पत्ति देखिए —
 - (क) कटप्र > कडप्प > कडवक या
 - (ख) कटप्र > कडप्प > कडाप > कलाप या
 - (ग) कटप्र > कडप्प > कटप > कडव > कटव > कडवक अतः कटप्र शब्द ही इसका उद्भव लगता है। हेमचन्द्र ने लिखा है "कटप्पा कटप्र

“अत्र मवाग्रप्यस्ति मच्च ववीना नाति प्रगिद्ध इति निबद्धम् ।” वे
कटप्र गच्छ को ममृत वा वतान हैं । ^१

- (६) रती गच्छ का व्युत्पत्ति सम्भवत — गच्छि गच्छ म हृत् हात् । गच्छि +
प्रत्यय — गच्छि ल = ददति । ददति > दत्त > रती ।
- (७) तु गच्छ सर्वनाम तु के अर्थ म प्रयुक्त हुआ है ।
- (८) तितय माहि, पचय माहि प्रयाग मत्तभी व हैं । माहि गद मध्ये
मग्ग-मामि-माधि-माहि सम्भव हा मचना है । धरि, जामि आदि
रूप कृताया वे हैं ।
- (९) प्रथम गच्छ प्रय घातु म गीर अम प्रत्यय लाकर बना है । प्रय व हन
प्रत्यय लगन म पनामिल तथा ग्राह्यत पञ्च-गुण-गुण-गुण-गुण आदि रूप
बनत हैं । हमचन्द्र न य वा द म परिवर्तित हा जान का ही विधान
निया है । ^२
- (१०) मग्गविषय भराविषय आदि दत्त कृत कृत गत हैं । ठामु का मूल रूप
स्या घातु म है । ^३

निर्गणत खलतिरि रास का काव्य का हलि म अग्रज मन्त्र है ।
बाम्बव म सस्वृत माहि + का हलि म भा हम स्व काव्य म डक्क वविता स्व
मक्त हैं । स्वम दुद्ध गच्छ समहति और दुद्ध अथ समहति वाता करिता है ।
यह विद्वान् लम्बक आ गाम्भी का विचार ^४ । ५ का प्रकार धार्मिक स्थान,
धार्मिक विषय तथा आध्यात्मिक गच्छ गच्छ पृथ्वा रचना हात हा भा स्वम गाम्भीर्य
कता और निम्बरा वाज्यामवता का मय है । अर्थ स्वम प्ररग्ना व स्व म है ।

१-गच्छी नाम मात्रा गच्छा १० श्री हमचन्द्र ।

२-दत्ततिरि रास पृ० १-८ ।

३-वर्ग ।

४-मातृगुण वविता आ वाम्बवाम वाज्याम गाम्भी, पृ० १०१ ।

, नेमिनाथ रास '

१३वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण रास नेमिनाथ रास है। इसके रचयिता श्री सुमतिगणि हैं। यह रास १३वीं शताब्दी की उत्तरार्द्ध का है। इसका रचना काल स० १२७० है। विजयसेन सूरि के देवतगिरि रास के पहले ही इस रास की रचना हुई होगी। क्योंकि रासकर्ता सुमतिगणि की अन्य रचनाओं की तुलना में यही कृति पहले रची हुई है ऐसा प्रतीत होता है। कवि सुमतिगणि का निवासस्थान राजस्थान ही था। वे एक प्रतिभाशाली कवि और दशस्वी टीकाकार थे।

प्रस्तुत रास जैसलमेर की स० १६३७ की स्वाध्याय पुस्तक में उपलब्ध हुआ। एक और प्रति जमलमेर के दुर्ग स्थित बड़े भण्डार में है। इन दोनों के आधार पर ही प्रति का पाठ सम्पादन हुआ है। सुमतिगणि जैसे कवि की और भी रचनाएँ होगी जो प्रचार की कमी से खुप्त हो गई प्रताप्त होती है।

नेमिनाथ पर रचे काव्या की परम्परा अपभ्रंश से ही मिलती है। अपभ्रंशोत्तर रचनाओं में तो नेमिनाथ जैसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व पर तो सैकड़ों की संख्या में ग्रन्थ रचे गये हैं। कवि ने नेमिनाथ रास में नेमिनाथ के चरित पर प्रकाश डाला है रचना छोटी है कुल मिलाकर ५८ छन्द हैं पर कवि की काव्य प्रतिभा की परीक्षा इसी में हो जाती है।

नेमिनाथ के स्वातंत्र्य पर आगे विस्तार में प्रकाश डाला जायगा यह कृति का एक मूल्यवान् ही प्रस्तुत किया जा रहा है। नेमिकुमार जैनियों के २३वें तीर्थंकर थे। उनका राजकुमार होना तथा क्षत्रिपाली वीर, पराक्रमी होकर भी संसार से वीतरागी हो जाना, तथा विवाह के अवसर पर अभिन्न यौवना राजमती को छोड़कर जन देना बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। राजमती भी उसी के चरणों में जाकर दीक्षाग्रहण कर लेती है और अंत में दोनों महानिर्वाण की प्राप्ति करते हैं। बरातियों के लिए जीवित पशुओं का वध किया जाकर भोग

बनाना आदि बाता न उनम बैराग्य उत्पन्न कर दिया । नमिनाथ श्रीकृष्ण
बनराम के भाई थे तथा पात्र कुन म भव से सब गतिमान थे ।

राम के अध्ययन म जान होना है कि रचना जन भाषा ॥ निगी हुई
है जो वर्णनात्मक और भेष तत्त्व प्रधान है । सम्भवतः गाने और खनन के
लिए ही रचा गया है ।

प्रारम्भ में भगवाचरण कर कवि न नमिकुमार (अरिष्टनेमि) के नाम का
व उनके पिता समुद्रावितथ व सीरीपुर की महारानी निवासी की वगण किया है ।

वाचनान में ही नेमिकुमार कृपापात्र पराक्रमी थे । खलन-खेत ही
एक दिन उनका कृष्ण की आयुध गाना म जाकर उनके धनुष की टकार की
तथा लीला मात्र म ही कृष्ण का गन्ध बजा दिया । कृष्ण अत्यन्त भयभीत
हुए । जितकर नेमिनाथ का ज्ञान रूप और आयुधगाना का पराक्रम वर्णन
दृश्य है —

सो माहा निगाणु निगेमणु स्वर्ग जिय भयण सुणीमरु
मुर गिरि करि चपड तम्ब बढन नेमि मुहमुहि तम्ब ॥२१॥
तहि कमति जाय व कुन कानिहि हमहि रमहि कानि चडि छाडिनि
मगपुरी इदुव भव कान गयड न जागइ कित्तिड कातू
नमि कुमरु अन निगहि रमतड गन्हरि घाग्ह मान भमतड
मछु नेवि लानइ बाण मखमिह तिहुयण खामइ ॥२४॥

तमणि पमगई कहा किण वायन मव
भगिठ जलेण नरिण निग वतुन भमनु
ता भयमाड भगइ हरि रामन, मान ननि वामु न गव
लेमइ नेमिकुमरु तह रन्तु हा हा हियन धमक्कर भज्जु १

विविध रूपा म कवि न नमिनाथ का गाय के प्रति निर्भीक न वगण
किया है । विषय मुखा के प्रति व भग्न उन्मीलन रत्न ।

राम भगइ मन करइ विमान रतुन लमइ तु कुवि भाड
गुह सुमान विरत्तु जिणेनरु भुनव मुक्क वरितड परममरु
रतु मुक्क करि मुह उवळर धारनरइ मा निवण निचडर
पुणवि मागइ हरि रामह भग्न वधव गय न पुवि भमगइ
भनुन परिक्रमु नमिकुमार लेमइ रतु न निग्न महारु

राम जणदणु पडिवाहेइ, मुग्गह नारण रज्जु कु लेइ
मुदुडु बुद्धिवसु बुवि हाइ मामिउ मुनहि विम्ब विमु भवम्इ (२७-३४)

विविध दृष्टान्ता स कवि ने भाषा की सत्ता व भावपूर्ण बना दिया है। प्रागे रचानार न नमिनाथ के विवाह पर प्रकाश डाला है। उपमन की सटकी राजुन का रोती छोड़ नमिनाथ बीतरागी बन गये। विरहिणा राजुन चिरविरहिणी बन गई। बाडे म बधे पगुमा का बरुण कर्त्तन नमिनाथ से नही सहा गया जा बरातिया क भाग्य के लिए बध किये जाने जाने के भीर इस प्रकार द्वार तोरण पर भाये नमिनाथ न मुन्ही राजुन व सारे स्वप्ना को प्रभावहान कर दिया। रूपवती राजुन के सौन्दर्य वर्णन म कवि का कौशल दानीय है। अनवरण की छत्रा न स्थल का सौन्दर्य भीर बढ़ा दिया है —

“हू जाणउ भट भट्टइ वाली राइमई बहु गुणिहि विसानी
उगमण राय गहि जाइय, रुव सुग्ग राणि विक्काहय
जसु पगु केम बनावु सुनतउ, नाउ विरण जालुअ फुरतउ
दीसइ गीहर नयण सहती न निउप्पल सील हसति
वयणु वमसु न छण ससि मळणु, दिवगवि भुलइ धूभा लडणु
मणधरु धणहरु मणु मोहेइ बचन बत्तसह सीह न दई
सरन बाहुलय बत विमयय, न चपय लय गयवणि लज्जिउ
जसु सरुउ पतिण उतासिय नरइ गइयस कल्प विनासिय

इय विण विणु करिह सा धान बराविय

नमिबुमारह दमि (उपत्तिय) जायव मेसाविय (४१-४५)

सौन्दर्य वर्णन पर्याप्त सुधड है तथा सौंदर्य क उपमाना मे भी मौलि बना है। रूपवती राजमती की जावन भर की साधना व्यर्थ हो गई, राजमती का सारा शृ गार कर्त्तन म तिरोहित हो गया। उसकी वाति रदन में बदल गई पर उसने धैर्य नही छाड़ा। ऐसे दिग्ग पुरण मुक्त मूर्ख के बल्लभ कैसे हो सकते हैं ? बरुण राम मे डूबी हुई राजमती की माणी बडी दयनीय स्थिति की यातक है। अन्त मे राजमती स्वयं नमिनाथ के पास गिरनार जाकर दीक्षित हो, कैवल्य पद को प्राप्त करती है —

“स निमुणेविणु राय भई, चितइ धिगुधिगु एहु ससार
निड्डय जाणिउ हव मह न परणइ नेमिबुमारु
जा विहुयण रुपिण करि छडियउ, जं वन्ततु कुरुविवइ लडिउ
सुर रमणी हवि जा विर दुल्लहु, सा विम्ब हुई मह मुदिय वल्लहु
पुणरवि चितइ राइमइ जहहउ नेमि बुमारिण मुक्कि

गय सुकुमाल रास ^१

उसलमर के बड़े मण्डार में स० १४०० में लिखि एक प्रति गय सुकुमाल रास की उपलब्ध हानी है। इस प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में विद्यमान है। हमें रचयिता मुनिनाचन्द्र सूरि के विषय श्री दत्तहर्ष हैं। दत्तहर्ष का समय निर्धारित नहीं है, पर क्याकि जगचन्द्र सूरि का समय स १३०० है अतः बहुत सम्भव है कि इनका काल भी सन्धिमान या १३१५ से स १३२५ के बीच में कही अनुमानित किया जा सकता है।

कृति की भाषा का दखन पर यह स्पष्ट होता है कि यह अपभ्रंश भाषा का अधिकता लिपि है। इसका पूर्व वर्णित राम कृतिया में आन जाने अपभ्रंश आदि के शब्दों के अनुमान में इस कृति में अपभ्रंश के भाषा अधिक हैं। फिर भी लाकमाना की कृति हान से इसका महत्व स्पष्ट है।

प्रस्तुत रास मुनि गज सुकुमाल पर लिखा एक चरित काव्य है। गज सुकुमार कृष्ण के एक सहान्तर अनुज थे। देवकी का उसके पहने पैरा हुए कृष्ण सहित ७ पुत्रों का सुख न मिल सकन पर उसने कृष्ण की मातृ सुख व गिशु-श्रीढा आनन्द का अभाव बताया। कारण नगर में नेमिनाथ के साथ ६ साधु एक ही रूप के थे और वे दा दो का टोली बना कर देवकी के यहां आहार ग्रहण करने की आये। देवकी का मातृत्व उमड़ पड़ा। नेमिनाथ से पूछने पर उसे उन्हीं बताया कि ये दसा मुनि उसी के पुत्र हैं जो कस द्वारा मार डाने पर बच गये थे। देवकी का अब बानव की इच्छा हुई। कृष्ण ने तपस्या करके पता लगाया। देवता न बताया कि बानव तो इसके और हा सकता है पर यह उसका बाल्य-काल का मुख ही देख सकेगा। युवा होने से पूर्व ही वह दीक्षा ले लेगा। नियत समय पर बानव ही यथा क्याकि वह पत्र के अच्छे की भाँति सुकुमार व सुकामल था अतः उमका नाम गजसुकुमाल रख दिया गया। मा देवकी न उम खूब साठ-प्यार से पाल कर अपनी मातृ-सुख व वात्सल्य की

१-राजस्थान भारती वर्ष ३ अङ्क २, पृ० ८७ पर गयसुकुमाल रास-
 ॥ अंगरचन्द्र नाट्टा का लेख।

मनुष्य-आमना का पूर्ति का। एवं त्रि नमिनाय पुनः द्वारा प्रायः यन्त्रा
रमीरी बाणी मुनार गयगुमान का धराय न गया। भा व यून मना
करन पर भा हरी बानन न माना। नमिनाय न श्रीमा न ना। गहन नी त्रि
उगन उगन यन्त्र की प्राप्ति का उपाय पूजा। नमिनाय न श्रीमा न ना रहित
हार त्रि ॥ धारण करना बताया। धारण मुकुमान समान म जाकर
ध्यानरय हा गया। इधर उभा का पाणिग्रहण करत व त्रि त्रि गु नर महकी
व श्राद्ध विमा का जब जान हुआ कि इमा ता नभा मर मरा गु दरा
नभा का जीवन हा मित्र निया है ता उमन बिना व गर्म-गर्म धमार लेकर
उमन मिर पर जान मिय। धारण पूरा जन गरा पर मर ता नभा मान हागया
या त्रि में ता भाभा न जन ता कवन गरा रता है। इग तर नभाधना व माय
प्राप्ति व त्रि बावक न जावन उत्तम कर निया। पारी श्राद्ध भा कृष्ण का
नयन पाव करन न मृत्तु का प्राप्ति हुआ। यही इग गम का कथा गार है।

कथा म यन्त्राभा का वनिय और कथा गूत्र म कथा-मरता जान न
पावका का उत्साह नर रग बना रता है। जन गूत्रा म भा गज मुकुमान का
जावन चरित मित्रता है। वन्तु पूरा राग वनि न गजगुमान का गायना,
तितित्ता व कनय प्राप्ति म प्रीमा व चरित वगुन व न्य म त्रिया है।

भाषा का इति न हम राम का डॉ० हरिचं काङ्क न अपभ्रं न
काया म त्रिया है परन्तु उनकी यह भाषना समकन टाक नग है। इति का
भाषा अपभ्रं व वृक्षता न्या तथा तत्त्वज्ञान नभा भाषा त गवध रचना
है। भाषा का दलन यह ता बला जा मरता है कि इग इति का रचना वान
सम्भवत म० १५०० व हा भाष-भाष माना जा सकता है पर इति का अपभ्रं न
तत्त्वज्ञान भाषा परिवर्तन वान का उपक्षा करना है। वास्तव म यह रचना
संक्षिप्तज्ञान रचना है। कवि न यह रचना श्री दक्ष गूरि व कहन म हा
मिनी है —

‘मिरि दक्षि’ मूरि वयण, ममि उवममि मयिउ
मयमुकुमान चरित मिरि न्यागि रदय—

भाषे कवि व वाक्यमय स्थिता, तथा भाषा का न्य नयन व त्रि कृष्ण
रचना व उपाहरण मिय जा रद है —

कृष्ण व राज्य का वर्णन, नभा का आनार नु प्राय हन गमान रुपा
६ मुनिया की नयनर वाक्य का उगन इन स्थिता का नयि —

“नयरिहि रज्जु करे तहि कट्ट मरिदु
नररद मंति गणहा त्रि गुरगणि ईदु

सख चक्क गय पहरण धारा
 कंस नराहिव कय महारा
 जिण चाण उरि मल्लु वियरिउ
 जरासिधु बलवतउ धाडिउ
 तामु जणउ वमुदेवा वर रुविहाणू
 महियलि पयउ पयावा रिउ भइ तम माणू
 जणणिहि देवइ गुण संपुत्रिय
 तावइ मुरलायह उत्तित्रिय
 सा निम मदिह भच्छइ जाम्ब
 तित्ति जरि जुयल मुणि भाइय ताम्ब
 सिरि वच्छकिय वच्छे कवि विस्वाया
 चितइ धनिय नारो जमु जाया (५-६) रा० भा० वय ३ भद्र २

छहा मुनिया को एक रूप देखकर देवकी को शका हुई कि मुनि तीन बार कैसे आहार ग्रहण करने भाये और इसका परिहार नैमिनाथ ही करते है और देवकी के मन मे बाल सुल का भभाव विवाद भर देता है —

‘मुनिवर सु दर लखण सहिया, महमुय कसि कयचिह गहिया
 वारयइ मुणि विभइ इत्ययू कह बालवलि मुणि भायउ इत्यू
 पूछइ देवइ ता पभणहि मुनिवर ताम्बा (भम्ह) सम हव सहोन्
 सुलस सरविय कुमिल धरिया कुवण विसय विमाइ नडिया
 सुमरिउ जिणवर नैमिकुमारु, तसु पय मूलि लयउ वय भाव

जाइवि पुच्छइ नैमिकुमारु, संसउ ताडइ तिहूयण सारु
 पुंवि छच्च रयण तत हरिया, विणि कारणि तुह सुय भवहरिया
 कस वि होइ निमिनु वर वरह करेई सुलस सराविय ताम्बा सुरु भल्लइ
 देवइ मुणिवर वंदइ जाम्ब हरिस विसाउ धरइ मणि ताम्ब
 सुलस सधत्रिय भसु धारित्हिय हउ पुण बात विउइहि दहिय
 विज्जवइ मलहावइ जाम्ब देवइ मन दुम्पण हुइ ताम्ब

कवि ने गयसुकुमार का श्रमगान मे जाकर कठिन तित्तिना का वर्णन देखिए —

“माह लहानिगि चूरण गज्जू, भवतस्वर उम्पलण गज्जू
 सुमरिवि जिणवरु नैमिकुमारु, गय सुकुमारु सेइ वयमारु
 ठिउ वा उत्तिणि ताम्ब जाय वि मसाणा,

बारह नारा बाहिर गगनाले

ममि मु नि वर कुविउ तमद तमिनि जव पयानिउ निवद
धम पुव विनविउ निगिउ जेग धमिउ तनु वमु वउ मनुवा

बारह नारा म न वर जान का उगार म न पाना वा भावि कोमन
मनुकुमान मोमिन काजल व विवा म म उगार म नार दान म न जन
का पनी मम हा म न वर निवाउ का मनु हुन । नारा का मनु साधना
का नि न वरा हा मनु म वगिउ का है —

तामद मनुकुमान निरि पावि वर म नार मवर धमारा मिरि पूरामेई
उमद मनिवम मनुकुमान मगिउउ निगिउ मुगिनि विगाडू
विने मर मनु व मनुगिनि मनु निव मनु उमद न मनु मनु
मवराम मनु निरि पावि निगिउ मगिनि वर मनु मनु विविरविनु
धमि मनुगिनि मनुकुमान निव उमद मनु जाडू
मनु निव मनुगिनि मनु पाविउ मनु मनु मनु मनु

राज के म उ म वरि न राज निगन का मनु मनु विगा है । कवि
न म वरि मनु राज मनुकुमान का निगि म प्रधान साधना की मनु
का म म विगा है । वा राज मनु मनु वरन धोर धान मनु हुने क निव
हा विगा मनु है —

एह राज मनुगिनि मनु वर मनु मनु मनु मनु
एह राज मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु

मनुगिनि मनुगिनि राजा में भाग का मनु मनु मनु मनु विगा
मनुगिनि का हा मनुगिनि है । मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि
मनुगिनि का मनुगिनि का मनुगिनि मनुगिनि है । मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि
मनुगिनि का मनुगिनि मनुगिनि है ।

मनुगिनि का मनु राज निगिनि है कवि न मनुकुमान व वरि मनुगिनि
मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि है । मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि
मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि
मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि
मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि मनुगिनि

कच्छूली रास

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक रचना कच्छूली रास मिलती है। रचना का लेखक अज्ञात है। रचना काय रचनाकार और राग के रचना स्थान का सम्भाव्य क्या है। राम का कुछ अन्तिम पंक्तियाँ ग का जा सकती हैं। श्री माहानान देसाई ने भी इसका रचनाकार का प्रस्तावित गूरि माना है^१ पर यह बात ठीक नहीं जैवती है। राग की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

“सात्रीसइ अवाडि मयनए मयधर सागुमा
छपणी नयर मभारि भारिठवणउ भीमि विमा
कमल सूरि निमगाडि सई हयि प्रानावृत्तिराभा
पमोउ पमासोउ श्रीवु भुणसणि भण्णा सुधुनीभा
पणि पटुतउ सुरवाए गणहू गमाजन विमलो
तामु सोमु चिरवाउ प्रनपउ प्रजातिनक सूरि
जिए सासणि महधु मुह गुरु भवीयई बल्यतरो
ता जागे जयवत उमाहा जा जगि ऊगइ सहसकरो
तेर तिसठइ रासु कोरिटावडि निम्पिउ
जिए हरि नि सुगत मण वंछिय सवि पूरवउ’

इस सध्य से प्रजातिनक गूरि का नाम रास का रचना सन् ११६१ तथा रचना स्थान कोरिठवड स्पष्ट होता है। देसाई जी की बात का परिहार इस बात से हो जाता है कि यदि कृति का वर्तमान स्वयं प्रजातिनक होता तो वह स्वयं अपने लिए प्रजासात्मक वर्णन कैसे कर सकता था। श्री क० बा० शास्त्री का मत है कि ऐसा लगता है कि किसी अज्ञान लेखक ने यह राम रचा होगा।^२ पर शास्त्री जी का आधार भी इस दृष्टि से किमा निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचता। अस्तु रचना का स्थान की उसका अरित नायक तथा ऐतिहासिक

१-प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह श्री विमलानन्द दत्तान, पृ० ६२६।

२-जैन गुर्जर नविया, भाग १ पृ० ८।

३-आपणा कवियों श्री क० बा० शास्त्री पृ० २०७।

वानावरण पूरा उल्लास एवं प्रणामात्मक वर्णना को देखकर यह कहा जा सकता है कि या तो इसका रचना विधा मघाधिप द्वारा हुई या प्रजातिनक मूरि क ही विधा अतरंग गिष्य द्वारा हुई होगा ।

कच्छूना राम एक ऐतिहासिक गाति रचना है जिसमें आबू का प्रचले 'वर जन मन्त्रि चत्ताना कारिखड भाणि जैन तीर्थों का वर्णन है । साथ ही आबू के अनन्तकुंड व परमारों का वर्णन भी कवि ने किया है । राम में कोई कथा विण्य नहीं । कच्छूना ग्राम में उत्पन्न श्री उन्मयसिंह मूरि का पराक्रम और गौरव वर्णन है । धार्मिक दृष्टि से कच्छूनी ग्राम का महत्व स्पष्ट किया गया है । साथ ही कवि ने मंत्र वर्णन किया है जिसमें प्रजातिनक मूरि प्रमुख पात्र है । उन्मयसिंह ने मघ विजाला मघ चढ़ावली गया वही साजण के पुत्र कमल मूरि की गाथा हुई और तब कारिखड स्थान पर प्रजातिनक के विभी गिष्य विण्य ने राम रचना का होगा ।

कथा की दृष्टि में इस कृति का कोई विण्य महत्व नहीं कथा में कोई नवीनता भी नहीं मिलती पर भाषा गैरी और छन्द की दृष्टि से रचना महत्वपूर्ण है । कवि ने मगनावरण से ही प्रारम्भ किया है । आचार दिचार और अनियमित जीवन धारण करने वाले कवियों के लिए कुछ अच्छे सितारन कवि ने दिए हैं —

‘ केन भुवति न जिणु भगइ नारिहि सिद्धि बजणि
उन्मयमूरि पमणउ पलीउ नय तन राय प्रयाणि
कवन मुक्ति म भ्राति कर नारि जति ध्रुव सिद्धि
तिस मय सिद्धा बजि जाय साइ आहार विमुद्धि ’

छन्द की दृष्टि में इस कृति में द्वान्द्व मिनता है । या दोहा चौपाई भाणि छन्द ता मिनत ही है पर भूषणा छन्द विण्य गिष्य के साथ वर्णित हुआ है । यह छन्द २० मात्राओं के चरणों का मिनता है । इसमें दो कड़ियाँ होती हैं जिसमें एक ग्राह्य का व दूसरी काई द्विपदा होता है । छन्द के क्षेत्र में इसका मौलिक योग निम्न पढ़ना है । वाच वाच में जा बार बार पदा का आवृत्तन होता है वह छन्द का कर्नामक बनाता है । इसमें इस राम में गेयता जय प्रवृत्ति स्पष्ट होता है । एक उदाहरण लक्षण —

मंत्रवर नउ हिव रहिव ज शुभ सिद्धिहि चढा
विमहन् आरनु परिवर्ति ज सपाउ ए सपाउ नु पयटा

तउ गुरि मुहता मिलिह करि होइ गरहु पणेण
 धाईउ लीधउ चउ पडे गिलीउ ए गिनीउ ए गिनीउ छान भुयंगो
 पाउ पिल्लिवि समुहोय डर डरनु चीउ राधो
 जावणहार सवि बल मलीय हीयडई ॥ हीयडई ए हीयडई पडोउ दाधो

तउ गुरि मूकीउ रय हरणु कीधउ सीहु करातो
 बाधह जता हूरि भीउ हरिसीउ ए हरिसीउ ॥ हरिसीउ नयह सवालो १

भूलणा छंद इससे पूर्व सोम मूर्ति रचित जिनेश्वर मूरि विवाह वर्णन राम में भी मिलता है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। एक और छंद गो म० १२४१ के भरतेश्वर बाहुबली में मिलता है इसमें वर्णित हुआ है। इस छन्द में १६+१६+१३ मात्राओं का प्रयोग है जिसका निर्वाह पहले शालिग्राम मूरि ने किया है। २ सम्भवत इस छंद का वर्णन कवि ने परम्परा निर्वाह के लिए ही किया हो। छन्द है —

सिरि भईसर मूरिहि बसो, बीजो साह बनिसु रासा, धमीय रोहु निवारीउ
 नप्रकु ड संभम परमार, राहु करइ तहि छे सखिवार आबू गिरिवर तहि पवरो
 जणमण जयणह कम्पण मूनी बछ्छनी किरि सख विलासी सर प्रवववि मणोहरीय ३

श्री लालबहादुर गांधी ने इस छन्द को रास छंद की संज्ञा दी है जो सम्भवत रास रचनाओं के लिए एक छंद विशेष हो गया था। ४ श्री के० पा० शास्त्री ने इस छन्द को मिथ छंद कहा है तथा इसमें १६+१६+१३+भीर १६+१६+१३ की द्विपदिया बताई है। ५ इन छन्दों के अतिरिक्त दोहा चौपाई छंद भी मिलते हैं। राम महात्सव के लिए लिखा गया है अतः गेयता उममें विद्यमान है।

भाषा के सम्बन्ध में रचना का महत्व साधारण है। लाल भाषा के प्रवाह में कवि ने 'बूब' जैसे शब्द का प्रयोग किया है—

“हुइ कमलीउ कालमुहो लोविहि ये लोविहि ये ताविहि वाइय बूब ६

१-प्राचीन गु० का० स०, पृ० ६१।

२-भरतेश्वर-बाहुबली रास, श्री ला० भ० गांधी पृ० २।

३-प्राचीन गु० का० स०, श्री दत्तात्रेय पृ० ५६।

४-भरतेश्वर-बाहुबली रास, पृ० २।

५-भाषणा कवियों, श्री के० का० शास्त्री, पृ० १५६-१६०।

६-प्रा० गु० का० सं०, श्री दत्तात्रेय, पृ० ६१।

राजस्थानी में बीरचान म आज भी बृहत् गज मिलता है जो सम्भवतः
गौर में बीरचान के निग प्रयुक्त होना है। यह भी सम्भव है कि यह गज
विन्गी हो।

नये गज म—कमठ, राय बरमान, पमगल, पामजिण, मनलकु ड
बिन्नामणि, हिमगिरि घवनड, आविन उपवाग, भूरीड, बीजी, मुक्ति, धाति,
चिरान बिमल आदि इनक गज मिलन हैं। अत इन गज ग भाषा में
नवीन गज क ग्रहण की गति स्पष्ट होनी है।

१४वीं शताब्दी क ग्ही काव्या की परम्परा म इसी प्रकार की कथा
वस्तु से दा विस्तृत राम काव्य मिलन हैं। इन काव्या में भी गद्य वर्णन है
तथा गानवार मधुपतिया की गानगीसता का वर्णन है। इन दोनों कृतियों का
हृन्नात्मक अध्ययन मध्ये में किया जाया। काव्य प्रवा भाषा और छन्द की
दृष्टि म ये गाना राम महत्वपूर्ण प्रदप हैं।

१—पयड राम १-म० १३६३—मंडनिक

२—अमरा राम २-म० १३७१—धबधेव

ये गाना कृतिया प्रकाशित हैं तथा इनमें पयड और अमरसिंह की
दानवारना पराक्रम और गी, तार्योद्वार तथा मय का वर्णन है। दोनों रामा
में म पयड का मयक और समय अनिश्चितता है पर प्राप्त बहिरंग प्रमाणों के
आधार पर इसे स० १३६३ की रचना मानी जा सकती है। पयड राम की
पूर्णता पर श्री क० का० गाल्त्री ने गका प्रकट की है ^३ यों रचना की पुष्टिका
'इति श्री प्राक्वाटवग मौक्ति काव्य पयड राम समाप्त' का देखने पर यह
स्पष्ट हो जाता है कि रचना अपूर्ण नही है। रचना का लग्य भी पूरा हो गया
है। अत रचना का अपूर्ण कहना अप्रामाण्य ही लगता है। वस्तुतः गाल्त्री जी
का अनुमान बहुत ठीक नहीं है। कवि मंडनिक पर भी मत बेमिन्न है पर
मंडनिक का प्रमाण राम म मिल जाता है।

कृति का ऐतिहासिक दृष्टि में भी बड़ा महत्व है। कई ऐतिहासिक
पुण्या यथा कर्णदहन खगार आदि का वर्णन भी मिलता है। श्री गाल्त्री
इसमें कर्ता क विषय में लिखन हैं कि या ता गम काव्य का रचयिता ही खगार
है या वह नहीं है, ता मंडनिक का पिता खगार हागा और वह बृद्ध होगा

१—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, श्री दत्तान एण्डिक्स १० पृ० २१।

२—वही पृ० २७।

३—भाषणा कविता, श्री क० का० गाल्त्री, पृ० १६७।

प्रत मङ्गलिक हो इसका कर्त्ता रहा होगा। खंभार की मृत्यु का प्रमाण तो वि० सं० १३१६ में ही मिलता है।^१

जो भी हा, वृत्ति के रचनाकार और रचना काल दोनों की स्थिति या प्रस्पष्ट है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर मङ्गलिक का ही इसका रचनाकार कहा जा सकता है व इसका काल सं० १३६० माना जा सकता है।

पेयङ्ग वस्तुपान प्रार तेजपाल की भाति यदास्वी या। समरसिंह का यग भी पेयङ्ग से कम नहीं था। पेयङ्ग और समर दोनों दानवीर पुरुषों ने सध निकाला था। पेयङ्ग रास में कई स्थानों पर क्रीडा, तान, छुट्टा रास, नृत्य, गीत, गान आदि के पन् मिलते हैं। कुछ काव्यात्मक सरस स्थल दृष्ट्य है —

‘त्वानई बानाय नयणि विसालीय न्तितीय तासी रगि फिरंती हरिस भरे तहि पैला नाचइ पल बहुयत बेला वाला मोन लट्ठइ रसि रमई’^२

कामिणी धामिणि धवल दयती गायती गुण जिणवरह शक्ति प्रमाटु जात्र समाहुड बरीयल कनि गुणतीह य ते चउरा रुढा तउवा ताढी, नवा नवेरा दसइ गेट्ठण गण सपण त पण्णा पण्णेरा सम विसमेरा सखि न दीसई भसक्ति पुण—

ययन की सुगठितता, सरलता तथा गीतमयता के साथ-साथ कवि ने रास क्रीडा का महत्व स्पष्ट किया है —

‘रास रमेवउ जिन भुवणि ताल मेव ठवियाउ
संघ तलापन रोपिउ ए सभागिरि विमगिरि वेधि’

अनेक प्रान्ताधिक सूक्तियाँ भी रास में मिल जाती हैं —

- (१) लाछिनणउ जड गरव करेइ लीजइ राउन छनह धरेई
- (२) मणूय जनम हव सफन करोजइ जिविय योवन लाहुड लीजर
- (३) एक चित सवि ममाण जाण
- (४) जिम बंभरा कस बटटीय पामिउ बहुगुण रेह
- (५) धण कण रयण भठार ते सवि अजगिय भसार

साथ ही नारिया के नृत्य कामिनियों के आन्हाकारी हाम तथा रास क्रीडा के साथ-साथ गिरिनार और सुवर्ण रेखा नग के काव्यात्मक वर्णन प्रकट हैं।^३

१-गुजरात-राजस्थान, पृ० ३०८।

२-प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह, पृ० २६ एडिडिस्स १०।

३-वही पृ०, २७ छ० ४६।

इना प्रकार श्री सम्बन्ध गूरि कृत समरा राम के काव्यात्मक रूप भी उल्लेखनीय है । राम रचना का उद्देश्य, माने, लीला करने और नृत्य हेतु पठन बताया है ॥—'एह रामु जो पढ़इ सुख नाबिउ त्रिग हरि देख

धरनि मुगुन सो बयसउ छ तीरय छ तीरय ॥ तीरय जान पसु मेई

समरसिंह ने मुगममान गुलगाँव की प्रशंसा कर संघ निजाना । बागाह गुलगाँव ने संघ की बड़ी सहायता की । समरसिंह ने तीन साप्ताहिक समय में साधुसंग संघ का उद्धार कर आश्रितों की प्रतिभा स्थापित की । और जूनापुर प्रभाव पड़ाने आदि अनेक ऐतिहासिक स्थानों का यात्रा कर समरसिंह पाएँ सो पाएँ । राम कर्ता ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध का राम में उल्लेख किया है । कवि ने पाणगाह, गुलगाँव नाम अनेकाना और मसिह महिम्न मसिह आदि ऐतिहासिक स्थानों ने राम का सम्बन्ध स्पष्ट किया है । राम पर किनूय अध्ययन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

रचना का कानुनपूर्ण भाषा में विभक्त है । मुनि जिनविजय जी ने इतनी संख्या १२ ही बताई है और श्री मान ने भी इस द्वाली भाषा ही कहा है ।^१ इन भाषा का विचार व्यवहार करने पर सात होता है कि सम्बन्ध कवि ने विभाजन १०, के आधार पर किया हो क्योंकि हर भाषा में १० अव्यय है । भाषा समाप्त होने ही १० परिवर्तन हो जाता है ॥ म हृष्टि में पाठ का अध्ययन करने पर सात होता है । किन्तु १२ भाषा का स्थान पर १३ भाषा में विभक्त होना चाहिए । क्योंकि द्वाली भाषा की ६ अव्ययों एक ही १० में चलती है जिसको के० का० द्वाली ने विपरीत माना १० कहा है ।^२ पर उससे १० १० बन जाता है १० भाषा दोहा में रखी गई है जिसमें "ए स्वर के साथ पंक्तों का तीन बार आवर्तन मिलता है । अतः इस अवधि में भाषा की १३वा भाषा कहा जा सकता है । भाषा १० "बहुवचन की भाँति कथा विभाजन का मुख्य है अतः यह सर्व परिवर्तन मुख्य १० है ।

कवि ने अनाहीन और और अना ही की प्रशंसा सात संघों तक की है कवि की वर्णन की अनेकाना दृष्टि है —

“तहि अक्षय्य भूगतिहि भुवण सनसठ पमत्तो
विचर्य विमान करिउ धावत
ममिय सरोवर सहस्रसिद्ध इहु धरणिहि कुटुबु,

किति धनु किरि अवर देसि भागद भात ठसु

पात साहि सुरताण भोवु तहि राजु बरेइ,
भलपखानु होइअह तोय घणु मानजु देई
मीरि मलिकि मानियइ समर समरघु, पभली-जइ,
पर उवयारिय भाहि तीह जसु पहिलिय दीजई

असंख्य सेना के साथ समरसिंह चलते हैं । हाथी, घोड़े, यात्री, सैनिक
फलही, और स्थान-स्थान पर उत्सव मानद सबका अनुभूतिपूर्वक वर्णन है घोड़ों
ऊँटों व सेना बलन में कवि का कौशल दर्शनीय है —

“वज्रिय सख असल, नादि नाहल बुढ दडिया
घोड़े घडइ सल्लार सार राउत सीगडिया
तउ देवालय जोयि, वेगि घाघरि छु नमनकइ
सम विसम नवि गणइ, कोइ नवि दारिउ भक्कइ

सिजवाला घर घडहडइ बाहिरि बहु वेगे
घरणि घडवकइ रज्जु उयए नवि सुभवि भागे
हय हीसइ भारसइ करह वेगि बहइ बहल
सान्धिया बाहरइ, अवक नवि देइ बुल्ल
रात्रि के दीपका का तारागणो से साम्य कितना स्पष्ट है —

“निति दीवी भलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु
पावल पाउ न पाभियए वेगि बहइ सुखासण

प्रकृति वर्णन, भाषा की सरलता कायमयता कवि की समयता
तथा अलंकारों की योजना निम्नान्वित पदा से स्पष्ट हो जाती है —

- (१) हिव पुण नवीयज बात जिणि दीहडइ दोहिलए
सतिम सग्गु न लिति साहसि मह साहसुगलए
- (२) तसु गुण बरइ उदोउ जिम अघारइ फटिक मणि
- (३) सारणि भमिय तणीय जिणी बहावी मरूमडलिहि
- (४) तसु पय कमल मरालुलउ ए वक्क सूरि मुनि राउत
ध्यान धनुष जिणि भजियउ ए भयण भल्ल भडिवाउत
- (५) धम्म धोरिय धुरि धवल दुइ छुत्तया, ॥ कुम पिजरि कामधेनु पुत्तया
इदु जिम जयरथि चडिउ सचारए, मूह वसिरि सालि यानु निहालए
- (६) रितु अवतरिउ तहि जिवसतो सुरहि कुसुम परिमल पूरतो

समरह वाजिय विजय दार, सांघु सेतु सलइ सच्छाया
वेसुय कुटय कयव निवाया—

- (७) माणिवे मातिण चउतु गुर पुरइ, रतन मइ वेहि सोवन जगारा
मगाव वृष घनु घामू पल्लव नलिहि रितुवन रतिपले तोरण माना
देखाया मित्रिय पवन मगन न्यिइ विनर गायहि जगत गुरो १
लगत मुनूतर गुरगुरा गावण पत्रोठ करई सिध गूरि गुरो

उक्त उदरारग ग कृति का भाव्य कोणन तथा भाषा म तत्काल भाषा का
समावेश स्पष्ट हो जाता है ।

भाषा में विशेषी भाषा व अनन्य भाषाएँ इसा कृति म मिलि जाते हैं —

- (१) गल्लार—घाँटे चर गल्लार सार राजत सीगदिया
- (२) घागानु—मेडिउ य तउ पानपानु
- (३) महिहारमतिर—महिर उ मतिर घाग गार से आमुपि घारणए
- (४) मीर मतिर—मीर मतिर मनियर मगरु समरथ
- (५) पातसाहि, घनगान दुनिय हव

हिंदुम, घटनाति—(१) पातगाहि गुरताण भीवु तहि राउ करेइ
अनरान हाउमटु लाव पागु मान कुपेइ
(२) मइला उ दुनिय निराम हव भागीय होइम तणाए
(३) सामिग उ निगुणि घटनामि २

छन्दों के क्षेत्र म पयल और समरा दोना रामा का बहुत ही महत्व है ।
इन दोना रामा ने भाषा और छन्दों में मौलिकता तथा वैविध्य व मूलक अनेक
प्रयोग किए हैं उनका समग्र अध्ययन इन प्रकार है —

पयल राम म छन्द का वैविध्य दृष्ट्य ३ । एक ता दोन भाषा और दूनरे
छन्दों के घटन क्रम न वाक्य प्रवाह का बनाया है । इस कृति म चारू दोना
वांश चौगई और चौपाया तो है ना, तय छन्द म तबय दूनो गुरराती कविता में
सर्व प्रथम प्रयुक्त हुए हैं । गुरराती कविता बहने का कारण यह है कि जयदेव
के गीत गाविका के पूव प्रयुक्त मवया में ता लेनी पदति था ही परंतु इन राम
में सारेया में विविधता ज्ञान का प्रयत्न है । इसमें चारू भाषा व पया में कुछ

१-समराराग प्रा० शु० वा० संग्रह, पृ० २७७ ।

२-समरा रास, पृ० २४५ ।

मात्राए अधिक दी है और कुछ मात्रा बढ़ाये हुए छन्द में त्रिभंगी छन्द को भाति यति अनुप्रास जैसी पद्धति प्रस्तुत की है । ^१

त्रिभंगी छन्द में ३२ मात्राएँ हाती है । यह छन्द सम होता है प्रादि में जगण (III) वर्जित है । १०, ८, ८, ६ पर यति और अन्त में गुरु वर्ण वा होना इसका शास्त्रीय लक्षण माने जाते हैं ।

उदाहरणार्थ—धाम्नीय निसुण्ड लोय भजिह सघतण्ड समाहण्ड भनीमण्ड
प्रसपूभ दीजइ भसिजति भवीया लहइ लाहइ धण वण्ड
पेलिसि रुनीयइ रगि रान हव नवरस नवरग नवीय परे
सुणि सामहणी सघतणी जो करई निरतर धराहि धरे

एक विशेष शब्द लक्षण इस रास में मिलता है । जिस तरह कटवक शब्द वही वही ठवण कहलाता है । कच्छुनी रास में जिस प्रकार वस्त शब्द का उल्लेख है, उसी प्रकार कवि ने इस पद्धति को लक्षण कहा है ।

ए चार वाला पद लक्षण के पश्चात् जो आता है वह सोरठा है और उसी के साथ ४२ वी कड़ी में दोहा परिलक्षित होता है पर उत्तराद्ध में उसी पक्ति में चार बार पुन आवृत्ति मिलती है । इस छन्द के चार देशी सवैया का प्रयोग है । ये चार प्रयोग अत्यन्त ही विशिष्ट हैं —

“वाय बढामण्ड अतिहि सोहामण्ड रिमह भुमणि रलीधामण्ड ए
मविजन कलस कवण भय भडिबल ए
दुवरा जलजलि देयति कुसुमजले
धुणति धीण रीण जीण उतारति
जल लरण नग्हण करति सामी सुगध जले

कपूरी पूरि पूरीय तिणि कीयति भृग नामि मडा निजग गुरु
धुण मिलठ देवाधिदेव जोठ बेलवठ सेवत्री पाडल दहुल
कुसुम परमल विपुल पूजहे ॥ वाय बढामण्ड ॥

इसके अतिरिक्त गीत गोविन्द की २७ मात्राप्राप्ती देशी सवैया पद्धति में दो छन्द मिलते हैं । इन सवैया का प्रयोग पहले गीत गोविन्द में ही मिलता है —

“राजल वत । तहि नाचिनए सहिलढीय लतागोय गिरिनारे
राजतिवर रुतिधामुण्ड सामलठ ससारो ॥ तहि नाचिनए ॥

धन परवाति मुगयमइए उन पहराय धाति प्रवीत
इअ महोत्तम आयमी तहि बयठनिवट धणवत ॥ तहि नाधिनए महि० ॥

और इसक पदनाम कवि ने राम के धन में आगे पदति में आहा का वर्णन किया है वह भी अपने ही प्रकार का है जिसकी कुछ याचना में भी एक वैचित्र्य है —

ध बिचि भास मणहार पुरी भवनाईय जाप्राय
मात्र पूजन जुनारीय बनीयउ पय नाम मुनी याय ॥
तहि ना सहल ए कना या मद गिरिनारि
मोननाय च न बर्यर देखाउ बनी जाय

दिउ पायाण विव मन रहिमठ मदनिव मणुय ॥ तहि ना० ॥

दिउ पीयाणवेगि तहि हरायाना मृगा रे मूरवा मयत मनीना मूडारे

समर राम में भी छन्द के मौलिक प्रयोग हैं। कवि ने आहा रोला द्विपत्नी सोरठा आदि छन्द में राम रचा है। छठा व ७ वा भाया में चौपाई तथा ५ कहियाँ रोला की हैं। ८ वा ९ वा में रुमना १० कहियाँ द्विपत्नी का तथा ६ कहिया का एक झुनला छन्द है जिसमें भक्त्यानुप्रास का काव्य समन्वय है जिसमें उनकी गयता स्पष्ट होती है और यह छन्द प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है। १० वा भाया में आहा और ११ वा में कवि के नय प्रयोग हैं। प्रारम्भिक कहिया में १६ १६ मात्रायात्रा का एक चरण है और फिर १३ मात्रायात्रा की एक श्रद्धावा। १२ वा १३ वा भाया में त्रिपदा नामक छन्द छन्द है। इनमें दोह के माय 'ए' का प्रयोग व आवृत्ति तीन बार मिलता है। इन प्रकार आना कृतियों छन्दों का दृष्टि में भी अद्भुत महत्वपूर्ण हैं।

डा० हरिवंश काठक ने अपने मध्य अग्रज ग. माहिन् में इन कृतियों को बहुत साहित्यिक रूप में छांट लिया है और इन रामा का अग्रज का हा कृतियों मानी है पर उनके विवेचन के आधार पर हम धारणा का परिहार हो जाता है। ऐसी कृतियों का अग्रज का कहना प्राप्त तत्त्वज्ञान नामा समारचनाया के गिल्ड, भाया ऐसी काव्य इतिहास, आगे बन्नु तथा इतिहास के तत्वा की उपाया करना है। बस्तुतः आना राम नाम में माहिन् दबना निरा है।

मयणरेहा रास ^१

हिन्दी जैन साहित्य में जैन चरित नायका की ही भाँति जैन साध्विया और आर्या नारिषा (मतिषा) पर लिखी गई अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। मयणरेहा रास जैन आर्या राजकुमारी मन्नरेखा की जीवन कथा है। प्रस्तुत रास ५ ठवणि में पूरा हुआ है। मतिषा की जीवन चरित वर्णन की परम्परा भी अब प्राकृत और अपभ्रंश काल से ही मिलती है। १३वीं से १५वीं शताब्दी में रास और चतुष्पञ्चिका का रूप में अनेक कथा काव्य मिलते हैं। पूर्वोत्तिष्ठित चम्पनवाला रास की भाँति मयणरेहा रास भी सती मन्नरेखा के सतीत्व, नारीत्व और पतिव्रत्य जीवन की भाँति और कहल कहानी है।^२ प्रस्तुत रास जिनप्रभ मूरि का परम्परा-संग्रह-पुस्तिका सं० १८२५ से प्राप्त हुई है। रचना की प्रति अमय जैन ग्रंथालय बीकानेर में सुरक्षित है।

कृति के रचनाकार का नाम वही नहीं मिलता है। रास की प्रारम्भिक पंक्ति में दस बार रयणु शब्द का प्रयोग हुआ है —

सयलह रयणह वयर रयणु जिव भूलु न जाय

तिम जिम सासणि सीलु रयणु कवि कहलु न माए

अतः बहुत सम्भव है कि यह रयणु ही रचनाकार है, पर फ़िर भी स्थिति असंदिग्ध नहीं कहा जा सकती।

१४वाँ शताब्दी के उत्तरार्ध का यह लघु-काव्य काव्य की दृष्टि से, एष भाषा प्रवाह और कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस रचना का

१-लेखिका-हिन्दी अनुाालन वर्ष ६ अङ्क १-४ पृ० ६६-१०३ पर सतियों की दस राम-गीर्णक लेख।

२-विम्बुन विनयन के लिए देखिए-महात्मना मन्नरेखा-जैन महासती मङ्गल भाग १ पृ० १ ग २१ तथा सती मन्नरेखा प्रकाशक श्री जन हितचक्र धाराक मङ्गल रत्ननाम गम्पाक श्री हुक्मोच महाराज, सन् १९५०, पृ० १-२८८।

प्रारम्भिक ग्रंथ प्रति का सम्पत्ति पत्र प्राप्त नहीं होने से उपलब्ध नहीं होता । प्रारम्भ के ५ छन्दों में मिलाव और ६३ छन्दों में ही रचना प्रारम्भ होती है ।

मयणुरेहा मुत्तानपुर के राजा मणिरथ के भाई युगबाहु की रानी थी । मणिरथ ने उसके समाधारण मोक्षार्थ पर आसक्त हो उसमें प्रेम का प्रस्ताव रखा । सती ने उसका भाग ठुकरा दिया । बसंत प्रादो के बहाने एक बार युगबाहु सम्पत्ति उपवन में गया । मणिरथ ने सोचे में कहा पट्टीच कर उसकी धारण हत्या कर दो । मयणुरेहा विषम का प्रेम करती थी । उसके पुत्र का नाम चन्द्रकुमार था । पति की हत्या के समय वह ग्रन्थस्तव था । उसी स्थिति में वह वन में निरत पड़ा । मयणुरेहा का भी साथ न था किया और वह मृत्यु का प्राप्त हुआ । पुत्र प्राप्ति हान पर मयणुरेहा मनी में स्नानार्थ गई तो एक हाथ ने उसे उद्धात किया और एक विद्याधर ने उसका रक्षा का तथा उसके साथ प्रणय का घुणित प्रस्ताव रक्खा । मयणुरेहा के सच उत्तर गिणु का एक पक्षरथ नामक राजा ले गया और वन जाने पर वहीं नमिराजा राजा हुआ । चन्द्रपति भी मुत्तानपुर का राजा बनाया गया । सती मयणुरेहा ने इधर दीक्षा लेकर विद्याधर से अग्रत नीन सतीत्व की रक्षा की और उसे वैवर्धन पान की प्राप्ति हुई । अतः में उसने पान पुत्रा १ भा अग्रनी माधवी मा मुत्रता (मयणुरेहा) से पान प्राप्ति कर शिखा ग्रहण का । इस प्रकार सती सम्पत्ति ने अग्रत नीन की रक्षा की ।

कवि को इस कण्ठ कृति की रचना में अनेक स्थानों में काव्यात्मक बलन करने का अवसर मिला है । रचना में अनेक भाषिक स्थान हैं । प्रारम्भ में ही कवि ने मयणुरेहा के मोक्षार्थ का मुण्डित बलन किया है ।

रद स्वह लीना दवदती रावमए श्रिम तेह करंती
समवितु अविचतु हियइ धरती निणु गणहर पय पउम नमती
चन्द्रन म कुमर मात्ता गमन दाह मा अणुवता
अन जानतरि इमि हसता उरि गरावति शब्द बहूती- (६-८)

उसके इस प्रकार के मोक्षार्थ पर मणिरथ रान्त गया उसने अपना दुष्प्रस्ताव मयणुरेहा से रखा । कवि ने उस पान के उत्तर प्रत्युत्तरा को वं हा चातुर्य से वर्णित किया है । बाव में कवि का उपन्यासक मृत्तिका बनी अग्रती है —

अनवि वय पुराण मुण्डाज १ त्रिय पामरि ताइ इसाबद
तपि नरेमर मदिठ बहू पवठ मयण महा नद रहु

कुलि कम लोहिम बुद्धि भरतउ नियगुण यल्लो धनि दहंतउ
हा हारव तिहुयणि पावतउ मणि रहु मयणा मंनिरिपतउ

तामह ए मणिरुद्धा राउ मयणि महामडि गजिउ ए
बुल्लइ ए वयगु विप्राणु, जेग जणगणि ताजिम ए
सोनह ए सोवन रेख बुल्लए मयणा निम्मलीय
नरवर ए भवणु बियाक निय कुन खणणि मतिरलीय
सुरगिरि ए मिल्हइ ठाउ जइवि मुरावउ महिएन ए
तिहुयणु एवम मेनेइ ताप १ मयणा मनु चन ए (१०-२)

घोर इसके पश्चात् कवि मनुश्रुतु के वर्णन में डूब जाता है। प्रकृति के
उपासना का परिगणन कवि ने कुण्वता में किया है। मनुश्रुतु क्या भाई, माना
मयणरेखा की वपत्त थी ही मन्त्र के लिए चुट गई। वपत्त कीडा के लिए
मुगबाहु घोर मणिरय जाने हैं घोर काम-नातुष मणिरय नगी तलवार सेवर
यहाँ पहुँचना है वामती वातावरण को किस प्रकार वह बीमल बना देता है।
मोठी मोठी बाता में अपने भाई का उनमा कर उसका धाव से बंध करना
छडा ही दुर्मनीय कहण प्रसंग है। राग्य थी व प्रकृति वर्णन दृष्टव्य है।
मनुप्रामादमवता व प्रकृति का नाम परिगणनात्मक रूप देखिए —

भठरी भव वयव जेव जबीरी मोहइ
कयनीय लवलीय ललिय बेलु मानइ मणु माहइ
चणु अपइ चाह चित्त बारह दीसता
मदवक कहणी कुइय कुइ किमुय विहसता
कोइल वचमु सह करए भमरउ भणवारइ
पाउल परिमणु महमहए मलयानिल्लु बल्लइ
मयण सरासणु करइ कज्जु विरहिणि मणु कपइ
भवनरिय मिरि वसत राय मणिरहु इव जपइ

मुगबाहु घोर मयणरेखा की कलि कांक्षा और राय धानइ मणिरय से
नही दखा गया। मोठी मोठी बाणी वान कर इजिम सहानुभूति दिसाना हुआ
वह वहाँ आया और मयणरेखा को प्राप्त करने के लालच से पर छूने हुए भाई
के सिर पर तलवार मार दी। तत्समया मन्त्ररेखा दीन हाकर भटकने लगी
पर अपने चरित्र व सतीत्व की पूण रक्षा करने में उमन कोई कमर बाकी
नही छोड़ी। स्वामी की मृत्यु पर रुदन करनी हुई मयणरेखा की स्थिति बड़ी
कल्याणजनक हो गई और सती का मताने वाले दुर्मति मणिरय की भी साप ने
काट लिया —

जमजोहा मम मगु तठ वटु कावि जनतठ
 माया वचिउ मयन ताउ वनाहरि पहूतठ
 कुमए न मुग्ग पइ वियउ वणुवामि वसतइ
 महिमइनि वडरि गगिहि निमि त्रिमु भमतइ
 न्व जपता नर वरान्ह सा पणमइ पाय
 मगु महायरहु मिरि मिन्हइ धाय

तकवगि धाय ताउ इदारु जगि उद्यनिउ
 मामो पवि ताउ मयणा नयनमुय इनिव
 हुयउ मुराज्ज धनु तारण ऊमोय वयर हरे
 न्व जाणे विनगु ता नव मूकउ धवन हरे
 कुमुमहो भाह रमि निन भागिहि मोगहिउ
 तकवगि नरइ पढेर पाव महामरि जा भरिउ
 त्रिगि करि मयण हरमि नवइ कृति मनि रमिय
 तिगि करि इमियठ मापि नैवह दुरमति नाहिमोय (ठवगि ३।७ ४।७)

रचना ५ ठवगि म पूरा हा जाती है। भाषा सरल और आनकारिक है। कण्ठ रस व स्थान स्थान-स्थान पर मिल जात हैं। रचना का समाप्ति निर्वै म की गई है। कृति में चारार्द्र और राम ध्व प्रसन्नता से मिलता है। भाषा की सरलता, उसकी सत्यमता तथा प्रवाहानकता के लिए एक उदाहरण दृष्टव्य है —

करिवरि विम वदान कानि नवकारि हटाता
 जठ परिमता मयणरेहु, तठ सरवरि पत्ता
 वण फनि मुरजनि गमिठ, त्रिम निमि पुणु म्मे
 कता हरि मिन्वि कुम मिरि न्हापु वरे
 जन करि ननिगा पनु, जम गयणियवि उवातइ
 घरनि वडना बीहु जम विना नन्दइ
 मुदरि जणि न नार राव मणिनु विना
 नगेमर वरि अम्ह ता मणि वुनु मुणाय

निगु ह मूत्र कगेवि जाय मुणि पाय नयवि
 नमण निमुणिय मयर राव मयणा वामइ

कुमरह मयलह जिणह वयणि पडिवोह करती

केवन नाणु धरेवि मयण सा सिद्धि पहुता—(ठवणि ५,३५)

वस्तुतः १४वां शताब्दी में गायक की उत्तमता के स्वरूप इस कृति में देखे जा सकते हैं। अपभ्रंश के गद्य भी वही-वही देखने को मिलते हैं। कृति इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। १४वां शताब्दी में इसी प्रकार के अन्य अनक रास मिलते हैं जगहरणथ महावीर रास (१३०७) मयसुकुमान रास, वारप्रत रास (१३३८) मयनेत्रीय रास जिनपयसूरि-मट्टाभिषेक रास, भावविधि रास आदि। परन्तु ये रचनाएँ वाक्य की दृष्टि से साधारण ही हैं, अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।

१४वीं शताब्दी के बाद १५वीं शताब्दी में राम सजक अनक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। वास्तव में १५वीं शताब्दी का रास साहित्य बड़ा सम्पन्न है।

श्री जिनपद्मसूरि पदटामिपेक रास १

पदटामिपेक या पट्टटामिपेक एक ही अर्थ के सूचक है । १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हमने मामसूनि के जिनस्वरसूरि विवाह वंशुन राम पर विचार किया है । ठीक उसी प्रकार का राम म० १३८८ का मारमूर्ति द्वारा मिलित जिनपद्मसूरि-पदटामिपेक राम है । तब उद्देश्य तथा मुख्य प्रवृत्तियों की दृष्टि में यह कृति मामसूनि की रचना में पर्याप्त साम्य रखती है, परन्तु भाषा और शैली की दृष्टि से इसका स्वतन्त्र महत्व है । १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना होने में यह रचना मन्त्रपूजा है । इस रचना की प्रति श्री अमरवन्त नाहटा के मद्रास श्री अभय जैन मठ में सुरक्षित है । श्री अमरवन्त नाहटा ने कृति के आश्रित अन्त में समय का उल्लेख किया है । कृति ऐतिहासिक है । इसकी ऐतिहासिकता पर पर्याप्त प्रमाण लाया गया है । २ इस प्रकार यह राम ऐसा गीत है, जो जन भाषाओं की भाषा में लिखा गया है । उन गुरुआ और मुनियों ने समय-समय पर जो धर्म प्रभावना की राजाआ महाराजाआ और सम्राटों पर अपने धर्म की धार्मिक शक्ति और समान के लिए अनक धार्मिक अधिकार प्राप्त किए, उनका उल्लेख इन गीतों में पर पर मिलता है । विराट् ध्यान में योग्य है उल्लेख है जिनसे मुमकिनता आती है पर प्रभाव पाने का बात कही गई है । ३

प्रभु राम के नायक गुरु आ जिनपद्मसूरि ने मुक्तान कुतुबुद्दीन के दिन का प्रश्न कर लिया था । मुक्तान ने आ ज्ञाना ग्राम धार धनार्थ देकर मुराद्वर का सम्मान करना चाहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया । मुक्तान ने उनका दया भक्ति का और परमान निराशा तथा वसति निमग्न के जिसका राम में स्पष्ट उल्लेख है —

१-ऐतिहासिक का मद्रास श्री अमरवन्त नाहटा पृ० २१ ।

२-वहा ग्राम प्रभावना पृ० १६ ।

३-वहा ग्राम प्रभावना का नगरान्तर्गत निम्न पृ० १८ ।

४-पृ० १ ।

कुतुबद्दीन सुसतान राउ रजिउम मणोह
जनि पयउव जिणचमूहि सूरिहि सिर सेह १

इसी प्रकार कवि सारमुक्ति के जिनपद्यमूरि भी ऐतिहासिक तथ्या से सम्बन्ध रखते हैं। ये जिन कुल मूरि से जिनका पुराना नाम तरुणप्रम है, और जो बड़ावदयक बागवन्नाथ के कर्त्ता रहे हैं, सम्बन्धित हैं। इन्हीं का नाम जिनपद्य था। प्रस्तुत भीति राम म धम की नीरस मैदाविकता ही नहीं है, पर ऐतिहासिक प्रामाणिकता तथा काव्यात्मकता है। धम की प्रेरणा से काव्य की भाषा भाव और गैली और प्रभावगानी हो गई है। कुछ काव्यात्मक स्थानों के उदाहरण दृष्टव्य हैं। कवि न राम को भाव भक्ति से गाने के लिए लिखा है —

इहु पय टवगह रामु भाव भगति से जर न्निहि
ताहि होइ मिबवाम सारमुक्ति मुणि इम भगइ

प्राध्यात्मिक विवाह का साहित्य में महत्त्व स्पष्ट है। भागे जाकर प्राध्यात्मिक विवाह की इन जन घटनाओं का प्रभाव सम्भवतः कबीर की साहित्य साधना पर पड़ा हा। कबीर के साहित्य में भी प्राध्यात्मिक विवाह का महत्त्व पूर्णतया स्पष्ट होता है। इस अवसर पर रासकर्त्ता न अभिप्रेत पर हुई अनेक क्रीडाओं का बरान किया है। श्रद्धालु श्रावकगण सग बना कर प्रतिष्ठा में शामिल होते हैं। ग्याय स्थान पर बल्लोत्र और राम महोत्सव होते हैं और नारियाँ श्रद्धा से झूम झूम कर नृत्य करती हैं। कवि ने इस छोटे से गीत में गेयता की प्राध्यात्मिक तत्त्व दृष्ट रचना का श्रावक के उत्तम प्रधान जीवन के सम्बन्ध में गीत कवि की कुछ अनुभूतियाँ इस प्रकार हैं जो भाषा और भाव की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है —

उदयउ तसु पय मयन बना सपतु मयह
सूरि मउठ बूढावदसु जिणकुन मुणिदु
महि मण्डल विहातु भुपरि आयउ तेराउरि
तरय विहिय वय गहग मान पय ठवण विविहपरि (५)

कु कुवसिय पाउ ठवण द्रसनि सध हरेमु
मयन सध मिलि आवियउ, बछरि कर पवेमु

आदि जिनोसर वर भुवणि ठविय नि सुविमान
धम पडाण तोरण कलिय चउनिमि बदुरवाल
सिरि तरुणपह सूरिवरो मरमन बठाभरण

मुमुक्षु वषणि पञ्चमि ठनित पञ्चमूरिति मुगिरपणु
जुगपहाणु जिगपञ्चमू नाप ठनित मुपवित्त
आणणि सुर नररमणि जय जयनार करति

सप वगन और नारिया का उनाम राम तथा नृप गान मगनाचार
मादि का वर्णन निम्न —

मिनिउ दसनिमि मितिउ दसनिमि मध अपार
दराउरि वर नयरि तर सदि गज्जति अवा
अतिव वर रमणि ठामि ठामि पियणुव सु र
पथ ठवणु ँवि जगजरह विहसित मगगनउ
जय जय सद्ध समछनित तिनु अणि हुयउ पमाउ

तिहृअणि जय जयवा पुरित महिमनु तूरप
पणु वरिम वसुधार न नारिय मइविह प

वर वया भरगण पुरिय मगगन नग जण
धवन अणु जमण मुपरि मातु हरिपानु जिहम
नाचइ अनाय वान पथ मर वाजइ मुपु
परिपरि मगनाचार धरि धरि मूढिय उमविय
उयउ कति अकनउ पा तिनहु जिगजुगल मूरि
जिण सागणि मायट जयवत्तउ जिण पञ्च मूरे

जिम ताराअणि च मन्मनयण उत्तम गुरह
चित्तामणि रयणा तिम मग्गु गुयउ पुणह
नवस दमणवाणि सवणजति ज नर पियहि
मणुम जम्मु मसारि महनउ बिउ इत्थु कलिति
जाम गयण ममि मूर धरणि जाम धिर म गिरि
निमि मध मजनु ताम जयउ जिगपञ्च मूरे

य प्रकार उक्त उद्धरणों में कृति के आध्यात्म विचारों का महत्त्व समझा
जा सकता है। का यह अधिक सुन्दर तथा पर भाषा का सरलता व तत्त्वमता की
दृष्टि में मन्त्रपूर्ण है। न्या प्रकार का म० १, ८८ में विखित कवि धर्मवर्णन
का जिनका नाम मूरि व गणित राम मित्रना है। य कृति भा इसा तरनेय
तथा वस्तु नि व और वगन-पदति अणि म नाना का पयाप्त माध्य है।
यका नियम भा पट्यामिपत्र है। नाना रचनाएँ एतिहासिक तथा १६वीं
शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रतिनिधित्व करती है।

कुमारपाल रास १

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विरचित राम रचनाओं में एक प्रसिद्ध रचना देवप्रभ विरचित कुमारपाल राम है। इस का सम्पादन डा० भोगीलाल साडेसरा ने किया था और मुनिजिनविजय ने इस रचना की प्रकाशित किया।^२ प्रस्तुत रचना एक ऐतिहासिक काव्य है जिसका प्रमुख विषय राजा कुमारपाल के बम्ब राज्य उत्थारता, प्रदर्शन तथा सय वर्गन है। प्रस्तुत रास की अंतिम ओड़ी में कवि देवप्रभगणि का नाम मिलता है। बहिर्मास्या में भी देवप्रभगणि का नाम मिल जाता है। पाटण के सधवी मुहल्ले के जैन पान भट्टार की १० १४३५ में लिखी हुई पार्श्वनाथ चरित्र की प्रगति में सामंतिलक सूरि के शिष्य मडन में देवप्रभगणि का नाम मिलता है।^३ काव्य की पुष्पिका में ज्ञात होता है कि इसकी नवन सं० १५५८ में चैत्र बुध ३ शुकवार को की गई। यह भी स्पष्ट होता है कि कुलमडन सूरि जो मुग्धावबोध धौत्तिक के लेखक है देवप्रभ के समकालीन थे। क्योंकि मुग्धावबोध धौत्तिक का रचनाकाल १० १८५० है अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि राम की रचना १५वीं शताब्दी के प्रथम दशक या द्वितीय दशक में हुई होगी।

पूरी रचना एक सरम काय है। कवि के पद नाहित्य और काव्य प्रवाह में वही भी नाहित्य नहीं है। ४३ बहिया में पूरी रचना समाप्त हुई है। रचना की काव्यात्मकता उल्लेखनीय है। कवि ने काय का प्रारम्भ ही महावीर गीतम स्वामी मरस्वती कपर्दी मक्ष अम्बिका तथा धात्रि की विनय तथा नमस्कार द्वारा किया है।

कुमारपाल अजातशत्रु बन कर रहे। उनके राज्य का प्रभाव तपोवन का भाति था। कुमारपाल की अगाधारण घावणा में मनुष्या ने ता गया पंगु पक्षिया तब ने अग्नी पारस्परिक स्वभाव धनुता छात्रर मवत्र अहिता का

१-भारती विद्या सं० मुनि जिनविजय, भाग २ अक्षु ३ सं० १९६८
पृष्ठ ३१३-३२४।

२-वही।

३-वही पृष्ठ ३१३।

गाय्राज्य स्थापित किया। पशुपति मन्त्र मेढ सरगाण हिरन भैम वारन
मागा मूषर चान घाति का भरवाना वन्द कर दिया। यहा तब कि तू और
सन्मन भा मारना पाव समझा गया। निशिया क मसू मगधुवन कनि करन
लगे। पिजर क ताना मना पना मग म रन्न नमे। पतिया म भा चर्चा रहता
कि घाजकन पाना का मन्त्रिया का भा घन्तर वन् है। कुमारपान क राय
का तनना बिहारा क जगत तपावन मा किश पारथ पात्र निपात्र म हा
सकता था। उमक राय म माप काया और यहा तब कि कुता का भा बाइ
नहा मारता था। कवि न बहा मरमता म इम प्रकार क निच उतार है —

पनिउ धराध धरपनावा गिरि मर ममाण
कुमर त्रिहार करठ भाति मत्रि मन्त्रि वराण
मात्रन धम पूतना ए मड मयगद गठा
मभनि कुमर नरि राय हम गूरि भूभावइ
घाण्डउ गारिउ भयवन्नि राय धम्मकरावइ
घरिउ नमि त्रिम कुमर पावि डागरउ त्रिवारिउ
छाति बाक् कर वान गात्रि कधाक्
ममना नाच गनिध भर अजरामर हूषा
नहिषा निया पर घाति पारव महापा
मइमा अन हरिण राम मूषर अन मवर
चात्रा कुमर नरि राजि रगि नाच तातर
जुध न माकुण नात्र बाक् कहवि न मारइ
नरिणा हरिणा करइ कनि मुपि हमगूरि वार
नात्रा नत्र पजरविषा मुपि अच्युन भुतनि
गुन्ना नवि पजरउ विषा पणु नाच मातनि
कात्रि अन हान भग मासनि तू मार
पाणा मात्रि त्रि मच्छत्रा ए नाधानवि मार
मारमरी मार हाम नत्र मारउय वपावइ
अवव हात्र कुमर पाव घा मरण न भावई
याग मर अनइ मग्न चा काद नत्रि छानद
न मर नत्र नरि राजि भावि हाण्डउ माचद (८-९)

येमा भा कुमार पान का राय। त्रिम गिहार म पारथ का पत्र विषाण
म मरना पना म कुमारपान न वन् करेता निहा। त्रिम छत कौडा म नत्र
का मर उठ हार जना पटा कुमारपान क राय म ऐमा जमा ह्य समझा
या। त्रिम मत्र क कारण ममन्त यादवतुन जिना का प्राप्त हाया उम

लाग कुमारपान क राज्य में स्था करवा भा पाव ममभन लगे । मास भयाए से जिस प्रकार सुनास और श्रेणिक नामक राजाघ्रा का दुख मिला उसका कुमार पाल ने दृढ निषेध किया । गरुिका गमन घोर पाव था । वैद्याए सती स्त्रिया की भाति बन गई और जिन पूजन करने लगी । चारा का उपद्रव सम्पूर्ण देश में कहीं भी नहीं था । पानी अगर म तीन बार वितरण होता । विविध प्रासाद तथा बिहारा स राजा ने अनहिनवाड की शोभा म अपूर्व वृद्धि की । कवि न इस वर्णन का अत्यन्त सरल भाषा म प्रस्तुत किया है । काव्यगत सरसता शब्द चयन और वर्णन की समत्कारिता उल्लेखनाय है । उक्ति का अनुठापन काव्य की सरसता म और अधिक वृद्धि कर देता है —

पारधि जीवन पोसीय ए बहु पावह पापु
पारधि खेनन दसरतह हूड पुत्र विपापु
कुमर नरसेर नियरज्जि आहूड डारइ
जनवर धनवर, खचरजीव इम का न मारइ

जूम वसणि हूड नल नरि दमयति विपापु
मठविभमता वार बरिम पाडव मनि सापु
दपी रूपण जूम तणउ नवि पनइसारि
जूमारि नवि जय रमइ, नवि बानइ मारि
मसवसणि सोदासराय पामिउ दुहसणीय,
दीठी नरगह तणीय भूमि नखइ पुण संगिय
आमिप भोयण तणइ दडि वतीस बिहार,
राय करावइ कुमर पाल जणि तिहूमण सार
रूपण मदिरापान तणइ जायव कुल नामा,
किरिउ दोषामणि दुठठ दवि बारवइ बिणामा
राया दमइ नीच सब हिर मरिा मल्हइ
मतवाला नवि मधु करइ मूमनी धेतइ
गरुिका गमणु निवारइ ए नरवइ निय राजि
छवि वशावसण लोग लागमवि काजि
वेशा कापी माइ नरिम तइ कुमर राय
ता पण पूजइ जिणह मृत्ति वदइ धुनप्राय
वशावसणिइ गमइ धरय जा पुरिम अहन्नउ

पाछइ मूरइ मनह माहि सिम बणाय कयतउ (११-१७)
नगर वणन और सध वणन म कवि अपना सानी नहीं रखता । भवना

की निर्माण तथा उक्त समय धननी उत्कृष्टता की प्राप्त थी । विविध पार्श्वों में
निनाशित धनरा राजाभा में गुप्तचित्त कुमार का मधु ऐ नर्य अक्षयनीय था ।
विविध नृत्य-गान, लय तान और मूल मागधी गणना का जयजयकार संघ की
गोभा बढ़ान लगे । लोभा का उत्तर स्वरूप का स्वर भरत में आगर्भद
या आनृप्य, नर या स्वयं इन्द्र है । इस प्रकार का मन्त्र हान लगा । धन में
एक प्रकार संघ धीरे धीरे गन्तु जय पट्टेवा । मान्य पति नमिनाथ का गिरावर में,
धनरूपी म महावीर का, मागरीर म पार्श्वनाथ का तथा राज कागानार म
गामनाथ तथा पाण्य म पार्श्वनाथ की पूजा का और मधु पुन लौटा ।

वर्णन का प्रागान्विता भाषा की सरलता जन भाषा हान व कारण
उक्ति का धनरापन तथा विविध लोकावितया का मधुपन प्रस्तुत रात का
महान बढ़ा स्त है । कुछ वर्णन निम्न —

नगर वर्णन—

मावन धमे पूतनी ए धागण जाप्रती
निम्नम वरिहि भारण्ड ए निहृयण भाप्रती
हार मागितय चूनडा ए पापर लंड जडिया
निम्नमवता बिबरामि अडनिउण पडिया
मंतिय भागनि स्मि स्मि बट्ट मध मवावर
धामी बट्ट धामीम स्मि राउ जान वनावर (२१-२६)

बाघ नृत्य नात वर्णन—

बहूय नेसह बहूय देम मध मवावि
जिण भतिहि एगमणि भूमि नाट्ट मधु जि वरवड
गाइ पाइ वनिय मरी मध नाव धागणि नववड
ठामि ठामि बाधावि स्मि हू मगन धा
अरपहि वरम मे स्मि दानि भागि मुवि धा (२७)

मिलिय मावगनणा नाव धनि धन समागना
मावीय वन्ती गामरमनि शुभ शुभगी धागना
मरा भूगन दान धणा धमधम नीमागना
नेवा नावर रग भरे नरनवा मुजागना
धामिणि तरणि स्मि रामु वरि मग्न धातो
मधुगी वागिहि मग्न मामविनि वन मुनावी

बंदी जयजयकार करइ कह नीहर साहि
गायइ गायण सत सर कवि बिनर सादि (२८-२९)

अनुप्रास और सदेह अलंकारों का विविध सुन्दर चित्र गोचा गया है मनुष्या को कुमारपाल के इस रूप का देखकर भ्रम उत्पन्न हो जाता है कवि ने इसी भ्रम का दृश्य प्रस्तुत किया है —

आनीय गययड भान्हती, ए भारती मद वारि
खानी खणता तुरय नाप करहा सइ च्यारि
राउत पायक राजनाक अनइ मागणहार
सख विवज्जिप मिनिप सोव काइ जाणइ सार
कि अह खानिउ भरत राउ ? कि सगर नरिन्तो,
राया सपइ दमन भइ कि कन्ह गाविन्ता ?
कि वा नीसइ नल भरिदु कि नेवहराउ
अति उपज्जइ जायता ए नरवइ समुण्ड (३०-३१)

कवि ने पूरा वाक्य रोना छाना में मिला है। बोध में वस्तु छ का भी मुनकर प्रयोग किया गया है। वस्तु छ का एक उदाहरण खिल —

मारि वारीय मारि वारीय देस अड्डारि
नेम विदेसह मेलि करि भविय सोव त्रिणी अत वारिय
अऊ दमह चालीसह राय बिहार किय रिद्धि सारिय
मोगड मूकी जेण हिव जगि लीधउ जसवाउ
हूउ न होसिड चिहु युगे कुमारड सरिसउ राउ (३६)

वस्तुतः पूरा रचना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह काव्य कुमारपाल का अरि काव्य है जिसमें उसके जीवन की विविध घटनाओं और महत्वपूर्ण कार्यों के सुन्दर चित्र कवि ने उतारे हैं। काव्य में अहिंसा की विजय सर्वत्र परिलक्षित होती है। कवि ने अहिंसा राय का विविध उदाहरण और स्वाभाविक शत्रुओं के पारस्परिक मेल से स्पष्ट किया है जो सामाजिक शांति का प्रतीक है। सांस्कृतिक दृष्टि से तथा धर्म और इतिहास की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने रचना में कानी कोणल भगध कोशाम्बी वत्सा, मरहठ मालव लाल, सारापुर, कच्छ, गुजरात सिंधु सवालप, काश्मीर कुरु कति मामरि कहउ जाधर आदि देश तथा नगरो के राजाओं का उल्लेख किया है। साथ उत्सव वरान जैन समाज का सर्व्व में ही सांस्कृतिक पर्व्व रहा है। कवि ने पूर्ण कोणल के साथ इस छोटे से काव्य में उसको सजाया है। रचना की भाषा सरल राजस्थानी है जिस पर अपभ्रंश का यत्न तत्र प्रभाव

परिनिधित होता है । मन्दिरा, पान जुगा, वदयागमन चारा आदि मामाजित
कुसुमा का भी कवि प्रभाव में लाया है । धन राम ममा हृदयः ग महत्वपूर्ण
है । इस वाक्य को कवि ने यद्यपि 'राम' ममा भी है वरन्तु राम के नाम पर
कवन काव्यान्तर में परिवर्तित प्रकृति ध्यात् चरित प्रभाव का छाटकर मय
यातें नही मितता है । सम्भवतः १५वाँ शताब्दी तक राम सत्त्व रचनाया के
गिन्य में चरित वाक्या का हा स्थान दिया जाता होता । क्योंकि रचना में राम,
सूर्य मय युगल मृत्य आदि वर्णन नया मितन का कोई रास छन्द हा मितता
है । धन धन कहा जा सकता है कि राम सत्त्व या युगल-मृत्य-वर्णन तथा
राम छन्द की काव्यान्तर में उपासना होता प्रारम्भ हा गई होगी और राम रत्ना
कवन मामाजित चरित आन्धान कव्या का हा स्थान जाता होगी । साथ ही
उपरोक्त नामकरण भी पत्र के राम वाक्या का भाति राम हा दिया
जाता होगा ।

रचना के अन्त में कवि ने भरोस वाक्या के रूप में कुमारपान के इस
राम काव्य का युगा युगा तक प्रचारित रत्न और धमर हान का आगावा
दिया है । जब तक सुभा पर्यंत कवन स्थान में न कवन पद, जब तक सूर्य सेंद्र
रहें जब तक कवनम भूमि और गागर का भार धारण करना रद्द, और जब
तक रामार में धर्म विद्यमान है तथा जब तक भूय तारा निरक्षरता का प्राप्त
है तब तक कुमारपान राजा का यह राम रामार में आनन्द का प्राप्त करे —

मह रामह न कवन जाय जा कन् विवापर
मयुनायु जा धरद भूमि जा मानद सागर
धम्मह विगड जा जगह महा, धार निचन हाए
कूमरड रामह तण रामू ता नन्द ताए

जग प्रसार इस वाक्या द्वारा कवि ने राम को निर्वै निपन्न दिया है ।
पूरा इति मरम तथा छन्दार है । भावा नेत्रा आगावा है तब कवन प्रभाव
पूर्ण है और मयार्थ धर्म प्रभाव करना है । कुन मितन कर रचना छात्र हान हुए
भी राम सत्त्व रचनाया के गिन्य में विविध प्रस्तुत करता है । धन इति का
मन्दिर और भी मन् जाता है ।

कुमारपाल रास ' (श्री बीतरागाय नम)

रोवा

पढम जिण्ह नमोय पाय मनइ वीरह सामी,
गायेम पमुह जि मूरिराय मुणि सिद्धिहि गामी,
समरवि सरमति कवडि जवख वरदेवि म भाई
कुमरनरिह सणउ रासु पमणउ सुहवाई, ॥ १ ॥

मस्तु

चञ्चनन चञ्चनन्दन गुणह सम्पन्न
पाहिणिवा उवरि घरिउ माडवसि उपन्न सुणीइ,
पुण्णवृष्टि सुरवइ करइ ए जाम जनमि उवतार,
चगदेव चिर जाविजिउ जिणिसासणि साधार, ॥ २ ॥

बालकालि सजम लियउ गुरु विनय करन्ता,
हमसूरि शुभ नाम दिन जगि जस जयवता
मति बाडी गुणतणी रासि हउ कहवि न जामउ,
हमसूरि गुरतणउ चरित किम करीम वक्खाणउ, ॥ ३ ॥

मपु पडी फरसिय जाव मति कीजइ सायर
मन्त न लाभइ गुणह सणउ जिम चन्द दिवायर,
पहिनउ धरीइ धजपताव गिरि मेरु समाणा
कुमरविहारह करउ भगति सवि भडलिकराणा, ॥ ४ ॥

सावनथमे पूतनी ए मइ मयगल दोठा,
सम्भलि कुमरनरिह राउ जिनपडित बइठा,
रायह कुमरनरिह राय हेमसूरि बूझावइ
भाहडउ वारिउ सयलदेसि राय धम्म करावइ, ॥ ५ ॥

भरिटठनमि जिम कुमरपालि डागरउ दिवारिउ,
छाना बाकड करइ बात, गाडरि बधावइ,

ममता नाचन गनियमरे अजरामर हूषा
रग्न्या रग्न्या वरन भावि पारन मनाया ॥ ९ ॥

भरमा अन्तर हरिण राम मूयन अन्तर मवर
चोप्रा कुमरतरिंराजि रगि नाचन तातर
रूप न भावुग राकि वार नहवि न मारन
हरिणा रगिणा वरन कवि मुपि नमूगिगारन ॥ १० ॥

नावा नवर पजर गिया मुपि अन्तर मनवि
मूहा नवि पजरन गिया पुग नाचन मातवि
वावरि अन्तर नाव भगन मामवि नू मारन
पाणा मावि जि मन्त्रना न नाथा नवि मारन ॥ ११ ॥

मारमरी मरि हाम नवर मारहाय वधारन
अन्तर हाज कुमरपावि अन्तरग न आवड
पाव मरन अन्तर मुगन घाव वार नवि पारन
न मरन कुमरनरिं राजि मगि नमूगन भावन ॥ १२ ॥

कर्मरि चामर नगर मानवि न न मागि
रुटि न पन्ना नगाय वान अन्तर भगन भावगि
कर्मरि धावगन चिनि वाका भावाचा
नमूगि मरिम विम राम न न न न न ॥ १३ ॥

नानाना नरन न व पदगि पन्ना
रगि न भावि नगा अन्तर अन्तर वावुन पन्ना
वावोना न न नाम नावगन नगा
मन्तर नाव वरन भावि अन्तर नगा ॥ १४ ॥

पारगि जावन पाणा न न नगा जाव
पागि भवन नमूगन न न पत्रविगणु
कुमरनमर निरगि नगा वारन,
नवरन यवन मवर नाव न वार न मारन ॥ १५ ॥

पन्नागि गवि पन्नागि गवि जावगधार
मूयन मवर राम नवि फिरड न विम मगन नाव
नगा नीतर मागि व न मन्त्र नमूगन आवड
छावा वोट वारन वार न नाव नाव
राव वरन जा मरगि वि कुमरन रावराव ॥ १६ ॥

राजा

जुय रागि हूउ ननरिउ मयति विप्राण,
 घडनि भमता वार वरिण पाटव मनि मोधु
 दयो नूषण जूधतणउ नवि पेनइ सारि
 जूधारो नरि जूय रमइ, नवि वानइ भारि ॥ १४ ॥

ममबमणि साजाम राय, पामिउ दुमणाय,
 दाठा नरगह तणाय भूमि नरवइ पुण सणिय
 धामिपभायण तणइ दटि बत्तोस विहार,
 राय परावइ कुमरपान जगि तिहुमणसार, ॥ १५ ॥

दपण मन्त्रिपान तणइ जायवकुननामा,
 विरिउ पावायणि दुटठ नेरि वारइ विणसा
 रायाभेन नाथ सन हिव मन्त्रि मत्तइ
 मतवाना नवि मधु करइ, भूमला न पेनइ, ॥ १६ ॥

गणिका गनणु निवारिउ ए नरवइ निय राजि
 छटविदधानमण नाम लागा सवि काजि
 वगा काधी माइ सरिण तइ कुमरइ राय
 ता पण पूजइ जिएह मुत्ति वन्इ गुरु पाय ॥ १७ ॥

वेगावमणि गमइ परय जा पुरिस ग्रहणउ
 पाछइ भूरइ मनहमाहि जिम धणीय कयउ,
 जारह जणणी म भणए ए माभलि वछ वात,
 निदवइ जावडउ जाइतइ ए जइ पाडिमि पात, ॥ १८ ॥

श्रीमइ चार न देमभाहि जिम सुममइ रकु,
 धरि ऊघाढे वारणइ सोण मूयइ निसकु
 परस्त्रीदामिहि रावणइ ए दिउ नरणि पीभाणु
 मरयनणि रामदवि विउ भवह कहणउ ॥ १९ ॥

नियनिय मन्त्रि भणइ नारी, माभलि परतार
 नारि नियारिय जा अत्तउ हिव जाणिसि मार
 रण धरणी भणह नाह, सुणि घम्म विचारो
 मनुमुनिह हिव करि न माभि, परस्त्रा परिहारो ॥ २० ॥

वस्तु

जुय वारिय जूय वारिय मससजुत
 गुरापाणु गवि जाणीइ, वमवसण गयणा न नौमइ,

काश्याग्नारि दुर्गारि हरि रात्रि पञ्चत हर ॥ ३१ ॥
 भगवन् कुमरन् भगवन् कुमरन् रिग्दृष्ट घनधारि
 हरि जात्रा दृष्टानयन् मामि पार्ति दृष्टान न मागत,
 जिह्वा कुम्भिणि त्रि उरगित जिह्वा पञ्चद मन्त्र,
 गिरि मन्त्रुज्ज्वलिनिगिरि वर पञ्चात करद, ॥ ३२ ॥

रात्रा

मानिधि मागणन्त्रि तन्त्रु मधि बाधा जात्र,
 पाणि घात्रा नारि वरन् घरि घरि नम बाध,
 बाधी जन्म जात्र घनन् तन्त्रु मामि पञ्चात
 प्रत्युत बात्रि नारिनिधन् इमन्त्रि गित रात्र ॥ ३३ ॥
 बाधा बाधन मन्त्र नम बाधबा वन्त्रा
 मन्त्रन् मानन् नारन् नारात्रु वन्त्रा
 गित्नु नारात्र बाधनार कुम्भिनि गदभरि,
 बाधन्त्र बाधन्त्र मन्त्रु जागित्नु तान्त्रि ॥ ३४ ॥

मन्त्रु

मारि वारात्र मारा वारात्र नम मन्त्रु
 नम विन्त्रन् मन्त्रि हरि मन्त्रि नार त्रिगि वन्त्र बाध
 वन्त्रन्त्र बाधनार रात्र त्रिहार विन्त्रि रिद्धि मारि
 मोगद मूक जग ह्रिन्त्र जगि वन्त्रन्त्र जगन्त्रात्र
 वन्त्र न मन्त्रि विन्त्र युगे कुमरन् मरिगन्त्र रात्र ॥ ३५ ॥

रात्रा

विन्त्र कुम्भिन्त्र जगु कानि मन्त्रुविन्त्र शुक्लरन्त्र
 कुम्भिन्त्र कय मन्त्रुविन्त्र नैव मन्त्रन्त्र कन्त्रिन्त्र
 मन्त्रि विन्त्रात्रि कन्त्रन्त्रात्रि त्रिन्त्र वन्त्र कन्त्रात्रि
 दन्त्रात्रि मन्त्रि मन्त्रन्त्रात्रि जगन्त्रन्त्र मन्त्रात्रि ॥ ३६ ॥

शुक्लमन्त्रात्रि निन्त्रुगन्त्रात्रि-कुम्भिन्त्र वन्त्र-भाणू
 मन्त्रन्त्र वन्त्रन्त्रि वन्त्रन्त्र न मन्त्रात्रि नन्त्रात्रि
 पात्रि वन्त्रन्त्र कुम्भिन्त्रात्रि वन्त्रि मन्त्रन्त्रात्रि
 मन्त्रन्त्र रन्त्रन्त्रात्रि जात्रु तन्त्रन्त्र बाध रात्र न रात्रन्त्र, ॥ ३७ ॥

मन्त्र ठामन्त्र न वन्त्र जात्र जा वन्त्र-न्त्रात्रि
 मन्त्रन्त्रात्रि धरन्त्र मन्त्रि जा मन्त्रन्त्र मन्त्र

पंचपाण्डव चरित राम १

१४वीं गतांगी में प्रबन्धात्मक गैली में लिखे गये समराराम के पञ्चानु १५वीं गतांगी की सबसे प्रमुख कृति थी गानिभद्र मूरि विरचित पञ्चपाण्डव चरित रामु है। राम परम्परा का यह राम एक प्रमुख कदा है। विद्वाना ने इस कृति पर लिखित प्रमाण डाला अवश्य है ^२ परन्तु स्वतन्त्र रूप में हम इस रचना का पाठ होन हा में प्रकाशित गुर्जर रामायण में प्राप्त होता है। सम्पादका ने इस पाठ का ब्रह्मण का एक प्राचीन प्रति में उपलब्ध होन मान पाठा में से एक कहा है। रचना की प्रति महाराज जयविजय के पास सुरक्षित है।

ये गानिभद्र मूरि भरतेश्वर-बाहुबली राम १ रचयिता ने भिन्न कवि हैं। इस तर उपलब्ध रचनाओं में पञ्चपाण्डव चरित रामु न वर्ण्य विषय तथा वस्तु छन्द और भाषा सब दृष्टिया में नवीन पाये गिया है। गानिभद्रमूरि पूर्णिमा गच्छ के ये। यह राम नर्मदा के विनार स्थित नाम्ना नामक नगर में लिखा गया कवि ने स्वयं भी अपने समय के लिए परिचय दिया है जिसका ज्ञान सम्पादकाय में भी मिलता है। ^३

शास्त्रिजानीन हिन्दी जैन रचनाओं में अब तक इस धार्मिक कथाओं, चरित नायका पुराण पृथ्वी एवं उपराना शास्त्रि म सम्बन्धित विषयों का ही विवरण मिलता है परन्तु वीरगुण आख्यान की कथा-वस्तु के रूप में स्वाकार करने वाले था गानिभद्र मूरि हा है।

१-पञ्चपाण्डव चरित रामु गुर्जर रामायणी G O 5 CXIII बराना पृ० १-३४।

२-प्रायोग्य कवियों का व० का० नाम्ना पृष्ठ २६६।

३-गु० रामायणी पृष्ठ ३—It was composed in V S 1410 i e 1351 AD and the matter of the poem is based as the poet says on 'तद्वत् कथानायक्युत' Thus the date of the composition is mentioned by the poet himself

प्रस्तुत राम में पाषों पाण्डवों के चरित के रूप में सम्पूर्ण महाभारत का सार है। पाण्डव चरित जैनियों द्वारा विरचित मसूहत काव्या में भी मिलता है। गुजराती विद्वानों ने भी महाभारत लिखा है। पंचपाण्डव चरित राम की कथा महाभारत की कथा से भिन्न तो मानी है, परन्तु कुछ रचना स्थान, पञ्चाभा और प्रमुख पात्रों की कवि ने अपने जैन धर्मानुसार मोड़ा है तथा उमा के अनुसार उसकी सृष्टि भी की है। रासधार न प्रमुख चरितों को जैन परम्पराभा के ताने बाने में उलझाकर कथा गूँथ प्रस्तुत किया है।

पूरी कथा १५ ठवणि ॥ विभक्त है। ठवणि नाम सर्ग विभाजन का सूचक है। भरतेश्वर-बाहुबली राम, १ मयणरेहा रास २ भास्त्रि मे ठवणि का प्रयोग मिल जाता है। प्रत्येक ठवणि के बाद रासधार न वस्तु छूटा दिया है। सिर्फ अन्तिम ठवणि को छोड़कर जिसमें उसका वस्तु छूटा अन्त नहीं रहता। कवि ने ठवणि और वस्तु को भिन्न किया है।

कवि ने राम की कथा का प्रारम्भ नैमिजिर्नेद्र तथा सरस्वती की वन्दना करने के पश्चात् द्वितीय ठवणि में ही किया है। गंगा और वातानु का प्रेम तथा गंगा का उनकी अपनी प्रवृत्ति में रुठ जाना व अपने पुत्र गागेय के साथ रुठ कर अपनी माँ के यहाँ चले जाना का वर्णन मिलता है। गागेय आश्रम में वातानु के गिरावट के लिए विराध करता है —

परिण एव हरिणी सु खेन,
कामन वर्णिग हरिणी बानर, पति पति प्रिय पारपीठ
निनु निनु राउ अहहह चानद
रामि चडो राणी हम बुन्दड, प्रियतम पारधि मन करेड
धनुष बना माउनेउ पडावड
जाव न्या नियधिति रहावड, बोधि चारण मुनि तण्ड ३

वस्तुतः जिनधर्म ही से रा मार्ग है यह जानकर गंगानन्द ने धेही पिता को घर से राधा व अन्य मुक्त करने का तय्यार हो गया। गंगा ने धाकर जाता का गान्त लिया। गंगा के न आने पर वातानु एक धीवर कथा पर मग्न हो जाता है और राजा का प्रतिशुत करा कथा सत्यवती का विवाह करने साथ करता है। वृणन की मरगता दृश्य है —

१-भरतेश्वर बाहुबली-राम की गाथी।

२-हिन्दा अनुमानन पृष्ठ ६ अङ्क १-४, पृष्ठ १००-१०३।

३-G O S CXIII, पृष्ठ ३६।

सामलि सामी अम् घर मूनी, तुम धरि अम्ह गंगा पूतो
मइ बेटी अउ तुम्ह रेरी, तउमइ हवि दूग भरेवी
बुदरसह भरउ मडणु, राज करेभि गंगा नणु
धीय महारी तणा जिवान, त सवि पामइ दुग वरान १

सत्यवती का नन्दा म स पहना कर्मों के दोष म धनपन म ही भर
गया व दूसरा कुमार विविध वीय हुआ जिनन बागाराज की धंदा, धंधानी
और धंधानिरा तान कयाधा स विवाह किया । जिनक समन विदुर, पाण्डु
व धृतराष्ट्र हुए । धृतराष्ट्र न गांधारा म और पाण्डु न मांदा म विवाह किया ।
कुंती के कर्म कुमारी धनंध्या म उत्पन्न हुआ कर्मरी धनंध्या जैन महापुराण
में १ एक विद्याधर का अशूरी म सम्बन्धित है । कर्म रवि १ इतना सा उर्णन
किया है कि जिन प्रकार पुण्यवती भा पाप करत हैं । कर्म मंडूमा म डान
कर गंगा म बना दिया गया —

मरिणीय आरी पड कुमरि आपणीय जि धवणी
मन्धिर बनि लक्ष्मि हुई पुनू जायउ रमणी
गग प्रवाहित रयणु मादि पावेउ मंडूमा
बीजइ पातनु पुण्यवनि कई साज कि रीम

इधर गांधारी क १०० औरव पाण्डु क १ पुत्र पाहवा म ईर्ष्या रतन
लगे । अहु न धनुर्विद्या और "राधारध" (मत्स्यपत्र) में सज्जन उतर ।

धनुर्ध टवणि में कवि न अम्हा म राजपुत्रा क गौर्य प्रर्णन का आया
जन मभ पर किया । मुधिष्ठिर सा अजातशत्रु थे, भीम दुर्वाधन म गंगा बुद्ध
हुआ, अहु न और कर्म में इन्द्र बुद्ध अर्जुन क मन वाक-वाग्धा म नर्त हो गया —

अरहुन बावन्, र अहुनीन, अरहुन भूमिनि मइ गु ही
अरहुन मरणी मेदि न बीजन्, नियकुन मानि परव वहीजइ
हम आपणु धनू अम्हाण, मानि न नियकुन तणू प्रमाणू
मइ गंगा उगमतइ नीग साधी रतन अरी मंडूमा २

अम्हा म भा अहु न निजयो हुए । अघर द्रोणा का अर्पवदर हाना है
और पाचा पतिया म विवाह तान ता बाग्गु चारणुमुनि द्रुप का पूर्वजन्म म

१-वही, पृष्ठ ७ ।

२-उत्तरपुराण, पृष्ठ ३४४, द्वात म० १०४, श्री शुणभन्नाचार्य, भारतीय
पान्थीठ बाणी ।

३-G O ६ CXIII, पृष्ठ १३ ।

सम्बन्धित बनवाते हैं। प्रत्येक पाण्डव की नारद द्रौपदी व साथ अवधि दाघ दन है। उन्मत्त पर अर्जुन का १२ वर्ष वन म रहना पड़ता है जहाँ व वंशधर पवत पर आश्रित्य का अभिनय करन हैं। वहा अपन मित्र चद्रवूड की बहिन की व सहायता करन ह। आगे कवि न पाण्डवा का जुआ म अपकर्ष व वनवास दिताया है। समा मे द्रौपदी का वस्त्र हरण हाता है। आगे वनवास म भीम का राक्षस का मारना, लाप्ताशुह म बचना, नाम का हिडिम्बा स विवाह प्राप्ति का वर्णन मिलता है।

दुर्योधन पाण्डवा म प्रियवत् का भत्रवर पुन सहायता मागता है द्रौपदी क्रुद्ध हाती है। फिर अर्जुन गिनाना व विद्याधर व लडक का हराकर इन्द्र स ग्त्र प्राप्त करता है। दुर्योधन की बहिन के पति न द्रौपदी का हरण किया अर्जुन उन भी हराता है। दुर्योधन न पाण्डवा व गिनाना का धापणा की। एक पुराहित व लडक न कृत्या राक्षस उन पर छाडी। नारद की आज्ञा से पाण्डव माधना म लग गये। विशाट व पास पाण्डवा का अधिवाम रहा। कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन व पाम गय। दुर्योधन न माना। भयकर युद्ध हुआ। अमर्य ग्राह्य काम आय। अन्तिम ठवण म सब पाण्डव जैन दीक्षा सेते हैं। नमिनाय उनका प्रवज्या दन हैं। परोक्षित की हस्तिनापुर का राजा बनाकर धर्म धाय उन्हें गंगा दकर उनका पूज भव, सुरभित, सतन देव मुमति और मुभद्र प्राप्ति नामा से स्पष्ट करता है। उन सन्ने गंगाधर व समग्र साधु वृत्ति स्वाकार की तथा अशुतर स्वय स च्युत हाकर पाण्डव बन और भव पूर्णता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत का कवि न ७६५ छन्दा म मजाया है। भाषा का सरलता जन-माधारण के लिए राम का बाधगम्य हाता तथा पौराणिक कथानक का नई रखाया म बाधना कवि की प्रतिभा व छोटक हैं। पात्र धार हैं। पात्रा पाण्डव द्रौपदी, कृती दुर्योधन कर्ष प्राप्ति। पात्रा म यह नात होता है कि कवि न साधु असाधु दाना प्रकार के पात्रा का वर्णन कर असत्य पर मय का विजय लिखाई है। कवि व प्रयाग मौलिक हैं। जा भाषा की दृष्टि म मध्यकालीन शुद्धराती या राजस्थानी व मौलिक प्रयाग एक सामाजिक तथा साम्प्रतिक वातावरण प्रस्तुत करत हैं।

जहाँ तक कथा रुति और कथा परम्परा का प्रश्न है कवि न दाना का सम्यक निर्वाह मौलिक अनुमान के रूप म किया है। पाण्डवा का कथा परम्परा का प्रारम्भ अथवा साहित्य स ही हा जाना है। आरिएटन रियर्च इन्स्टीट्यूट पूना म सुरक्षित हरिवंश पुराण के यात्र, कुरु युद्ध और उत्तर कुं बार कांडा

म ग कुं व यात्र वाही म पात्र चरित वर्ति मित्र जाना है । ^१ जन महानुराण म ^२ भा पाण्डव का क्या का नमिनाय क प्रमग म धार्मिक उन्मग मित्रता है । धामर भण्डार म यग वार्ति का निवा महाराथ्य लगक का मित्रा है जिगम कवि न ३८ मंधिया म पाण्डव क्या का वधन किया है । इस प्रकार क्या परम्पराभा (C. 6. 15) क रूप लगन परिवर्तिन हान रह है । प्रस्तुत राम म रचनाकार न धनक रचना पर क्या म भौतिक घटनाभा का नवामय किया है तथा धनर मनावाच्छिद्रन माह गि है जा घटना वैविध्य तथा क्या म भौतिकता का सृष्टि करन है और वैध्यक मनाभारन म भिन्न है । कवि न क्या का आधार मनाभारन न रगा है पर मही परिवर्तिन क्याभा पर जन धम व घटिमा का प्रमात्र रचन गान है । बुद्ध नवान घटनाओं म प्रकार है —

- १—गगा का गाननु का घट प्रवृत्ति का विराध करना तथा रुठ कर विद्रुष्ट गमन गागेर का घटिमा प्रमा गीना व जन धर्म स्थाकार करना तथा धनर हिमन पिता म युद्ध करना । कुं व पाण्डु क पूर्व प्रम व मत्ताना गति का प्रमग तथा कुं व परागा न राधारध का प्रमग ।
- २—श्रीरग क स्वयवर म उमक हाव म जयमाना पाचा पाण्डव क मन में जा गिरना और चारण मुनि का द्रुप का श्रीरग का पूष भव मममावर मह्य हाना । ^३ हरिवग पुराण म कवि न घटिमा म प्रभावित ही मरत्य वध क रथा पर धनुष वान का न कल्याण का है ^४ पर प्रस्तुत राम म मरत्य वध भी ^५ व जयमाना वगग भा ।
- ३—घटु न का वनवास म वनय (वयम्ह) पवन पर जाकर घातिनाय को नमन करना धार मणिपू का वन्ति का गुणकर पुन उसक पति का नना ।

१—प्रमग साहित्य आ हरिवग वाद्य पृष्ठ ६८ ।

२—महानुराण—उत्तरपुराणम् श्री बुद्धमदाचाय भारतीय ज्ञानपाठ कागा सावरण पृष्ठ २८० नाक ७३-८० ।

3 Then the reference as to this strange incident is made to चारण sage, who was there. He narrates the previous births of Draupdi and informs how she staked all her merit for a soul determination of realizing five husbands in the next birth—G O S CXIII page 352

४—प्रमग साहित्य आ वाद्य पृष्ठ ६८ ।

—युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ में गाति जिनद्र की प्रतिमा का अवस्थापन करना । प्रियवत् का प्रसंग तथा पाण्डवा का पुन अपने असली स्वरूप की ग्रहण करना ।

—पाण्डवा के जाने पर कुन्ती व द्रौपदी का नमावार मंत्र का ध्यान करना । पुरोहित का पाण्डवा पर कृत्या छोड़ना तथा पुनि का भाकर कृत्या से उनकी रक्षा करना । कान्तुमार व जीवयन्ता का अभि विसर्जन ।

६—पाण्डवा का नैमिनाथ के उपरान्त स निर्वेत्त हाना तथा दाशा ग्रहण । धर्म घोष का पूर्ण भय घटाना व उनका निर्वाण प्राप्ति हाता भाति घटना मौनिक हैं ।

रास में अनेक वर्णन मिलते हैं जो जन भाषा में हैं । सरनता और सहज अभिप्राति ही इस काव्य की बसोटी है । राजकुत्रा के द्वन्द्व युद्ध एवं उत्साह मूलक मुद्राभा व चित्रण बड़े प्रभावशाली बन पड़े हैं —

कवि लिखाइ छाडा सरसु, कवि सुरमम जाणइ मरसु
चक्र घुरी किवि साबल भालइ, किवि हयियार पडता भालइ
पहिलु सरमइ धरमह पूना, जेह रहइ नवि हाइ शत्रा
मठिउ भीसु गरा फरतउ, तउ दुयोधन मिउइ सुरतउ

लोह पुरष छइ चक्रि भमतउ, पच बाणि घ्राहणइ सुरतउ
राधा बधु करीउ लिखाइ तिसउ न वाई तीणु भखाइ
तीछ हू का मठइ करणु भरजुनु पामइ भूवरि मरणु
रोसि जयइ बेउ भूभवा, रगरमु जाइ दरी देवा
धरणि धमकइ वाजइ गयणु हारिइ जीतइ जय जययणु
हीया असनइ कायर लोक, सततणा मन करइ सदाव
जाणे बीज पडि (म) भवाति, जाणे मुद्र खुश्या बलिकान
(ठरणि ४ पृ० १३)

कवि का स्वयंवर, नगर तोरण, अनेक बाधा और उत्सवा का वर्णन बड़ा प्रवाहपूर्ण बन पड़ा है —

बाजीय अबक शुहिर नीसारु, दिणयरो रेणिहि छाईउए

1—According to the Jain Tradition the Rajasya ceremony consist in razing a temple dedicated to one of the Tirthankaras where the kings are invited
G O S CXIII page 354

पहुतउ जाणाउ ५२ नरिणु द्रूपदु पदूषण सामझ। ए
 तयाया तोरण बहरयाव, नयण उनाधिहि छानउ ए
 मणि मय पूतना मोहन धर्म, मातिउ चउव पूराविया ए
 ५३ बय बणि गृहउ निवारि, परि धरितारणु उभाया ए
 नयपरि पगमारउ वहु नरिणु विरि समराउरि अयतरा ए

कवि क रमा घोर पुण्य नाता क रण वर्णन म कथात्मकता मिलती है।

पाषाणा का शृंगार वर्णन अत्यन्त स्पृहणीय है। गजान नयन, मुरभित बवरा,
 किम्बूरा तिनव गु रर ककण त्रुतुरा का रन मुन घोर तावून का भाति लान
 अथर सभा म नृनना है। रमा घोर पुण्य नाता क रण वर्णन स्थिति —

द्रूपण शयण २५ रायह तणा वृ यारि
 तमु रणर तामनिहि त्रिहउ मूयणि क रारि नत्थाय
 मामा कतु ररि कुमुमह मू ५ जानि कनेउर भवह्वर ए
 नयण मत्रुगाय कात्रन रह तिनउ वगलूरा यम तिपहीय
 करयेने ककण मणि भमकाद जाणर पावाय पहिरणु ए
 पहर तंवाताय द्रूपण बाव पाण नेउर मणुमुणुइ ए

घोर पुण्य वर्णन में —

सीति चमर बबाव अनु बरि कुमुमह माव
 अनुबंठि कुमुमह माव विरि गु मयणि धापणि धावाह
 का २६ ५३ नरिणु मह वरि, पदुतु इम गभादीयह
 (ठवणि १, पृ० १५)

छल कीटा म हाह हा पादना का घोर गभा म द्रोण को का पकड़
 कर पाव कर जान का बरि न अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन दिया है। भावा की
 सरनता घोर वर्णन का चित्रात्मकता म वर्णन घोर भी सजीव हा उठा है —

राखिठ ए राठ जूठितु बिदुर २७ वयणु न मानीउ ए
 हारीया ए हाविय बाण भाइय हाराम राजि सठ ए
 हारीय ए द्रूपण्ट धीय उणालिय सवि घामरण ए
 ताण्णाय ए बमि धरवि, दवि दुसामणि दूजणिहि ए
 धाणीय ए सभा मभारि, दुराय द्रुयाधन इम भणुइ ए
 'भाविन ए भावि टलवि द्रूपणि बइमिन मुमनथ ए'
 इम भण्ण निइ मरायु ६ (-) हूज तु वृत्ति सठ ए
 कुपीउ ए काण्वा चार अठत्तर सठ सादीय ए
 (ठवणि ६, पृ० १७)

और भी अनक वाग्यात्मक स्पन है। द्रौपदी का करुणाजनक वर्णन कवि ने किया है। कृष्ण के दूत बन कर जान पर भी दुर्योधन उह "मुझ लड़ी भूयवलि एक चास हिवए न पामइ" गुप्प उत्तर देता है, तो महायुद्ध की तम्यारिषी हाती है सारा दृश्य युद्ध में बदल जाता है। युद्ध वर्णन, वीरता एवं उत्साह के अच्युत चित्र कवि ने उरेह ह। सैन्य वर्णन और युद्ध की अतिशयोक्तियाँ की चमत्कारिता दृष्टव्य है —

दुरयोधनु अति मत्सरि चडोउ, जाई जरासि धु पाए पडोउ
'मुक्त रहइ पहिनउ न्निउ अगेवाणु पडव कह दलउ जिममाणू'
ई हा सेनानी गगेउ प्रह निहसी जुडिया नल बउ (पृ० ३०)

हाथा धोडा और असह्य पैदल सेना का युद्ध वर्णन, सिरा का कट कट कर गिरना और नाचना, सामंता की गव मिश्रित हसा कुरंगेश का और भी उत्साहपूर्ण बनाती हैं। वर्णन की अनकारिता तथा अनुप्रासात्मकता देखिए —

दलमिलीया बलगलीय मुहड गयवर गलगलीया
धर धसकीय सलवनीय सेस गिरिवर टलटलीया
रणवणीया सवि सल तूर अबर आकचीउ
हय गयवर खुरि खणीय रेणू ऊडीउ जगु भगीउ
पडई बध बलबलइ बिध सीगिणि गुण साधई
मइ वरि गइ वरु तुरगि तुरगु राउत रण रुधइ
भिडइ सहड रडवडइ सीम धड नड जिम नचवइ
हमइ घुसइ ऊमसइ वीर मेगन जिय मचवइ
गयवडगुड गडमडत धीर धयवड धर पाडइ
हममसता सामत सरमु सरमेलि लिखाइइ

जयद्रथ के लिए प्रतिज्ञा अर्जुन का शौर्य और द्रौपदी की वीरता दृष्टव्य है। कहीं कहीं वीरता के भी दशन होते हैं। कवि ने कर्ण, शल्य, गान्धुनि, दुर्योधनसबके बध का वर्णन किया है —

पाडइ बिध बबध बध धर मडलि रोलइ
वाणि विनाणि विवाणि केवि अरियण धधोलइ
कुह करउ गाबिदि देवि रघु धरणिहि खूतउ
भारीउ अरजुनि करणू बूडि रणि अणभूभतउ
शल्यु शकुनि बउ हणाय वेगि नकुलि सहदेवि
सरवरपाहि कडावीयउ दुरयोधनु देवि
राइ संनाहु सपोपीयउ भोमिहि सु मिडउ

गन्तागि जग्याय जाय मनि मातु गु पहि

गामु निगडा तगु तापु ध्याउ धनु गापाउ
पाय परामव न प्रमि गनि मापु विराधा (पृ० ३०-३२)

इय प्रकार ठगार करग वार रौद्र बानम धानि भावा न चित
माच कर घन म पाग्या का जन भाग्य द्वारा मधुग राय का समानार पात्र
घोर निर्दे भार म कर दिया है । धर्मपाय का कथन उत्तमनाय है —

उपनु करन नालु मामाय न नमि जिगुगर न
मानना गामि यवागु रिना न मायवनु धरद न
वरनाय नमि समानि नानिध न माउ जिगु नमर न

मामाय गगनर पागि पाव न भरिनि धनु रिन न

बातर गु धर्मपाय गुड भरि न पाव न कुगुवाय न
वनर नि मषन गामि बय न पाव न भाविदा न
गुरद मनु न मुमतिरु न गुमदू गुवाय न
गुगु यगाधर पागि हरनि न पाव न श्रु धरन
कागुपावनि ननु ननु बाउउ न वरन रयणावता न
मुकुतावनि ननु मारु चरु न मिनिवाविउ न
पावकु धाविनरधमायु ननु ररा न धगुनरि गविगिदा न
पदायका मुनि नपा वन न नमि न मिगुरि पामिग न
मानना नमिनिवागु पागु न मवगु गुगि वयगि
मनुनि तायि पद पाव न पाव न मिदि गपा

(श्रुति ११ पृ० ३२)

इय प्रकार उऊ उदारग, न माउ न जात्रा है कि कवि न न
धनाभा का परचरित बान करन न ना नाति श्रवन किया है ।

प्रन्तुन राम क छन म वन वेविध है । मधुग रचना का ११
ठगि १ म विमन किया गया है । इय राम का ठगि में विमन पद है

१-ठगि is derived from Skt म्यानिना Plt ठगिभा It
forms the narrative part proper, and in that sense
resembles a कवक of Ap and OG poetry while कमु

वि उसका अनुगमन वस्तु छंद करता है। भरतेस्वर बाहुवली रास के छन्द से इसका पर्याप्त साम्य है। प्रथम ठवरिण या ठवरिण म २२ कडिया मे १६+१६+१३ मात्राए है तथा २३वी कडी म वस्तु छंद है। द्वितीय ठवरिण मे चौपाई तथा उसके साथ द्विपदी भी, अत यह छंद मिश्र वच कहा गया है।^२ तृतीय म रोला है। चौथी पाचवी म दोहा चौपाई है। छठी ठवरिण के सम चरण म दोहा तथा विषम मे चौपाई है। समचरण के अंत म ए मिलता है। दशी सबैया की भाति प्रयुक्त चार कडियां भी इसा ठवरिण मे मिलती है। पुन समचरण मे दोहा और चार चरणो के साथ एक हरिगातिका भा मिलती है और अंत म वस्तु छंद है। जिसके नाम मे ही कथा का बाध होता है।^३ ७वी म सारठा और ८वी म २३ कडिया तक गुड सारठ मिलते है, जिसके विषम पं म अनुप्रास मिलता है।^४ ९वा से १४वी ठवरिण तक चौपाई ही मिलती है। वस्तु छंद सबके साथ मिलता है। इस प्रकार वृत्ति मे छंद वैविध्य स्पष्ट है।

सूक्तियाँ — रास मे अनेक प्रसिद्ध सूक्तियाँ है, जो उल्लेखनीय हैं।

- (१) किम रयणायर होयइ तरीजइ
- (२) क्रमि क्रमि जु वरिण तिणि पसरीजइ बीजतणी ससिरेह जिम
- (३) कीजइ पातकु पुण्यवति कइ साज कि रोस
- (४) बाधइ पचइ चद जिम पडव गुण गभीर
- (५) मच चडया सोहइ जिमचद
- (६) कू डल सरिसउ साधा बाला २कू लहइ जिम रयण कमालो
- (७) किमु न कीधइ रात्रि अवसरि साधइ परमवह
- (८) दबु न गिणई तैबु गिणह पुण्युनइ पापु
सताप सुयणह करई पुण्य होन जिमराय रोलाई
दारिद्र दुखसु बेह भरई वृष्णा निजिज गिरि सिंह ठोलइ

❀ is a conclusive link verse, which sums up the contents of the previous ठवरिण and the ठवरिण to follow
G O S CX.VIII भूमिका पृ० ७।

२-गुजर रासावली पचपडव चरित रासु श्रृ १२-१४।

3-The वस्तु metre as its very name expresses to a song of the outline of the story It is a miniature itself, the first half of the first line always being repeated to signify that it is a छंदूपाद। G O S CX.VIII page 7

४-वही प्रथ श्रृ २०-२२।

(६) भिट्ट मन्त्र रचयित्वा माग धनं नृजिम नृचक्रं
इमं धुमं धममं धार मगनं जिम मन्त्रं

प्रभुत राम का पाया मरन हिन्ना है जिमम प्राचीन राजपूताना, जूना
गुजराता प्राप्ति गन्ना ता बह्नाया मितता ३ । धया भावा का सरयता म
ध्यत कर र्ना छोर भरती धमिद्वयति म पूर्ण ईमान्तारी रयता तथा उम
झिष्टता म सचावर जन माधारण क निग गुनम बाा दना हा मन्त्र कवि व
कविता का परिचय हाता ३ । इस कृति म सनायद्वय धार्मिकारिता तथा
कदा-यात्रिपी नरी २ म्मम जा भा है वह जनता का वाक्य है । जिमम
मानव मात्र ध निग मन्त्र है । १/१ का सनायता ध राम म भरनन्तर बाहुवता
राम ध सा म्म राम मन्त्र मन्त्रद्वारा है । भाया म लगम धया का पन्नाता
विगत वैमान पर मितता है । माय म ही धाघ न क गन्ना क तथात्र उन्नाहरण
मित जान है । मरन हि । म पुत्र उन्नाहरण म्म प्रार है —

- (१) भागद द्वार माहि तु बाता पंच पाण्डव सगठ कराता
- (२) हरिण म्म हरिणु गु मन्त्र, कामन वयणि हरिणी बोनद-
पनि पणि प्रिय वारधात ।
- (३) पुत्र राजा बहिमनि वयणि इणि वणि वयाद वारणि
वयणि बावद मग मन्त्र मर्दय
- (४) माघत जालुइ जिम धम मागो तउमनि धुरण सगद विरागा
मगायन्तू वणि वया
- (५) म मन्त्रारा पुन मिणुमारा माता मछद धनन क मारा
कृद वमह कर मन्त्र राज करमि मगानदणु ।
- (६) हरिणुगरि पुरि कुर नरि कर पुन मन्त्रा
मन्त्रिहि मनु मुन्नाग सातु दृष्टनरवध सतणु
- (७) जनम मन्त्रातु मुरवरद नाघद मन्त्रर बाव
दु म्मि बाव मयणयन करणिहि धान कमान
- (८) विमु मन्त्र कुरवापनिहि भावह भावन माहि
ममन दृष्टद परिणामिड पुनिहि मुरिड पुनाइ
- (९) धरतुन बाव र धरतुन धरतुन म्ममिति मद गु हान
धिष्ट । र धिष्टर म्म रितायु पंच पटा दृष्ट वणुवामु
- (१०) दे राजस म्मम धागलि बाव मारिति वन्तू पुमठ बाव

वस्तुत आदिकालीन हिन्दी भाषा का शास्त्रीय रूप धीरे धीरे किस तरह किन किन इकाइया (Units) में बनता गया, उन सब साता की सूचना हमें इस कृति में उपलब्ध हो जाती है। राम का उद्देश्य पाण्डवा के चरित पर प्रकाश डालना है। इसके अतिरिक्त कवि ने राम रमण व क्रीडा के लिए भी बनाया है —

पडव तणउ चरोतु जो पढए जो गुणए सभलए

पूनिमपखमुणीद सालिमद्र ए मूरिहि नीमिउ ए

देवचद्र उपरोधि पडव ए रामु रमाउलु (१५ ठवणि, अ तिमाश)

इस प्रकार प्रस्तुत कृति को कवि की गैली और भाषा की दृष्टि में एक उत्कृष्ट कृति कहा जा सकता है।

पचपटव चरित रासु १

(रचयिता—नातिभद्र मूरि)

[वि० सं० १८१०]

	नमिजिगिन्ह ५५ पणुमकी मम्मनि मामिगि मनि गयन्दी थ विवि माही पणुवर	॥ १ ॥
6	आमर द्वार माणि पु वाना ५५ ५६५ तगुड वराता हरमि हिमा नर हं मगुड	॥ २ ॥
	रामि रमाडतु वरात धुगुगड विम रयगायन पायन नराडड मानिधि मामगनिधि तगुन	॥ ३ ॥
10	आणि त्रिलसर वरन वन्नु कुन्नरिदु हू कुनमदगु तामु पुनु हू नाथियड	॥ ४ ॥
	तीगाइ थापित तिहयगुमारा कीकड धमरागुरि अवनारा हविगुगारगु वनीगा	॥ ५ ॥
15	तिगु पुरि हू मति त्रिगेम मयन मतिवरन परमम चक्कवन्ति विरि पचमड	॥ ६ ॥

१—मिग—गुर्जर रासवता—गान्धर्ववाद आरिगन्ध अथमाता बहाना सा०
१८ पृ० १-३८।

(8) रमागुय a slip, the MS makes use of Pad: matra

20	तिणि कुलि मुणीय सतणु राघो भूयबलि भजइ रिउमडिवाभो दाणि जणु ऊरिणु करण	॥ ७ ॥
25	घन्नदिबमि घाहेडड चल्नइ पारधिवसणु मु विमइ न मिल्हइ लु मेल्ही दूरिंह गयभो हरिणु एउ हरिणी मु खेल्हइ बोमसवर्पाणि हरिणी बोनइ 'पलि पेखि प्रिय पारघोड'	॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥
30	मर साधी राउ वेडइ धाइ हरिणउ हरिणी सहितु पुनाइ ऊजाईउ गिउ गगवणे नयणह भागनि गयउ कुरगु राय चीति जा हूयउ विरगु जा वामू दाहिणउ	॥ १० ॥ ॥ ११ ॥
35	ता वणि पेखइ मणिमइ भूमणु सीधे निवमइ नारीरयणु खणि पहुतउ राउ धवन्तरे जहर्निह केरी धूय गगा नामि रइसमरूप ऊठइ नरवइ मामुहीय	॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥
40	पूछइ राजा 'बहि ससिवयणि इणिवणि वमीइ वारणि वमणि' बोनइ गग महासईय जो अम्हार वयणु मुणेमिइ निदिच सो वरु मइ परिणिसिइ	॥ १४ ॥

(19) The MS writes स and म similarly, thus मुणीइ can be read मुणाइ, मो in राघा and भडिवाघा of the next line is written as उ

(27) MS writes व for ख and व is written like व

(43) reads मुणेमइ cf footnote 1 19

45	नेवह मूचह मूमिधरा"	॥ १५ ॥
	त जि उपग राइ मानीजइ जहूराय वरी परिणीजइ परिणी पट्टउ निययघरे	॥ १६ ॥
50	॥ पुत्तु तगु कृनि ऊनउ विद्यानलग्गुलमपनउ वना बाहूतरि गा पडा	॥ १७ ॥
	गगानामि गगेउ भग्याजइ कमि कमि कुन्निगि निगि पगरीजइ बाज नगा ममिगि जिम	॥ १८ ॥
55	जितु जितु राउ अहेह चन्व रामि अटि राणी इम पुनइ प्रियतम पारथि मन वरउ"	॥ १९ ॥
	राइ न मानी गना राणी ताणु दूनि भनि कुरपाणी गूनु लेउ वीहरि गईय	॥ २० ॥
60	धनुपना माउनउ पदावइ जावण्या नियचिनि रनावइ बाधि चारगुमुनि तगइ	॥ २१ ॥
	माउउ जागए त्रिगधर्ममागो तउ भनि जूवग राग विरागो गगानगु वगि वग	॥ २२ ॥

वस्तु

राउ मतगु राउ मतगु वयगु चुचेदि
आहइ चनाउ पारमरि भनि भाहि मूमीउ

(45) च and व become similar through the inadvertance of the scribe

(46) तजि is repeated in the MS through the scribe's slip

(67) MS has राग्गु २ which is written twice in the text above for clarity

पूतु लेउ पोहरि गई गय तीणु अरुमाणि दूमीय
वात मुली पाछउ बन्द जा नवि देखइ भंग
चउबीम [वाम] रहइ जिमु रइहीणु [अगंगु]

॥ २३ ॥

[छवणी ॥ १ ॥]

आह मनमाहि नरिणे पारधि संभावइ
मइ दलि रमलि वरतउ गगातडि आवइ ॥

75

गगतडा तडि अछइ भोयणु
वित्परि दीरधि बारह जायणु
पामहरा बागुरीय अहय
पइना वणि कानासु हूय ॥

दह निसि वाजइ हार बहु जीव विगासइ
एकि धुमइ एकि धायइ एकि आगलि नासइ ॥

80

दह निसि इम जा वडु पारोडइ
जीव विगामइ तह्यर मोडइ
जा इम लवइ पारधि नागइ
ताम अमममु पेखइ आगइ ॥

85

विहु लवे न भाया करपनि कोडा
बानीसेसह बाना भुवन्ठपयडो ॥
राय पासि पहिनु पहुचेई
पय पगमो वीनती करेई ।
'सामलि वाचा मुक्त भूपान
इणि वणि अउउ अहि रखवान ॥

90

जेनी भुइ नू रागा तेती नू सरणि
मुक्त मनु वा इग दूमइ जीवह भरणि" ॥
तामु वयणु अवहनइ राघो
अतियणु छलइ जीवह घाउ
कोपि चडिउ तमु वणरखवानो

(71) The first Pda on the line is defective, वास is left out in the MS

(79) एक धुमइ repeated

- 95 धनुष उदाहृत जमविराता ॥
 तारा मर उग्राह धागता नि पाह
 मरग जवउ दान्द रातत रुगाह ॥
 वरुत रुह वरतउ जाणा
 तापणि घारा गगाराणा
 100 वर पणि भुमु वरना रागह
 नियप्रिय घागवि नगु रागह ॥
 श्वा गगाराणा रात्रा रागह
 मरा मरि नदियार वरुत घागवि ॥
 रात्र भगव मर रिमउ वराह
 105 त्रि मुष्टि मर ग वरि पात्रा
 राहु मुष्टाह पूनु मुष्टाह
 अत्राउ गग विग रिताह ॥
 पूनि भगवि श्वा घनिपण मारा
 पूनु ममापाउ गग घागवि नरि घारा ॥
 110 दिना पूनु रात्र रवि मिनीषा
 त्रि मुष्टावा पादा वरापा
 विगुताउरि वरि राहु वर
 भाग त्रिम रात्र वरग मर ॥
 अनविगनरि रामवि वरतउ
 115 जमगनरा त्रि रात्र वरतउ ।
 त्रि मरनी रात्र वात्र
 वरा वरा रुगविगात्र ॥
 गृह रात्रावा त्रि
 रात्र रात्र वरा वरा ।
 120 वरावात्र रात्र उ मारा
 रात्र पानि वराव मित्र नापा ॥
 रात्र वराव वरमिगारा

(102) MS has मरा for रात्र

(111) मुष्टावा पादावा पादा रात्रा in the MS

सामी अछइ अजीय कूयारी ।

125

कोइ न पावु वर अभिराम
सपत्नु करू जिम नेवह वामु" ॥

तमु घरि बइमी राउ मा बारी मागइ
बात स बेडीवाहा पुण चीति न लागइ ॥

130

'सामनि सामी अन्ह घरसूतो
तुम्ह घरि अछइ गमापूतो
मइ बेनी जउ तुम्हह दबो
तउ मइ हथि हूअ भरेवी ॥

135

कुरवसह वरउ मडणु
राउ करसि भगानदाणु
धीव महारी तणा जि बान
ते सवि पामइ दूख करान ॥

मुअ पामि तुम्हि किमु कहावउ
तुम्हि अम्हारा धीव न पामउ' ।

अम निमुगोउ घरि पत्त नरिन्
जिम विध्यानि हरीउ करिन् ॥

140

मनि चितइ सा बान कणहअ न वहेई
अ ने लागी भान जिम न्ह दहेई ॥

कूयक बेडीवाहा मन्त्रि
जाइउ मागइ सा इ जि कूयरि ।

145

बेनीमाहइ त जि भणीजइ
लीअ कूयरि प्रतिना बीजइ ॥

मत्रि मउउधा सहउ तइइ
उडीवाहा अति सु पेइइ ।

"वपणु अम्हा म पडउ पावइ
देवादेवी महयइ साखिइ ॥

(129) Indefinitely reads सूत्रो or सूतो same way in the next line पूतो or पूत्रो

(139) Perhaps हरिउ a slip for नरिउ

150 निमुणउ मइ जि प्रतिभा बीजइ
 चाटुवइ रिप तापु रिताजइ ।
 एतु रात्रु अनइ परिणेतु
 मर अनर जनमि वरु ' ॥

निमुणाउ तयणु गभेवउ बावइ
 155 बाउ न तिहयणि जा तुम नावइ ।
 निमुणउ रिब र वर वृत्तु
 एर रर रर रर रर रर ॥

॥ वरु ॥

नय मरुत तय मरुत रयणर नाभि
 रयणमि नरवर उमर तामु मेरि एर बाव जाईम
 160 रिताजि मरुतय जानमात्र नदि जमणु मिताय-
 ममाय ता मरुत वर न मर विद कुमारि
 मयवता नाभि हुमि मतणपरनारि ' ॥

[टरणि ॥ २ ॥]

पणमाउ मामाउ नमिनाहु मनु मयिदि माही
 वमणिगु पंडर तणउ वरिनु ममिनवरिवारा ॥

165 इयिणाउरि पुरि वरनरि वर वरुमइणु
 मरुति मनु गुतागमाउ इर नरवर मतणु ॥
 तम परि राणी मरुत दुमि एव नाभि म ॥
 वृत्तु जाउ मगउ नाभि निगि निहणि वरा ॥
 मयवता एर मर नारि मनु मरुत दुमि
 170 मी मरुतगण वरवम मनु वरुगुवदि ।
 वरुवउ वरु वरुममि बावयणि विवउ

(158) नय मरुत २ The repetition is represented by the figure 2, by the scribe. We have in the text systematically repeated the expressions rather than writing 2 after the scrib.

(170) मरुतगण in MS for मरुतगण

વિચિત્રવીર્યું વાજડ કુમાર વટુમુણમપનડ ॥

રાડ પટ્ટતડ સરગનાકિ ગમ્યકુમારિ
તડ લધુ વધુ ઠવિડ, પાટિ તિણિ વયણત્રિચારિ ॥

175 વાસીસરમરિ તિતિ ધૂય મ વિતિ અવાના
જાજી અવા અછદ વાન મયણદ જયમાના ॥

પરિણાવેશ તાહ વાન મયવ મડાવિડ
ગગાનદલુ પહોડ રામિ અણતડિડ આપા ॥

180 સમરિ જિણીય સવિ રાર વાન સેડ ત્રિપ્દ આપો
દાડ મહાચ્છડ કરોડ નયરિ વધુ પરિણાવ્યો ॥

અ વિતિ ઢટડ ધાયરાડુ સા નયણે આપડ
અવાના નડ પુતુ પડ ત્રિદ મુયણિ પ્રસિદ્ધડ ॥

અવાનગુ વિદુ નામુ નામિ જિ સરીછડ
છદ છોણદ પુગુ વિચિત્રવાર્યુ પદુ રાનિ પ્રતીઠિડ ॥

185 કુતાન્તિ નડ લિવિડ રુપુ દક્ષીડ ચિત્રામિ
માહિડ પદુ નરિદુ ચાતિ અતિ તોપડ જામિ ॥

વિદ્યાધર વનિ કુણિહિ એકુ મન્દિડ છદ વાધી
છાન્તિ પદુમારિ પામિ તમુ મુદ્રા સાધી ॥

190 તત્તદ અધવટુણિ નામિ મારોપુરસાર્ન
દસ વટા તમુ ત્વ ધૂય કુતાન્તિ નામી ॥

પાગી આપણાર પુગુ મારિયપુરિ પટ્ટતડ
“પદુ કરાડ” પિય પાસિ કૃયરિ મમનદ વહતડ ॥

નવિ જામદ નરિ રમદ રગિ નવિ મહીય વાનાવદ
વાનાવા તો વહીય જાદ અણનદા આવદ ॥

195 વાજદ મૂનદ રદદ વાન ત્રિમ મયદ સતારદ
અમલિણિવાણિ મણ સનાધિ સા વિમદ ન પામદ ॥

ચડુ ય અણ હીયદ જા અગાર સમાણડ

(181) આપડ in MS for આપડ

(183) નાનુ in MS for ન મુ

(197) MS has અદ ન

- 200 'बुग्गहद वाइ ँहद दूगु जाणाइ तु जाणुउ ॥
 नावजु निधिगु मद अजाणु वाइ मारइ मारा
 २०१ ँणि जनमि भुम पणुमरिणि नहा य भतारा ॥
 विरहि विरागाय वण मभारि जाण मणि भायइ
 उवणिम जूवणु मपर ता धारिणि जाइ ॥
 २०२ ६ठि टन जा पागु टान तयरे गा
 धारिण मूदप्रभावि ताम मनि चिनिउ सामि ॥
 205 परिणाय धारा पणुमरि धायणाय जि धरणा
 सहायर बनि एवनि हु पणु जायउ रमणा ॥
 गम प्रभावि रयण माणि धारिण मभूम
 वाजइ पानु पुण्यवति वइ राज कि राम ॥
 210 जाणाउ राइ धृतिरिगु पणु उ परिणानइ
 निजिउ जागु निवाहि जाम त मुछु धाव ॥

॥ उन्तु ॥

- 215 धवतु नरव मवतु मरव ममि गधारि
 धुयारि तमु तणा धाव गधारि पहिनाय
 धुनप्रभावि धायर नरना ँ हीय
 मववनरइ नणा तुमणि विरकुमारि
 २१६ बाजी मरि मद्रुय पणुण धरनारि ॥
 गभु धरा गभु धरा ँरि गधारि
 दुत्तमि टानउ क वनि जग मुनि गवइ
 पुण्यवमि गववि च मुद जम मनि गम म
 220 गानि रता वपायण पवा हरिमु वइ
 मामु ममरा कुणरि मु अग्निमि वव वरइ ॥

[टवणि ॥ २ ॥]

पुदप्रभावि पामायउ पणु कुतावि
 पुदमसारु पुन पुण मुमिगा पव नद्वि ॥
 टाउट मुरगिरि धाररा मुमिगु निरिखिच

(204) MS has प्रभाति for प्रभावि

(112) गधारिण in MS for गधारि

जनमि मुधिष्ठिरराय तणइ मिनीया मुरवईणि ॥

225 गयणगणि वाणी पढीय 'समि नमि सजमि णु
धरणपूतु जगि ऊनउ सत्यसाणि सुनिवु' ॥

रापीउ पवणिहि कलपतरा सुमिणइ तु तिदूयारि
पवणह नदणु वज्जममो भीमु सु भूयण भभारि ॥

230 श्रीसे माम जाईयउ दूमीय न्नि गधारि
न्विस्ति मधुरे ऊपायो दुयोपनु समारि ॥

दसह दसारह बहिनडीय योजउ धरइ आधानु
'दाणव दल सवि निह्णउ मणि एवट्ट धभिमानु
'धनुपु चडापीउ भूयणि भमउ' इच्छा उइ मन माहि
बइठउ दोठउ हाथिणीय मुरवइ सुमिणा माहि ॥

235 जनममहाछवु मुर वरइ नाचइ अपद्धरवान
दुदुहि वाजइ गयणगले धरणिहि तान वसान ॥
गयणह वाणी ऊजलीय मरउन इहह पूतु
धनुपबलि धधानिस्ताण दुरयाधन धरमूतु' ॥

240 नकुलु अनइ सहवु भडा जुमनइ जाया वेउ
प्रभु चद्रप्रभु धापीवउ नामिकि कू तादेउ ॥
सउ बटा धयराठघर पट्टु तणइ धरि पच
दुयोधनु वउतिग वरण कूटा ववडप्रपच ॥

धनन्तिगतरि गिरिमिह्ण राजा रमलि करेइ
कु तीवरयल मटवज्जि रउयड भीमु रइइ ॥

245 पाहणि पाहणि आफ्नाउ वान न दूमीउ दहु
पाहण सवि जूनउ हूयण ववट्ट वउतिगु एह ॥
गयणह वाणी आपीवउ धागइ वज्जसरीर
वापइ पचइ चन् जिम पडव शुण्णभीर ॥

(225) गयणगणि in MS

(234) दोठउ written twice in MS

(238) धधानिस्ताण in MS for धधानिस्ताण

(243) धन for धन

(245) पाहणि २ in MS

- 250 भीमु भादतउ जमणनइ कून्इ कुरववार
पाडइ द्रउडइ भेडवइ बाघाय बावइ नीरि ॥
दुरयाधनु रासिहि चटाउ वानइ सामलि भौम
तु मुभ वधव कून्तउ म मरि अमून्इ इम ॥
भामि भिडिउ अट्टु पाढायउ बाघाउ घालिउ नारि
जागिउ त्राउइ वध वान ननि दूमि मरारि ॥
- 255 विगु नवउ दुरयाधनिहि भौमह भावन माहि
ममूनु हूइ नइ परिणमिउ पुनिहि टुरिइ पुताइ ॥
मनिरधि सारनि तहि उमए राय तगइ धरिमूनु
राधा नामिहि तमु धरणि वराणु मणु तमु पूतु ॥
सउ कू यर पचमानउ निमहरि पडिवा जाइ
260 घीर वाइ मति आगनउ वराणु पन् तिलि ठाइ ॥
दहा लगइ गुरु भगउ द्राणु मु बभगवमि
तह पामि वित्रा पन्इ कूपगुर नइ उपमि ॥

॥ वस्तु ॥

- 265 तीह कू यरह ताह कू यरह माहि दा कीर
इउ अरजुनु आगनउ अनइ वराणु हायइ हरानउ
गुरकून्इ विगणयइ नगइ धनूवणु नवउ मरानउ
विशु न हूइ गुरभगति तगउ माणि नउ गुर विडु
अहनिमि गुर आराधतउ एवनयु हू मिडु ॥
गुर परिवन्धु गुर परिवन्धइ अन्ताहमि
दुरयाधनमूनु सवि रायकू यर वग माहि सेविणु
मारायु मिन्हि वरि तानु व मिरि नयु दविणु
तीण पराया गुर तणा पूयउ एकु उ पयु
राहावटु तउ सिखवटु मउउ वविणु हयु ॥
एक वामरि एक वामरि कू यर न माहि
गुरि सरिमा जलि तरइ दाणचनणु जनजावि लिडउ
275 कू यरपरीया तणु मिमि गुरिहि कू पाका विडउ
घायउ अरजुनु धणुधइ अवर नपाया वइ

मेल्हाविउ गुरचनणु तमु गुर किम नवि तूमिइ ॥

[छवणि ॥ ४ ॥]

गुरि वीनविउ अवनरि राउ "सविहु बैठा करउ पसाउ
तुमिह मडवउ नवउ अछाडउ नव नव भगि पूव रमाडउ" ॥ १ ॥

280 आइमु विटुरह गधउ राइ ग्ह निसि जणवइ जावा घाइ
सोवनयभे मच चडारइ राणा राणि तं सहू य आवइ ॥ २ ॥

पहिनउ भावड गुरु गगेउ धायरठठ घुरि वइसइ राउ
विदुर कृपा गुरु अवर नरि मचि चड्या माहइ जिम च ॥ ३ ॥

285 कनि गिलाडइ खाडा भरमु कवि तुरगम जाणइ मरमु
चक्र टुरा विवि सावन मानइ विवि हथीयार पडता भालई ॥ ४ ॥

पहिलु सरमइ धरमह पूत्रा जह रइइ नवि काइ गशा
ऊठि भासु गता परतउ त ग दुयाधन मिडइ तुरतउ ॥ ५ ॥

मनि मावीत्रह मत्तर रहोउ पात्रइ अरजुनु अति गहगहीउ
भीमु दुजाहण जा व मित्रिया ता गुरनदणि पाछा करीमा ॥ ६ ॥

290 गुर ऊठाडइ अरजुनु कुमरो करणहि सरिमउ माडइ वयर
अ भाया विहु खन वहई करयनि विसमु धणुहु धरइ ॥ ७ ॥

लाहपुप्पु छइ चक्रि भमतउ पच बाणि आहणइ तुरतउ
राधारधु करी गिलाडइ तिमउ न काई साण अवाडइ ॥ ८ ॥

295 तीछ हूपा ऊठइ करणु 'अरजुनु पामइ मू करि मरणु'
रासि ऊठइ बउ भूमवा रणरमु जाइ देवी देवा ॥ ९ ॥

बउ हूपइ अ वाकरवाइ राय तणा मनि रीमु उपाइ
धरणि धमक गजइ गयणु हारिइ जीतइ जयजयवयणु ॥ १० ॥

हीपा धमकइ कापर लोव मत तणा भन कर मभाव
जाण वोज पडि (ध) अनालि जाणे मु द खुया वनिकानि ॥ ११ ॥

300 क्षणि नान्हा क्षणि मोना दीमइ माहामाहि धुमए बउ रीमड
बधवि बीटीउ राउ दुजाहणु चिहुपटवि बीटीउ राणु ॥ १२ ॥

(281) मत्त in MS for मत्तर

(297) जयवयणु in MS for जयजयवयणु

(300) रोम in MS रोसइ

- तिसु पहाय शरि प्रव ॥ १२८ ॥
 भरतु बाव ॥ १२९ ॥
 भरतु भरमा भरि न राव ॥ १३० ॥
 305 रम घावग ॥ १३१ ॥
 रम घावग ॥ १३२ ॥
 310 व ॥ १३३ ॥
 व ॥ १३४ ॥
 315 व ॥ १३५ ॥
 व ॥ १३६ ॥
 320 व ॥ १३७ ॥
 व ॥ १३८ ॥
 325 व ॥ १३९ ॥

॥ वन्दु ॥

- 320 वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु
 वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु
 325 वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु
 वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु वन्दु

तामु नयण वहा करा परिणउ द्रुपदि नारि" ॥

[ठवणि ॥ ५ ॥]

पडु नरसरा सइ वरि जाइ हयिगाउरपुर सवरुए
राइ दले सरिमा कू यर लेउ तारे सु जिम चादुनउ ए ॥

330 बाजीय बबक युहिर नीमाण निणयरा रेणिहि छाईउ ए
पहूतउ जाणीउ पडु नरिदु द्रुपडु पहूचण सामहा ए ॥
तनीया तारण वदरमान यरु उलाचिह छाईउ ए
मणिमम पूतना सावनयभ मानीय चउक पूराविया ए ॥
ककूय कण्णि छडउ तिवारि घरि घरि तोरण ऊभीया ए

335 नयरि पइसारउ पडु नरि किरि भमराउरि भवतरी ए ॥
पालि पहूतउ पडु तजि तरणि पयडु
सोमि चमर बधान अनु कठि कुमुमह मान ॥
अनु कठि कुमुमह मान किरि सु मयणि आपणि भावीइ
काइ इडु चडु गरिउ नइ वरि पहूतु इम सभानायइ ॥

340 चडीउ चपनि नयणि निरण वयणु बोन् सउ सही
पच पडव सहितु पहूतु तउ पडु नरवण इइ सहा ॥
मिनिरा मुरवण काडि सत्राय गयणे दुदुहि दहदहाय
मडे बइठना रायकू यार आत्रण कू यरि द्रूपणीय
सामि कनु वरि कुमुमह कू पु वानि कनउर भनहलइ ए

345 नयण सन्नणीय काजलरह तिलउ कनतूरी यम एिवडीय
करयले कवण मणि भमका जान्र फालीय पहिरण ए
अहर तबालीय द्रूपसा बान पाण नउर रणमुणइ ए
भाईय वयणिहि राधावधु नरनर सापड सवि भला ए
कुणिहि न भाधीउ पडु आणसि भरबुनु उठइ नरनीउ ए

(327) After this line MS २ ॥३॥ indicating the number of the second Vastu and the close of the section Jain MSS express the close by ॥३॥

(330) MS has जाईउ for छाईउ

(335) MS has किरि for किरि

(341) At the end of the line ॥१

(349) MS has only नरनरीउ and not नरनराउ at the end of the line there is ॥२

- 350 'अनि धनुः कुरु न नृप मामि सयमु दह
 इम भणा रजिउ भामु मा धनुः नामइ कामु'
 सा धनुः नामइ कामु काङ्कि धरणि धाननि धड्डडा
 बभट गट विमउ थाइ नि गणि मयन वि रहरडा
 नननाय मायर मन गुरगिरि नयु न नि गडसडा
- 355 नयु नयु धररगु हउ निहयगु राउ मयन वि धरणा
 लतइ हूय नययययय गुर वयन सवि हरणाया ए
 धनु धनु राय नृपनाय ज्ञान धनभम वर वरिया ए
 धनु धनु राणाय तु नादि जमु वृद्धि न उयना ए
 वचम गनि र न धरनवा वन वरणा ज्ञिमा जगि हूया ए
- 360 पाय न मा य गुर गुरनादि गुर उग नि नृणादिवा ए
 मनावन मनाय वर निया वरगु काउ सनु नृपनाय
 वा न नि नृ जगि हूय नादि नि वडा काइ न हानि ए
 ए न मा य वन नारा सनाय गिरामणि गाई ए ॥
 राधायगु गु धरवुनि माधि मनचातिउ उर नाय नाधउ
- 365 जा मणि गनि धरवुन मान नान पाव गनि समान
 रा धधिठिरि मनि नाजाज निणि मणि चारणि मुनि यानाजइ
 निमुण नानाय लप प्रमाणु पुरविनइ मनि विमउ नियागु
 भनि पन्तिर नमणि हूमा वउ नृबु मुगिरि निता
 नरग मना वनि मा गि हू पाव पुरिम व नियागु धर
- 370 ए न काईय वर विरार नृपराणावपन भनार
 मा वना नइ मयणि पहनउ वृ नराहिवु हूयउ सयतउ
 धरनि नाजइ मयन चार जगि मधरावरि जययययय
 नायय वा वृमम मान नाइय नाचन मनि धणावाया
 नाय नयण वावर नृजिहि ताण्य मावन
- 375 तु ता मद्राय माय म धनु धनु पडव नृपनि ज्ञा
 ववइ वडव वडवा चररा नरवइ धामानय मउरा

(352) काम in MS for कामु

(355) धरडा in MS for धरडा

(370) काइयर in MS for काईय वरउ

(376) At the end of this line there is in MS अग्री
 instead of वस्तु

॥ वस्तु ॥

- पच पडव पच पडव देवि परिगेवि
 सउ परिवारिहि मु दलिहि हस्तिनागपुरि नगरि भागइ
 380 अत्रन्विसि रिपि नारन्ह नारि वज्जि आन्मु पामई
 बार वरिस वसिधु अवसि अह्निसि तीरथवासि ॥
 सच्च वज्जिहि सच्च वज्जिहि अत्र दीहि
 उत्तघिउ गुम्बयणु इदपुत्तु वनवासि चत्तई
 385 गिरि वेयड्डह तलि गयऊ पणमिउ नामि मल्हान
 निव मणि चूडह राउ दिइ पहिउउ उपकार ॥
 बार वरिसह बार वरिम चडिउ विमाणि
 अठठावयपमुह सवि नमीय तित्थ जा धरि पट्टच्चई
 मणिचूह मित्तह भयणि राउ णु परिहरीउ वच्चई
 गहीय पभावइ रिउ हणिउ मज्जिमारग कूडु
 390 धरि पट्टउ वेउ मित्त लेउ हेमगडु मणिचूडु ॥

[ठरणि ॥ ६ ॥]

- एतस ए पडु नरिणा जूठिना पाटि प्रसीठिउ ए
 वधवि ए विजयु करेवि राय सव वमि आणीया ए
 सोवन ए राणि करेवि वधव भागलिउ गिरा ए
 मित्तह ए रईय मणिचूड राय रहइ सभा रयणम ए
 395 राइहि ए सति जिणद नवउ प्रमादु करानीउ ए
 वचण ए मणिमय वम रयणमइ विव भरावीया ए
 तेडीउ ए देवु मुरारि राउ दुरयोवु भावीउ ए
 इत्थीय ए दीजइ दान विवप्रतिष्ठा नीपज ए
 वरतीय ए नेसि अमारि ऊरिण वीधी मन्ति ए
 400 हमिऊ ए सभा ममारि राउ दुरयावु पराभवी ए

(381) धरिस in MS for वरिस

(383-384) Between these two lines there ought to be one more line rhyming with चत्तई—according to the formation of the Vastu metre

- मरितु न मरितु मनु तापन धम धामनि वीनय न
 मरितु न मरितु तापन यमन न मानद कृदाउ न
 धामाय न ममानियन पदव ॥१८॥ मरु मरु न
 कृतिनि न ॥१८॥ मात यमरिनि मात कृतिनि ॥
 105 मरितु न मरु कृतिनि मरितु यमन न मानाउ न
 धामाय न मरिय धाम मरिय धामाय मरि मरु ॥
 धामाय न मरुधाम धाम कृतिनि मरि धामरु न
 धामाय न मरि धरि नरि ममानि कृतिनि न
 धामाय न ममानियन मरुधाम मरुधाम मरुधाम न
 419 धामिन न धामि —मणि मरुधामि मरुधामि मरुधामि न
 मरुधामि न मरुधामि मरुधामि [-] मरुधामि मरुधामि न
 मरुधामि न मरुधामि मरुधामि मरुधामि मरुधामि न
 मरुधामि न मरुधामि मरुधामि मरुधामि मरुधामि न
 415 मरुधामि न मरुधामि मरुधामि मरुधामि मरुधामि न
 मरुधामि न मरुधामि मरुधामि मरुधामि मरुधामि न
 मरुधामि न मरुधामि मरुधामि मरुधामि मरुधामि न

॥ धाम ॥

- धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम
 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम
 120 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम
 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम
 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम
 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम

[मरुधामि ॥ ७ ॥]

- धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम
 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम ॥ १ ॥
 425 धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम धाम

(401) MS has धामि for धाम

(09-410) मरुधाम in the final Anuvāsa is omitted at several places in the MS See also 101 above

(412) MS has धामि for धाम धाम

- सच्च वयण निरवाहु वरिवा कागणि सचरइ ॥ २ ॥
 लेई निय हथियार द्रोण नियमहि अलगमीय
 कुतान्ति भरतार नयण नीर नीमर भरइ ए ॥ ३ ॥
 सचवई पिय माय अवा अवानी अविता
 430 कुती मुद्री जाइ वडनावना नयणह ॥ ४ ॥
 पभणइ जूठिलु राउ माइ म अरणइ तुहि करउ
 निय घरि पाछा जायउ नाहु सह्यइ राहवउ ॥ ५ ॥
 दाणवि कूरि कभीरि पचानी बीहारीयउ
 भूमिउ मारीउ बीळ भीमहि तु दुरयाधनह ॥ ६ ॥
 435 तउ वनि कामुवि जाइ पचह पडव वृणवि सउ
 मग्रह तणइ उपाइ अरजुनु आणइ रसवती य ॥ ७ ॥
 पणमीयतावह पाय पाड्डउ वानीउ मद्रि सउ
 विद्या बुडि उपाइ आणीय पहनउ पीरीयउ ॥ ८ ॥
 पचाली नउ भाउ पच पचान नेउ गिउ
 440 एत केसधु राउ कुती मिलिवा आवीयउ । ९ ॥
 बलु बालीउ वनवधु मुभद्रा लेइ साचरण
 हिव पणु हूउ निवधु कुती धु सरमा सात ज ॥ १० ॥
 एहु तु पुराचन नामि पराहितु दुयोंधनह
 तुम्हि वीनविद्या सामि राय सुयाधनि पय नमीय ॥ ११ ॥
 445 मइ भूरलि अजाणि अरिणउ काधउ तम्हा रहइ
 मू माटा मुहवाणि तुम्ह खमउ अवगहु मुह ॥ १२ ॥
 पाषारिसिउ म रानि वारणनति पुरि रहण करउ
 ताय तणइ बहुमानि हु अराधिमु तुम्ह पय ॥ १३ ॥
 भूउ करी सिणि विप्रि वाग्गवति परि आगोसा ए
 450 भिमु न बीजइ गत्रि अवमरि वगइ परभवह ॥ १४ ॥
 विदुरि पवाचिउ तमु दुरयावनु मन बीसिसउ
 एमु पुरोहितवेपु वावु तुम्हारउ जागिजउ ॥ १५ ॥

(443) MS reads मायि for नामि

(451) In MS पवाचिउ in 1st ht also b read पवाडिउ (caused to be read) so पवाचिउ which has no sense

इह परि धृष्टं मनु राज तण्ड छद् धननरो
मात्रि पन्थात्त गत्र गत्रमात्र मत्रि मन्त्र ॥ १६ ॥

455 बाना वज्रमि नानु तुम्ह वज्र नानुत्र
तत्र तुम्हानु मातृ धाम उ पात्र माग्निम ॥ १७ ॥

भामु भगव 'मृगि भाव रात्र उयग वाधनत्र
पुत्र पुत्रद्वगु नानु तत्रि मृगानि मन्त्र ॥ १८ ॥

160 मगरिन् मृगाय मृग रिद्वि त्रिगय दूर तण्ड
हु उगात्र धग र्ग्य नानु 'वज्र ॥ १९ ॥

एकि नानु निगि नानि पात्र पुत्र एकि उय मत्र
हु ॥ नर धारासि उयत्र रागमिया ॥ २० ॥

गानि वात्र नानु मात्रि मृगानु कुगवि मत्र
त्रिग पुगानु नानु वात्रानु त्रिगत्र नर ॥ २१ ॥

165 मार्यात्र पन्थात्र नानि पुगानु वात्रानु
मन्त्रानु नानु वायात्र उय धारा पुगु मित्रा ॥ २२ ॥

नरानु वज्रानु नानु नानु नाना मागुमत्र
त्रात्र पुत्रानु नानु नाना नाना ॥ २३ ॥

॥ वज्र ॥

70 त्रिगु न निगर्ह ननु न निगर्ह पुत्र नर पात्र
नानु मृगानु वज्र पुगानु त्रिग रात्र नानु
नानु नानु नानु नाना नानु निगि मित्र दान
नानु मगि निमन्त्रा वज्र वज्र वज्र
नानु नाना वगि निगि विगु विगु दान न नि ॥

[नगि ॥ ८ ॥]

विगु नि विगु नि निग वैवत्रिग वज्र वज्र दूर नगवानु
175 नर नानु वज्रानु नर नानु पुत्र वज्र मित्रा ॥ १ ॥

गानि मृगानु वज्रानु नानु वज्र न मत्र मगि पुत्रा
न नाना नाना निमन्त्रा न नानु नाना निमन्त्र ॥ २ ॥

(471) तुम्ह has its तु not written in the MS वज्र is
supplied as it suits the context aptly

(172) MS has न for नानु

मातृ बहूय न चालइ पाउ ऊमउ न रहइ झूठिनु राउ
माडी बोनइ "मामलि भीम बेती मुइ वयरो नी सीम ॥ ३ ॥

480 इवि वयरो ना परिमव सहा सट्टया नदण पाछलि रह्या
हू थानी अनु यावो बहू दिणु ठगिउ तऊ मरिमइ सहू" ॥ ४ ॥

वासइ माया बधव बउ माडी महिली कधि करैउ
तरयर मोउतु चानिउ भीमु देव तणु बसु दलीइ ईम ॥ ५ ॥

485 एव धाह साहिउ राउ बीजी साहिउ सहुठउ भाउ
जा महिमइनि उगिउ सूर ता यणि पटुतउ पडव बीर ॥ ६ ॥

सहू पराधु निद्रा करीइ पाली कारणि वणि वणि फिरइ
भीमु जाम लेउ आवइ नीम पाछनि जोमइ साहमयीर ॥ ७ ॥

एव भमभम देखइ चाल पहिनु दीठी अति विकरान
बोनइ राखसि ' सामलि सामि हुं जि हिउबा कहीउ नामि ॥ ८ ॥

490 राखस हिडव तणी हू धूम तइ दोठइ मयणातुर हूय
बइठउ ताउ अछइ भीम ठाणि वाइ भावो माणुमहाणि ॥ ९ ॥

मुळ रहि भाइमु दोधु इमु काई भान्यु छइ माणुमु
याधि करी लेउ बहिनो आवि उपवामी मइ पारणु करावि ॥ १० ॥

495 कर जोडी हु पणमउ पाय मइ तुम्हि परणउ पाडवराय
तुम्ह उपकार करिमु हुं घणा दूख दनिमु वणवामट तणा ' ॥ ११ ॥

' उभी उभी इमु म बोनिइ पडव बीजा मगूष म तालि
जग उदसिवा घर भवनरइ रुठा जगनु जीवीउ हरइ ॥ १२ ॥

ए माडी ए अम्ह घर नारि ए अम्ह बधव मूता व्यापि
ईह तणे तू बनणे लागि भगति करी मनबडिनु माणि ॥ १३ ॥

500 गतइ राखमु रामि जलतु आवइ फुट केकार करतु
वेगी बूमट मारइ जाम पीमु भिडेवा ऊठिउ ताम ॥ १४ ॥

' रे राखम धुम्भ आणलि दान भरिसि तउ तू पूणउ वाउ
रुख उपाणी बई विन्द न्निमि वाजइ हू गर रइइ ॥ १५ ॥

(488) MS has वन for चाल

(495) MS has दूय instead of दूय-दूख

(500) The MS has रेसि for रोमि

(501) In MS बूमट—a light word—reads like दूख

- 505 चरणनिहाड जागित मङ्ग पणुमी बायड हिहवा वडू
 "माइ माइ उगारु राउ न रुडउ ग्रहाराउ ताउ ॥ १६ ॥
 इगि मागीमर मुग्गु मिहनु बीरउ बाई पाउ तुरतु"
 इगु मुणी नर बायउ पशु मुभइ भीम मित्रिउ महगु ॥ १७ ॥
 पन्तिउ भागु आगामिउ राइ गरा नेउ वनि माह्णउ पाइ
 अरतुनु जा भूभरा जाइ रागु भासि रगारिउ टाइ ॥ १८ ॥

॥ वन्नु ॥

- 510 मर जिग्गा मर जिग्गा गलि वन्नेइ
 कुता मनु शीयनी अ नधि वराउ मागि वनाउ
 कुनी जव मिगु तुलाउ जि जिग्ग जनु नेउ बावइ
 एउ जिग्ग धग जायनी भावरा ववावि
 जाई जाई उगारा पहर वगि विहरावि ॥ १९ ॥

[टवणि ॥ ९ ॥]

- 515 राउ माउ मर ट्रेडि पहर माय मयारि त नवि आमिह
 राति पन्ति पणव वर वनि रवि मूर्छी भूमि पण्ड ॥ २० ॥
 गवमि भाई गात्रि रानु आणा मूर्छि रागु माउ
 भीमगज गवि मन्नी माउ वगवि मिनी परिणारी बाव ॥ २१ ॥
 भाउनु आणा मारगि वर वर मगनि मग्गी राग मण्ड
 520 नरउ अवागु वरा नर मण्ड पणव पणव मरगा मम ॥ २२ ॥
 एउ वगगि वर गवा मग्गीममग वरि रवा
 मीर वगव वमगमि जिग नागवाइ तीग म्मि ॥ २३ ॥

(505) The MS has no ग्रहाराउ

(514) At the end of the line the scribe not only does not conclude the टवणि but also continues, the verse enumeration the same as it is

(515) The MS not only does not note the end of the previous टवणि but also keeps on the enumeration. We have separated the thavani but kept the stanza-enumeration as found in the MS

राइ बोलावी बहू हिडब "अम्हि वसीसइ वेस विडवि
तुम्हि सिधावउ तायह राजि समरी आवे अम्ह काजि ॥ २४ ॥

525 करि रखवानु थापणि तणु अजीउ फिरेवु अम्हि वनि घणु "
नभी हिडबा पाळी जाइ बापराजि घणियाणी थाइ ॥ २५ ॥
अन दिवसि बभणु सकुटब रल जिम विनवइ पाठइ शु व
पूछइ भीमु करो एव तु "आविउ दूखु किमु अचिनु ॥ २६ ॥

बडुया साभलि" बभणु भणइ "ए विवहारु नयरि अम्ह तणी
530 विद्यामिठी राखसु हूउ वक नामि छइ जम नउ हूउ ॥ २७ ॥
विद्या जोवा तीण पनासि पहिलु मिना रबी आकासि
राजा भाडी अवग्रह लीउ "पइदिणि नरु एकेवउ दोउ ॥ २८ ॥
चीठी काडइ निनू कू पारि आवइ बारउ जण विवहारि
भाडु अम्हारइ आविउ हूउ भासु न छूटउ हु अणमूउ ॥ २९ ॥

535 कवलि वयणु छु कूडउ थाइ जउ तवि आया पडवराय"
पूछीउ भीमि कया प्रवधु वणि जाई वय राखसु हूउ ॥ ३० ॥

॥ वस्तु ॥

बधु विणासी बधु विणासी भीमु आवेइ
बडावइ जणु मयलु 'जीवनानु तइ देव दिडउ
केवलिवयणु छु सचु विउ त्रिहु भुयणि जमवाउ लिडउ"
540 पचइ पडवटा वमइ तीछे बभणवेसि
वान मइ जण जण मिनी दुरयोधा नइ वसि ॥ ३१ ॥

राति माहे राति माहे हई प्रचटन
तउ जाइ द्वैतनगि तमइ धामि उडवा करो नइ
पुष्प प्रियवटु पाठविउ विदुरि यान वव नी मुणो नइ
545 पय पणमी मा वीनवइ दुरयापनु नु मधु
'तुम् पासि ए आविसिइ करणु दुरयाधन गत्र ॥ ३२ ॥

ईम निमुणीउ ईम निमुणीउ भणइ पचानि
"वणि रचना अम्ह रणइ अजीय गत्र मिउ मिउ करमिइ

(540) The scribe has missed वमइ in the MS - some such word वमइ or पचइ is metrically necessary. The sense too needs it वमइ is therefore

- राजसिद्धि अष्टह तणी लइय जेण हिव सिउ हरेगिद
 550 पचानी मनि परिमवी वानइ मल्ही लान
 पाचइजण कइ हुमिद तुम्हि रिमाइ वाज ॥ ३३ ॥
 माए हूई माइ हूइ वाइ नवि बकि
 अए जाया नवि मूधा तुम्ह रात्रु नाई दवि निठउ
 पुपउत नारा अउइ ताह माहि तुम्हि अजमु लिठउ
 555 कमि धरानइ ताणाउ दुमामणि दुरचारि
 यान्पणि हु नवि मूई वाइ पुम्ह नारि" ॥ ३४ ॥
 रामु नामाउ रामु नामाउ भामि अत्रु परिष
 राउ भणइ ता एमए मुम वयणु जा धरधि पुम्हई
 पचानी रामवास अजमि अति अष्ट वात्रु सिमई
 560 गच्छ वयणु मनि परिउरउ मानउ जियधर्ममूत्रु
 गत्यत्रयणि ॥ पायाइ भवनायर परकूत्रु" ॥ ३५ ॥
 एमयणि दूधयणि राउ अत्रिउ
 गिरि गधमायण गिया एरात्रु तमु मिहइ निठऊ
 मुवनानी अरत्रुनु उइ नमीउ तिलु तमु मिहइ बइठऊ
 565 विजा गवि मित्रिणि गद जा एगइ वणराइ
 भाइडी आराणाउ ता एकु मूषइ पाए ॥ ३६ ॥

(अचणि ॥ १० ॥)

- मूयर एवा मन्त्रिउ वाणु अरत्रुन मिउ कुणु करइ मंभाणु
 तिणि विणि मन्त्रिउ वणपरिवाणु उठिउ यमणि हूइ अग्रमाणु ॥ ३७ ॥
 अरत्रुन वनचए नागउ वाहु करउ भूमि उतारउ नाहु
 570 एवमर वारणि भूमइ बउ करइ पराभा ईवर देउ ॥ ३८ ॥
 एवा अत्रुन सवि हवायार मानमूक बउ करइ अवार

(559) The MS has मिमई for मिमई

(561) The first letter of the word एउ is moth-erten It might be but one cannot be certain

(567) The MS continues the enumeration without separating a thrani I have separated the they and preserved the enumeration

साहिउ मरुनि वनवर पाणि प्रकटु हई बानइ "वर माणि" ॥ ३६ ॥

मरुनु बोनइ "वर भडारि पाछइ आवइ सउ उपगारि"

सवर बोनइ सामलि 'सामि गिरि वेयडु सुणीइ नामि ॥ ४० ॥

575 इद्र प्रथइ रहनु पुरराउ विज्जमालि त सहडउ भाउ

चपलु मणी नइ बाढिउ राइ रोसि चढिउ राखमपुरि जाइ ॥ ४१ ॥

इ द्रवणु इकु तुम्हि सामनउ वरीउ पसाउ नइ दाणव दल

हरलिउ भरखुनु जा रधि चढिउ दाणवधरि बु बारवु पडिउ ॥ ४२ ॥

ममुर विणासी चिउ उपगारु इ द्वि लोकि हूउ जयजयवारु

580 इद्र तणु ए कीधु बाहु ममुर विणासी लाघउ राहु ॥ ४३ ॥

कवव मउठ अनइ ह्योषार इ द्वि आप्या तिहूयणि सार

धनुषवेदु चित्रगदि दोउ पुनु मणी इ द्वि परठाउ ॥ ४४ ॥

पाछउ आवइ चढीउ विमाणि माढी वधव पणमइ रानि

एतइ कमलु मगामह पडीउ वड्ढी द्रूपदि वरपलि चढिउ ॥ ४५ ॥

585 सवा कमन ना इच्छा करइ भीममनु तउ वनि वनि फिरइ

ममउण देवा बानइ राउ भीम पासि वड्ढिइ जाउ ॥ ४६ ॥

माण न जाणइ लीजिउ सहू ममरो राइ हिन्ना वहु

कुणवु ऊपाडी मेलिउ भीम जाणे दूखह आवा सोम ॥ ४७ ॥

मुषु देखी सवि घटुया तणु पढव कू यन लडारइ धणु

590 जाम हिडवा पायी गई बान ममूरव ता इरुहुई ॥ ४८ ॥

द्रूपदि वयणि सरोवर माहि पड्ढउ भामु भनरइ ठाइ

भामु न दीसइ वनतउ विमइ तउ अपावइ भरखुन तिमइ ॥ ४९ ॥

कैडइ नकुलु अनइ सहउ पाणी बूना तेई बउ

माइ मोकलावी पड्ढउ राउ सविहू हूउ एकु उ ठउ ॥ ५० ॥

595 काइ रोउ न सहइ रानि द्रूपदि कू ती रही ब ध्यानि

मनह माहि समरइ नवकार एहु मनु अम्ह वरिनि मार ॥ ५१ ॥

बीजा दिवमह दिणवर उदइ ध्यान प्रभावि आव्या सइ

(575) भाउ is not in the MS

(589) The MS has नु to which some reader has added
मु thus making up मुनु

(592) The MS has वनत matrically it ought to be वनउ

- ध्वज सावसावावज हाथि एतु पुरुषु धावित छद गाधि ॥ ५२ ॥
 भाइ नमा मनि हरिणु परित पुष्प पाणि बहाइ चरीउ
 600 एव मुनि पामइ बवनानु गयणि पदुचइ इद्र विमानु ॥ ५३ ॥
 तुम्ह उपरि सनहिउ जाम जाणा मुरवइ बानउ ताम
 इ पावित वणि पडिहाउ नम्र पयानिवाउ उपगाह ॥ ५४ ॥
 मताय बउ छइ वाननि रनी इद्रह आम्मु तु घट्ट वहा
 मन्हा पडइ बहइ बध्नि रिणु हयिवारु बाधा भेनि ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥

- 605 नागरामह बध नागरामह बध छटिदि
 न्द्रानि पञ्च नागराइ निजराहु च्छिउ
 क्षा ममावा नरनर मताय रमि अनु वमनु निदउ
 धरतुन मगनि भूभना मपूना गानिदु
 मागाउ भावा तुम्ह पय पंचर तिया मिद ' ॥ ५६ ॥

- 610 वरमि छर वरमि छर द्वैतरणि जा
 दुजान्ण पर परणि मासि मिमर रदताय मण्ड
 पम्भुता वयणुगु पुण इप्पुत्तु निगि मणि मण
 दुरयाधन चित्रमन् मत्ताया उरि पति
 विज्जानराय मय दुरयाधनु उउ मति ॥ ५७ ॥

(टगि ॥ ११ ॥)

- 615 तोउ उगाणि चानि पा पुठि वृमनु पुषिणिरि राइ
 भणु दुरयाधनु अतिम मुधाया तुम्ह पाय जउ मइ वणमाया ॥ ५८ ॥
 पर उपरि दुरयाधनु चउ छर जयद्रव पाउ वर
 निउ थाउ वृता रहि मर धरतुनि आणी मंत्र रगाइ ॥ ५९ ॥
 नाचन वंची वृ वर चानिठ पाया द्रूपणि सउ
 620 अर्जुनु नामु मिदया भइ वर वरु विण्णामिउ द्रूपणि सउ ॥ ६० ॥
 पाच पा मदिठ () मामि मिद उपाय रास

(599) MS पर for धरि

(606) The line is metrically defective

(621) This line is very corrupt Metrically it seems ❀

नवि मारिउ छइ माडी वयणि जिम नवि दीमइ राडी भयणि ॥ ६१ ॥

एतइ नारदु रिपि आवऊ दुयोधन मु मनु करेउ
नार माहि वज्जाविउ पढहु बालिउ दूजणु इम पढवढहु ॥ ६२ ॥

625 "पचह पढव करइ विणामु तह तणी हु पुरु भास"
पूनु पुराहित नउ इम भणइ 'कृत्या नउ वरु छइ अम्ह तणइ ॥ ६३ ॥

कृत्या पासि करावु कामु वयरी नु हु फडउ ठामु"
कृत्या भावा घाई 'सकन वइ माए वइ वरु विजल ॥ ६४ ॥

630 नारदु पढतउ सिल्या देवि पढव बइठा घ्यानु धरेवि
एक पाइ णिएवर द्रौंठि हीयडइ मनु पच परमेठि ॥ ६५ ॥

निम सात जा इण परि जाइ ता अचभू को रणवाइ
एतइ भाविउ कटकु अपारु पढव घाया लई हयोपार ॥ ६६ ॥

घाइइ घाली द्रूपडि देवि साटे मारइ कटकु मिलेवि
मरबुनि जामु वलु निरन्तु राय तण ता सूवउ गलु ॥ ६७ ॥

635 कृत्रिम मरवरि पाणी पोइ पाचइ पुहवा तनि मू छीपइ
सरवर पानि द्रूपडि भिला एकि पुनिइ आणी बनी ॥ ६८ ॥

कृत्या राखमि तणाय जि सही भीलि बानी ऊमी रही
मणि माना नु पाया नाक पाचइ ह्या प्रवटसरोर ॥ ६९ ॥

॥ वस्तु ॥

पच पढव पच पढव चिति चितति

640 कुणु नरवरु आरोऊ कुणि तलावि जिमनीरु निम्मिउ
कुणि द्रूपडि अपहरीम कुणि पुनि, इम चिति विम्हिउ

अमरु एवु पयडउ हूर बावइ 'साभलि एाह
ए माया सवि मइ करी कृत्या राखवाह ॥ ७० ॥

एतइ भाजतवना हुई द्रूपडि देवि करइ रसवई

⌘ two letters or 3 Matras rhyming with रोम seem wanting Again the MS has नवि मरि repeated before नवि मारिउ of line 622, obviously the scribe's mistake

(631) Two letters मूव and मूवउ are moth eaten and hence conjectural

(644) MS has सवई instead of रसवई

- 645 मासगमणपारणइ मुणि वना पहुतउ वारि नरि ॥ ७१ ॥
 पचइ ५डव पय पणमति अतिविशुनु त मुनिवर न्ति
 वाजा दुदुहि अनु दुदुडी मवर हूती वाचा पठा ॥ ७१ ॥
 मत्सयन्ति जाई नइ रमउ ए तरमउ वरमु नागमउ
 म्या वइरान्ह राय असयानि वत विडव्या नाय अभिमानि ॥ ७२ ॥
- 650 कइ भट्टु दल्लु मुघार भरखुनु हूउ कावावाह
 वउयउ नवुमु भमभउ थाइ सह वारइ नरवइ गाइ ॥ ७३ ॥
 प्रथम पवा ५ काचव मरइ वाजइ दलिणगायह वरइ
 शानउ उत्तरगायह हू पडि वरमु रम परि गमिउ ॥ ७४ ॥
 अभिरनु उत्तरव वरि ररि आवा कृष्णि वागनु मु वरिउ
- 655 पन्तउ सट्टइ कहुडपुरि व्यारि कन्न विहु पडव थरा ॥ ७५ ॥

॥ यस्तु ॥

- दूयभावि दूयभावि गयउ गावानु
 दुजाहण वयणु मुणि एव वारमह भगिउ विज्जइ
 निय अथवि भावाया पडवाह बहु मानु विज्जई
 इदपत्तु तिनपत्तु पुह वारणु विसा व्यारि
- 660 हस्तिनागपुर पाषमु आगउ मत्तइ वारि ॥ ७७ ॥
 भण ५ कुरवु भणइ कुरवु ' ५ व गावि'
 मन् महीयति थणि फिरिया ५ मनु पडव न मानइ
 भु ५ उडी नूयवति एव चाम हिव ५ न पामइ
 इरइ महिनापच जण तीह मिलिउ तु पविल
- 665 ५ उग्रहाणउ सच्चु विउ कूडउ कूडा सक्खि ॥ ७८ ॥
 कन् बालइ कन् बानइ 'भीमवसु जा'
 विमलप्पर वाचवा वहु हिउवु कमार मारिउ
 न् ५ यथवि अर्जुनि दुति वार तुह जाउ उगारिउ
 विदुरि कृपायुरि द्राणि मइ जउ न भिनइ ए राय

(656) The enumeration of these वस्तु st is begun afresh in the MS naming st 77 as st 1 While the st 81 is then marked as st 82 and the last st 82 as st 83

670 तउ जाणु नियकुल नु हिन वउरव नु घर जाइ" ॥ ७६ ॥

पहु पुच्छीउ पहु पुच्छीउ विदुरि घरि कहू
रोसारणु चल्लीयउ मग्गि मिनाउ सहइ नावइ
'दुरयाधनु दुटठमणु किम इव दव अम्ह सलि न आनइ
हिव एउ अम्ह मानु दियउ विहु पलउ तु छडि

675 कउरववस विणासिया वाइ कूडु म माडि" ॥ ८० ॥

मानु जिहउ मानु दिन्हउ कह भग्ग
एवतु घरि अलोउ वन शुभु बु ती पयासीउ
'इह सत्थि वाइ तु मिनिउ जाइ जाइ तु मनि विमामीउ'
कराणु भणइ 'सज्जु कहउ पुणू छह एउ वि नाणू

680 दुरयाधन रीह पापणा मइ वत्सा छइ प्राण" ॥ ८६ ॥

भणइ कहउ भणउ कहउ "वन जालेजि
नवि मानिउ तुम्हि हु एह बात अति दुई विरुई
अम मुक्क घरि अविषा पडुपुन इह बात गरई
दुरयोधनि हु पटवह छठउ कीपउ तोइ

685 रघु खेडिसु भरजुन तणउ ज भावइ त हाउ" ॥ ८२ ॥

(ठवणि ॥ १३ ॥)

व्रतु लेउ विदुर गयउ वन माहि कह वली द्वारावती जाइ
विहु पवि चान दल सामही विहु पवि आवइ भड गहगही ॥ ८३ ॥

जरासिध नउ आविउ दूउ वानकुमर् जई लगइ मूउ
वणिजारा ना बात मामना जरासिधु आवइ तुम्ह भणी ॥ ८४ ॥

690 उत्सव माहे उत्सव एहु सविहु वयरा आया छु

(670) The MS has निवुत्तनु for नियदुत्तनु

(685) MS gives up its enumeration of ठवणि from the VIII If it had kept it up, following its practice upto that point, it is probably that it would have placed the end of ठवणि IX at st 22, of the X at st 36, the XI at st 57, of the XII at st 70 and at st 82 of the XIII This is one of the many points which another MS of the रस if found, will help to clear up

- धमरा ना पणमाय पाय एतद् गत्तु मु परि न जाइ ॥ ८५ ॥
 'वरणु रदद् त्ति शुमानगा व द्मा वान निणि जानइ भणु
 पाचि पवाने ति मनाट् आरिण् पदद् वृ वर अराट् ॥ ८६ ॥
 इ चट् अनु चत्ताट् चिण्णट् अग्रत् मणिनुट्
 695 आविण् उत्तरत् अनु वरत्ता मिनिण् वाग पदत्त नत्त घाट् ॥ ८७ ॥
 धुट्ठमनु मनानो काट् वावत् वत्तदत्त सामहाट्
 परिण् भूमि मरमनि नत्त आरि दत्तु घाटत्त निणि कुण्णवि ॥ ८८ ॥
 वत्तव नद् त्ति गुत्त मगत्त वत्तु दुग्गायनु गत्तु मिनेऊ
 गत्तुनि दुमामणु चत्तु पुत्तु गत्तु भूत्तिवत्ता मगत्तु ॥ ८९ ॥
 700 मिताऊ जरासिनु चत्तु वत्तत्त मत्त वत्तत्त मत्त दूत्त मत्त
 दुरायात्तु अत्ति मत्तत्त चत्तु जात्त जरासिध पाण पत्तत्त ॥ ९० ॥
 पुत्त रत्त पत्तिण् त्ति अत्तत्तापुत्त वत्तत्त रत्तत्त त्ति मत्ता
 चत्त मत्ताना मगत्त प्रत्त वित्ता तुत्तिपा रत्त वत्त ॥ ९१ ॥
 रत्त मिताया वत्तमत्ताय मुत्त गयवर गयमत्ताया
 705 पर अत्तत्ताय मत्तवत्ताय मत्त मत्तिवत्त रत्तत्ताया ।
 रत्तत्ताया मत्ति मत्त नूर अत्तत्ताया रत्तत्ताया
 हत्त गयवर मत्ति मत्ताय रत्तु रत्तत्ताया जत्तुत्ताया ।
 पदत्त वत्त चत्तवत्त चत्त मत्तिगिणि शुण्ण मत्तत्ताया
 गत्त वत्ति गत्त वत्त तुराणि नुराणु रत्तत्ताया रत्तु रत्तत्ताया ।
 710 मिताइ मत्त रत्तवत्त मत्त मत्त नत्त त्ति मत्तत्ताया
 मत्तत्ताया धुत्तत्ताया उत्तमत्त वत्त मत्तत्ताया त्ति मत्तत्ताया ।
 गयत्तत्ताया मत्तत्ताया धार धयवत्त रत्त पात्त
 हत्तमत्तत्ताया मत्तत्ताया मत्तत्ताया मत्तत्ताया त्ति मत्तत्ताया ।
 मत्त मत्त रत्तत्ताया त्ति मत्ति त्ति मत्ति गत्तत्ताया विण्णमत्त
 715 तत्त मत्तत्ताया त्ति मत्ति वत्त मत्त मत्ति विमानत्ताया ।
 मत्तत्ताया गत्तिवत्ति मत्ति वत्त मत्त मत्त मत्त पात्ता

- 703) This stanza is numbered 92 in the MS and there is ॥ ८८ ॥ showing the loss of the metre. The new metre begins thereafter and stanza-enumeration ceases.

ताम सिखडीय तणीय बुद्धि तऊ बाहि त्रिखडीऊ ।

भरजुनु पूठि सिखडीयाह बइसी सर मकइ
पढीऊ पोयामहु समर माहि किम भरजुनु चूबइ ।

720 त्रिगवा सरु रहावीयऊ सरि गगा भाणी
कऊतिष्ठु दाखीऊ कऊरनाह पोऊ पायु पाणी ।

इग्यारमइ त्रिवसि दाणि ऊठवणा काजइ
माहु मपडवु कइ मदाणू इम भनि चीतीजइ ।

काहल बलयल डक्क धूक् प्रथक् नीसाणा

725 तऊ मल्हाऊ भगन्ति राइ गजु कराऊ सडाणा ।

चूरइ रहवइ नरकरोडि दतूमलि डारइ
भरजुन पावइ पडवटु हणतु कुणु वारइ ।

दाणव दलि जिम दडवडतु दती देखी नइ
घायऊ भरजुनु धसमसंनू घयरी मूवी नइ ।

780 दिणि मायमतइ हरिणऊ हाथि हरि पडव हरलीया
त्रिणि तेरमइ चक्रव्यूह गऊ कऊरवि माडीय ।

भजुनु गिऊ घनि भूझिवा तिणि भभिवनु पइसइ
मारीऊ जयन्ति करीऊ भूझु तऊ भरजुनु रुसइ ।

करीऊ प्रतिभा चढीऊ भूमि जयन्ति रणि पाडइ
735 भूरिप्रवा नऊ तीण समइ सरि बाहु विडारइ ।

सत्यकु छेदिऊ बलिहि सीसू तमु दिणि चऊदमइ
रोतिहि भूझइ विसम भूझि गुरु पडइ कीमइ ।

कूडऊ बोलइ धरमपूनु हवीयार छडावइ
छेन्डि मस्तकु घृष्टधुमनि क्रमु सिउ न करावइ ।

740 बार पहर तऊ चडाऊ रामि गुरनगु भूझइ
रणि पाडिऊ भगदतु राऊ कऊरव दल मभइ ।

वरि करवातु छु करीऊ करणू समहरि रणू माडइ
फारक पायव तूरम नाग नवि कोई छडइ ।

धूलि मिलीय भलमलीय सवल त्रिसि त्रिणयरु छाईऊ
745 गयणे दुडुहि दमदमीय मूरवरिजसु गार्डिऊ ।

पाडइ चिष कदध वध घरमटनि रोनइ
वाणि विनागि विनगि कवि घरामण धधानइ ।
कूटु करोऊ गाविनि न्नि रघु घरगिनि खनऊ
माराऊ अरजुनि वरणू कूडि रणि अणभूमनऊ ।

750 गायु गानुनि वऊ हणाय बनि नकूनि सट्ठवि
सरवरमाहि वणायामऊ दुरयाधनु दैवि ।
राइ मनाउ ममायायऊ नीमिहि मू भिडऊ
गणहारि गणाय जाव मनि मातु मू फटिऊ ।

755 एठऊ राम मनानिया जा ५८४ जाइ
कृपु कृतवर्म आमनामता तित्ठ पाइ ।
पाठनानि पासी करू कूटु पावऊ रतिवऊ
निहणाय पच पचान वाव अनु रावणि जाऊ ।
मीमू तिमिडा तणऊ नासु छगऊ द्रुतु माथाऊ
पाप परामन नर प्रवमि मनिमासु विराधीऊ ।

760 कहटि बापीऊ मूषण नातु मनु मातु निवागऊ
पणु मूनाय नपरि परायणि परिवाराय ।

॥ वन्नु ॥

नातु तित्ठ नातु तित्ठ कह उदणमि
तहि अरजुनि मिनि आगिणय मरु अगि उठाय
बह दुन्नु मणि चिनहाय ८४४५५ नयणि बुन्नीय
765 कह सऊ पराटवीट कृणवि निवारा रामु
हणिणात्तुरि आवीया अनि आणुत्ति नातु ॥

(746) वर after ववध is not in the MS the addition is conjectural

(764) वतु in दुन्नु is moth-eaten, hence it is conjectural

(765) The MS has पराउवाउ for परीवारा

(766) The MS has ठवणि and not the number written in it

(ठवणि ॥ १४ ॥)

- यापीऊ पडव राजि कहडु ए उत्सवु अति करण
 कूलविहि नवि गधारि धयरहू ए राऊ मनावीऊ ए ।
 770 हरीयग द्वपनि दवि इरू दिणू ए नारद परिभवि ए
 वेह रहइ कहू जार्णवि सुद्रह ए माहि वाटडी ए ।
 प्राणीय घामुकी पटि देवीय ए अरि वसि घानीया ए
 पहुतना पासि गमेय जय तणी ए सामनइ वानडी ए ।
 ऊपनु केवलनाणु सामीय ए ननि जिणोसरह ए
 सामनी मामि बख्ताणू निरता ए सावयवतु धरइ ए ।
 775 वरतीय दसि अमारि नामिक ए जाईऊ जिणू नमइ ए
 दिणि दिणि नीजइ दाव पूजीय ए जिण भूयण ऊपनऊ ए ।
 ऊपनऊ भवह वडराणु वेणू ॥ पीरीयखि पाटि प्रतोठिऊ ए
 सामीय गणुहर पासि पाचह ए हरिखिहि वनू लिइ ए ।
 सामली बलिभनि वात नियमनू ए पूठए पूछइ प्रभु कह ए
 780 बोनइ गुरु धर्मघाणु 'पुवभनि ए पाच ए कूणबीष ए ।
 वसइ ति अचलह गामि बधव ए पाच ए भाविमा ए
 सूरदऊ सतुन देवु सुमतिऊ ए सुभद्रु सूचाणु ए ।
 सुगुरु दगाधर पासि हरिखिहि ए पाच ए वतु धरए
 कणगावलि तपु एनु बीजऊ ए करइ रणगावली ए ।
 785 मुक्तावलि तपु साम चऊपऊ ए मिहनिक्कीलिऊ ए
 पाचभु भाविनवधमानु तपु तपी ए अणूतरि मवि गिया ए
 चवीयना सुम्हि हूधा पचइ ए भवि ए तिवपुरि पामिमऊ ए
 सामली नेमिनिराणु वारण ए सवणह मूणि बेयणि
 मेनुजि तीथि चदेवि पाचह ए पाडव सिद्धि गिया ए
 790 पडव तणऊ चरीनू जा पडए जो गुणइ मभलए

(772) The MS has पमि for पासि obviously an error, the metrical final ए dropped in this line and also in lines 775, 776

(777) The MS has बाटउ for वेणू

(779) The MS has पुद्रा for पुठ

पाप तण्णु विणु तमुगु रह्द ण हेना होइसि ए
 नीपनऊ नयरि नाऊणि वच्छरी ए चउत्तहोतर ए
 तदुत्तेशीयमूत्र मामिना ण भव अग्नि उधर्या ए
 पुनिमपवमुणि भातिमद ॥ मूरिहि नामोऊ ए
 देवचद्रउपराधि ढटन ण राधु रमाउत्तु ए ॥

॥ इति पञ्चपञ्चचरित्रराम । समाप्त ॥ छ ॥ १ ॥ ❀

(791) The ms has पाप in thaplace of पाप

❀ (आरिण्टन रिमर्च स्पीयूट, बहोना, ने प्रकाशित 'पुनर

रामावनी' ने मामार)

गौतम रास १

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पक्षपाण्डव चरित रामु के पश्चात् काव्य सौष्ठव तथा कथा प्रवाह की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति गौतम रास है। भाषा भाव तथा काव्य इन तीनों रूपों में यह कृति अपन में पूर्ण है। ६०० वर्ष की प्राचीन रचना होने पर भी कृति का पाठ इतना अधिक आकर्षक है कि आज भी मारवाड़ी जैन धारक (नरतर गच्छीय) इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं। राम कई बार प्रशङ्गित हो चुका है। सर्व प्रथम श्री नाथूराम प्रेमी^२ और पश्चात् श्री कामताप्रसाद जैन^३ ने इस कृति के महत्त्व पर प्रकाश डाला। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने 'आलोचनात्मक इतिहास' में इसका उल्लेख किया था।^४ इन विद्वानों ने^५ 'उत्पन्न' मुनि इस भण्डे और कही विजयभद्र मुनि इस भण्डे पाठ मिलन में रचयिता का नाम ही उत्पन्न या विजयभद्र रख दिया पर वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वर्गीय देसाई माह्नलाल^६ तथा श्री अमरचन्द नाट्टा ने^७ इस गूँथ का परिहार कर लिया है। राम का स० १४३० की सबसे प्राचीन प्रति वाकानर बड़े गान भण्डार में सुरक्षित है जिसकी पुष्पिका में—'इति था गौतम स्वामी राम श्री स्तम्भ तीर्थ विहार श्री विनय प्रभोपाध्याये कृत पाठ मिलता है। अतः यह बहुत सम्भव है कि राम

१—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् श्री अमरचन्द नाट्टा का लेख 'गौतम रास व उसके रचयिता' पृष्ठ २-६।

२—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास श्री नाथूराम प्रेमी पृष्ठ ३०। ३—वही।

४—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा, द्वि० स० पृष्ठ १३५-१४२।

५—जैन सिद्धान्त आम्बर भाग २० विभाग २ में प्रशङ्गित-अध्याय १ साहित्य पर प्रो० रामकुमार जैन का उक्त।

६—जन गुरुजर कविया था माह्नलाल देसाई भाग १ पृष्ठ १५।

७—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, गौतमरास, श्री अमरचन्द नाट्टा का लेख।

पाप तणुऊ विणु तमुगु रहइ ण हेला होइसि ए
 नीपनऊ नयरि नाउउणि वच्छरी ए चउउहानर ए
 तहुउपावीषमूत्र मामिना ण भव अम्हि उधर्षा ए
 पुनिमपवमुणि मामिम ण मूरिहि नामोऊ ए
 त्वचउउपराधि ५८४ ण राउ राउउउ ए ॥

॥ इति पंचांगचरित्रराग । समाप्त ॥ ॥ १ ॥ ॐ

(791) The ms has पाप in thaplace of पाप

ॐ (पौराणिक रिमर्ष चरित्र, बहोना, मे प्रकाशित 'पूर्व
 रागावली' मे मामार)

गौतम रास १

१५वां शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पञ्चपाण्डव चरित राम के पश्चात् काव्य सौष्ठव तथा कथा प्रवाह की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति गौतम रास है। भाषा, भाव, तथा वाच्य इन तीनों रूपों में यह कृति अपने में पूर्ण है। ६०० वर्ष की प्राचीन रचना होने पर भी कृति का पाठ रचना अधिन लोचप्रिय है कि आज भी मारवाणी जैन थावर (श्वरतर गच्छीय) इसका प्रतिदिन पाठ करने हैं। राम नई बार प्रकाशित हो चुका है। सब प्रथम श्री नाथूराम प्रभो^२ और पश्चात् श्री कामताप्रमाण जैन^३ ने इस कृति के महत्व पर प्रकाश डाला। डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने ग्रन्थोपनात्मक इतिहास में इसका उल्लेख किया था।^४ इन विद्वानों ने^५ 'उन्मयवत् मुनि' इस भण्डे और कहीं विजयभद्र मुनि इस भण्डे पाठ भिन्न में रचयिता का नाम ही उन्मयवत् या विजयभद्र रख दिया पर वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वर्गीय देसाई माहनलाल^६ तथा श्री अग्ररचन नाट्टा ने^७ इस भूत का परिहार कर दिया है। राम की स० १४३० की सबसे प्राचीन प्रति बीकानेर बड़े नान भण्डार में सुरक्षित है जिसकी पुष्पिका में—इति श्री गौतम स्वामी रास श्री स्तम्भ तीर्थ विहारे श्री विनय प्रभोपाध्याये कृत, पाठ मिलता है। अतः यह बहुत सम्भव है कि राम

१—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, श्री अग्ररचन नाट्टा का लेख 'गौतम रास' व उसके रचयिता पृष्ठ २-६।

२—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास श्री नाथूराम प्रभो, पृष्ठ ३२। ३—वही।

४—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, द्वि० स० पृष्ठ १३४-१४२।

५—जैन सिद्धांत भास्कर भाग २०, विरग २ में प्रकाशित—अपभ्रंश साहित्य पर प्रो० रामकुमार जैन का लेख।

६—अन गुजर कविया श्री माहनलाल देसाई भाग १ पृष्ठ १५।

७—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, गौतमरास, श्री अग्ररचन नाट्टा का लेख।

की रचना सं० १४१२ में गौतम स्वामी के वैवल्य ज्ञान प्राप्ति दिवस पर खमात में श्री विजयप्रभ उपाध्याय ने की हो। कृति के पद्या में भी अनेक पाठांतर मिलते हैं तथा विभिन्न प्रतियां में पद्या की संख्या भी भिन्न भिन्न है।

रामचरित स्वयं प्रसिद्ध मुनि श्रीर कवि थे अतः १४३१ की कृति में उपरन्ध पाठ में ज्ञान होता है कि रामचरित न यह पाठ भी सं० १४१२ में ही गौतम स्वामी के वैवल्य महोत्सव पर्व पर लिखा हो। प्रति की प्रतिलिपि प्रभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में उपरन्ध है।

प्रसूत राम चरित सूक्त है। प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर महावीर के प्रथम गणधर गौतम की मायना का द्धम विस्तृत वर्णन है। रास घटना प्रधान और भाव प्रधान ज्ञान का समन्वित रूप है। राम की कथा विचित्र घटनाओं से सजाई गई है, जिनके वर्णन में कवि का वाच्य-कौशल परिलक्षित होता है।

गौतम का मूल नाम इन्द्रभूति था वह गौतम उनका नाम। मगध प्रदेश में राजगृह के समीप गुप्तर गांव में उनका जन्म हुआ। उनके पिता की ऊँचाई ७ हाथ था। इन्द्रभूति ५०० गिण्या के प्रतिभांगारी एवं असाधारण विद्वान् गुरु थे। एक बार श्री महात्मार स्वामी पावापुरी आये वहाँ उन्होंने समवसरण बनाया। हजारों स्त्री-पुरुषों के श्रवणार्थ का वहाँ ज्ञान एवं गौतम को अपना पालन हुआ। वे ५०० गिण्या महिन महात्मार स्वामी से गार्श्वार्थ करने पहुँचे। महावीर ने उनका समपादन बना के प्रमाणित किया। इन्द्रभूति ने महावीर से स्निग्ध प्रणाम करने। ५०० गिण्या भी लिखित हुए और गौतम प्रथम गणधर कहलाये। अनुक्रम में ११ प्रधान वंश ज्ञानार्थ ने महावीर का गिण्यत्व स्वीकार किया। गौतम के अतिरिक्त जो भा महावीर से दीक्षित होता उसे वैवल्य ज्ञान प्राप्त हो जाता था। श्रान्तिाय के मन्त्रों एवं जिनानया से दीक्षित गौतम ने रास में एक पान में अमृत गुप्तर में सब तापमा को खाद श्री के लीर लिखाई अतः वे ५०० तापमा ही रमती हैं गये। ५०० को महावीर का समवसरण श्रवण हो वैवल्य ज्ञान मिला। उस तरह १४०३ तपस्वी वैवरा हो गये पर गौतम का वैवल्य ज्ञान नहीं मिला सका क्योंकि महावीर के प्रति उनके मन में राग था। ७७ वर्ष की आयु में गौतम का निवृत्तवर्ति ग्राम में उपनिषद् भेजकर महावीर ने निवर्ण प्राप्त किया। गौतम का वंश पान हुआ उन्नीस सांचा महावीर ने अन्त समय में मुक्त यह साचकर कि गौतम वानर का तरह पाँछा पकड़ कर भुभुभ वैवल्य मागगा दूर भेज दिया। मुझे सुनावे में डाल दिया सच्चा मन्त्र नहीं दिया। विनाश करत हुए उनके मनमें यह बात आई कि महात्मार का वानरामी वे, उनके साथ राम भाव कैसा ? और ज्ञान

प्राप्ति के साथ ही वे बैवली बन गये । गौतम ५० वर्ष तक गृहस्थ रहे । ३० वर्ष तक समयी रहे और १२ वर्ष तक बैवली रूप में विचरे और १२ वर्ष की आयु में मोक्षगामी हुए । क्या का सार यही है ।

सम्पूर्ण काव्य में कवि ने घटनाओं का चयन, तथा गौतम का चित्रण उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के उत्कृष्ट वर्णन के माध्यम से किया है । प्रकृति वर्णन में भी कवि की सान्नीध्य नहीं है । पूरा काव्य चरित भूतक आख्यान है । जिसकी कथा वस्तु धार्मिक है । तथा गौतम व महावीर की साधना से सम्बद्ध है ।

गौतम राम एक ऐसा खण्ड काव्य है, जिसका उद्देश्य जीवन को आध्यात्मिक और साधना की ओर उन्मुख करना है । बिहार के ही नहीं, समस्त मानव समाज की प्रवृत्तियाँ में निवृत्त कर सद्प्रवृत्तियों की ओर आह्वान ही प्रस्तुत रास का सन्देश है । एतदर्थ रास के प्रमुख-प्रमुख काव्यात्मक स्थलों का निरीक्षण किया जा सकता है ।

कवि ने समवसरण की रचना में पर्याप्त उत्साह दिखाया है । इन्द्रमूर्ति की स्पर्धा और पाँच सौ दिव्या सहित समवसरण में जाकर महावीर ने साक्षात्कार करना और महावीर का वेद उक्तियाँ में उसे समझाना गौतम का दीक्षित होना, प्रथम गणधर बनना तथा गौतम द्वारा सूर्य किरण पर चढ़कर २४ तीर्थक्षेत्रों के मंदिर में जाना और पुनः अनेक तपस्वियों को कवली बनाना आदि अनेक स्थल गेयता और काव्यमयता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं —

जोजन भूमि ममोसरणू पेल्लइ प्रथमारभि
दसनिमि देखइ विबुधवधू आवति सरभि
मणिगम तोरण दड धज कउसी मे नववाट
वयर विवज्जितु जतुणए प्रतिहारिज भाठ
सुरनर किन्नर घरवर इद्र इद्राणिराय
चित्तिम भुक्किं चीतउ ए सेवता प्रभुपाय
सहस किरण जिम वीर जिणू पेल्लवि रुच विसालु
एहु असर्भ भुमभवण भाचउ धा इद्रियालु
तउ बानावइ भिज्जण गुरो इद्र मुइ नामेण
ओ मुल्ल ससा सामि मवि फेडइ वहु पणए
मानु मेत्ति मण्डलि करे भगतिहि नामइ सोमु
वधव सजम भुगिणव करे भगनि मुइ आवेइ
नाम नेइ आमावि करे त पुण प्रति बोवेई

गच्छन् गंगि अभिमानि तापमत्रा मनि चातक
 मा मुनि चट्टित वणि घातववि त्तिनकर विरण
 कंचन मणि त्तिनन न्दकनम धयवउ सहित
 पसइ परमाणुति त्तिनहृद नरदमद विहृद उ
 निय निय काम प्रमाणि चट्टु त्तिमि मंठिय त्तिनन विउ
 पणुमवि मन त्तिनमि गानन गणुहृद तहि वमिउ (२६-२७)

राम का प्रकृति त्तिनन कवि क काव्य कीमत का जागृक प्रमाण है।
 कवि ने गीतम स्वामी की साधना और गाननेता का वर्णन प्रकृति के उदात्तताओं
 द्वारा किया है। कवि ने श्री गीतम गणुपर में महापुरुषों के सभी धनमय गुणों
 का समावेश किया है। इनका व्यतिरेक कवि ने वही हा कुणवता में तथा बड़े
 विविध उदात्तता से निमित्त किया है। उपमा और उत्प्रेक्षाएँ सरल हैं। वर्णन
 का लय सुन्दर है तथा विविध उत्प्रेक्षाएँ नष्ट हैं —

जिम महवर्णि कादन त्तिनन
 जिम हृदुमह वनि परिमन द्दकन त्तिन चनि मोरुध विधि
 जिम गगानमु त्तिनरि त्तिन न्दक
 जिम कणुमात्रु मन्तिन जनक त्तिन तिम गायम मोरुधानिधि
 जिम मानम सरि निवसइ इंधा
 जिम मुरवर मिरि कणुनवत सा जिम महवर रावीव टनि
 जिम रमणाय रमणिहि विरधन,
 जिम म धरि तागणु विरमन तिम गायमु गुण कलिबनि
 पुत्रिम त्तिगि जिम ममिह मा
 मुरन मन्तिमा जिम जगुमाह पुरव त्तिम जिम मन्मकरा
 पंचानु जिम गिरिवरि रात्र
 नरवर धरि जिम भयान गात्र तिम तिम मामनि मुनिवरा
 जिम हृ तन्वरि मान्द मावा
 जिम उत्तमि मुलि मन्दा भागा जिम वनि कनकि महमद
 जिम नुमिन्ति मुपवनि चमन
 जिम तिम मन्तिरि घटा रगुवद गोदम त्वमिन्ति गृहण (२८-४१)

गायक की एक कल्प स्थिति का चित्रण बना मासिक है जब महावीर
 निर्वाण का प्राप्त होते हैं और गीतम का समावेश के गाव म प्रतिबाध का प्रेषित
 कर देने हैं। गीतम नन् जान न्दक वानकों का तरह पृष्ठ पदन हैं और इसी

विलाप में उन्हें महावीर के वीतरागा होने का ज्ञान होता है तथा उनका जितना राग महावीर के साथ था, वह सब छूट जाता है और बैबली बन जाते हैं। उनके मन के अतर्द्धन्ध को कवि चित्रण करना चाहता है। महावीर के जाने के बाद गौतम के मन में उठने वाले सवत्स विवत्स—“मुझे दूर भेज दिया, लोक-व्यवहार का पालन नहीं किया।’ हे प्रभो ! आपने सोचा होगा गौतम बालक की तरह पीछा पकड़ कर मुझमें बैबल्य मागेगा। आपने मुझे भुनाव में डाल दिया, सच्चा स्नेह प्रकट नहीं किया’ आदि—बड़ी ही मार्मिकता प्रस्तुत करते हैं। कारुण्य दृश्य गौतम विलाप करते हैं—

प्रयीउ ए गायमु भामि देवसमी प्रतिबोध किए
 आपणिए ए त्रिशला देवि नरण पत्तड परम पए
 दलतउ ए देव अवासि पेखवि जाणिए जिम समउ
 तउ मुनि ए भनिहि विपाडु नादमद जिय ऊपनउ
 तउ मुनि ए सामिय देखि, भाग कहा हउ टालिउ ए
 जाणतई ए तिहूयण नाहि लाव विवहाह न पालियउ
 प्रति भउ ए ओधउ सामि जाणिए कबलु सागिसिए
 चोतविउ ए बालक जम अहवा केउइ सागिसिए
 हउ किमवीर जिणिए भगतिहि भालउ भौलविउ
 आपण एउ चियउ नहु नाहि न सपए सूचविउ (३३-३५)

और कृति इस तरह निर्वेदात हाकर निखर उठी है। भाषा की दृष्टि से कृति की भाषा पर अपभ्रंश का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है इसका कारण यह है कि सम्भवतः यह कृति १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई है। क्योंकि जिस समय यह रास लिखा गया, उस समय कवि बहुत बृद्ध होगये थे। अतः बहुत सम्भव है कि इसका लेखन काल १४वीं शताब्दी रहा हो।

रचना गेय है। रासकर्त्ता ने रास के सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहा। रचना का देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रास गीति तत्व प्रधान है तथा अस्मितमूलक शब्द काय है।

प्रति के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है स० १४३० कार्तिक सुदि प्रतिपत्तया देव ॥ स्तवन पुस्तक ॥ (बड़ा जान भण्डार, बीकानेर की प्रति)

इस प्रकार १५वां शताब्दी की उपलब्ध प्रमुख रचनाओं में श्री विनयप्रभ उपाध्याय विरचित गौतम रास का स्थान भी महत्पूर्ण है।

कलिकाल रास '

नारान गुरि १/वा गतांग क प्रमुख कविया म ग रह है, जिनकी इस गतांग म क मन्त्रवूर्ण कृतियाँ मिलती है। जिनम कम्पुगार मन्त्रांग राम (म० १/६८) गार्ग भद्रराम जनु स्वामा गवाहना म० १/६८/ विद्याविनाम गवाहा स्पृतिमद्र गारुडामा धानि प्रमुख है जिन पर यथावमर प्रकाश डाला जायगा। कनिकात राम भा अरुन ग प्रकार की रचना है। कनिकात राम कनियुग का परिस्मृतिया और गुणा पर प्रकाश पानता है। म गतांग में राम मन्त्र रचनाया म य मयन प्रकार की पन्ना रचना है। कनियुग का नाक-स्थिति का वर्णन मन्त्रांग म मिल जाता है। जिन म बाण कवि का कवि चरित्र ७० १६७८ सर्वप्रथम मिलता है। म १७०० म गना चन्द्रकन कनिकरित्र और स० १८८५ म रमिक गाविन् हन कनियुग गमा म धानि ग्रन्थ मिलता है। परन्तु प्रस्तुत राम बाण क कनिकरित्र म भा २०० वर्ष पुराना रचना है। इसका प्रति जयनमर क जन भण्डार म है तथा प्रतिनिधि धमज जन प्रकाशय म उपलब्ध है। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जाधपुर क एक गुप्त म भा मका प्रारम्भिक २८ गवाण मिला है। रचना प्रकाशित है।

या हारान् मूरि का यह रचना १५वां शताब्दी का है।
चित्रम इनका भाषा सरल रसमयाना या प्राचीन हिन्दी है। कवि ने वर्णन में
मयार्य का सहारा लिया है तथा कतिपय व कटु मठ प्रभुमवा का प्रविष्ट
रक्ता व पान में स्थान करके में बड़ा सुन्दर रखा है। १५वां शताब्दी में
मुसलमानों का राज में हुए अत्याचार कतिपय व ही प्रभाव बताये गये हैं। प्रभु
राज नामा-... है, जिसमें कवि ने राजन व हर पक्ष पर कवि का प्रभाव
लिखाया है। वृद्धों का स्थिति राजा भाग जिज्ञा वन्तु, दृष्ट्य भाषु शुभ
नायक वन्तु राज तना अनिवार्य अन्ति मन्त्रा परिवर्तित स्थिति पर प्रकाश

(-श्री) अनुमान वर्ष १० घण्टा, मर १ ५० म आ मकरान नाहण
वा कस्कात राय 'गार्व' लख ११/६-४६।

२-बहा ।

डाना है। इस तरह की कलिकाल सम्बन्धी रचनाएं परवर्ती राजस्थानी कवियों की अनेक मिलती हैं।

कवि की यह रचना भास, वस्तु ठगण, ठउणु पाग आदि पापका के प्रसंगत विभाजित करके लिखी गई है। कवि ने वीर जिनद्र तथा सरस्वती का स्मरण कर रास प्रारम्भ किया है।

प्रारम्भ में ही कवि कलियुग की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करता है तथा कलियुग के प्रभाव बताना है। वर्गन सरन वाक्य छोट भावपूर्ण तथा भागा अत्यन्त मरन है —

बार जिलेसर पामियनाणु कहिउ कलियुग यणउ प्रमाणु
समइ ममइ बहुपुणनी हाणि ईणिवचनि सहइ हिव जाणि
पुहवीय यरसइ थोडामेह चाडा भायु गणा सदेह
राविस हपि हुमा भूराज अयावी नइ अति विकरान
नकरइ लाक तणा मुरसार, लाक हुमा हिव सविनिरपार
अति निमधन दीमइ दातार कृपणह धरि लिखिमा अवतार
पुण्यवत हुई क्षयउ ततकाल पापी नर जीवइ धिरकान
भौपथ म कूअ अप्रमाण, खारिय विद्या नहिय मुजाण
अ तरग गयउ नह विसान, विरला दीसइ अत मुगान
दव सवि हुमा निप्रभाव के न दीसइ सरन सुभाज
काइ न पालइ बात्मा बोल सहइ नासत हूउ निटोन
काई न गीसइ शुणि गभार सहइ हुमा अबल अधीर

विनय विवेक, लोभ साज सब दूर हो गई। साहस तब संसार में नहीं रहा। कलियुग के प्रभाव से दान और दानशील दोनों मिट गए हैं। परमार्थ का विनाश और पावण्ड का प्रचार बढ़ चुका है। क्षमा होने होगई भार कटु थाणी का क्रम बढ़ गया है —

नीला साज गई प्रतिदूर परिनदा छइ एकइ पूरि
विनय विवेक गया अचार दयातणो थोडा करइ सारि
साहस सत्व नहा सखार रगरती नही हिया मभार

दान दाकिन दान दाकिर गया परेसि
कृपान पउ हूउ धणु छतइ हव्य खाइन पीइ
ज भचइ घट भाभणउ किमु दानते कृपण दोह

इहा मन रचावणा मानाय धान करति
धरि धावतइ धाहगइ नामत नामाय जति (वस्तु ११)

चारा वरुणों का स्थिति भा कवि न बडा न्ययाय न्मिना है । पते क प्रमा स्वार्थी मित्रा तथा विण हूण उपकार का न मानन जाना की स्थिति भी बल्लवनीय है —

बभग कुव भावरहि हीण विनोयनाक धनत्रिहि लाग
मूग साव मनि नवि धरइ
पाणि तगइ मिति डाहइ सहस्र वणिइ साहिज हूमा बहुम
निरन्य कर्म समाधरइ

भाप सकारधि सहइ काई परवडू उर निरवउ काई
काज विणमग भति घणाए
भाप भरमि मइ वडुनहु माधर धरय न्मिनाइ छेहु
भरय मित्र धमृनामणाए
काइ न जाणइ ह्माकामा कृतघन नाक सब दिव हूमा (वस्तु १४)

कुछ भद्रभुन तय्या के द्वारा भी कवि न काव्य-बोधन एक कलियुगा प्रमावा का परिचय दिया है । काव्य का न जाना मति का निष्ठुर होना धर्ममार्गों में हुए अनेक प्रचलित मत मतानरा का वर्णन तथा सत्य में दूर कूटबाणा वाचा का सम्मान आदि चित्र कवि न बडे हा माहक गैला में प्रस्तुत किये हैं —

मेर समान किया उपहार सरमव ममवति गणइ ममार
अवगुण एउ न बीसरइ ए
पणि पणि जोइ टिहरे अपार नवि जोई भापण भाधार
अभि कुरा मारमि अनुमरउ ए
हू गरि अरि उरतइ नई पा ह्मिइ त गणइ तय
भापण पु मावइ वणउ ए
न्याय पाउउ पाय अनरउ निम्नारीय महि कहिइ अनरउ
ज गुण हूई त धारण ए

धरम मारण धरम मारण हूमा वडु भउ
ज पुदि जई उ कहिए धर्म माणु अभि कहउ गवउ

भापि प्रगसातगि सहृम भ्रवर घम्म मुहि कहउ कचउ
 म धउ भफा बाहुडी भाविम वेडि लग्न
 जाग्न नयरह मणी वरण दिम्बाउइ मग
 साच कोई माह कोई बोनति

साचइ राचइ कोई नवि कूढ कपट सहृइ पतीजइ
 यथा भ्रमयकुमार जिम धरम दमि वधीय लीजइ
 कूउ वचन वानइ जिके माया रचिह अपार

घडइ वेगिहि घडइ वेगिहि मयउ वैसास
 द्रोह मित्र वनत्र सुत भाइबाप गुरु किसइ सेतइ
 देव हृदय धरि वावरइ, लोभ भय नयणे न देख
 भाप बाप कुन गुरु तणो मानइ नवि भासक
 सरल भान विहि वानता हेल्हि घडइ कसक
 दोहिलि घणीय सहृतडा उपति किसी न होइ
 हूमर पेट हूमा घणउ तिणि दुखिउ सह कोई (वस्तु ३७-३८)

कवि के वाक्य छोटे, सैली उपपेक्षात्मक और दक्षिण है। प्रस्तुत काव्य जन-काव्य है अतः कलियुग सम्बन्धी समस्त स्थितियाँ और मर्यादाओं का लोप कवि ने बताया है। व्यवहारिक जीवन में कवि की वाणी एकदम मर्याद है। मुनियों के लिए कवि ने एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खींचा है। भाषा की सरलता, आलंकारिता तथा कथा-रस की भाँति जनरस पर विजय पाने वाला प्रस्तुत रस है जिसको पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है। साहित्य का उपयोग यही है कि वह व्यवहारिक जीवन के लिए निरन्तर उपाय व हितकारक एवं मार्ग प्रदर्शन करने वाला हो। कवि ने मुनियाँ तथा धात्रवा का कलियुगी कायाकल्प बताया है। उद्धरण उल्लेखनीय है —

मुणिवर मछरि आगला ए पनि पनि करइ विरोध
 एकइ मारगि अतरउ ए, आणइ अतिहि अबोध
 बाहि लोहि महि मोहिया ए मारगि नवि चालति
 आप प्रगसा तप करइ ए, परनिदा बोलति
 लोव तणा मन रजिव ए वयणि धरइ वय रागु
 साचा धरम ह उपरिई ए, नवि दोसइ अनुराग
 पचविपय जोता नहीं ए, जिणि हिच्यारि कपाय
 तेह तेहरइ सजमि करीए, जीवन तणउ उपाय

ता मन रचायगा मान्य दान कति
परि आवन आगन नामन भामन जति (वस्तु ११)

बारा वरों का स्थिति भा कवि न उदा अनाय निम्ना है । पैग क प्रमा स्वायों मित्रा तथा विष्ट हृष्ट उपकार का न मानन गाना का स्थिति भी उल्लेखनाय है —

वमगु कुन आचरि हान विधायना मनत्रिहि साग
मृग साक मनि मनि घरण
पाणि तणइ मिमि डाण सुदुम वणिइ माणि हृष्टा बहू
निरण्य कर्ने मनावरण

घात मकारि महुइ का परवडु डर विरव काइ
कात्र निगुमण भति घणाए
घात घरि मइ अणु साण घरय निवारइ छु
घरय मित्र अनुमानाए
काइ न जणइ टाकाणा, कृत्तन ताक मव निव हृष्टा (वस्तु १४)

कुछ प्रसून लणों क द्वारा भा कवि न वाक्य-कौशल एवं कवियुगा प्रभावों का परिचय निम्ना है । वाक्य का एक जाना मति का निष्ठुर हाना धममागों में हुए अनक प्रचलित मत मनानना का वगल तथा मय न दूर कृत्वाणा बाणों का सम्मान आनि चित्र कवि न व न मायक नैमा में प्रसून किय हैं —

म ममान दिना उगार सरवत्र मन्वदि गउइ गमार
अकणु एक न वासरइ ए
नी पणि जा डिडे अर निव न आण साधार
अहि कृत्त नारी अनुसर ए
न रि करि वरुण नेव न हृष्टि ए गउइ तत्र
मान पु माइ घउट ए
दक्ष गोट नो अर विसारा मदि कहि अरउ
अ गु न त धार ए

धरम गरण वरन मारण हृष्टा बहू म
अ पुदि पई त कहि धर्म माण अहि कृत्त वरउ

प्रापि प्राप्तापि सहस्र भ्रवर धम्म मुहि वहउ वचउ
 मघउ अफा वाटुही आविय बडि लग
 जाण नयरह मणी ववण निवाउइ मग
 साच कोई माह कोई बोदति

साचह राचइ कोइ नवि बूड वपट सहइ पतीजइ
 वेशा अभयकुमार जिम धरम दमि वधीय सीज
 बूउ वचन बानइ जिके माया रचिह भगर

वडइ वेगिहि वडइ वेगिहि गयउ वेसास
 द्रोह मित्र वनव सुत माइवाप गुरु किसइ लेखइ
 देव दृष्य धरि बाबरइ, लोभ मघ नयणे न देख
 माय बाउ कुन गुरु तणी मानइ नवि भासक
 सरन भाव बिहि बालता हेगहि वडइ वसव
 दोहिलि पणीय सहस्रदा उपति किसी न हाइ
 दूभर पेट हूमा घगउ तिणि दुखिउ सह कोइ (वस्तु ३७-३८)

कवि के वाक्य छाटे गैली उपदेशात्मक और रुचिकर है। प्रस्तुत काव्य जन-काव्य है अतः कलियुग सम्बन्धी समस्त स्थितियाँ और मर्यादाओं का लोप कवि ने बताया है। व्यंग्यपूर्ण जीवन में कवि की वाणी एकदम यथार्थ है। मुनियों के लिए कवि ने एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खींचा है। भाषा की सरलता आलंकारिता तथा क्या तत्त्व की भाँति जनरुचि पर विजय पाने वाला प्रस्तुत रास है जिसको पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है। साहित्य का उपयोग यही है कि वह व्यवहारिक जीवन के लिए निरन्तर उपानेय व हितकारक एक मार्ग प्रदर्शन करने वाला हो। कवि ने मुनियाँ तथा आववाँ का कलियुगी कायाकल्प बताया है। उद्धरण उल्लेखनीय है —

मुणिवर मछरि आगवा ए पमि पमि वरइ विरोध
 एवइ भारमि अतरउ ए आणइ अतिहि अबोध
 कोहि साहि महि मोहिषा ए भारमि नवि चालति
 आप प्राप्ता तप वरइ ए, परनिना बानति
 लोक तणा मन रजिव ए वपणि घरइ वय रागु
 साचा घरम ह उपरिइ ए नवि दोसइ अनुराग
 पचविषय जोता नहीं ए जिणि हिच्यारि कपाय
 तेह तेहरइ सजमि वरीए जीवन तणउ उपाय

कृत्ति भाव आवक दृष्ट ए, होयदइ अति निरभाव
 समवित धर मुन्दइ कहइ ए, चनावइ बहुभाव
 धरि करमणु महिपी कर ए कुत्रिगज करइ अपार
 हरणाय न्नीय कतिनम ए एउठउ मनि अहंकार
 गुण उपाय मुणइ मना ए नीयन्ड नरि भोजति
 पावर पाणिय भरि बम ए, भोनरि नरि भोजति (छत्रिणि २६)

वस्तुतः पूरा राम कवित्वान का स्वरूप चित्रण करता चला गया है।
 छन्द प्रसरार और रस की दृष्टि से रचना माधुर्यपूर्ण है परन्तु वस्तु, शिथिल
 भाषा, और वर्ण्य विषय की दृष्टि से अत्यन्त मन्दबुद्धिपूर्ण है। रचना की भाषा में
 अपभ्रंश का प्रयोग कूटन पर ही मिलेगा। ऐं शान्त्यानी तथा शुद्धरानी का अर्थ
 ही मिलता है। पर पूरी रचना का सरल हिन्दी का रचना कहा जा सकता है।

कवि ने मर्यादा उल्लंघन का चित्र की धनर सुत्तिया उपाहरण दृष्टान्तों
 और अन्तर्द्वारा द्वारा व्यष्ट किया है। यह स्वन राम का बहुत ही महत्वपूर्ण
 घण्टा है —

अति निरभावन ए ए मुनि पाणि कनेर
 च्यारिइ वर्ग इत्या हृषाण धर माहि जि चार
 माच बाप बधव कुटुब स्तु करइ विरोध
 दोमइ धरि धरि नच नगाए वारणि बिनु क्रोध

लोपीय मुन शुभ तणीय रीति मूकी मर्याप
 भीम नीयता सरइ राग माइइ हृषाण
 नीच मात्र उत्तम तणाण अन्तार मुणीनइ
 माच मूच जे नवि धर त कहिइ अन्तार
 जे धम माया केननदूयण तीर्ण करइ अन्तार
 रणि परिनेता वन्त बात छइ तिनिविमाने
 एहे नगाणि जाणीए ए आयउ कवित्वाने (३६-४३ पृष्ठ ५८-५९)

मूकिय नाचन चम्प मा मन साचन जोउ
 अतरग अरि निरजाण ए नच वसमन धाउ
 दान चीन तप भागना च्यारह जिन मापइ
 सट्ट निमज्ज हाइ धर्म मन मृषी पापइ
 इमुद मुणी मन मुधि राइ था समन्त पाउउ

भगवद् हाराणः भवीय नाय भव अङ्गुमानु (४४-४६)

वस्तुतः राम की वस्तु से ही स्पष्ट हो जाता है कि १५वीं शताब्दी तक माने माने राम को क्या-वस्तु सीमित नहीं रहा तथा उसमें विविध विषयों का भी विवेचन होने लगा। जैसा कि पूर्व पृष्ठा में अथ रामा में विविध विषय वस्तु रामा में वर्णित हुई है उसी भाँति प्रस्तुत राम में भी कवि ने अपनी स्वच्छा में कल्पित का सायोपाग वर्णन किया है जो इस पैमाने पर अन्यत्र दुर्लभ है। भाव ही कवि ने राम मिलने के अन्य उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया है —

चउह छीयासीय बरसि एहवनिवानह रासो
 तोणिह रघोउ मबीय लाय कजि उपदेश निवासो
 भणइ ग्रणइ जे सुण भवि खेनइ नर नारि
 ते मन वासित सुख सहइ ए जाह भवपारे

इस प्रकार १५वीं शताब्दी की राम संगत कृतियाँ में भाषा और विषय की दृष्टि में 'कनिनान राम' का महत्वपूर्ण स्थान है।

सौलहकारण रास

१५वा गतांग का राम रचनामा में एक अंग था राम मानह कारण राम है जिसके रचयिता मदन कवि हैं। यह रचना शिगम्वर भण्डार जयपुर का है। कृति ग्रामर के भण्डार जयपुर (आ शिगम्वर अतिगय मेन कमनी जयपुर के भण्डार) में सुरक्षित है। प्रस्तुत रचना अप्रकाशित है तथा गुटका न० २६२।५४ के पत्र २४२ २४३ पर लिखा है। प्रति का नखन वान सम्भवत १४वा गतांग के ग्रामपास है। मदनकवि अपने समय के शिगम्वर कवियों में प्रमुख कवि हुए हैं जिन्होंने हाविका राम भी लिखा है। प्रसिद्ध शिगम्वर कवि ब्रह्मजिननाम के ये समकालीन थे।

प्रस्तुत राम एक अंग-मा लघु काव्य है जिसमें कवि ने प्रारम्भ में मगनाचरण के पदचान् साधना के लिए तप और तप के लिए १६ कारणों का विधान एक श्रेष्ठ कथा प्रियवता में किया है। प्रियवता का परिचय कवि ने एक दुर्भाग्यातिना गतधमा और पढरोगा युक्त मन्त्रा नुरुपिणा के रूप में किया है जो पूर्व भव में किये अपराध के कारण स्वर्ग गति का प्राप्त हुए थे।

जन्म दावन् भरत जन मागध उन् ममा
राजावृत्त नगर हम प्रभरात्र धनमा
विजया मुन्दर कननाम पराहित महामरमा
प्रियवताता मु नारि पुत्रा गन धरमा
ककान भैरवि राग सहित छन् रूपविदुग्गा

कवि ने पूर्व भव के कर्म मिटाते का प्रचार कथा के द्वारा किया है तथा सान्त्वना कारणों में जो साधना का सफलता और अनुप्या का निर्वाण का प्राप्ति कराने में प्रयत्न करना चाहिये यहाँ सन्तान लिया है। कथा का नायिका एक बार पूर्व भव में आहार ग्रहण करने के लिए आये मुनिया पर दूरे गता है और उसी पाप में वह इस जन्म में भयंकर रागा में ग्रसित होकर नुरुपिणा बन जाता है। इस प्रकार का कारण भुनि उस पूर्व भव में किए पाप और स्व भव में इसका उद्धार करने के १६ कारणों का उल्लेख करते हैं —

राजा महीपाल वेगवतर छद्म रागो
 विसालभी पुत्रि नाम विवक विहारी
 आहार लेवा मुनि इक आया तख्यामा
 आहार लेवा जाम चलिउ निरमल गुण धामा
 गउसि बन्दी तामु उवरि धूकिउ मन्त्र भयो
 राजा छेह लखौ करी तुस धूसठ गीना
 निना गरहा आपु कर मुनिवन्त लजाम्
 कु खरि ते तमु लियउ अनसरण आहारो

और हम प्रकार भित्ति आये युगल कारण मुनि उमे १६ कारणों में सम्पन्न भक्त करने का विधान समझाने हैं। क्या मे धार्मिक तत्व हात हुए भी इस छानी मा वृत्ति में क्या-तत्त्व होने में पाठक या श्रोता की रुचि बनी रहती है। राम रचना का उद्देश्य उपदेश प्रधान है कवि जन-साधारण में किस प्रकार पूर्व भव में किए दुष्कृत्या में इस भव में फल प्राप्ति का सिखावन देकर समय व उपामना के १६ कारणों का क्या मूल में बाधता है।

इन कुली तेरो जनमु हुवा पूरव विन्हे
 मोनह कारण वरत करी तीर्थकर छाड़
 वचन साधना पावनमा कहि साभि विद्याए
 भाव भावि चैन मासि कहि तिहुवारा
 एकाति करि माम एक सायबु पानीज्वड़,
 परिहरि धरि व्यापार सबे मन सुद्धि करीजइ
 त्रि ममिकत धरि पानियर सकानवि काजइ
 त्रमन नान चरित तपा तहि विनउ करीजइ
 मोल बन्तु त्रि पानिण सब दूषण टार
 नान निरतर मार पढउ बहु भगि विसावउ
 भव भव भोग मरीर महि यर राणु धरीज्जइ,
 चारिगन तप चारि भेन सकति पानीज्जइ
 मुनिवर मानु समाधि करो उपमार करज्जइ
 त्रगवि वैयाकन करो नेमे पानिज्जइ
 घरहन त्रव भक्ति करउ सब बीजा त्रानउ
 आचारयु गुन भवि करी भगति प्रतिपान
 नाम्न घना मुनि जा पन्हि त्रि भगति करीजइ
 प्रवचन जानी भगतिहरी निदचउ धानीजइ

बादल प्ररधन पानियड ननि निचउ आणो
 मानह भावन भाविष ॥ गुरु पाप बगानी
 नि नि प्रतिमा पूजियइ निमि जाप जपाज्ज
 नाम ध्यान उज्जनउ भावि हातात्रड
 नवन विदेवन डार नानमिन्तु नग्गिन
 मुनिवर धज्जिय मयन मघ मयपूजनराज
 चारण गुरु पय नमस्वरी वत नि कर नाना
 अन्तवान मयाम करा नि मरणवि माधउ

इन्ना मानह कारण म नायिका प्रियवना अनिय म थोष्ट यानि का
 प्राप्त हुद । अन्त म कवि भरत वाक्य क रूप में मभा व्यक्तिया क दिए मगत
 कामना करना है कि इन मोनह कारण का मयमा बनसर जा पाद । करणा
 उम मयाधारण प प्राप्त हागा —

एक चित्तु जा व्रतु करइ नर अहवा नारा
 नीषकर प मान्ना जा ममिकन धारा
 मवन कीति मुनिरामु वियउ ॥ मानह कारण
 ज ममनहि नि गुरु कारण

बन्धुन दन् अन्कार और रम का दृष्टि म कृति का मन्त्र मामाय है
 परन्तु भाषा की दृष्टि म तथा कथा अभिय या वस्तु विकास का दृष्टि म मानह
 कारण राम उल्लेखनीय है । बन्धुना तिम्वर कविया का रचना म महा वाता में
 हा अधिक मितता है कयाकि वेताम्बर जैन मुनिया क कविया न राजस्थानी
 और गुजराती म अधिक मित्वा, परन्तु तिम्वर कविया न मन्ना मन्ना म
 मन्ना माहिन् मित्वा है । अन् भाषा का दृष्टि म प्रस्तुत राम कृति का मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र है । या कुन मित्वा कृति साधारण है तथा कान्य का दृष्टि म
 बहुत ग्रीठ मन्त्र है । अन् जिनम की कुद और कृतिया का विवरण करन पर
 उनक काय की मुख्य प्रवृत्तिया जानी जा मक्ता है । प्रस्तुत राम मन्त्र
 वगनामक कथा काव्य है जिनका मन्त्र उद्देश्य धर्म प्रचार मात्र है ।

असन उसा, पशु वस्तु त्रिविध त्रिवि, सत्र मनि महें रह जेसे ।
 सारण, नरक, चर अरर, लोन बहुत, उसन मध्य मन तेने ॥३॥
 त्रिदप मध्य पुतरिका, सूत महें वबुनि निर्वाह बनाये ।
 मन महें तथा लोन नाना तनु प्रगटत अरसर पाये ॥४॥
 रघुपति भक्ति-धारि अलित चित, त्रिपु प्रयास हो सुर्म ।
 तुलसीदास कह चिद विलास जग, ब्रह्मत ब्रह्मत ब्रह्म ॥५॥

भाषाय — यत्नि यह मन अपने विचारों का छोड़ दे तो फिर भेद भाव जनित दुःख भ्रम और भारी शोक क्या हो ? मन के निरवस हो जान पर य सार द्वन्द्व भी छूट जायेंगे ॥३॥

शत्रु मित्र और उदासीन इन तीनों को मन ने ही तो हनुवक बना कर रली है (वैसे, वास्तव में न कोई शत्रु है न मित्र और न उदासीन) शत्रु को सत्प के समान त्याग देना चाहिए मित्र को सुवर्ण की तरह ग्रहण करना चाहिए और उदासीन की तिनके की तरह, उपेक्षा कर देनी चाहिए उनकी ओर कुछ ध्यान ही न देना चाहिए ये सब मन की ही कल्पनाएँ हैं ॥२॥

जैसे मणि में भोजन वस्त्र पशु और भ्रम प्रभार की वस्तुएँ समाई रहती हैं, वैसे ही मन में स्वर्ग नरक चर अरर और बहुत से लोक सन्निहित हैं । भाव यह है, कि जब किसी के हाथ में मणि हो, तो वह उस वक्कर चाहे जो खरीद सकता है उसी प्रकार हम मनहवी मणि के प्रभाव से यह जीव स्वर्ग नरक तथा अनेक लोकों में जा सकता है । यदि सुकम करेगा तो स्वर्गादि का लाभ होगा और कुकर्मों की ओर प्रवृत्ति करेगा तो नरकवास तो है ही । अतएव सिद्ध हुआ कि यावत् पदार्थों का भाण्डार यह मन ही है ॥३॥

जैसे पेड़ जमीन काठ के बीज में पुनरी और सूत में वस्त्र बिना बनाये हो पहले से ही विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार मन में भी समय समय पर अनेक शरीर जा उसमें लीन रहते हैं प्रकट हो जाते हैं । साराश यह कि मन की वासनाएँ जन्मादि के लिए उत्तरदायी हैं । जसी कामना होगी वसी ही शरीर धारण करना पड़ेगा । मन के प्रभाव से मनुष्य देवता हो सकता है और मन के ही कारण खर, शूकर आदि भी ॥४॥

रघुनाथजी के भक्तिरूपी जल से जब चित्त धुलकर निमल हो जायेगा, अन्तःकरण से विषय प्रवृत्ति हट जायगी तब बिना किसी परिश्रम के ही सब कुछ (क्या सत् ॥ और क्या असत्) दृष्टिगोचर हो जायेगा विषय सुनभ हो जायगा । किन्तु तुलसीदास कहते हैं कि चिदानन्द, अखण्ड आत्मानन्द समभक्त समभक्ते ही समभक्त में प्राप्ता है । क्रम-क्रम से ही चिदविलास प्राप्त होता है ॥५॥

शब्दाय — सत्पुति = ससार । मध्यस्थ = उदासीन न मित्र भाव न शत्रु भाव । वरिभाद्र = जबरदस्ती । उपच्छनीय = उदासीन । पुतरिका = पुतली, मूर्ति । अलित = धोया हुआ स्वच्छ । चिद = (चित्त) चेतन ।

विशेष — (१) द्वन्द्व — राग और द्वेष — अनुकूल और प्रतिकूल व्यवहार ।

(२) सत्र तमे — यहाँ क्रमालंकार है । जहाँ दो तीन या और भा अधिक वस्तुओं का जिस जिस क्रम से पढ़ने वगैरे किया जाए उसी क्रम से उनका वर्णन अत्र एक निवाहा जाए वही क्रमालंकार होता है —

कम सो कहि पहले कहुँ कम तें अय मिलाय ।
यों हों और निवाहिये, कम भूपन हु कहाय ॥

यहा ये क्रम ह—

१—शत्रु	२—मित्र	३—मध्यस्थ
१—त्यागन	२—गहन	३—उपेक्षणीय
१—अहि	२—हाटक	३—तन

(३) 'नाना तनु'—विविध यानिया क अतिरिक्त इसका यह भी अर्थ हो सकता है, कि मन स्थूल, सूक्ष्म, कारण महाकारण चारों शरीरों में किसी न किसी रूप में गुप्त रहता है, वह पिंड नहीं छोड़ता ।

(४) बुझन-बुझत बूझै—पहले कमकाण्ड आदि साधना द्वारा शरीर शुद्ध किया जायगा, फिर योग द्वारा मन शुद्ध होगा तब कहीं परम ज्ञान का उदय होगा । तब भक्ति का साम्राज्य स्थापित होगा ।

१२५

मैं केहि कहौ विपति अति भारी । श्रीरघुवीर धीर हितकारी ॥१॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहें यमे आइ बहु खोरा ॥२॥
अति कठिन करहि बरजोरा । मानहि नहि विनय निहोरा ॥३॥
तम, मोह लोभ अहंकारा । मद, मोघ, बोध रिपु मारा ॥४॥
अति करहि उपद्रव नाथा । मग्दहि मोहि जानि अनाथा ॥५॥
मैं एक, अमित घटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥६॥
भागैहु नहि नाथ उवारा । रघुनाथक करहु मंभारा ॥७॥
कहु तुलसिदास, सुनु रामा । लटहि तसकर सब घामा ॥८॥
चिता यह मोहि अपारा । अपजम नहि होइ तुम्हारा ॥९॥

भावार्थ—तुम्हें छोड़कर है रघुनाथजी ! और किस में अपनी वादण विपत्ति सुनाने जाऊँ ? क्योंकि आप ही शरणागत का भला करने में धीर ह ॥१॥

हे नाथ ! मेरे हृदय में तुम्हारा निवास-स्थान है । पर अब उसमें बहुत से खोर आकर बस गये हैं मेरे हृदय में जो तुम्हारा भदिर है चारा ने उसमें अपना अट्टा जमा लिया है । अब तुम कहाँ रहोगे ? ॥२॥

ये लोग बड़े ही निष्ठुर हैं, हमेशा ही जार-जवरदस्ती करते रहते हैं । विनती निहोरा भी नहीं मानते । ऐसे पाषाण हृदयवाले हैं ॥३॥

अज्ञान मोह लोभ, अहंकार मग्द मोघ और ज्ञान का शत्रु काम ये ही वे चार हैं ॥४॥

हे नाथ ! ये सब बड़ा उद्यम मचा रहे हैं । मुझे अनाथ जानकर कुचल डानने पर उतारू हैं । यह समझ लिया है कि मेरा कोई धनी धारी नहीं, सो अवसर पाकर जितना अधिक उनसे बनता है मुझे सतान रहते हैं ॥५॥

मैं हूँ एक, धीर ये उपद्रवी चोर बहुत-मारे हैं । कोई मेरी पुकार लक बड़ा सुनता

(जिसे पूकारता हूँ, वही काना में तेल छाल लेता हूँ। क्याचिन् डरता हो कि कहीं ये हमारा भी घर न लूट ल जायें) ॥६॥

हे नाथ ! यदि कहीं भागू तो भी इनसे बचना कठिन है क्योंकि जहाँ-जहाँ जाऊँगा वहाँ य भी पीछा करेंगे। भय है रघुनाथजी ! आप ही इनसे मरी रक्षा कीजिए ॥७॥

तुलसीदास फिर भी कहता है कि इसमें मरा कुछ भी नहीं जाता, आपका ही घर चोर लूट रहे हैं। भाव यह कि यदि यह हृदय भवन इन चोरा के अधिकार में आ जायेगा तो फिर आप कहाँ रहेंगे ? ॥८॥

मुझे तो सिर्फ यही सोच है कि कहीं आपको बदनामी न हो (कि राजाधिराज श्रीरघुनाथजी का घर चोरा ने लूट लिया) इसलिए शीघ्र ही इन दुष्टों को हटाकर अपने निज मन्दिर में निवास कीजिए। आशय यह है कि काम ब्रह्म लाभ मोह मादि शत्रुघ्ना का नाश कर मेरे हृदय सदन में आकर आप निवास कीजिए) ॥९॥

शब्दाथ—बरजोरा = जबरदस्ती हठ से। तम = मोह भ्रमज्ञान। बोधरिपु = ज्ञान का विनाशक। मारा = मार कामदेव। बटपारा = डाकू। संभार = रक्षा।

विशेष—(१) तम मोह मारा—श्री शङ्कराचार्य ने कहा है—

काम क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठति तस्करा।

ज्ञान रत्नापहरायतस्माज्जायत जायत ॥'

(२) 'बोध रिपु'—रामेश्वर भट्टजी ने बोधरिपु का अर्थ अज्ञान लिखा है, किन्तु तम शब्द पहले ही आ गया है जिसका अर्थ भ्रमज्ञान है। यहाँ बोध रिपु मार का विशेषण है क्योंकि विशेषतः काम ही ज्ञान का नाशक है।

(३) 'तूटहि'—क्या-क्या लूट रहा है ? बराम्य, विवेक ज्ञान सतोष, समता कहण्या धर्मा भक्ति आदि अनमोल रत्न।

(४) कबीर माह्व इस दिनदहाड़े को लूट मार से चेता रहे हैं—

तोरी गठरी में सामे चोर बढोहिवा का रे सोच।

पाच-पचीस तीन हैं चोरवा यह सब की-हा सोर ॥

जाग सबेरा बाढ अनेरा फिर नहि सामे जोर।

भव सागर इक नदी बहत है बिन उतरे जीव जोर ॥

कहे कबीर सुनो भाई साथी जागत कीज भोर।

३५

मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि केरी ॥१॥

उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते। सेवहि तजे अपनपौ चेतै ॥२॥

दुख सुख अरु अपमान बडाई। मव सम लेखहि विपति बिहाई ॥३॥

सुनु सठ काल असित यह देही। जनि तेहि लागि विद्वपहि केही ॥४॥

तुलसिदाम विनु असि मति आये। मिलाहि न राम कपट लौ लाये ॥५॥

भावाथ—है मर मन ! मरा उपदेश मान ले। यदि तू अपने हृदय में भगवान की भक्ति चाहता है अर्थात् यदि तुझे भगवत्भक्ति प्राप्त कर पवित्र होता है तो मेरी सीख मानकर अपने सार विकारा को छोड़ दे ॥१॥

पहले तो, प्रभु ने तैरे साथ जो-जो भलाई की ह उसका हृदय में स्मरण कर, उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर । फिर ग्रहकार छोड़कर सावधाना से प्रभु की सेवा कर । भाव यह ह कि यदि तू प्रमादवश सेवा भी करगा, ता उसका कुछ फल न होगा सारा किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा ॥२॥

सुख दुख मान अपमान सबको एक-सा समझ । इसी समता से तेरी विपत्ति दूर हागी (राग ट्रेप को छोड़ द क्योंकि यही आनन्द का प्रतिरोधक है) ॥३॥

अर दुष्ट ! सुन यह शरीर ता काल कनेवा ह न जाने कब मौत इसे धपन फन्दे में पँसा ले इसलिए इस (सुखभगुर) शरीर के अथ किसी की निंदा न कर ॥४॥

हे तुलसीदास ! जब तक ऐसी बुद्धि ऐसा विचार नहीं आया तब तक श्रीरामजी मिलने के नहीं, क्योंकि वह सकपट प्रेम करने में नहीं, किन्तु सच्चा निष्कपट प्रीति में ही मिलते ह ॥५॥

शब्दार्थ—कृत=किए हुए । अपतपी = ग्रहकार । विद्रुपहि = निंदा कर ।

बिषय—(१) दुख सुख - बिहाद—भगवद्गीता में समभाव पर विस्तार-पूर्वक कहा गया ह—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काशति ।
शुभाशुभ परित्यागी, भक्तिमाय स मे प्रिय ॥
सम गती च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
नीतोष्ण सुखदुःखे सम सग विवर्जित ॥
दुःस्थिति दास्तुतिमो नो सगुप्यो येन केनचित् ।
अनिकेत स्थिरमतिभक्तिमान मे प्रियो नर ॥

(२) कालप्रमित—

मासी भावत देखि कतिपा करी पुकार ।

पूनी-पूनी बुनि सइ जाति हमारी बार ॥'

[कबीरदास]

१२७

मे जानी हरिपद गति नाही । सपनेहुँ नहि विराग मन माही ॥१॥

जा रघुबीर चरन अनुरागे । निह सब भोग राग समत्यागे ॥२॥

काम भुजग इसत जब जाही । विषय-नीब कटु लगत न ताही ॥३॥

असमजस अस हृदय विचारी । बदन सोच नित-नूतन भारी ॥४॥

जब-कब राम-वृषा दुख जाइ । तुलसिदाम नहि आन उपाई ॥५॥

भाषा—म समझ गया कि श्रीहरि के चरणों में भोग प्रेम नहीं ह क्योंकि सपने में भी मेरे मन में वराग्य का उदय नहीं हाता, जब ससार से विरक्ति ही नहीं हुई तब भगवान् में अनुरक्ति कैसे होगी ? ॥१॥

जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के चरणों से प्रीति जोड़ ली ह उन्होंने सार भोग विनाशों को रोग की तरह त्याग दिया ह ॥२॥

जब जिस कामरूपी साँप इस सेवा है तब उसे विषयरूपी नीम कहा नहीं

मान रहा है तनिक समझ लो, उसमें बहसुन किना मुल्ल ह ? (भाव यह है कि ससार में जितने भी कुछ विषय-सुख ह, वे क्षणस्थायी ह उनका परिणाम महादुःखदायक है) ॥ १ ॥

जहाँ-जहाँ जिस जिस योनि में—पशिवी पाताल और आकाश में—तूने ज म लिया तहाँ-तहाँ तूने विषय-सुख की कामना की और वहाँ प्रारब्धवश तुझे मिला भी (क्योंकि जसो मर्या तसो दशा) ॥ २ ॥

अब तू अज्ञान में फँसकर मोह ममता में सना हुआ, बट-फट भावारा के सीने में क्यों प्रफुल्लित हो रहा है ? (भाव यह है कि जिस भावारा का सीना असम्भव है, उसी प्रकार सासारिक भाग विलास भी भान द की धारा करना पागलपन है), हे तुलसी ! यदि तुझे भान-द-साम की ही इच्छा है, तो प्रभु रामचन्द्रजी का गुण-कीर्तन करके पीयूष पाव क्या नहीं करता ? ॥ ३ ॥

गवदाय—जाय=व्यय । विषय=वित्तना । विषय=भावारा । नियत=प्रारब्ध । लक्ष्य=लक्ष्य सना हुआ ।

विनय—(१) प्रभु सुजस गाढ़ विषय—हरि-कीर्तन अमृत रूप है । उसका पान से जीव अमर हो जाता है । सूरदासजी भी इसी सुधा रस के लिए लाना-पित हो रहे हैं । दक्षिण—

सुभा बभ्रु ता बन की रसु सीम ।

जा बन कृष्ण नाम अमरत रसु, लबन-पान भरि पीज ॥'

१ ३

सोसो हों फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत सत्य बचन बहृत ।
मुनि मन गुनि समुक्ति क्या न सुगम मुमग गहृत ॥१॥
छाटो-यडा, छाटो गरो जग जा जहँ रहत ।
अपने अपने का भना बहू का न चहृत ॥२॥
निधि-अगि लघु कीट अवधि भुग मुनी, दुग दहत ।
पमु लो पमुपान इम बाधत छारत, नहत ॥३॥
मिषय मुद निहार भार मिर का बाँध ज्या बहृत ।
या ही जिय जानि मानि मठ, तू ममिनि महृत ॥४॥
पाया बहि घृत निराध हरिन—गारि महृत ।
तुनगी तहु ताहि मग्न जान मग्न लहत ॥५॥

भाषा—र जाह ! ॥ लक्ष्य बार-बार हितकारी मगर पवित्र और सत्य बचन बहृत है । मुनि मन में निवार कर और समझ तू मग्न गुनर माग पर क्या नहीं करना अपना गुन-समझकर या तू मग्न माग क्यों नहीं पहचाना ? ॥ १ ॥

छ ग-बरा लो-अगि अदभु बरा भना या जहाँ ससार में रहत है क्या ना रहते रंग बने हाग या अन्ता और अन्त पवित्रता का भवा न थागा हा ? ॥ २ ॥

बटा ल मगर ॥ -अगि बह दस मुख मे मुनी हृत है और दुग मे अमर है,

मुख दुःख सभी प्राणियों का एक-सा व्यापक है । परमात्मा खाल की नाइ जोव रूपी परमा को बांधता है खोलता है और जोतता है (मोह में बांधता है, पान से खालता है और कम रूपी हन में जोन देता है ।) ॥ ३ ॥

विषयो के सुखा का तनिक दख तो । वे क्या है मानो गिर के बाँध को कंधे पर रखता । भाव यह है कि जमे कोई सिर पर के बोझ का कंधे पर रखकर, क्षणभर के लिए सुख मान बैठता है और कंधे पर से, दब होने पर, फिर सिर पर रग लेता है, उसी प्रकार तू एक विषय से हटकर दूसरे विषय में फँस जाता है और क्षणिक सुख को धान-द मान लेता है ? इस विषयानन्द में कोई चिरस्थायी धान-द नहीं, केवल यह धम है । रे शठ ! क्या व्यर्थ बघट सह रहा है ? ॥ ४ ॥

तनिक विचार तो कर भूय जन मयकर घी किसने पाया ? तात्पर्य यह कि जिस ससार का वस्तुतः अस्तित्व है नहीं, उसमें सच्चा धान-द कब प्राप्त हो सकता है ? (यदि तुझे धान-द हो चाहिए तो) हे तुनसी ! तू उसी प्रभु की शरण में जा, जिससे सब प्रकार का धान-द उपलब्ध होता है ॥ ५ ॥

गन्दाध—तमि=म आरम्भ करके । अवधि=तक । पशु-पाल=खाना । महत=जोतता है । हरिणारि=भुग-गुणा । महन=मपना है ।

विनय—(१) 'पशु तो महन—

'ईश्वर सबभूतानां हृद्देश्जुन विच्छति ।

आमयसबभूतानि मग्नारुडानि मोयया ॥'

तथा—

[भगवद्गीता

'उमा बाद जोषित की नाइ । सबे भक्तवत् रामपोसाइ ॥

(२) 'जाडे सब नहुव—जिससे सब सुख पाने हैं, यह भा प्रथम लगाया जा सकता है ।

१३४

तान ही बाग-बार दब । द्वार परि पुवार करत ।

आरति, तनि दोनता कह प्रभु संवट हरत ॥१॥

नामपाल माव प्रिल रावन डर टरत ।

या मुनि मकुव टृपातु नर गरीर धरत ॥२॥

बौमिक, मृनि-ताय जनक मोच घनन जरत ।

साधन कहि मोनन भर ता न तमुनि पठ ॥३॥

बेवट रग संवरि महन परनरमल प रत ।

मनमुन तोहि होन नाय । कुतुह मुसक फरत ॥४॥

बहु-वैर बवि प्रीतिपन गुरु गनानि गगा ।

मेया कहि नीति गम बिये भरि भरत ॥५॥

सेवर भया पवनपूत माहिय अनुहन्त ।

सावो लिये नाम राम सब बा मुडर दस्त ॥६॥

जाने विनु राम रोति पचि-पचि जग मरत ।

परिहरि छल सरल गये तुलसिहूँ-से तरय ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! हमी से म तुम्हारे द्वार पर पड़ा बारबार पुकारकर कहता हूँ कि तुम दुःख नम्रता और दीनता सुनते ही सकट हूर लेते हो । (तुम्हारा ऐसा स्वभाव देखकर ही बारबार कहने के लिए मेरा साहस हुआ है, नहीं तो न कहता) ॥ १ ॥

जब रावण के भय से इंद्र, कुबेर आदि लावपास डर गए, तब हे कृपालो ! तुम्हें नर-दंष्ट धारण करने के लिए किस बात को सुनकर सकीच हुआ था ? (दुःख, नम्रता और दीनता को ही तो) ॥ २ ॥

यह समझ म नहीं आता कि जो विश्वामित्र, प्रह्ल्या और जनक बिता की प्रति में जले जा रहे थे, वे किस साधन से शीतल हुए ? (किस उपाय से निश्चिन्त हुए) ॥ ३ ॥

गृह निषाद, पक्षी (जटायु) शबरो आदि की प्रीति तुम्हारे प्रति स्वभाविक नहीं थी, किन्तु हे नाथ ! तुम्हारे सामन भाव हो बुरे-बुरे पड़ भी अच्छे प्रचने फल फलने लगते हैं । (भाव यह कि निषाद शबरो आदि पापियों के हृदय में धम और भविष्य फल फल उठे । तुम्हारी शरणागति का प्रभाव ही ऐसा है) ॥ ४ ॥

अपने अपने भाई क साथ शत्रुता करने से सुपाव और विभीषण दारुण दुःख से गल जाते थे । हे श्रीराम ! तुमने किस सेवा से रोमकर उन्हें भरत के समान प्रिय मान लिया ? ॥ ५ ॥

हनुमानजी तुम्हारी सेवा करते करते तुम्हारे ही समान हो गये । हे श्रीराम ! उनका (हनुमान का) नाम लेते ही तुम सब पर भली भाँति प्रसन्न हो जाते हो अर्थात् तुम्हारी प्रसन्नता के मुख्य साधक हनुमानजी माने जाते हैं) ॥ ६ ॥

हे नाथ ! बिना तुम्हारा (रीझ की) रोति जाने ससार पच पचकर मर रहा है अर्थात् यदि वह यह जानले कि तुम भक्त-वत्सल और दीन-बन्धु हो तो जप तप आदि अनेक दुःसाध्य साधना के फेर में वह क्या पड़ने लगे ? कष्टभाव त्यागकर तुलसी-जैसे जीव भी तुम्हारी शरण में जाने से मुक्त हो जाते हैं, ससार सागर पार कर जाते हैं ॥ ७ ॥

गदाध—नति=नम्रता । कैसिक=विश्वामित्र । सुदर=सुंदर फल । भरत=गला जाता है । मुदर=भलीभाँति कृपा करता हो । छलने का अर्थ द्रवना या पिघलना अर्थात् कृपा करना है ।

विशेष—(१) साहब अनुहरत—हनुमानजी शिवरूप माने जाते हैं और तत्त्वतः शिव और राम में कुछ भी अंतर नहीं है । या भी वह भगवान् का तात्त्विक स्वरूप जान चुके थे फिर उनमें अंतर ही क्या रह सकता क्योंकि—

जानत तुमहि तुमहि होइ जाई ।

(२) इस पद में पुरपाथहीन हान पर भी भगवत्कृपा से जोव भाव मुक्त हो पाई यह दिखाया गया है । इसमें 'परिहरि छल सरल गये' सिद्धांत मान्य है ।

राग स्रगो बिलावल

१३५

राम सनेहो मा त न सनेह कियो ।

अगम जो अमरनिहै मा तबु तोहि दियो ।

नियो सुकुल जनम, शरीर सुंदर, हनु जा फल चार को ।

जो पाइ पण्डित परम पद पावत पुराणि मुरारि को ॥

यह भक्तखण्ड समीप मुरमरि, थल भलो, संगति भली ।

तेरी बुझति कायर कलप बल्लो चहति है विष फल फली ॥१॥

अजहै समुझि चित दे सुनु परमारथ ।

है हितु सो जगह जाहि ते स्वारथ ॥

स्वारथहि प्रिय, स्वारथ मा का ते, कौन वेद बखानई ।

देखु खल, अहि-खेल परिहरि, सो प्रभुहि पहिचानई ॥

पितु मानु गुरु स्वामी अपनपौ निय, तनय सेवन सखा ।

प्रिय लगत जाये प्रेम सा त्रिनु हेतु हित ते नहि लखा ॥२॥

दूरि न सो हिनू हेरु हिये ही है ।

छलहि छाडि सुमिरे छोडु किये ही है ॥

किये छोडु छाया कमल रर की भगत पर भक्तहि भजै ।

जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सजको सजै ॥

हरिहि हरिना प्रिधिहि विधिना, सिवहि सिवता जो दई ।

मोड जानकी-मति मधुर मूर्ति, मोदमय मंगलमई ॥३॥

ठाकुर अतिहि बडो, सील, मरल, मुठि ।

ध्यान अगम निबहै भेटयो केवट उठि ॥

भरि अक भेटया सजल नैन सनेह, सिधिल शरीर सो ।

सुर सिद्ध मुनि कवि कहन कोउ न प्रेमप्रिय रघुवीर सो ॥

खग, सवरि निमिचर, भानु, कपि किये आपुते बदित बडे ।

तापर निह कि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गडे ॥४॥

स्वामी को सुभाव कह यो सो जब उर आनिहै ।

माच मकल मिटिहै, राम भलो मन मानिहै ॥

भला मानिहै, रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै ।

ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फल पाइहै ॥

जपि नाम बरहि प्रनाम कहि गुन-आम रामहि धरि हिये ।

विचरहि अवनि अग्रनीम चरनसरोज-मन मधुकर किये ॥५॥

भावाय—अरे । जिन्हाने तुझे दवताया से भी दुप्राप्य शरीर दिया है उस प्रेमस्वरूप श्रीराम से तू न प्रेम नहीं किया । उहान अन्ने वक्ष में सुंदर कुल में, तुझे जन्म दिया और सुंदर शरीर भी दिया है, जो अथ वष, काम और मोक्ष का कारण है

जिसे पावरसू पान द्वारा चारा पत्र पा मकता ह, जिसे पावर ज्ञाना नाग शिव तथा विष्णु वा परम पन् प्राप्त करते हं कनास और बकुण्ठ घाम पान हं । फिर यह दरा भागत प र पाग हा दव-नये गया ह । क्या ही सुन्दर स्थान ह । गाग ही संगति भी न । २ । विन्तु अर कायर । तरो बुद्धिम्पा कन्पनता यही भी विपने पत्र पना हटा ह । भाग यह ह कि जिग बुद्धि ह तुक घम, पाग, भक्ति आदि साधन सिद्ध कर्न चाहिए थे उसमे तू सांसारिक विषया को, जो विषम्प है, साजता पिता ह ॥१॥

गन । ममक ले । मन लगाकर परमाथ विषय को सुन । वही वाग ह्य सवार म थ्यम्प । और उगीस घपना स्वाध भी सिद्ध हाता ह । यदि तुम्हें स्वाध हा धन्दा लगता न न परमाथ विषय की ओर चित्त नहो जाता ता ममक ता वह कौन ह, जिसस स्वाध प्राप्त होग, और व जिसका निष्पण करत ह (धारधुनाथजी को पहचान) घर ल्ट । देख, साँप क साथ मत खन समारी विषया में मन न लगा, क्योंकि एक तिन व साँप की तरह तुक डस लेंग । तू ता उम स्वामी को पहचान उस पनि स जगत गया, जिसके प्रम के काण्ण पिना माता गुह स्वामी अपनी आत्मा, पुन सबक मित्र आदि सब प्रिय जान पडत ह । उस निष्कारण स्नह करनेवाल प्रभु को तून नहा ला । ॥२॥

व हिनकारी स्नहो प्रम दूर नहीं ह । देख वह तर हूय में ही ह । छल छाव्वर ममता स्मरण तो कर । वह तुक पर कृपा धरय करगा । भाग यह ह कि परमा मा गा रास हृदय में तो ह किन्तु बीच म कपन का परदा पना हुआ ह इसीसे उसका माया नार नहां होता । परना हटा नहीं कि प्रियतम का दरान हुआ । वह कृपा कर्न अपन जना पर करकमल की छाया किए रहता ह सदा उनकी रक्षा करता न । जो मम भजता ह वह भी उम भजता ह । वह सार ससार का स्वामी ह । जो सन विग सन प्ररार का सुवसामग्री प्रस्तुत करता ह जिसन विष्णु को विष्णुत्व ब्रह्मा का म्प क और शिव को शिवत्व प्रगन किया, धरति विष्णु को पालन-पोषण शक्ति ब्रह्मा का मुजन शक्ति और शिव को सहार शक्ति जिसने दी ह, यह वही जानकी बल्लभ हनुनामना का आनन्द स्वरूपिणी कल्याणमयी सुंदर मूर्ति ह ॥३॥

उह वन स्वामी लोकपाला का भी अधीश्वर होत हुए वह सुशील सुंदर और सरन भी अनपम ह । जिसका ध्यान शिव का भी दुलभ ह उसने उठकर निपाध का छाता म गया दिया । अब उसे अपन हूय से लगाया तब धाँवें छलछला पाइ, प्रेम सग न शिथिल हो गया । तभा तो देव सिद्ध मुनि और कवि कहते ह कि धारधुनाथ । क समान कोई भी प्रम प्रिय नहो ह जितना उन्ह प्रेम प्यारा लगता ह उतना आर निभा का भी नहो । उहान पछी (जटायु) शबरी राक्षस (विभीषण), रोछ नन्दवान आदि और व रा (मुद्राव प्रभति) को अपने से भी अधिक कदनाम पूय नना दिया । (धव शील का घोर देविण) इस पर भी जब उनके द्वारा वा हूद सवा का व याद करत ह तब सकाच के मार गडे से जाते थे कि हमन इहें कुछ भी नहो दिय हम इनस ऋणमुक्त नहो हा सकते,

सदा इनके श्रवणी हा रहेंगे ॥८॥

स्वामी रघुनाथजी का जो शीत-स्वभाव मैंने घमो कहा ? उस जब तू
 मैं धारण करेगा उस पर मनन करेगा तब तारी सारा विषाण दूर हो जायेगी
 निरिच्छ हो जायेगा और प्रभु रामचन्द्रजी भी प्रसन्न होंगे। वह तो तभी प्रसन्न
 जायेंगे, जब तू हाथ जोड़कर भक्त भुवायगा, प्रणाम करेगा। तुनमात्र ! तू
 क्षण जम सन का फल पा जायेगा, तब जावन साधक हो जायेगा। राम-नाम
 स्मरण कर यत्ना कर गुणवती का कीर्तन कर और हृदय में ध्यान पर। जग
 आगम य शरण-नमना में अपने मन को भ्रमर के समान बसाकर पवित्रो पर तू नि
 विहरण कर। तात्पर्य यह कि जब तू भगवत्पाय हो जायेगा तब तुन ससार में
 भी भय-नयन न रहगा। एवम निभय विचर सकेगा, कारण कि तब तारी दुष्टि
 ससार हरिमय हो जायेगा ॥३॥

गन्धाय-पुरारि=शिख । मुरारि=विष्णु । घाटु=हवा । मुटि=मुद
पाम=समष्ट ।

विशेष—(१) 'नरत्नाह'—मार्गव्य कमभूमि है। ताकमी का संज्ञा पवित्र भूमि पर जिनका हो मकता ह उतना धर्मय महा। दश भूमि व एक-एक में प्राप्ताधिकार अद्विष्टा, शानि प्राप्ति की स्थापना माना गई ह। कहा है—

⁴इत्यत्र भारते जन्म ।

गंगादेवा क हृदय में भारतवर्ष क प्रति चित्रना गहरी अति नाका या
एक पत्र म अक्षर हाता ह । रागपरितमानस म ना अयाप्या को अंग ग भी अति
मिमांसया कः ४ । योगाचार्या स्वयं ध्यामन् ग कटन ४—

'शुत्र' कथात भगद तरेता । पावनपुरा नरिर पट्ट देता ॥

यद्यपि तत्र बहुशः कथ्यते । मेरुपुरात विं न जग आता ॥

अथपुनः गम शिव महि मोक्ष । एह प्रमत्त जानह कोउ बान्ह ॥'

() अहिम — यदा दक्षिण में विदा में कृष्ण हुआ है तब ही कभी वह भा भाया या जाता है, और उस दश में ही और उसका एक भा उल्टी बनता है। इस प्रकार गङ्गा के अहिम में बर-बर कबुर भा एक दश जाते हैं उन्हें रोना पड़ता है। कभी कभी बर-बर कुट्टियाला जगिरी और दोगिदा का भा कभी भाया जाता है।

[illegible]

म वा मर दासु कामाय दति त्रिषा भवति कामायनु कामाय दति त्रि
भवति । म वा १ १ पुत्राणि कामाय -- इत्यदि ।

[illegible]

सोनित-पुरीष जो मूत्र मल कृमि, कदमावृत सोवई ।
 कोमल सरीर, गँभीर वेदन, मीस धुनि धुनि रोवई ॥३॥
 तू निज करम-जाल जहँ घेगो । श्रीहरि सग तज्यो नहि तेरो ।
 बहुविधि प्रतिपालन प्रभु की हो । परम कृपानु ग्यान तोहि दी हो ॥
 तोहि दियो ग्यान विवेक जनम अनेक की तउ सुख भई ।
 तेहि ईस की हा सरन जाकी विषम माया गुनमई ॥
 जेहि किये जीव निवाय बस रसहीन दिन दिन अति नई ।
 सो करो बेगि संभार शीपति विपति महँ जेहि मति दई ॥४॥
 पुनि बहुविधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजौ चनपानी ॥
 ऐसेहि करि बिचार चुप माधी । प्रमद-पवन प्रेरै अपराधी ॥
 प्रेरयो जो परम प्रचंड भास्त कष्ट नाना ते सह यो ।
 सो ग्यान, ध्यान, विगग अनुभव जानना पावक दह यो ॥
 अति खेद व्याकुल अल्पबल छिन एक बोलि न आवई ।
 तब तीव्र कष्ट न जान कोउ, सब लाग हरपित गावई ॥५॥
 बाल दसा जेते दुख पाये । अति अमीम नहि जाहि गनाये ॥
 छुधा व्याधि बाधा भय भारी । वेदन नहि जाने महतारी ॥
 जननी न जाने पीर सो, केहि हेतु सिंसु रोदन करे ।
 साइ करे विविध उपाय जातैं अधिक तुव छाती जरै ॥
 कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अच का कहि सने ।
 अतिरेक तोहि निरदय महाखल । आन कहू को सहि सने ॥६॥
 जोबा जुवती सँग रँग राख्यो । तब तू महामोह मद भाख्यो ॥
 ताते मजो घरम मरजादा । विमगे तब सउ प्रथम विपादा ॥
 बिसर विपाद, निवाय-भक्त समुनि नहि फाटत हियो ।
 फिरि गमगत आवन ससृतिचक्र जेहि होइ साइ कियो ॥
 कृमि भस्म ब्रिट-पग्निनाम तनु तेहि लागि जग वैरी भयो ।
 परदार परगन, द्रोहपर मसार वाढै नित नया ॥७॥
 देखत ही आई विरवाई । जो ते सपनहुँ नहि बुलाई ॥
 ताने गुन कहु कहै न जाही । सा अब प्रकट देतु तनु माही ॥
 सा प्रगट तनु जरजर जगवस, व्याधि सूल मतावई ।
 सिरकप इद्रिय-सक्नि प्रतिहत, वचन बाहु न भावई ॥
 गृहपालहु तेँ अति निरादर ग्यान पान न पावई ।
 ऐमिहु दसा न विराग तहँ सुणा-तरंग बढ़ावई ॥८॥

वहि ता मी महाभय तेर । जनम एग मे बसुत मनर ॥
 तारि गानि सतन भदगाही । अजहूँ त तग विचार मा माही ॥
 अजहूँ विचार विचार तजि भजु राम जा - सुगदायन ।
 भवगिनु दुस्तर जलरय नजु चपपर मुग्नायन ॥
 त्रिनु हतु रगनावर उदार अपार माया तारन ।
 वैद्यय पनि जगपति रमापति प्रानपति गनिरारन ॥६॥

रघुपति भक्ति गुनम गुनवारी । सा प्रयनाप गाव भय-हारी ॥
 त्रिनु सतगग भगनि तहि होई । त तय मिन द्रव जय साई ॥
 जग द्रव्य दीनदयानु राघव साधु सगनि पाइय ।
 जहि दगस परग ममागमादिस पापगभि नमाइय ॥
 जिनके मिल दुग सुग ममान प्रमानादिस गुन भये ।
 मद मोह लोभ विपाद बाध मुग्धाव तँ सहजहि गये ॥१०॥

सेवत साधु द्वैत भय भाग । श्रीरघुवीर चरन-सय लागे ॥
 दह जनित विचार सप्रत्यागे । तय फिरि निज स्वरूप अनुरागे ॥
 अनुराग मा निज रूप जो जग त विनच्छिन देखिय ।
 सतोष सम नीतन मदा दम दहवत न लेगिय ॥
 निरमल निरामय एकरम तेहि हृष-मोन न व्यापई ।
 तैलाक पावन सो सदा जाकी दसा एसी भई ॥११॥

जो तहि पथ चा मन तार्ई । ती हरि काह न होहि सहाई ॥
 जो मारग सुनि साधु दिखाव । तहि पथ चलत सवे सुख पावै ॥
 पाव सदा सुख हरि कृपा समार आसा तजि रहै ।
 सपनहुं नही दुख द्वैत दरमन बात काटिक को कहै ॥
 द्विज देव गुरु हरि सत विनु ससार पार न पाइये ।
 यह जानि तुनसीनास आसहरन रमापति पाइये ॥१२॥

पदच्छेद—नि + अजन । नि + धामय । कदम + आवत ।

भाषाय—हूँ जीव । भगवान् से जब स तू अलग हुआ तभी से तू न शरीर को अपना मान लिया । (या तो जीव परमात्मा का ही अंश है किन्तु प्रकृति के अधीन होकर उसे परमात्मा से पथक होना पड़ा और उससे पथक होना ही उसमें देहाभिमान आ गया, जिससे स्त्री-पुत्रादि में ममत्व उत्पन्न हुआ) । माया के बश होकर तू न निजस्वरूप, सच्चिदानन्द—रूप भन्ना दिया और उसी अंग के कारण तुझ पर सब वश भोगन पड़े । भाव यह है कि माया के ससग में जीव में अनेक विकार—राग-द्वेष, सुख-दुःख—आ मिले, ध्यान-द सदा के लिए विदा ल गया । अविद्या के कारण ससार दुःखमय भ्रमन लगा, बड़ा ही कठिन असाहनीय देख मिला । सुख का तो स्वप्न में भी नाम न रहा । जिस माया में अनेक कष्ट और शोक भर पड़ा है, उसी पर से तू हठपूर्वक बार-बार गया रोकने पर

भी न माना । अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ा । बुढ़ापा भी आया, विपत्तियाँ भी भेजना पड़ी । पर रे मूल ! तूने इतने पर भी भगवान् का न पहचाना । विचारकर, भगवान् का श्रीरामचन्द्रजी को छाड़कर तुझे क्या कही शान्ति मिली ? शान्ति और सुख का स्थान मूलाधार तो परमात्मा ही है । उसे छाड़कर कही भी आनन्द प्राप्त होने का नहीं । १॥

रे जाव । तेरा निज निवास आनन्द के सागर में है तू आनन्दस्वरूप परब्रह्म से भिन्न नहीं है । उस आनन्द-सागर को भूलकर तू क्यों व्यास्र मर रहा है ? मृगजल का तूने सत्य मान रखा है, और उसी में आनन्द समझकर भग्न हो रहा है । वहाँ तू नहीं रहा है । वहाँ तो तीन कानों में भी पाना नहीं और उसी को पी रहा है । अपना स्वाभाविक अनुभवगम्य स्वरूप भूलकर आज यहाँ आ पड़ा है । भाव यह कि ससार भग्नजल के समान भ्रममात्र है । यहाँ तू विषयस्वी भूँटे जन्म में प्रसन्नतापूर्वक स्नान कर रहा है । विषयों में फँसकर अपने प्रापका शासन या शास्य करना चाहता है पर यहाँ शीतलता कहीं ? जब जन्म ही नहीं, ससार का तत्त्व 'अस्ति-व' ही नहीं तब क्या सुख क्या से आयेगा ? तूने उस आनन्द की श्याम दिया, जो विशुद्ध अविनाशी और निर्विकार है । व्यर्थ ही तू राजाश्री के जसा राज्य छाड़कर स्वप्नरूपी कारागृह में आ पड़ा है । आत्मानन्द त्यागकर विषय पक्ष में आ पड़ा है ॥२॥

तूने स्वयं ही अज्ञान से अपनी कमरूपी रस्सी मजबूत करली और अपने ही हाथों उसमें अविद्या की पक्की गाँठ भी लगादी । इसी से घरे भ्रमों में । तू परतंत्र पड़ा हुआ है । और इसका फल क्या होगा ? भ्रमों में रहने का दुःख । सारा यह कि न तू इच्छा कर कर कम करता और न परतंत्र होकर मोहाधीन होकर गम में बारबार आता । मसार में जा बहुततर दुःखों के समूह है उन्हें वहाँ जानता है जा माता के पेट में पड़ चुका है । गम में सिर तो नीचे रहता है और पर ऊपर । कम सकट के समय कोई बात भी नहीं पृथक्ता । रक्त मल मूत्र विष्टा कीटा और कीचड़ में घिरा हुआ (गम में) धाता है । तेरा शरीर तो मुकुमार है पर कष्ट बड़ा दाहण है जा महा मही जाता । सिर धुन पुनकर तू रोता है । भाव यह है कि वहाँ तू भवेत्ता हो न, बचनेवाला क्या कौन बठा है ? जब कम किए उनके फल चखने ही पड़ेंगे । सो चख, चाहे तू मिर पशु, चाहे छातो पीठ ॥३॥

जहाँ कही भी तू कम जाल में फँसा, वहाँ भी श्रीहरि ने तेरा साथ नहीं छोड़ा । प्रभु ने नाना प्रकार से तेरा पालन-पोषण किया, और परम कृपालु स्वामी ने तुझे वही पान भी दिया । जब तुझे पान बिबक बिना तब पिछले अनेक जन्मों की बातें तुझे याद आइ । तब कहने लगा कि जिसकी यह त्रिगुणात्मिका दुस्तरमाया है अर्थात् जिसकी आभा से माया न जगत में तीन गुणों का पगारा फैलाया है उसी परमेश्वर की म शरण है । जिसने जीव-समूह को अपने वश में कर लिया है त्रिगु माया न उन्हें परतंत्र बनाकर नीरस अर्थात् आनन्दरहित भी कर दिया है और जो प्रतिदिन नई ही दिव्याई देती है ऐसी मायास्वी लक्ष्मी के पति ने गम-वास की इस विपत्ति में ऐसा विवेक बुद्धि दा है वही इससे परिचाण करें ॥४॥

किर बहुत भक्ति से मन में ग्यान आनन्द तू कहने लगा कि भवको बार (मसार में) जाकर चक्रधारा भगवान् का अवश्य भजन करूँगा । ऐसा विचारकर ज्यादा तू चुप

हुआ, प्रसव कान के पवन ने तुम्हें धपराघी को प्रेरित किया, उस प्रचंड पवन के द्वारा प्रेरित होकर तूने अनेक कष्टों को सहा। जा पान, ध्यान वराग्य और आत्मानुभव तुम्हें प्राप्त हुआ था वह सब कष्ट को धनि में जल गया मारे काट के तू सब भूल गया। प्रत्यंत दुःख के कारण तू याकुल हो गया और अब बल रहने के कारण एक क्षण तेरे गले से आवाज भी नहीं निकली। उस समय का तेरा दारुण दुःख असह्य प्रसव कान के कष्टों के मारे मूर्च्छित-सा हो गया पर लोगों को यह भ्रान्त हुआ कि 'धन भाग जाय, प्रभु के पुत्र उत्पन्न हुआ है' और लगे हर्षित हो बघाई गाने ॥२॥

फिर वचन में तुम्हें जो जो कष्ट हुए वे असंख्य हैं। भूख रोग और अनेक यक्षी वृक्षा बाधाओं ने तुम्हें घेर लिया पर तेरी माँ को उन सब कष्टों का यथायथ पता नहीं लगा। माँ ने यह नहीं जाना कि बच्चा किसलिए रो रहा है वह तो बार बार वही उपाय करता है, वही उपचार करती है जिसमें तरी छाती और भी अधिक जले। भाव यह कि हुआ तो है तुम्हें रोग, पर वह तुम्हें बुरी नजर लगी समझकर ओम्हा से झूठाती है, टोटका करता है, प्रयत्न है तो प्रयत्न पर वह तुम्हें भूखा समझकर दूध पिलाती है। शशव, कुमारानस्या एवं किशोरावस्या में तूने भगणित पाप किए जिनका वणन कौन कर सकता है। २ निदम । महादुष्ट । तुम्हें छोड़कर और कौन ऐसा होगा, जो उन्हें सह सकेगा ? ॥६॥

जवानी चढ़ते ही तू स्त्री की आसक्ति में फँस गया। भारी अज्ञान और मन में भ्रमवाला हो गया। उस नशे में तूने धन मर्यादा का लात भार दा। पहल किसने कष्ट भागे थे उन सबको भुला दिया और लगा पाप पर पाप कमाने। कष्टों के समूह भूल जान के कारण भाने और क्या-क्या दुःख होंगे यह समझकर तरी छाती फट नहीं जाती ? जिससे फिर फिर गम के गहने में गिरना पड़े ससार चक्र में भ्रान्त पड़े वही तूने बार बार किया इन्द्रिया कष्ट में पड़कर सदा विषयों में ह्रा वित्त लगाया। जा शरीर की रोग, विच्छा आदि का परिणाम है उसके लिए तू सारे ससार का शत्रु बन बटा। इस क्षणिक शरीर को आराम देने के लिए तूने किन किनके साथ भला बुरा बलाव नहीं किया ? दूसरे की स्त्री दूसरे का धन दूसरे से झोह यही ससार में नित्य नया वस्तु गया। दूसरे की सुन्दर स्त्री को भारी मान को और विपुल धन को देखकर तर मन में कुन्तन पन हुई उसे चाहा जब न मिला धूल बस किया और बर बिसाह लिया। यही तूने नित्य किया यही तेरी जीवन चर्चा रही ॥७॥

देखने-हो देखने बुढ़ापा आ पहुँचा जिसे तूने स्वर्ग में भी नहीं बुलाया था स्वर्ग में इच्छा न की थी कि मैं बुढ़ा हो जाऊँ। तू तो यही चाहता था कि सदा जवान ही बना रहूँ। उम बुढ़ापे की चालें कुछ कहने की नही। उन सबकी प्रत्यक्ष अपने शरीर में देख ल। देख शरीर तो जोख हो गया है। बुढ़ापे के कारण राग और शूल सता रहे हैं। सिर हिन रहा है। इन्द्रियों का शक्ति चली गई है। बालना तेरा जिसा का सुहाता नहीं। घर की रम्भाना करनेवाला कुत्ता तक तेरा मान नहीं करता, ओरा का तो गिनती हा क्या ? भयवा कुत्ते से मा अधिक तेरा निरादर होता है। न तुम्हें कोई समय पर खाना देता है न पना। 'उना सारा दुःशा होने पर भी तुम्हें बैराग्य नही होता। ज्ञान पर भी तृष्णा का सहरोँ को तू बन्ता हो जाता है ॥८॥

तरे अनेक जर्मों की, अनेक यानियों की, क्या कौन कह सकता है ? यह तो एक

यह समझकर तुलसीदास भी भय भय दूर करनेवाले श्रीलक्ष्मीरमण भगवान का गुण कोता करता है ॥१२॥

विशेष—(१) जिय बिलगायो—जीव श्रीर ब्रह्म, सत्त्वन एक ही है किन्तु माया के आवरण से जीव अपना स्वरूप भूल गया है। परमात्मा प्रकृति के साथ रह होने के कारण जीव रूप में स्व स्वरूप भूल गया है। वास्तव में, ब्रह्म और जीव अभिन्न हैं।

(२) अब जग चक्रपानी—यहाँ चक्रपानी शब्द का बहुत सावक प्रयोग हुआ है। जीव माया के जाल में फँसा पड़ा है। उसे वह जाल छिन्न भिन्न करना है। सुदर्शन चक्रधारी त्रिषु भगवान हो उस जाल को काट सकेंगे, इसीलिए वह 'चक्रपाणि' नाम से भगवान का पुकारता है।

(६) जावन रग शल्या—उमत्त शोबनावस्था पर सुकवि बिहारी का यह दावा प्रसिद्ध है—

इक भीजे चहले परे, झूड़े बहे हजार।

किते न ऐगुन नर करत, नय बय खडती बार ॥'

(४) धममर्यादा—मनुस्मृति में धम मर्यादा का निम्न लक्षण दिया है—

इत्याध्ययनदानानि तप सत्य धृति क्षमा।

अक्षय इति मार्गोऽय धमश्चाष्टविध स्मृत ॥'

धमशास्त्र में धम के भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न धर्म बड़े गये हैं। परन्तु सत्य क्षमा महिमा आदि कुछ ऐम धर्म हैं जो ससार के सारे ही धर्मों में किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं उनमें कोई अंतर नहीं आया है।

(५) सो प्रगट बनावई—बुद्धावस्था पर अनेक कवियों की सूक्तियाँ मिलती हैं। नाचे का श्रीशंकराचार्य का जरा चिनए कितना सजीव ॥ —

‘अग गलित पलित भुड दानविहीन जात तुण्डम।

बुढ़ी घाति गृहीत्वा दंड तदपि न मुखस्यागा पिंडम ॥

भज गोविंद भज गोविंद गोविंद भज सुदमते ॥’

(६) गृहपानहु तैं अति निराइर—इसके तीन अर्थ हो सकते हैं —

१ घर के मालिक से भी अर्थात् लड़के बाला से भी अपमान हो रहा है।

२ घर की रखवाली करनेवाला कुत्ता तब अपमान करता है।

३ कुत्ता से भी अधिक अपमान सांग करते हैं।

(७) सत्सग—ससार-सागर से पार होन और भगवद्भक्ति प्राप्त करने का सर्वोत्तम माधन सत्सग ही है। भगवत्पाता में कहा है भागवन पुराण कहता है उप निषद् गाने हैं सन्त भा पुष्टि कर रहे हैं कि सत्सग करो सत्सग करा बिना सत्सग के गति नहीं।

साधु हमारी आत्मा हम साधुन के जीव।

साधुन मटे यों रहें, ज्यों पय मटे घोव ॥

तथा—तुलसी सगति साधु की कट कोटि अपराध।

एक धरी आधी धरी आधी में पुनि आय ॥’

(८) 'देह-जनित लेखिये — गीता में हम भवस्या को ब्राह्मो भवस्या कहा गया है। इस भवस्या को पहुँचे हुए स्थितप्रज्ञ ने लक्षण है—

‘प्रज्जहाति यदा कामान् सर्वान् पाप मनोगतान् ।
आत्म-येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दुःखेषु दुःखिण्यमना सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्विष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥’

हे भजुन जब जीव मन की सारी इच्छाएँ छाड़ देता है, मन में किसी तरह की भी इच्छा नहीं करता तब अपनी भात्मा में ही समुपस्थित होकर रहनेवाला प्राणी 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है। जो दुःखों में धवराता नहीं सुखों की कामना नहीं करता, राग, भय और क्रोध जिनसे जोर लिये है उसे 'स्थितधी' मुनि कहते हैं। जिसका मन सब ओर से हट गया है, शुभाशुभ में जिसे हृष और द्वेष नहीं रहा उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए। यह ब्राह्मी भवस्या भगवदभक्त का सहज ही प्राप्त हो जाती है, किन्तु भक्ति निष्पन्न और विशुद्ध होनी चाहिए।

(९) 'नलोकपावन — भूरदासजी कहते हैं—

‘जा दिन सत पाहुने आवत ।

सा दिन तोरय कोटि आप ही ताके गृह धलि जावत ॥’

‘तैं पुनः पुनः कालेन बगनादेव साधव ।’

[श्रीमदभागवत

(१०) यह पद बड़ा ही सुन्दर प्रभावपूर्ण ज्ञान वरामय और भक्ति रस से परिप्लुत है। इसमें गोसाइजी ने अपने सिद्धांत का भली भाँति प्रतिपादन किया है। जीव की पूर्वापर दशा, उसका उद्धार और भक्ति का उपाय सभी कुछ इसमें आ गया है। यह पद मुखार्थ कटाक्ष और हृदयस्थ करन योग्य है।

इति पुर्याद समाप्त

विनय-पत्रिका

(उत्तराङ्क)

राग बिलावल

जापे कृपा रघुपति कृपालु की बेर और के कहा सरे ।
 होइ न याको वार भक्त को जो कोउ कोटि उपाय करे ॥१॥
 तब नीच जो मोच साधु की सो पामर तहि मोच मरे ।
 बंद प्रिदित प्रह्लाद तथा सुनि को न भगति पथ पाउँ धरे ॥२॥
 गज उधारि हरि यप्यो विभीषन ध्रुव अविचन कबहूँ न टरे ।
 अबरीष की साप मुरति करि अजहूँ महामुनि स्तानि गरे ॥३॥
 सोधी कहा जु न बिया सुजोगन सुबुध आपन मान जरे ।
 प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय जस पाहुतने परिग्राह बरे ॥४॥
 जोइ जोइ कूप खनैगा पर कहूँ सा मठ फिरि तहि कूप परे ।
 सपनहूँ मुख न सतद्रोही कहूँ सुरतरु साउ विष फरति फरे ॥५॥
 है कृक हूँ सीस, इस के जो हठि जन की सीव चरे ।
 तुलमिदास रघुवीर-बाहूँल सदा अभय, बाहूँ न डरे ॥६॥

भाषा—यदि कृपालु रघुनाथजी का कृपा है तो श्रीरा के बर करन से क्या बिगड़ सकता है ? हारमन का बान भी बाँका हान का नहा चाहे काँई कराहा उपाय क्यों न करे । ॥१॥

जो नाच किसी गानु का मोन साधता है वह पापा स्वय उसी मोन से मरता है । प्रह्लाद की क्या क्या में प्रसिद्ध है । उन मुनकर गया कीन हागा जा भक्ति-भाग पर पर न रगगा भक्ति के सिद्धांत का न मानगा ? भाव यह है कि प्रह्लाद को उनके पिता हिरण्यकशिपु ने अनक प्रकार से बन्धन पर भगवन्कुल से वह उसका बान भी बाँका न कर सका उनका आर हो मारा गया । ऐसा भक्तवत्सलता मुनकर कीन भगगा हागा, जो एन प्रभु की भक्ति न करगा ? ॥२॥

यत्रि न यत्र का उद्धार किया विमायल का राग्योमुत्सव पर विद्याया, ध्रुव की अन्त पद दिया, और अम्बरान भक्त की ता बाव हो निराया है । उनका महा-

मुनि (दुर्वासा) ने जो शाप दिया था, उसे स्मरण कर वह अब भी स्नान से गले जाते ह, लाज से मर जाने ह (प्रपन्ना परामर्श देवकर कि अम्बरीष पर भगवान का अनुग्रह ह, दुर्वासा शाप देकर पछताया करते ह) ॥३॥

दुर्योधन न कीन आ घनिष्ट करने को छाड़ा, जो करते बना सभी किया, मूल अपने हा धमड़ में जलता रहा । पर भगवत्कृपा से सीमाग्य विजय और कीर्ति ने पाडवों का हो हठपूर्वक अपनाया, पाडवा को सीमाग्य मिला, विजय-लाभ हुआ और कीर्ति भी मिली ॥४॥

जो भी दूसरा के निष्ठ कुर्मा खोदेगा वह दुष्ट स्वयं उसमें गिरेगा । सन्तो क साथ बैर बिसाहनेवाले को स्वप्न में भी सुख-चैन मिलने का नही । उसका लिए तो कल्पवृक्ष भी बिपले फल ही फलेगा, अर्थात् वह जिम उपाय से सुख चाहेगा, उसमें उस दु ख ही मिलेगा ॥५॥

किसके दो सिर ह, जो भगवदभक्त को सीमा लावे ? (हा किसीके दो सिर हा तो ठाक ह एक कट जायगा, तो एक तो बच रहेगा । पर यह असम्भव ह) हे तुलसीदास ! जिसे श्रीरघुनाथजी के बाहुबल का भरोसा ह जो उनका शरणागत ह, वह सदा ही निमग्न ह ॥६॥

गदाय—मीच = मौत । बरिभाई = हठपूर्वक । खनगो = लादगा । सोंव = सीमा ।

बिरोध—(१) 'जोप सर कबिबर रहीम ने भी यही कहा ह—

'बहु 'रहीम' का करि सक जवारी चोर लवार ।

जो पत राखनहार है माखन छाखनहार ॥'

(२) काटि उपाय—जय यन मत्र तत्र, नाटक चटक, प्रयाग, धन कपट, अस्त्र शस्त्र शाप विष आदि ।

(३) 'सो धौ सुजायन—दुर्योधन न पावा के साथ सभी छत्रपल किए । जूए में हराया, शीपवी का सत्तात्व भट करना चाहा, लाचा गृह में पाडवों को जलान का प्रयत्न किया, और भी अनेक प्रकार के पटयन रहे ।

(४) इस पद से मिला जुला सूरदासजी का भी एक पद ह—

जाकों मापोहन जग कर ।

साकी केस खस नहि सिर तैं जो जय बर पर ॥

हिरनकसिपु परहारि थक्यो, प्रह्लाद न नेकु डर ।

भगहैं तों उत्तानपाद-सुत राज करत न मर ॥

राखी साज द्रुपद-तनया की, कोपित धीर हर ।

दुर्योधन को मान भग करि, बसन प्रवाह घर ॥

विप्र भक्त जग लष कूप दिय, बलि पड़ि बेद छरैं ।

दीनदयालु कृपालु कृपानिधि, बाप बह्यो पर ॥

जो सुरपति कोप्यो बज अपर, पहिणो बहु न सर ।

राखे ब्रजजन नद के सात्ता, गिरि घनि विरद घर ॥

जाको विरद है गव प्रहारी, सो फसे बिसर ।
'सुरदास' भगवत - भजन करि, सरन गहे उधर ॥

१३८

कवहुँ सो कर सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेर ॥१॥
जेहि कर कमल कठोर सभुघनु भजि जनक ससय भेटयो ।
जेहि कर कमल उठाइ ऋधु ज्यो, परम प्रीति केवट भेटयो ॥२॥
जेहि कर कमल कृपालु गीब कहँ पिड देइ निज धाम दियो ।
जेहि कर बालि बिदारि दास हित, कपिबल पति सुग्रीव कियो ॥३॥
आयो सग्न सभौत विभीषन, जेहि कर कमल तिलक की-हो ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देव-ह दी-हो ॥४॥
सीतल सुखद छाहँ जेहि कर की, भेटति पाप ताप, माया ।
निसि वासर तिहि कर सरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

भाषा—हे रघुनाथजी ! हे प्रभो ! क्या आप कभी अपने उस कर-कमल को मेरे सिर पर रखेंगे जिससे आपने दुखी भक्तों को अभय कर दिया था जब उन्होंने पराधीन हो केवल एक बार आपके नाम का स्मरण किया था ? ॥१॥

जिस कर कमल से शिवजी का कठोर घनुष सोड़कर आपने महाराजा जनक का सदेह दूर किया था और जिस कर-कमल से गृह निषाद को, भाई के समान उठाकर बैठे ही प्रेम से छाती से लगा लिया था ॥२॥

हे कृपालो ! जिस कर-कमल से आपने (जटायु) गीघ को (पिता के समान) पिबदान देकर अपना परमनोक प्रदान किया था और जिस हाथ से अपने भक्त के लिए बालि को मारकर सुग्रीव को वानर वंश का अधिपति बना लिया था ॥३॥

जिस कर-कमल से अनेक समय शरणागत विभाषणु का रा-यामिपेक किया था और जिसमें घनुष-बाण चड़ाकर रामसा का सहार कर दवताप्रा को अभयदान दिया था ॥४॥

तथा जिस कर कमल को शीतल धान-प्याज छाया से पाप सताप और गरिदा का नाश हो जाता है हे नाथ ! आपके उम्मी कर-कमल को छाया (रक्षा) तुलसीनाथ रात दिन चाहता ॥ ॥५॥

गद्याप—शरक = एक बार । तिनक = रा-यामिपेक । छाया = रक्षा से टा पड़ है ।

१६

‘दीनदयारु दुखि दारिद दुख दुनी दुमट निह ताप तर्द है ।
देव, दुमार पुनारन धारन, मयकी सन मुन-हानि भई है ॥१॥

प्रभु के वचन प्रेद बुध सम्मत, भम मूरति महिदेवमई है ।
 तिनकी मति रिस राग - मोह मद लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
 राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पित कलुष कुचाल नई है ।
 नीति प्रतीति, प्रीति परमिति पति हेनुवाद हठि हेर हई है ॥३॥
 आत्म वरन - धरम विरहित जग, लोक वेद भरजाद गई है ।
 प्रजा पतित पाखड पापरत, अपन अपने रग रई है ॥४॥
 माति, सत्य, सुभरीति गई घटि, बढी कुरीति कपट-कलई है ।
 मीदत साधु साधुता सौचति, खल विनसत, हुलसति खलई है ॥५॥
 परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल, सफल नहि सिद्धि सई है ।
 कामधेनु धरनी कलि गोमर बिबस विकल जामति न बई है ॥६॥
 कलि-करनी बरनिये कहालों करत फिरत बिनु टहल टई है ।
 तापर दात पीसि कर मीजत को जानै चित बहा ठई है ॥७॥
 त्या त्या नीच चढत सिर ऊपर, ज्यो-ज्या सीलबस ढील दई है ।
 सरप बरजि तरजिये तरजनो कुम्हलेहै कुम्हडे की जई है ॥८॥
 दीजे दादि देखि नातो बति मही मोद मगल रितई है ।
 भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राजा अवध चितवनि चितई है ॥९॥
 विनती सुनि सानद हरि हँसि, करुना-वारि भूमि भिजई है ।
 राम राज भयो काज सकुन सुभ राजा राम जगत रिजई है ॥१०॥
 समरथ बडो, सुजान सुसाहव, सुकृत सन हारत जितई है ।
 सुजन सुभाव, सराहत सादर, अनायास सासति वितई है ॥११॥
 उषये थपन, उजारि वसावन गई वहोरि विरद सदई है ।
 तुलसी प्रभु आरत आरतिहर, अभयग्राह केहि-केहि न दई है ॥१२॥

भावार्थ—हे दीनदयाला ! पाप दारिद्र्य और दुःख इन तीनों दाहण तापों—
 भौतिक, दैविक वहिक—से दुनिया जली जा रही है (इसके पहन के पत्तों में गोसाइजी
 ने अपने ही दुःख निवेदन किए हैं, अब इस पत्र में सारे ही संसार की व्यापक निवेदन कर
 रहे हैं) । हे भगवन् ! यह प्राप्त आपने द्वार पर पुकार रहा है । देखिए, सभी का सब
 प्रकार न सुख जाता रहा सभी लोग दुखी दिखाई देते हैं ॥१॥

वदों और पंडितों की सम्मति है और आपने भी स्वयं श्रीमुख से कहा है कि
 ब्राह्मण मेरी ही प्रतिभूति है अर्थात् वे 'ब्रह्मार्थ' हैं । पर उनकी बुद्धि को क्रोध, राग
 मोह अहंकार, लोभ और लान्छ ने निगल लिया है उनमें सम, मतोष दया, धर्म आदि
 तो रहे नही उलट्टे व कामो, ब्राम्ही, मूढ़ और लोभी हो गये हैं ॥२॥

इसी तरह राजसमाज (चरित्र-जाति) करोड़ों बुरी-बुरी बातों से भर गया है ।
 वे)नूटना, मारना, पर-स्त्री एवं पर धन का अपहरण करना अयाम करने प्रजा का

सताना थादि) नित्य नई-नई पापपूछ घाल घन रहे ह । गतिवता न राजनाति, धम शास्त्र, थडा, भक्ति और गुल मर्यादा की प्रतिष्ठा वा, दून-दूदकर चीपट कर लिया है । साराश यह कि जहाँ नास्तिकवादा एग हूमा परमपरर के धर्मित्व का न माना, वही धम कम बसे रह सकते ह ? क्याकि परमात्मा ही सब धर्मों का मूल ह ॥३॥

ससार में न तो आश्रम धर्म रहा ह और न वन धम हा । साब और वन दाना की मर्यादा नष्ट होती जा रही हैं न कोई लावाचार मानता ह, न वनान धम हा । प्रजा का ह्रास हो रहा ह पातक और पाप में वह गिरा हा रही ह । सभी धपन धपने रग में मस्त ह धमया मनमुन्धी हो गये ह, कोई किसी का नही सुनता ॥४॥

शांति सत्य और सुभाग चीछ हो गये ह और दुगाचार और छल-कपट बढ़ रहे ह । सज्जन कष्ट पाते ह और सज्जनता बिना-मस्त है । दुष्ट मौज कर रहे ह और दुष्टता चैन में ह ॥५॥

परमाथ स्वाथ में परिणत हो गया धम के नाम पर साध पठ पालने लगे ह । साधन निष्फल हो रहे है । सिद्धियां भी सच्ची नही उतरती ह, झूठी जान पड़ती है, धमया उनमें कोई सचाई गही रही ह । कामधेनु रूपी पृथिवी कलियुग-कूपी कसाई के हाथ में ऐसी पाकुल हो गई ह कि उसमें जो बोया जाता ह जमता हा नही (इसीसे जहाँ तहाँ दुर्भिक्ष पड रहे ह) ॥६॥

कलियुग की करनी कहाँ तक बलानो जाय ? यह बिना काम का काम करता फिरता ह । इनन पर भी दाउ पीस पीसकर हाथ मल रहा ह मन ही मन मसाम रहा है कि अभी तो मने किया ही क्या । न जाने इसके मन म धमा और क्या-क्या ह ॥७॥

ज्यो-ज्यो आप शील के कारण इसे ढाल दे रहे ह चमा करते जाते ह त्या त्या यह नीच सिर पर चढता जाता ह । जरा काब करके इसे डाँट तो दीजिए । यह तरजीब दिखाते ही कुम्हड़ की बतिये की नाइ मुरझा जायेगा दब जायगा ॥८॥

आपकी बलया लेता ह, दखकर गाय कर दीजिए नूँ तो भव पृथिवी आनन्द भगल से जाला हो जानेवाली ह । आनन्द भगन का, यदि ऐसी ही दशा रही तो, कही नाम भी न सुनाई पया । ऐसा कीजिए कि जिससे लोग सौभाग्यशासी हाकर प्रेमपूर्वक कहें कि श्रीरामजी ने हमें कृपादृष्टि से निहारा ह ॥९॥

मेरी यह बिनती सुनकर, भगवान न मरी और आनन्द से देला और मुस्करा कर कल्याण के जल से पृथिवी को भिगो दिया (शांति की वर्षा कर दी ।) वस, राम राज्य होने से सब काम सुभ हो गय । शुभ शकुन होने लगे, क्योंकि महाराजा राम चन्द्र जी जगद्विजयी ह । भाव यह कि जगद्विजयी श्रीराम के आगे नायर कलि की एक भी न चली ॥१०॥

सबशक्तिमान सुचतुर स्वामी ने पुण्य की सेना को हारने से जिता लिया, पापों का क्षय कर दिया । उनके सद्भक्त स्वभाव से हा आदरपूर्वक उनकी सराहना करते ह कि स्वामी ने सद्ग ही सारी यातनाएँ दूर कर दी ॥११॥

आपका बाना सदा से ही चला आता ह कि जिनका कही ठोर ठिकाना न हो, उन्हें सस्थापित करना (जैसे, विभीषण और सुग्रीव को राजसिंहासन पर बिठा देना),

उजड़े हुए का बसाना और गई हुई वस्तु को फिर से दिला देना (जैसे रावण से ढरे हुए देवताओं को फिर से स्वर्ग में बसा देना) । ह तुलसी ! दुनिया के दुख हरनेवाले भगवान् ॥ किम किसका अभय बाहें नहीं दो ? ॥ २॥

गन्दाध — दुरित = पाप । दुनी = दुनिया । तई = तब यह ह । महिष = ब्राह्मण से आशय ह । परमिनि = परम्परा को शक्ति । हेतुवाद = नास्तिकवाद । हुई = हनी नाश को । रई = रंग, अनुरक्त हुई । सोदत = कष्ट पाता ह । खनई = दुष्टता । सई = सहा सच्ची । गामर = गऊ मारनेवाला कमाई । वई = बोई हुई । टई = राम । जई = छाटा-सा फल, जिस बतया कहने ह । दानि = दाय । रितई = पाली । उयमे यपन = उजड़े हुए का बसानेवाला । सदै = सदा ही ।

बिनेय—(१) 'दोनदयालु तई ह — गोसाइजी के हृदय में जगत के कल्याण की शुभभावना कितनी प्रबल थी । जगत के दुखों को वह एक क्षण भी नहीं सह सकते थे । 'कवितावली' में भी उन्होंने इसी आशय के उदात्त कवित्व कहे हैं जैसे—

खेती न किसान को भिलारी का न भीख बलि
धनिक को धनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका बिहोन लोग सोचमान सोचवत
कहै एक एकन सों कहा जाइ का करी ?
बेबहु पुरान कही सोकहै बिलाकियतु
सोकरे समय के राम, रावरे कृपा करी ।
हारिह दसानन दबाय दुनी दोनबधु,
दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी ॥'

(२) दलि नातो बलि — किमी किमी न इसे राजा बनि और उनका पृथिवी दानवाजा' सकेत माना ह, कि तु यह खीचातानी ह । स्पष्ट अर्थ तो नातो का नहा तो' और बनि का 'बनि का बलिहारा ह ।

(३) 'अभय बाह — अभय दान, निमय कर देना ।

'निभय बध्ण्य पद ।'

ते नर नरकरूप जीवत भव भजन-यद विमुख अभागी ।
निमिबीसरे रुचि पाप, असुचि मन, खलमति, मलिन, निगमपथ-त्यागी ॥१॥
नहि सुतसग भजन नहि हरि को, स्रवर्न न राम-कथा अनुरागी ।
सूत बिते-दोर भवन ममता निसि सोवत अति न कचहै मति जागी ॥२॥
तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि सठ, हठि, पियत विषय विष मागी ।
सूकर-स्वान सुगास सरिस जन, जनमत जगत जननि दुख लागी ॥३॥

भावार्थ—वे अभागी मनुष्य संसार में नरकरूप होकर जो रहे हैं जो जन्म मरण रूप मय भय से छुड़ा देनेवाले श्रीहरिचरणों से विमुख हैं । दिन रात उनकी रुचि पापों में ही रहती ॥ । मन उनका अशुद्ध रहता ह । उन दुष्टों की बुद्धि मलिन रहती ॥ और उन्होंने वदोक्तमाग छोड़ दिया ह ॥१॥

यद्यपि यह जानता हूँ कि मेरे पाप समुद्र के समान अपार ह फिर भी जब दूसरों के मुँह से अपना जल बिंदु के समान छोटा-सा पाप भी सुनता हूँ तो उनसे भगडने लगता हूँ । तात्पर्य यह कि सदा यही चाहता हूँ कि लोग मुझे पापी न कहें घमघुराए न कहें । और दूसरों के धूल के कण के समान अवगुण को सुमेरु पर्वत के समान महान् मानता हूँ । और यदि उनके गुण पर्वत के समान ह तो उन्हें धून के समान तुच्छ देवता हूँ । मतलब यह कि मुझे अपना ही सब कुछ अच्छा लगता ह, दूसरों का नहीं, ऐसा स्वार्थी हूँ ॥४॥

घनेक श्रेय बता बनाकर दिन रात, जने-सथे दूसरों का धन बटोरता फिरता हूँ । कभी, एक क्षण भी निरवल चित्त से प्रेमपूर्वक अपने चरणारविदा का स्मरण नहीं करता ॥५॥

यदि आप मेरे आचरणा पर ही विचार करेंगे, मेरे पापों का लेखा लगाने बैठेंगे तो करीबों कल्प तक मुझे खील-खीलकर मरना पड़ेगा, सकारकरी कड़ाई में जलना होगा, जन्म मर्त्य के चक्र से कभी छुटकारा न मिलेगा । हे प्रभो ! पर यदि आप अपनी कृपा-दृष्टि से मेरी ओर देख देंगे तो भ तुमसीदान इस ससार को गाय के घूर के समान अनायास पार कर जाऊँगा ॥६॥

शब्दाय — डहकत = ठगता हुआ । सीकर = बूढ़ करण । विन = धन । अलाल = गिर शांत । श्रोत्रि = जीवनकर, जलकर ।

विनय — (१) परदुख-दुःखा आगि जरी — गासाइजी न मन्ता और असन्तोष के लक्षण विस्तार से रामचरितमानस में इस प्रकार गिनाय है —

त्रियय अलपट सील-गुनाकर । परदुख दुख, सुख सुख देखे पर ॥
सम, अश्रुतरिपु विमद विरागो । लोभामय-हृव मय-स्यागो ॥
कोमल चित्त दीनन पर दामा । मन बच कम मन नक्त अमाया ॥
सर्वहि भावप्रद, आशु अमानी । भरत, प्रान-सम मम ॥ प्रानी ॥

+

निदासस्तुति उभय सम ममता मम पदचर ।

ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन-मंदिर सुखपुंज ॥

खनन हृदय अनि ताप विमेली । जरीह सदा परसम्पनि देखी ॥

अह कहैं निदा सुनहि पराई । हयहि मनहुँ परी निधि पाई ॥

×

×

×

काहू बी ओ सुनहि बडाई । सांगि लेहि अजु जूडी जाई ।

जब काहू बी दरहि विपना । सुखी होहि मानहुँ जग नृपती ॥

(२) 'नानावेय — मनुष्य पर भग्न के लिए क्या-क्या नहीं करता ? कभी

कवि बनता ह, तो कभी चित्रकार । कभी साधु-संन बन जाता ह तो कभी अवधूत फकीर । कभी गुनामी करने लगता ह, तो कभी टाक डालता ह । कभी उपदेशक बनता ह, तो कभी घमघ्वज महामा । कहीं तक कहा जाय इससे जो कुछ भी हा बनता ह वह सब पेट-भूजा के लिए करने को तयार रहता ह ।

(४) 'घलोचन — निश्चल शात चित्त से यदि एक भी क्षण भगवन्नाम स्मरण किया जाये तो भुक्ति हाथ जोड़े सामने खड़ी ह । चित्त-वृत्ति निरोधात्मक योग सदा फल देनेवाला ह ।

१४२

सकुचत हौ अति राम कृपानिधि । क्योकरि विनय सुनारौ ।
 सरल धरम विपरीत करत, केहि भानि नाय मन भावौ ॥१॥
 जानत हौ हरि रूप चराचर, मै हठि नैन न लावौ ।
 अजन-बेस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावौ ॥२॥
 स्रवननि को फल क्या तुम्हारी यह समझौ, ममृझावौ ।
 तिह स्रवननि परदोष निरंतर भुनि भुनि भरि भरितावौ ॥३॥
 जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौ ।
 तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यो, रटि रटि जनम नसावौ ॥४॥
 'करहु हृदय अति बिमल बसहि हरि', कहि कहि सर्वाहि सिखावौ ।
 हौ निज उर अभिमान मोह मदखल मण्डली बसावौ ॥५॥
 जो तनु धरि हरिपद सार्धाहि, जन सो बिनु काज गँवावौ ।
 हाटक घट भरि धरयो सुधा गूह तजि नभ कूप खनावौ ॥६॥
 मन क्रम बचन लाइ कीहे अघ, ते करि जतन दुरावौ ।
 पर प्रेरित इरपावस बवहुँक, किय कछु सुभ, सो जनावौ ॥७॥
 बिप्र द्रोह जनु बाट परयो हठि, सबसो बैर बढावौ ।
 ताहू पर निज मति त्रिलाम सब सतन माझ गनावौ ॥८॥
 निगम सेस सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौ ।
 तौ न सिराहि कल्प सत लगि प्रभु, कहा एक मुख गावौ ॥९॥
 जो करनी आपनी विचारौ, तौ कि सरन हौ आवौ ।
 मदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मर्ताहि दिखावौ ॥१०॥
 तुलसिदास, प्रभु सो गुन नहि जेहि सपनेहुँ तुमहि रिझावौ ।
 नाथ-कृपा भवसिधु धनुषद सम, जो जानि सिरावौ ॥११॥

भावाथ—हे कृपानिधि श्रीराम ! मुझे बड़ा सकोच हो रहा ह, मैं किस प्रकार आपको अपनी विनती सुनाऊँ ? जो कुछ भी मैं करता हूँ, वह सब धर्म के विरुद्ध हो किया करता हूँ । फिर भला, आपको मैं क्या प्रिय लगूँगा ? तात्पर्य यह कि आपको तो धर्मात्मा ही प्यारे ह मुझ-सरीखे पापी नहा इससे मुझे आपके सम्मुख आने में सकोच होता ह ॥१॥

यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि भगवान् सदा—ब्रह्म और चतुर्धर—व्यापक हैं पर मैं भगवत्-स्वरूप को ओर दृष्टावक ध्यान नहीं देता । मैं तो अपने नवरूपी पतिगों को कामिन रूपी अग्निशिखा में (जलन के लिए) भेजता रहता हूँ ॥२॥

म यह स्वयं समझता है और दूसरा को भी समझाता है, कि इन कानों की सायकता तो आपकी क्या सुनन में ही है, पर उन कानों से सदा दूसरा के दोष सुन सुनकर उनमें भर भरकर रहता है ॥३॥

जिस जीभ से आपका गुणानुवाद करके बिना ही परिश्रम के परमानन्द प्राप्त करता है उसी जीभ से भेदक की भाँड़ दूसरा की निन्दा रटा करता है ॥४॥

म यह बात सबको समझा समझाकर सिखाता पिटता है, कि हृदय का सबका शुद्ध बनाओ, तभी भगवान् उसमें वास करेंगे । किन्तु मने स्वयं अपने हृदय में धक्का मजान और मद, इन कुट्टों का हा समान बसा लिया है । (स्वयं तो महान् दुःखसनी है पर दूसरा को रुज्जन बनने का उपदेश देता है) ॥५॥

जिस मानव शरीर को धारणकर भक्त-जन वरुण पद प्राप्त करने की साधना करते हैं, उसे पाकर मैं व्यथ हो रहा हूँ । घर में तो साने के घड़ में भ्रमूल भरा रखा है पर उसे छोड़कर आकाश में कुम्भा खुदरा रहा हूँ । तात्पर्य यह कि यह जो कचन-सी देह है और जिसमें आत्मस्वरूप भ्रमण भरा हुआ है, उसे छोड़कर काम-वाचनरूपी मगज की खाज में जटा तड़ा मारा मारा फिरता हूँ । जिसका अस्तित्व ही नहीं भला उस जगत में सुख की आशा कैसे हो सकती है ? ॥६॥

मन से, बम से और वचन से जो जा पाप किए हैं, उन्हें म मल कर-कर धोया रहा हूँ । और दूसरा की प्रेरणा से, अथवा ईर्ष्यावश यदि कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उस (हिंदीरा पीटता हुआ) जताता फिरता हूँ ॥७॥

ब्राह्मणों के साथ द्रोह करना तो मानो मरे हिंस्र में ही पड़ गया है । जबरदस्ती ही सबसे बुरा विस्मयता फिरता है । (ये तो मर कम है, किन्तु) यह सब होते हुए भी, अपनी बुद्धि से अपने सिद्धांत का प्रतिपादन करके अपने आपको सत्ता की पक्ति में गिनता है । यह सिद्ध करना चाहता है कि साथ मुझे सत्त कहें ॥८॥

बेन शोपनाग सरस्वती आदि का निहोरा कर कर भी यदि मैं उनसे अपने दोषों का बखान कराऊँ तब भी हे प्रभा । सी कल्प तक वे समाप्त होने के नही । फिर, मैं एक मुख से उनका क्या बखान करूँ ॥९॥

यदि वहाँ मैं अपनी करनी पर विचार करने लगूँ तो क्या मैं आपकी शरण में आने योग्य हूँ ? मैं शतों भारी पापी हूँ कि आपकी शरण में आ ही नहीं सकता, किन्तु आप रघुनाथजी का स्वभाव कोमल है, और शील असीम है यही बल मन को दिखाता रहता हूँ । तात्पर्य यह कि जब रघुनाथजी ऐसे सुशील और कोमल स्वभाववाले हैं, तो वे मुझ सरीखे पापियों और अपराधियों की शरण में लेकर क्या न मनका उद्धार करेंगे ? वस, यही मन को सत्ता साहस बंधाता रहता हूँ ॥१०॥

हे प्रभो ! "स तुलसीदास के नाम ऐसा एक भी गुण नहीं जिसके बल मरामे पर वह आपको स्वर्ण में भी प्रसन्न कर सके । किन्तु हे नाथ । आपकी कृपा के आगे यह ससार सागर गाय के खुर के समान है । यह जानकर मन में सतोष कर लेता हूँ (कि आपकी कृपा से, अपने में कोई साधन न होने पर भी मैं ससार-समुद्र को सहज ही पार कर जाऊँगा) ॥११॥

शब्दाय—भावों = अन्धा लम् । सिखा = दीपक की ज्योति, भाग की ज्वाला ।
 सलभ = (शलभ) पनिया । तावों = दबता स भरता है । भव = भेत्क । गनावों = खोदता
 । विलास = भानन्द । सिरावों = सतोप करता है ।

विशेष—(१) 'धर्म विपरीत'—धर्म का मुख्य स्वरूप सत्य है । सत्य की ध्व
 हेतना कर जो कुछ भी किया जाता है वह धर्म विरुद्ध है, सत्कार नहीं, वदवार है ।
 धर्म अधर्म की जड़ है, इसीका प्रतिपादन इस पद द्वारा किया गया है ।

(२) 'अजन केस सिखा'—इसका दो अर्थ है—

१ मन्त्रा में अजन लगाय, सटकारे जाने केशवामी, दीपक की ज्योति के समान
 कामिनी ।

२ काजल के समान केश ही जिस स्त्रीरूपी अग्नि की धूम्र शिखा है । साधारणतः,
 नेत्रों और केशों की मोहकता पर ही कामिया का ध्यान जाना है ।

(३) हाटक घट खनावों—सूरदासजी या कहत हैं—

परम गगजल छाड़ि पियासी, कुमति रूप खनाव ।'

परन्तु इस उक्ति से गोसाइजी की हाटक घट वाली उक्ति कहा अधिक मी
 हारिणी है ।

(४) मन धर्म-वचन—पाप पदम दाना ही निविध होते हैं । महा पापों का
 उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार हैं—

१ मानसिक—जैसे परधन परस्त्री आदि पर ध्यान परहानि का चिन्तन मन
 ही मन नास्तिक भाव इत्यादि ।

२ वाचिक—परम्परा गमन हिसा खोरो आदि ।

३ वाचनिक—मिथ्या भाषण परनिदा, कठोर वचन इत्यादि ।

(५) मृदुन रूपपति का—वदाचित् निम्ननिमित्त श्रीराम की इस प्रतिमा का
 स्मरण कर गोसाइजी ने यह कहा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभय सवभूतेभ्या, न्दाम्भेतद्वत्त भम ।'

[वाल्मीकि रामायण

१४३

सुनहु राम श्रुवीर गुसाईं मन अनीति रत मेरो ।

चरन सरोज विसारि तिहारे, निसिदिन फिरत अनेरो ॥१॥ १'

मानत-नाहि निगम अनुसामन पास न काहू केरो ।

भूयो सूल वरम-कोनुह तिल ज्या बहु बारनि पेरो ॥२॥

जहें मतमग क्या माधव की मपनेहुं करत न फेरो ।

लोभ मोह मद काम-कोह रत तिह सो प्रेम घनेरो ॥३॥

परगुन सुनत दाह परदूपन सुनन हरख बहतेरो ।

आप पाप को नगर बसावन, सहि न सनत पर खेरो ॥४॥

साधन फल स्रुति सार नाम तव, भव सरिता बहै घेरो ।
 सो पर कर कौंकिनी लागि सठ, वैचि होत हठ चरो ॥५॥
 बचहुँक ही सगति सुभाव तैं, जाउँ सुमारग नेरो ।
 तव करि क्रोध सग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ॥६॥
 इक हौं दीन मलीन हीनमति, विपति जाल अति घेरो ।
 तापर सहि न जाय करुनानिधि, मन को दुसह दगरो ॥७॥
 हारि परयो करि जतन बहुत त्रिधि, तातैं कहत सवेरो ।
 तुलसिदास यह नास भिटे जब, हृदय करहु तुम डेरो ॥८॥

भाषा—हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! हे प्रभा ! सुनिए मेरा मन भयाप में हो
 गीन रहता ह । आपके चरणारविन्दों को भूलकर दिन रात बेकार इधर उधर भटकता
 फिरता ह, विषयों की ओर दौड़ता रहता ह ॥१॥

न तो वह वेद को मानता ह, और न उसे किसी का डर ही ह । कई बार
 कामरूपी कोहू में वह तिलो को तरह पेशा जा चुका ह पर अब सारा काम भूल गया ह
 (यह खतर नहीं कि दुष्कर्म करने में फिर बनी हो दुर्लशा हाथी) ॥२॥

जहाँ सत समागम होता ह अथवा भगवन्कथा होती ह, वहाँ स्वप्न में भी मेरा
 यह मन चक्कर नहीं लगाता, भूलकर भी उधर नहीं जाता । साम अंगान अहंकार काम
 और क्रोध में हो जो पगे रहते ह उही दुष्टा से वह अधिक प्रेम करता ह ॥३॥

दूसरों के गुणों को सुनकर वह (डाह के मारे) जवा जा रहा ह, और जब दूसरों
 की बुराई सुनता ह तब पूनकर क्रुपा हो जाता ह । और सो स्वयं पारा का नगर बसा
 रहा ह पर दूसरों के (पापों के) खेने को भा नहीं रख सकता । भाव यह कि अपने
 बड़ बड़ पापों पर भी कुछ ध्यान न देकर दूसरों के बुरा में पाप पर उलका उपहास
 खाता ह ॥४॥

आपका नाम जो सब साधनों का फलस्वरूप ह वेदों का सार ह, और ससाररूपी
 नदी पार करने के लिए बेटा रूप ह, उसे दूसरा के हाथ में बड़ दुःखों की लोड़ी के
 लिए बेधता हुआ हठपूर्वक उनका गुनाम बनना फिरता ह एक एक कोने के लिए आपका
 नाम सुनाता फिरता ह ॥५॥

यदि कभी सम्भवतः अथवा दबवश समाग के पाम जाता भी ह तो इन्द्रिया की
 भ्रामकित मन को कुमनोरपरूपी गड्ढे में धकेल देती ह ॥६॥

एक तो मैं बने ही दीन पापी और दुबुद्धि ह, विपत्तियों के जाल में पैसा पड़ा
 हूँ, तिसपर हूँ करुणालय । इस मन का असह्य धक्का लग रहा ह । भना म (निबल जीव)
 इस (प्रबल) मन का खोर का धक्का कस सह सकता हूँ ॥७॥

अनेक यत्न कर-कर हार गया इसलिये मैं पहले से ही वह दता हूँ कि तुनसीगस
 का यह भय (जन्म-मरण का दुःख) अभी दूर हागा जब आप उसके हृत्प में निवास
 करेंगे, केवल आपके ही ध्यान से मन को चञ्चल वृत्तियों का निरोध सम्भव ह ॥८॥

गद्यांश—मनुशासन = भागा । कोहू = क्रोध । घनेरो = बहुत आवा । खेरो =

राड़ा, छाटा या गोव । बरा = बड़ा । बरिहो = बौद्ध, अनाम । नरो = नाम । नररा = धररा ।

विनय—(१) बरिहो—‘मन्त्र-नाश’ व अशुभार बरिहो गणपुत्राशा अर्पण पण व (पत व) श्रीपाई भाग वी बरिहो वरुण १, अनाम वी बरिहो व सात्वत ह ।

(२) जतन बहुत विरि : गार वम छोड़ भविष्यद्व्याप्त गायन ।

१४४

मा धो पा, जा नाम लाज त त्रि गण्या रघुवीर ।
 वारुणीय विनु वारन ही हरि, हरी सबल भव भीर ॥१॥
 वेद विदित, जग विदित प्रजामिल विप्र-व-तु भव नाम ।
 धार जेमालय जात निवारयो, गुन हित मुगिरत नाम ॥२॥
 पशु पामर अभिमान सि-धु गज ग्रन्था भ्राद अब ग्राह ।
 मुगिरत सतुत सपदि धाय प्रभु हरया दुसह उर-दाह ॥३॥
 व्याध, निपाद, गीघ, गनिवादिन, प्रगनित प्रोगुन मूल ।
 नाम भोट त नराम सबनि पा, दूरि वरी सर सूल ॥४॥
 वेहि आचरण घाटि ही तिन तें रघुसूल भूषन भूष ।
 सीदत तुनसिदास निसियासर पदया भीम तम रूप ॥५॥

भावार्थ—एसा वीर ह जिस श्रीरघुनाथजी न अपन नाम की लाज नही अपनाया, और बिना ही कारण वे करणा करनवाने श्रीहरि न उसका जन्म मरण भय दूर नही कर दिया ? ॥२॥

बद म प्रकट ह और ससार में भी प्रसिद्ध ह कि अजामेव, जाति का ब्राह्मण महान पापों का आश्रय-स्थान था महान् पापकर्मा था । किन्तु जब यमलोक जाने लगा, तो उसने अपन पुत्र के बहाने आपका ‘नारायण’ नाम पुकारा, तब आपन उसे यमलोक जाने से रोक लिया । (घोल से ही नारायण’ का स्मरण करने से बह मुक्त हो गया फिर भला जा जानकर हरि नाम-स्मरण करगा, उसको मन्गति क्या न होगी ?) ॥२॥

महान् अभिमानो पामर पशु हाथी का मगर न पकड़ लिया, तब उसके एक ही बार स्मरण करन पर हे प्रभो ! आप तत्क्षण वही पहुँचे और उसको भस्म हादिक पीडा को दूर कर दिया (उस दुलभ परम पद प्रदान कर दिया ।) ॥३॥

‘पाघ (वाल्मीकि) निपाद (गुह) गीघ (जटायु) गरिका (विंगला) शत्यादि जीव अगणित दोषों की जड़ थे किन्तु ह श्रीराम ! आपने अपन नाम की भोट से उनके सार वनशा का नाश कर दिया ॥४॥

हे रघुवश भूषण ! इन सबों से म किस आचरण में कम है ? फिर भी म तुलसीदास रात दिन भोक्ता भगवान् रूप मय्या हुआ दुःख भोग रहा है । (यब आपने बड़े बड़े दुराचारियों का भा उद्धार कर दिया, तब भूक पापों को क्यों भुलाए बैठ हो । मुझे

मो ससार सागर से पार कर होजिए न) ॥५॥

विनय—(१) इस पद का, पं १४३ स सम्बन्ध है । उससे अन्त में कहा गया कि 'हृदय करहु तुम डरा । यहाँ यह प्रश्न उठता है, कि जब हृदय अपवित्र है तब उसमें मगवान् का 'हरा' अर्थात् निवास कैसे हो सकेगा ? इसके समाधान ॥ यह पद लिखा जान पड़ता है, कि 'सो धौं का जो नाम लाज में नहि राख्यो रघुवीर इत्यादि ।

(२) 'तमकूप'—अविद्याकूपी कूप । सत को असत और असत का सत मान लेना, अथवा आत्मा अनात्मा का यथाय पान न होना ही 'अज्ञान-कूप' है ।

१४५

कृपासिंधु, जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ।
जब जहँ तुमहि पुकारत आरत, तब तिन्हके दुख दाहे ॥१॥
गज, प्रह्लाद, पाहुसुत, कपि सबको रिपु-सकट मटयो ।
प्रनत बंधु भय विकल विभीषन उठि सो भरत ज्या भँटयो ॥२॥
मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम इक उर आपने बसावौ ।
भजन विवेक, विराग लोग भले, मन्त्रमन्त्र करि ल्यावौ ॥३॥
सुनि रिसभरे कुटिल कामादिक, करहि जोर बरिभाई ।
तिहुँहि उजारि नारि-अग्नि-धन पुर राखहि राम गुमाई ॥४॥
सम-सेवा दल दान-दण्ड हौं रचि उपाय पवि हारया ।
बिनु कारन को बलह बडो दुख प्रभु सो प्रगटि पुकार्यो ॥५॥
सुर स्वारथी अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं ।
जाउँ कहा, को विपति निवारक, भव-तारक जग माहीं ? ॥६॥
तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केने ।
दीजे भक्ति दाह बारक ज्यो मुखस बस भव लेरा ॥७॥

भाषा—हे कृपासागर ! तुम्हारा यह दीन दास तुम्हारे द्वार पर पाय क्या नहीं पा रहा है ? (इसका इमाज क्या नहीं किया जाता ?) जब जहाँ पर दुखिया ने भात होकर तुम्हें याद किया तब वही पर उसा समय, तुमने उनका दुख दूर कर दिये (एसा तुम्हारा स्वभाव है पर मर लिपि न जाने क्या तुमने अपनी प्रकृति बल दी) ॥१॥

गजेन्द्र, प्रह्लाद, पाहु, सुपाव आदि सभी के शत्रुभा द्वारा दिये गये कष्टों को तुमने दूर कर दिया । भाई रावण के भय से व्याकुल शरणागत विभीषण का उठाकर तुमने भरत की नाइ छाती से लगा लिया ॥२॥

म तुम्हारा नाम लेकर अपने हृदय में एक गाँव बसाना चाहता हूँ । उसमें बसाने के लिए मैं धीरे धीरे भजन, विवेक, विराग्य आदि सज्जनों को इधर उधर से लाता हूँ । (मैं हृदय में जल-संज्ञा सद्भावों का स्थान देता हूँ) ॥३॥

यह सुनकर क्रोधित हुआ दुष्ट काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि जोर नवरदस्ती करते हैं । उन बेचारे भले आदमियों को उजाड़ उजाड़कर, हे प्रभो ।

पा-गम्यति पाणि भोजनान्न को सा-माकर यमा देने है (तब
 से निर्वाह हो ?) ॥४॥

गह, भूत और सवा-गुणाम करके तथा और और भी अपने उपाय
 हैं। (पर य गरी माग रहे) बिना ही कारण व सदा-मग्न सजे
 महान् दुःख को प्राप्त भी गुलामर तुम्हारे सामने निरन्तर कर

(यदि कहा जाय कि अथ दयताया को क्या नहीं अपना दुःख सुनाया, ता) व
 दयता स्यायी, असमय अयाग्य और निष्ठुर हं। उनका चित्त अनिर भा गही पिघलता।
 कहा जाऊ ? कौन विपत्ति दूर करनयाता है ? कौन इस संसार-सागर से पार उतारने
 वाला ? (कोई भी तो नहीं दोग पड़ना) ॥६॥

तुमसी यद्यपि नीच ह पर ह सो तुम्हारा ही और किसी दूसरे का गुलाम तो
 नहीं ह। अपना जानकर एक बार भक्ति-पथो बाँह दे दो जिससे तुम्हारे नाम का यह खेडा
 मच्छी तरह घावाद हो जाय। (भाव यह ह, कि हृदय में एक तुम्हारी भक्ति के प्रताप
 से ही ज्ञान, विवेक, पराग्य आदि सद्भावों का उदय और काम-क्रोधादि का नाश
 होगा ॥७॥

ग-गय—दादि = 'याय' इसाए। दाहे = जला दिये, नष्ट किए। ल्यावों =
 ले जाऊ। उजारि = उजाड़कर। अनीस = असमय, नि शक्त। बारक = बार + एक,
 एकबार। खेरो = खेडा, छोटा सा नाव।

विशेष—(१) 'कपि—सुग्रीव से तात्पर्य ह।

(२) विभीषण भेटयो—विभीषण न ज्यो ही यह कहा कि—

दीनबन्धु बहावत केसव' हों अति दीनबन्धु गहरी गाड़ी।
 रावन के अघ-ओष में केसव ! ब्रह्महों कर ही गहि काड़ी ॥
 ज्या राज की प्रह्लाद की कीरति, ह्योहों विभीषण की जल बाड़ी।
 भारत बन्धु ! पुकार सुनो किन, भारत हों तो पुकारत ठाड़ी।'

[रामचन्द्रिका

लयाही श्रीरघुनाथजी ने उसे हृदय से लगा लिया—

अस कहि करत बडबत देखी। तुरत उठे प्रभु हय धितेखी।
 दीनबन्धन सुनि प्रभु मन भावा। भुज विताल गहि हृदय लगावा ॥

[रामचरितमानस

६१४६

हों सब विधि राम, रावरो चाहत भयो चेतो।
 ठोर-ठोर साहिबी होत है, स्याल काल कलि केरो ॥१॥
 काल-कम इन्द्रिय विषय गाहवर्गन घेरो।
 हों न बबुलत बाधिके मोल करत करेरो ॥२॥
 वदि छोर तेरो नाम है विरुदैत वडेरो ॥३॥
 मैं कह्यो तब छल प्रीति के माँग उर डेरो ॥४॥

नाम ओट अउलनि वच्यो मूलजुग जग जेरो ।
अब गरीबजन पोपिये, पायवो न हेरो ॥४॥
जेहि कोतुब (बन) सग म्यान को प्रभु पाय निवेरो ।
तेहि कोतुब कहिय कृपासु । 'तुलसी है मेरा' ॥५॥

भाषा—हे रामजी ! मैं सब प्रकार से आपका दास बनना चाहता हूँ, पर यहाँ तो ठीर ठीर पर साहजी हो रही है । (मन अपनी प्रभुता जमा रहा हूँ, इन्द्रियाँ अलग हो अपना आधिपत्य दिगा रही हैं । अब मैं किस किस की गुलामी करता किछ ?) यह सब कौतुक कलिकाल का है ॥१॥

काल, कम और इन्द्रियस्वी ग्राहका ने मुझ घेर लिया है । जब मैं उनसे हाथ बिकता बचूँ नहीं करता तब वे मुझे बाँधकर मुझ पर कड़ा दाम बढ़ाते हैं, जन-तसे सालस दिला दिलाकर अपना अधीन करना चाहते हैं ॥२॥

आपका नाम बचन से मुक्त कर देनेवाला है और आपका बाना भी बड़ा है । जब मैंने उन (ग्राहका) से कहा, कि मैं तो रघुनाथजी के हाथ बिक चुका हूँ, तब वे बपटमरा धम दिलाकर मुझसे मेरे हृदय में बसने के लिए जगह माँगने लगे । (अब मैं क्या करूँ ? यदि उन्हें स्थान दिये देता हूँ तो प्रभो तो वे दीनता दिखा रहे हैं, पर जगह मिलते ही धीरे धीरे उस पर अपना अधिकार भी कर लेंगे, और मुझे घटा बता देंगे) ॥३॥

अब तब मैं आपके नाम के सहारे बचा रहा (नहीं तो अभी का इन ग्राहकों के हाथ बिक गया होता, इन्द्रिय सोलुप हो गया होता) पर अब यह कल मुझे परेशान कर रहा है । अतः अब इस गरीब गुलाम का पालन कीजिए, नहीं तो फिर यह लौजने से भी न मिलेगा (कनिष्क इसका नाम निशान तब मिटा देगा, 'रामदास' से 'रामदास' बना लेगा) ॥४॥

हे नाथ ! आपने जिस कौतुक से पक्षी (उत्तू अथवा बगुले) और कुत्ते का फसला कर दिया था, उसी सीला से यह भी कह दीजिए कि तुलसी मेरा है (बस, इतना कह देने से कनिष्क का इस पर कुछ भी बल न चलेगा, अपना-सा मुह लिये चला जाएगा) ॥५॥

भाषा—करेरो = कड़ा । बिबदत = बानाबाने । मूलजुग = कलजुग । जेरो = जेर माने परेशान करना । हेरो = बूढ़ने पर । बक = बगुला । निवेरो = फसला कर दिया ।

विनय—(१) 'हैं सब बेरो — बबिबर बिहारी भी यही चाहते हैं—

'हरि तुम सों कीजत यहै, बिनती बार हजार ।

जेहि-तेहि भाँति डर्यो रह्यो, पर्यो रह्यो दरबार ।'

(२) 'ठीर ठीर साहिबी — नाई की बारात में सभी ठाकुर हो रहे हैं ।

(३) इस पद में गोसाइजी ने 'साहिबी', 'स्थाल', 'बबूत', 'करेरो' इन फारसी शब्दों का प्रयोग किया है । ये प्रयोग, बोलचाल की भाषा में आने से सरस बन गये हैं ।

१४७

कृपासिधु ताते रह्यो निसिदिन मन मारे ।

महाराज, लाज आपुही निज जाघ उधारे ॥१॥

मिले रहै, मारयो चहे कामादि सँधानी ।
 मा बिनु रह न, मरियै जारैं छल छाती ॥२॥
 वसत हिये दिन जानि मे मन्त्री रुचि पाली ।
 कियो कथष को टह हौ जड करम कुचाली ॥३॥
 देखी सुनी न आजुला अपनायनि एसी ।
 बरहि सवै सिर मेर ही फिरि परै अनैसी ॥४॥
 बढे अलेखी लखि परे, परिहरे न जाही ।
 असमजस मे भगन ही, लीजे गहि बाही ॥५॥
 बारव बलि अवनोविये, कौतुक जन जी को ।
 भनायास मिटि जाइगो सकट तुलसी को ॥६॥

भाषाय—हे कृपासागर ! इसीलिए मैं रात दिन मन मारकर रहता हूँ कि महाराज ! अपनी जाँघ उधाड़ने से अपनी ही लाज जाती है, अपने हाथों अपना परदा खोलने से खुद ही बेशरम बनना पड़ता है ॥१॥

यह काम प्रायः आदि साथी मिले भी रहते हैं और मारना भी चाहते हैं ऐसे कपटी हैं ! वे बिना मेरे रह भी नहीं सकत अर्थात् जब तक मुझमें 'जीवत्व' भाव है तभी तक काम क्रोध आदि का अस्तित्व है । और मेरी ही छलपूर्वक छाती जलाते हैं । (जिस पत्तल में खात है उसी में घेद करते हैं ।) ॥२॥

यह जानकर कि ये मेरे हृदय में बसते हैं प्रेमपूर्वक मने इन सबकी रुचि भी पूरी कर दी, अर्थात् सारे विषय भाग चुका हूँ, फिर भी इन दुष्टों और कुचालियों ने मुझे कृत्यक की लकड़ी बना रखा है (लकड़ा के इशारे से जब कृत्यक लकड़ा को नाच नचाना सिखाता है वसा मुझे नाचना पड़ता है) ॥३॥

आज तक मन एसी पराधीनता में तो देखी है, और न सुनी ही है । कम तो कहते हैं सारे आप और जो कुछ बुराई हाता है, वह मेरे मत्ते मन्ते जाती है । (इन्द्रियाँ भोग विलास करती हैं और कुकृत्य भागना पड़ता है अनेक जन्मा तक बेचार जीव को । क्या भयाय ॥) ॥४॥

ये सब ऐसे विचित्र भयायी हैं कि देखने में तो आते नहीं (अज्ञान के मारे इनकी चाल समझ में नहीं आती) और दाख भी पड़ें तो छाड़ने को भी नहीं चाहता । हे प्रभो ! इसी दुविधा में पड़ा हूँ । बस, अब हाथ पकड़कर मुझ निकाल लीजिए (नहीं तो, इस ससार-सागर में डूबने का वाना हूँ) ॥५॥

आपकी बलमाँ लेता हूँ कृपाकर एक बार अपने इस दास का यह कौतुक तो देखिए । आपके देखते ही तुनमी का दुःख दूर हो जायेगा (क्याकि ब्रह्मदर्शन मात्र से जन्म-मरण छूट जाता है) ॥६॥

गद्याय—मनमारे = उदास । सधाती = साथी । कथक = कृत्यक, नाचनेवाला । दड = लकड़ी । अनसी = अनिष्ट । अलेखी = भयायी, विचित्र ।

विशेष—(१) इस पद में विषयों की दुदम्भ प्रवृत्ति दिखाई गई है । काम, क्रोध

आदि विषय भारी धोखेवाला ह। इनके बड़े पर चलें तो निगाह नहीं और इनसे भ्रमण रहें तो भी गुजारा नहीं। ये नाच-नाचकर भी नहीं छोड़ते। जीव को इनके अधीन होकर, अनेक कष्ट भोगने पड़ते ह। भारी विडम्बना ह। भगवत-कृपा में ही इनसे पिड़ घट सकता ह।

१४८

कहाँ कौन मुँह लाइये रघुवीर गुसाई।
सकुचत समुचत आपनी सब साई दुहाई ॥१॥
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो ही।
गुनगन-मीतानाथ के चित करत न ही हो ॥२॥
कृपासि-बु ब-बु दीन के आरत हितकारी।
प्रनत-पाल विरदावली सुनि जानि विसारी ॥३॥
सेइ न घेइ न सुमिरिबै पद प्रीति सुधारी।
पाइ सुमाहिव रामसो, भरि पेट बिगारी ॥४॥
नाथ गरीबनिवाज है, मं गही न गरीबी।
तुलसी प्रभु निज और तें बनि परै सो कीरी ॥५॥

भाषा—हे रघुवीर ! हे प्रभो ! क्या मुह लेकर आपसे कुछ कहूँ ? स्वामी की सौगंध ह जब मैं अपनी करनी की ओर देखता हूँ तब सदाश के भार कुछ कह नहीं सकता ॥१॥

आप सेवा करने से बस में हो जाते ह, स्मरण करने में भ्रम वन जाते ह, और शरण में आने से सामने प्रकट हो जाते ह। ऐसे जा आपके गुण-समूह ह उन पर भी मैं ध्यान नहीं दे रहा हूँ ॥२॥

आप कृपा के समुद्र ह दीन के ब-बु ह दुखिया के हित ह, और शरणागता के पालनहार ह ऐसा आपकी विरगावली सुनकर और जानते हुए भी मैं भूल गया हूँ ॥३॥

तु तो सेवा ही की, और न ध्यान ही किया। स्मरण करके आपका चरणा में सच्चा प्रेम भी तो नहीं किया। आप जैसे श्रेष्ठ स्वामी को पाकर भी मुझमें जितना भी हाँ सकता, उमना बिगाड़-ही बिगाड़ किया। भाव, अपने हाथों अपने परा पर कुल्हानी मारी ॥४॥

आप दीनोपर कृपा करनेवाले ह पर मने दीनता धारण नहीं की। भाव यह ह कि देहाभिमान के कारण मुझमें कभी दैव भाव नहीं आया सदा ऐंठ ही बनी रही। फिर दीन वत्मल भगवान कृपा करें तो कैसे ? अत है नाथ। अब अपनी ओर देखकर जो आपसे बन पड़े, वहीं कीजिए। माराश यह, कि आप बिगड़ी के बतानेवाला ह सो मुझ पर भी कृपा अवश्य करेंगे ॥५॥

गदाय—हाँही = म हूँ। घेइ = ध्याना करके। कोबी = कीजिए।

विनय—(१) मैं गरीब न गरीबी—स्वर्गीय भट्टजी ने इसका अर्थ यह लिखा

ह—

‘(मैं ऐसा नीच हूँ कि) मुझ गरीबी भी ग्रहण नहीं करती। यह अर्थ सीधा

तानी से किया गया जान पड़ता है। इसका सीधा ज्या-का-ज्यो अर्थ तो यही हो सकता है कि मैंने गरीबी नहीं गरी, न कि यह, कि मुझे गरीबी भी नहीं ग्रहण करती।

(२) 'कीसी'—यह बुद्देनखण्डो प्रयोग 'करबी' से मिलता-जुलता है। बिहारी ने भी 'कीसी' का प्रयोग किया है।

१४६

कहा जाऊँ, कासो वहाँ, और ठौर न मेरे।
 जनम गँवायो तेरेहि द्वार निबर तेरे ॥१॥
 मैं तो बिगारी नाथ सो आरति के लीन्हे।
 ताहि कृपानिधि क्यों बने मेरी सो कीहे ॥२॥
 दिन दुरदिन, दिन दुरदमा दिन दुख दिन दूषन।
 जबलो तू न बिलोकिहै रघुबश बिभूषन ॥३॥
 दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम विश्व बिलोचन।
 तो सो तुही न दूसरो नत-सोच बिमोचन ॥४॥
 पराधीन देव। दोन हौ, स्वाधीन गुसाईं।
 बोलनिहारे सो करे बलि विनय की झाई ॥५॥
 आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साचो।
 बडी भोट रामनाम की जेहि लई सो वाचो ॥६॥
 रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
 ज्या भावै त्यो करु कृपा तेरो तुलसी है ॥७॥

भाषा — कहाँ जाऊँ ? किसस कहूँ। मुझे कोई और ठौर नहीं। तेरे ही दर-बाजे पर (पद-पड) जिन्गी बाटी है और तारा ही गुलाम रहा हूँ। मतलब यह कि मैं सब तरह से तारा ही हूँ किसी दूसरे का नहीं ॥१॥

तुझ से सताये जाने के कारण हे नाथ। मैं तो सारी करना बिगाड़ चुका हूँ। अब है कृपानिधि। यदि तूने भी जाने के लिए सदा व्यवहार किया तब तो हो चुका। भाव यह कि मुझसे तो सारा बिगाड़ ही हुआ है अब तेरा हाथ ॥ तू मुझसे, क्योंकि तू दया का समुद्र है ॥२॥

हे रघुकुल में श्रेष्ठ। जब तक तूने (इस जीव की धार) नहीं देखा। (कृपा नहीं की) सब तक नित्य ही घाटे दिन नित्य ही बुरा दशा नित्य ही दुःख और नित्य ही दोष भगने रहेंगे ॥३॥

मैं तुझे पीठ न्यि फिरता हूँ तुझसे विमुख हो रहा हूँ क्योंकि मैं दृष्टिहीन हूँ भगपा हूँ पर तू तब सदा मात्र का द्रष्टा बन ? भाव यह कि तू मुझसे विमुख कैसे होगा ? तुझ-सा तू ही है। दूसरा कौन है, जिसमें तरी उपमा हूँ ? दोन-दुनियाँ का सबक दूर करने वाला एक तू ही है ॥४॥

हे देव ! मैं परतप्त हूँ दोन हूँ पर तू तो स्वनाम है स्वामी है। अनिहारी ! (चन्द्रम

रूप), बालनेवाले से क्या उसको परछाई विनय कर सकती है ? अर्थात् यह जड़ चैतन्य विभु से विनती नहीं कर सकता ॥५॥

अतएव तू पहले अपनी आर देख, तब मेरी ओर देख, तभी इस दास को सच्चा मानना । राम-नाम की आद बड़ी भारी है । जिस किसी ने भा रामनाम का सहारा लिया वह (जन्म-मृत्यु भय से) बच गया ॥६॥

हे राम ! तेरी रहनी और तेरी रीति सदा मेरे हृदय में नित्य उमग भरती रहती है, तेरा शील स्वभाव विचारकर मैं मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूँ, कि अब मेरी सारी बिगड़ी धन जायेगा । बस, यह तुनसी तेरा है उसे भी हाँ, इस पर कृपाकर, इस तू अगोकार कर ले ॥७॥

भाषा—किंकर = सेवक । भारति के लोन्हें = क्लेशित होने के कारण । दिन = नित्य से तात्पर्य है । छाई = छाया । बाँचो = बच गया ।

विशेष—(१) 'कृपा' = श्रीभगवद्गुणदण्ड में 'कृपा' का स्थान निम्नलिखित माना गया है—

‘रसखे सबभूतानामहमेवपरी बिभु ।

इति सामर्थ्य सधान कृपा सा परमेश्वरी ॥’

(२) पटाधीन गुसाई—ब्रह्म-जीव के सम्बन्ध में गसाईजी ने रामचरित मानस में स्पष्ट लिखा है—

‘परबस जीव, स्वबस भगवता । जीव अनेक, एक भीकता ॥’

यहाँ, शास्त्र का प्रतिपादन किया गया है, न कि अद्वैत बदान्त का ।

१५०

रामभद्र ! माहि आपनो सोच है अरु नाही ।

जीव सकल सताप के भाजन जग माही ॥१॥

नातो बडे समय सो इक ओर बिघौ हूँ ।

ताको मोसे अति घने, मोको एके तूँ ॥२॥

बडी गलानि हिय हानि है सबस्य गुसाई ।

कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाई ॥३॥

भला पाव राम को कहै मोहि सब नरनारी ।

बिगरे सेवक स्वान ज्यो साहिब सिर गारी ॥४॥

असमजस मन को मिटे सो उपाय न सूझै ।

दीनवधु कीजे सोई बनि परे जा बूझै ॥५॥

विस्दावली बिनोकिये तिन्हमे कोउ ही हो ।

तुलसी प्रभु को परिहरयो सरनागत सोहौं ॥६॥

भाषा—हे कल्याण-स्वरूप श्रीराम ! मुझे अपना साच है भी, और नहीं भी है । कारण कि जितने भी जीव हैं वे सभी ससार में दुःख के भाजन हैं, सभी दुखी हैं ।

मुझे सोच तो इस बात का है कि हाथ । मैं ससार सागर में ही डूबा पड़ा हूँ अभी तक मेरा उद्धार नहीं हुआ । और निश्चिन्त इसलिए हूँ कि जब सभी जोका को मेरी ही जैसी दशा है तो मुझे (बमफन भोगने में) कुछ चिन्ता नहीं करने चाहिए ॥१॥

पर यह तो बताइए कि, क्या आप-सरीरे बड़े समय के साथ सिर्फ एक ही, (मेरी ही) धीरे से सम्बन्ध है ? क्या, जिस प्रकार मैं आपकी अपना मानता हूँ वैसे आप मुझे न मानेंगे ? (एकांगी ही प्रेम रखेंगे क्या ?) इसलिए आगे के लिए तो मुझ-जैसे प्रेमी हैं किन्तु मेरे लिए तो एक आप ही हैं । (आप चाहें तो मुझमें भले ही निरपेक्ष हो जाएँ, पर मैं आपसे विमुख होने का नहीं) ॥२॥

हे आप ! आप तो घट घट की जानते हैं मुझे यही ग्लानि हो रही है और हृदय में इसे मैं एक हानि भी समझता हूँ कि हूँ तो मैं दुष्ट और कुसेवक पर बानें ऐसी कर रहा हूँ, जैसे कोई शम्भा सुसेवक करता है । (मेरा यह बनारसीपन आपके भागे कैसे छिप सकता है, क्योंकि आप तो सब जानते हैं) ॥३॥

भला हूँ या बुरा पर बहते तो सभी स्त्री-पुरुष मुझे राम का ही हैं । सेवक और कुत्ते के बिगड़ने से स्वामी के ही मिर गालियाँ पड़ती हैं । (तात्पर्य यह कि यदि मैं खोटाई करूँगा, तो लोग यही कहेंगे कि बुरा हो उस राम का जिसके ऐसे ऐसे नीच सेवक हैं) ॥४॥

मुझे वह उपाय भी नहीं सूझ रहा है कि जिससे चित्त की यह दुविधा दूर हो जाय (अर्थात् मेरी नीचता दूर हो जाय और आपको भी कोई बुरा न कहे) अब है दीन बन्धो ! आपको जो समझ पड़े और जो बन सके, वही (मेरे साथ) कीजिए ॥५॥

तनिक अपनी विरुदावली की ओर तो देखिए । क्या मैं नहीं उसमें स्थान पा सकता हूँ ? (भाव यह है कि आप दीनबन्धु हैं, तो क्या मैं दीन नहीं हूँ आप पतित पावन हैं तो क्या मैं पतित नहीं हूँ आप प्रणनपालक हैं तो क्या मैं प्रणत नहीं हूँ ? इनमें से) हम तुलसी की छोड़ भी देंगे तो भी यह उही के सामने शरण में जाकर पड़ा रहेगा और वही भी न जायेगा ॥६॥

शब्दाथ—मद्र=कल्याण । पोच=नीच । गारी=गाली । असमजस=दुविधा । विरुद=बाना । सोही=सामने ।

विशेष—(१) जीव जगमाही—क्योंकि जसा कम करेंगे, वना फन भाँगे —

‘अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कम गुणगुणम् ।’

(२) ‘असमजस—यह दुविधा कि मैं खोटा हूँ अथ मालिक पर भी बटटा लगता है खरा हो नहीं सकता, क्योंकि स्वभाव से ही मुझमें खोटाई भरी है । यह भी चाहता हूँ कि मैं चाहे जसा बना रहूँ पर मेरे कारण मेरे मालिक की बदनामी न हो, सो भी नहीं हो सकता, दिन रात इसी असमजस में पड़ा मोचा करता हूँ ।

(३) ‘कीज सोई बूझ’—यही बन पड़ा कि अपने सेवक पर आप ही उपाय करेंगे, क्योंकि यदि दह देंगे तो ससार आप पर हँसेगा और कहेगा कि यह कसा स्वामी है जो अपने सेवक की दुदशा चुपचाप खड़ा देख रहा है । इसमें भी बदनामी का डर है इसलिए कृपा ही करते बनेगी ।

(४) तुलसी सोहों—क्योंकि—

‘चुम्बक के पोछे लप्यो फिरत अचेतन लोह ।’

१५९

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो ।
तो तू दाम कुदाम ज्यो कर कर न बिनातो ॥१॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो ।
बाजीगर के सूम ज्यो खल येह न खातो ॥२॥
जौ तू मन, मेरे कहे राम-नाम कमातो ।
सोतापति सनमुख सुखी सब ठाव समातो ॥३॥
राम सोहात तोहिं जो, तू सर्वाहि सोहातो ।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥४॥
राम नाम अनुरागही जिय जो रतिआतो ।
स्वारथ परमारथ पथी ताहि सब पतिआतो ॥५॥
सेइ साधु सुनि समुझिकै पर पीर पिरातो ।
जनम कोटिको कादलो हृद-हृदय थिरातो ॥६॥
भव भग अगम अनत है विनु त्रमहि सिरातो ।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥७॥
अमर अगम तनु पाइ सो जड जाय न जातो ।
होतो मंगल-भूल तू अनुकूल विधातो ॥८॥
जो मन, प्रीति प्रतीति मा राम-नामहिं रातो ।
तुलसी रामप्रसाद सा तिहूँ ताप न तातो ॥९॥

भावार्थ—हे जीव । जो तू धीरामचन्द्रजी की गुलामी करने में न सज्जाता, तो खरा दाम होकर भी छोटे दाम की तरह हाथो-हाथ न बिकता फिरता । भाव यह कि तू हूँ तो परमात्मा का अंश, पर अपना स्वरूप भुला देने के कारण अनेक यानियाँ म भटकता फिरता हूँ ॥१॥

यदि तू जीम से धीराम का नाम जपन में आलस्य ॥ करता, तो आज तुझे बाजीगर के सूम के समान धूल न फाँकना पड़ती । (जब बाजीगर, जब उसे कोई कजूस खेल देखने पर भी कुछ नहीं देता, तब उसके नाम से काठ के पुतले के मुँह में धूल डाल कर गालियाँ सुनाता है उसी प्रकार यदि तू भगवन्नाम-स्मरण करने में कजूसी न करता धुले दिल से दिन रात नाम जपता, तो तुझे गालियाँ न गानो पड़ती, धूल ॥ फाँकनी पड़ती, तेरी ऐसी दुःशा न हावी) ॥२॥

यदि तू मेरे कहने से राम-नाम कमाता रामनाम रूखों धन सग्रह करता तो श्री जानकी-वल्लभ रघुनाथजी तुझे अपनी शरण में ले लने तू सुखी हो जाता और सबत्र तेरा आदर होता तेरा लोक बन जाता और परलोक भा ॥३॥

जो तुम श्रीरामजी सम्बो सग होत, सो तुम भी मन्वो सम्बो सगता नाम, कम बादि जितो (इस जीव के) प्ररख है य तुम पर प्रीति म करत, मति सर मनुता हो जाते ॥४॥

यदि श्रीराम-नाम त ही तुम मन्वो प्रीति जाडना सगता तो म्हाप मोर परमाथ सोनी के ही बटोही तुम पर निरवाग करत । अर्थात् संगार और पराजित मोना म हो तुम मुगी होता ॥५॥

जो तुम संता की सेवा करता एव दूसरा की पीडा मुन मोर मगम्बर दुगी होता ॥६॥ तरे हृदय सो तापाव म जो मनन जमा का मन नमा है बट मोन बँट जाता, तय मरत करण निमत हो जाता ॥६॥

सतार का माग मगम्बर है, इस पर मन्वो महात् दुबर है, किन्तु (उपार्जित सापरण करता हुआ) तू बिना ही थम के उसे पार कर जाता । अर्थात् श्रीराम का उपाय भी नाम सेने की महिमा ने (वात्सीकि) की मुति बना दिया था । भाव यह कि जब उमटे नाम का यह प्रभाव है तब सोधा नाम जाता तो क्या गही मर जाणता ॥७॥

मरे जह । तरा यह देवा की भी दुःख (मात्र) शरीर मों ही म्मय त पना जाता तू करमाण का मूल बन जाता । अर्थात् ब्राह्मी अवस्था की पट्टन जाता मोर देव भी तुम पर कृपा करता ॥८॥

मर ना । यदि तू प्रेम मोर निश्वास से राम-नाम में लो सगा देता तो हे तुलसी । श्रीराम कृपा से तीरा तापा में कभी त जगता ॥९॥

गम्धार्य—चराई=सेवा । राह=धून । बारनी=बारण प्रेरण । बोहातो=गुस्ता करता । रतिमातो=प्रीति करता । निराता=दुखी होता । बाँदो=बीबड़, मेल । हृद=तापाव । निरातो=बँट जाता साक हो जाता । निरातो=पार पार जाता तय कर लेता । निराता=निरात, भीस । तातो=तबता = जाना ।

विनये—(१) राम सोहाते सोहातो क्योनि—

‘जापर कृपा राम के होई । तापर कृपा करहि सब कोई ॥’

(२) ‘मनुराग—श्रीवज्रवाचजी मनुराग की परिभाषा लिखते हैं—

‘व्यापकता जो प्रीति की, जिमि सुठि बसन सुरग ।

हृगन द्वार बरस बढक सो अनुराग अभग ॥’

(३) ‘पर-मोर निरातो—भक्तवर नरसी वष्णुव लक्षणा में कहते हैं—

‘यद्यप्य जन लो सेने कहिये जे पीड पराई जाणो रे ।’

(४) ‘अनुकूल विधातो—ब्रह्मा इसलिए प्रसन्न हो जाता कि इस जीव के रचने से मेरा थम सफल हो गया इसे अब बार-बार न रचना पडगा । जीव का ब्रह्म-सम्बन्ध हो जाना ही जीवन का चरम फल है ।

(५) ‘तिहुँ ताप—दहिक भीतिक मोर दबिब ।

(६) ‘प्रीति—‘भगवत्पुण्यदण में प्रीति का यह लक्षण दिया गया है—

मत्पतयोप्यताद्विद्विद्वत्पुलादिनालिनी ।

अपरिपुण्यस्वरूपा या सा स्यात् प्रीतिरनुत्तमा ॥’

११२

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ।
 जुग जुग जानकिनाथ को जग जागत साको ॥१॥
 ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख बसुधा को ।
 रबिकुल-कैरव चन्द भो आनन्द-सुधा को ॥२॥
 कौसिक गरत तुपार ज्या तक तेज लिया को ।
 प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥३॥
 हरयो पाप आप जाइवै सताप सिला को ।
 सौच-भगन काढयो सही साहिब मिथिला को ॥४॥
 रोष रासि भृगुपति धनी अहमिति भमता को ।
 चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को ॥५॥
 मुदित मानि आवसु चले वन मानु पिता को ।
 घरम घुर-घर घोरघुर गुन-सील जिता को ? ॥६॥
 गुह गरीब गतग्यातिहै जेहि जिउ न भवा का ?
 पायो पावन प्रेम तें सनमान सखा को ॥७॥
 सद्गति सबरी गीध की सादर करता को ?
 मोच-मीच सुग्रीव वं भकट हरता को ? ॥८॥
 रागि विभीषन को सके अम कान-गहा को ?
 आज विराजत राज है दसकठ जहा को ॥९॥
 वालिस वासी अवध को ब्रिये न साको ।
 सो पावर पहुँचो तहा जह मुनि मन थाको ॥१०॥
 गति न लहै राम-नाम सो बिधि सो सिरजा को ?
 सुमिरत कहत प्रचारिवै बल्लभ गिरिजा को ॥११॥
 अर्क अजामिल की कथा सानन्द न भा को ?
 नाम लेत बलिकाल हू हरिपुरहि न गा को ? ॥१२॥
 राम-नाम महिमा करे काम भूखह आको ।
 साखी वेद पुरान हैं तुलसी-तन ताको ॥१३॥

भावार्थ—श्रीरामजी ने अपने गने स्वभाव से जिसका भला नही किया ? युग युग से श्रीजानकी गमल का ऐसा मुग्ध ससार में प्रसिद्ध है ॥१॥

ब्रह्मा आदि देवताओं ने पथिवी का दुख सुनाकर जब प्रायना को, तब (पथिवी का मार हरन के लिए राक्षसों को मारने के लिए) मूषकास्त्री कुम्भोत्पत्ति को प्रफुल्लित करनेवाले एवं अमृतपाप आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी आविर्भूत हुए ॥२॥

विश्वामित्र, लक्ष्मण का तेज देखकर आन की तरफ गम जा रहे थे । प्रभु ने

ताड़का को मारकर शत्रु को मित्र का-सा फन दिया एवं क्रोध का फन कृपा के रूप में दिया । भाव यह कि दुष्ट ताड़का को स्वर्गसाक भेजकर उम पर कृपा को ॥३॥

स्वयं जाकर पापाणी (पहल्या) का पाप सताप दूर कर दिया उसे दिव्य देह देकर पुन पति लाक भेज दिया । फिर मिथिला क महाराज जनक को शोचसागर में स डूबत हुए निकाल लिया अर्थात् शिव अनुप तोड़कर उनकी प्रतिज्ञा पूरी कर दी ॥४॥

परशुगम क्रोध के भाँडार एवं अहंकार और ममत्व के धनी थे उन्हें भी आपने देखते ही शांति और समता का पात्र बना लिया अर्थात् वह क्रोधी से शांत और अहंकारी से समद्रष्टा हो गए । यह सब श्रीरामजी के शील-स्वभाव का ही प्रभाव है ॥५॥

माता (कन्येयी) और पिता की आत्मा मानकर प्रसन्नचित्त बन चले गये । ऐसा भला धमधुरधर और धयपगव तथा सद्गुण और शील का जीतनेवाला दूसरा कौन है ? ॥६॥

जिसकी जाति का भी कोई पता नहीं जिसने सभी प्रकार के जीवों का सदा भक्षण किया एस गरीब गृह निपाद ने भी (जिन रघुनाथजी से) पवित्र प्रेम के कारण सखा के जैसा आदर प्राप्त किया ॥७॥

शबरी और गीव (जटायु) का मोक्ष देनेवाला कौन है ? और महान् शोक सतत सुग्रीव का सकट निवारण करनेवाला कौन है ? ॥८॥

ऐसा कौन कान का आस था जो (रावण से बहिष्कृत) विभीषण को अपनी शरण में रख लेता, जिस रावण के राज्य में आज भी विभीषण राजा बना बैठा है । (यह सब कृपा रघुनाथजी की है) ॥९॥

अयाध्या का रहनेवाला मूल्य धोबी जिसमें खाक भी बुद्धि नहीं अथवा जिसे कोई धूल क धरावर भी नहीं समझना था वह पापी भी वहाँ पहुँच गया जहाँ पहुँचने में मुनिया का मन भी एक जाता है । भाव यह है कि जिन परमधाम के सवध में बड़े बड़े मुनि विचार भी नहीं कर सकते, वहाँ वह सीताजी की नि दा करनेवाला धोबी सह जा गया ॥१०॥

ब्रह्मा ने ऐसा कौन सिरजा जो राम नाम के प्रभाव से मुक्ति का भागी न हो ? आशय यह कि जादमात्र राम-नाम के प्रताप से मुक्त हो जाते हैं । पावतीवल्लभ शिवजी (जिस) राम नाम का स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरों को सुना सुनाकर उसका प्रचार करते हैं ॥११॥

अजामेन की क्या सुनकर कौन प्रसन्न नहीं हुआ ? और राम नाम का स्मरण कर इस कलिकाल में ऐसा कौन है जो विष्णुलोक को न चला गया हो ? ॥१२॥

राम नाम का महत्त्व अर्थात् का भी कल्पवृक्ष बना सकता है । इस बात के प्रमाण वद और पुराण हैं । (इस पर भी विश्वास न हो तो) तुलसीदास जी और देखो । भाव यह है, कि मैं महामुग्ध था किंतु राम-नाम के प्रभाव से आज राम भक्ता में मेरी गणना होता है ॥१६॥

गन्दाय—जागत = उजागर है । साको = यश । कौसिक = विश्वामित्र । गरत = गसते हैं । तिया = स्त्री यहाँ ताड़का से तात्पर्य है । सिना = यहाँ पहल्या से आशय है । अहमति = मैं ऐसा अहंकार । उपगम = शांति । गतग्याति = जिसकी जाति का भी

पता नहीं । काल गहा = काल का घास, मरणप्राय । घालिस = मूत्र । ५

भा = हुमा । गा = गया । जाको = मकोया । तन = जोर ।

प्रश्नोप—(१) इस पद में गोसाइजी ने क्रमशः श्रीराम-कथा का संक्षिप्त वर्णन किया है । इस पद की यदि विनय रामायण' कहा जाये, तो असंगत न होगा ।

(२) 'गुह सखा को'—गुह निपात को कितना बड़ा महत्त्व प्राप्त हुआ है —

प्रेम-मुलकि केवट कहि नाम । कीह दूरि तैं वध प्रनाम ॥

राम सखा रिषि बरबस भेटे । जनु भहि सुठत सनेह समेटे ॥

रघुपति भगति सुभगल भूता । नभ सराहि सुर बरपाहि फूला ॥

इहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड बसिष्ठ सम को जग माहीं ॥

जेहि सखि सपनहु ते अधिक, मिने महापुनि राव ।

सो सीतापति मिलन को प्रगट प्रताप प्रभाव ॥'

[रामचरितमानस]

(३) आज जनों का—श्रीरामेश्वर भटजी ने इसका यह अर्थ किया है—
“आज (जिस समय) जहा (लका) का राजा रावण विराजमान था । किन्तु इससे यह अर्थ अधिक उपयुक्त जचना है, कि जिस रावण के राज्य में आज भी विभीषण राजा बना बसा है ।’ यही अर्थ श्रीवज्रनाथजी ने भी लिखा है, जहा को राजा रावण रहो ताको परिवार सहित मारि तहाँ का राजा विभीषण का रिय सो अजहू विराजत है, भाव, भवन राज्य दिय ।’

(४) लाका—श्रीभटजी ने इस शब्द का अर्थ यों किया है—ला = रज + क = रजक । लाका का साधारण लाक स तात्पर्य है । यहा घोड़ी से तात्पर्य अवश्य है, पर वह स्पष्टतः यक्त नहीं किया गया ।

(५) 'सुमिरत गिरजा का—अध्यात्म रामायण' में शिवजी ने कहा है—

अहो ! भवनाम गूणन कृतार्थो वसामि काश्यामनिन भवाया ।

मुमुक्षु माणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मत्र तव रामनाम ॥'

मेरे रावणिय गति है रघुपति बलि जाऊँ ।

निलज नीच निगुन निघन कहैं जग दूसरो न ठाकुर ठाऊँ ॥१॥

हैं घर घर बहु भरे मुमाहिव, सूचत सबनि आपनो दाऊँ ॥२॥

वानर-वधु विभीषन हितु तिनु, कोमलपाल कहैं न ममाऊँ ॥३॥

प्रनैतरेति भजन जन रजन, सरनागत पवि-पुनर नाऊँ ॥४॥

कीजे दास दासतुलसी अब कृपासिधु तिनुमोल बिचाऊँ ॥५॥

भाषा—हे रघुनाथजी ! बलिहारी ! मरी तो बवल आप तक हा गति है मेरी दोड़ आप तक ही है क्याकि निलज नीच मूख और गरीब के लिए सत्कार में (आपको छोड़कर) न तो कोई स्वामी है और न कोई ठौर ठिकाना ही । वह किसका होकर रहे और कहाँ जाये ॥१॥

यो तो घर घर में बहुत से अच्छे अच्छे मालिक भरे पड़े हैं, किन्तु उन सबका अपना ही दाँव दिम्बता है, अपना ही स्वाथ साधना चाहते हैं। म तो वानरा के मित्र और विभीषण के हितु कोशसेन श्रीरामचन्द्रजी को छोड़कर और कहीं भी शरण नहीं पा सकता, मेरी पूछ किसी और स्वामी के यहाँ न होगी ॥२॥

आपका नाम भक्तों के दुःखों का नाश करनेवाला सेवकजनों को सुख देनेवाला और शरणागतों के लिए वज्र निर्मित पिंजरे के समान है, (अमोघ कवच है) सो भव तुलसीदास को अपना दास बना ही लीजिए। हे कृपासागर ! भव म बिना ही मोल के (आपके हाथ में) विकना चाहता है। (आपका निष्काम सेवक बनना चाहता हूँ। मुझे अपना कोई स्वाथ नहीं साधना है।) ॥३॥

शब्दाथ—ठारुँ=ठाम, स्थान। पवि पजर=वज्र का पिंजरा।

विशेष—(१) पवि-पजर—महर्षि विश्वामित्र ने वज्रपजर नाम का एक कवच रचा था। उसे राम रक्षा स्तौत्र भी कहते हैं। उसकी यह फल-श्रुति इसका प्रमाण है—

वज्रपजरनामेव यो राम-कवच स्मरेत् ।

अयाहतान सब्र सभते जयमगलम् ॥'

१५४

देव, दूसरों कौन दीन को दयालु।

शीलनिधान सुजान सिरोमनि, सरनागत प्रिय प्रनत पालु ॥१॥

को समर्थ सवग्य सकल प्रभु सिव सनेह मानस मरालु।

को माह्वि किये मोत प्रीतिवस खग, निसिचर कपि भील भालु ॥२॥

नाथ-हाथ माया प्रपञ्च, मत्र जीव दोष गुण करम-कालु।

तुलसिदास भला प्रोच रावरो, नेकु निरखि कीजिये निहालु ॥३॥

भाषाथ—हे देव (आपका छोड़कर) दीनों पर दया करनेवाला दूसरा और कौन है ? एक आप ही शील के स्थान, नानियों में श्रेष्ठ शरणागतों के परमप्रिय और भक्ता के पालनेवाले हैं ॥१॥

कौन आपके समान सवशक्तिमान् हैं ? हे नाथ ! आप सब हैं सबके स्वामी हैं और शिवजी के प्रेमाधीन होकर उनके हृदय में वास करते हैं। जिस स्वामी ने प्रेम-वश पत्नी (जटापु) रामस (विभीषण) वानरो, भील (निपाद), और भालुओं को अपना मित्र बनाया ? ॥२॥

हे नाथ ! आपके हाथ में माया का सारा प्रपञ्च एवं जावा व दोष गुण, कम और काल है। यह तुलसादास भला हो या बुरा, आपका ही है। इसकी ओर जरा सा देखकर, उसे निहाल कर दीजिए ॥३॥

विनय—(१) शील — भगवद्गुण-पण्य में शील का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

‘हीनर्शनमलौनञ्च वीभत्स कुतिसतरपि ।

महतो-छिद्रसन्ध सो गीत्य विदुरो-नरा ॥’

श्रीवज्रनाथजी ने इसका पञ्चानुवाद यह किया है—

‘हीनरु दोन मलीन छल, धिा आव जिहि देखि ।

सबनि आवर मान दे गुन सोनोत्प जिसेखि ॥’

(२) ‘प्रपञ्च दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है—

१ पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांचा तत्त्वा की सृष्टि ।
पञ्चभौतिक प्रकृति ।

२ अविद्या, विद्या, सपिनी, सदीपिनी और ब्राह्मादिनी यही पञ्चधा माया है ॥

राम सारङ्ग

१५५

विस्वास एक राम नाम को ।

मानत नहिं परतीति अनन ऐसाइ सुखाव मन दाम को ॥१॥

पठिबो परयो न छडी छ मत ग्गि जजुर अथवन साम को ।

व्रत तीरथ तप मुनि सहमत पुत्रि भरे करे तन छाम को ? ॥२॥

करम-जाल बलिकाल बठिन आधीन सुमाधित दाम को ॥३॥

ग्यान बिराग जोग जप भय लोभ मोह कोह काम का ॥४॥

सब दिन सबलायक भव गायक रघुनायक गुन-ग्राम को ।

बैठे नाम-वामतरु-तर डर कौन घोर घन घाम को ? ॥५॥

को जाने को जेहै जमपुर, कोहै सुरपुर परधाम को । ॥६॥

तुलसिहि बहुत भनो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥७॥

भावाय—मुझे तो एक राम-नाम का ही विश्वास है । मेरे कुटिल मन को कुछ ऐसी प्रकृति है, कि और कही प्रतीति ही नहीं करता (चाहे कौन कितना हा लाभ क्यों न दिलाये) ॥१॥

छह शास्त्रा के सिद्धान्त तथा ऋक यजुर अथर्वण और सान वेद का पढ़ना मेरे भाग्य में ही नहीं लिखा गया है (अब रहे अथ उपाय, सो) व्रत, तीर्थ तप आदि सुनकर मन डर रहा है । कौन (इन साधना में) पञ्च-यन्त्र करे और शरीर को क्षीण करे ? ॥२॥

कर्म-काण्ड कलियुग में बठिन है, और द्रव्याधीन भी है । भाव यह कि एक तो पास में दाम नहीं, कि जिससे यन्त्र आदि किए जाएँ दूसरे कलियुग में अनेक विघ्न बाधाएँ हैं जिनके मारे कभी पूरा नहीं पड़ सकता । फिर जान बराय, योग, जप और तप में लाभ भजन ज्ञेय और काम का भय लगा हुआ है (इनके मारे व भी सपने के नहीं) ॥३॥

इस ससार में श्रीरघुनाथजी के गुण का कीर्तन करनेवाले हैं सदा सब प्रकार से योग्य हैं । भाव हरिकीर्तन करनेवाले ही सबगुणसम्पन्न हैं उन्हें कोई बिना भावा नहीं सताती । जो रामनाम-रूपी कल्पवृक्ष का छायातले बैठे हैं उन्हें घन घोर घटा अथवा तेज धूप का क्या डर है ? तात्पर्य यह कि उन्हें न तो सगरीरे विपत्तियाँ ही सना

सकती है और न पाप सन्ताप ही जला सकते हैं । क्योंकि उनकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ॥१॥

कौन जानता है कि कौन तो नरक जायेगा और कौन स्वर्ग और कौन ब्रह्मलोक जायेगा ? तुलसीदास को तो इस ससार में श्रीराम का गुलाम हाकर जीना ही बहुत प्रिय लगता है ॥५॥

गन्दाय—अनंत = अक्षय, और कही । छठी न परमा=भाग्य में नहीं लिखा । छ मत्त=छह शास्त्र अर्थात् वैशेषिक, साय, साख्य, योग, पूवमीमांसा और उत्तरमीमांसा (वेदांत) । रिगु=ऋग्वेद । जजुर=यजुर्वेद । सहस्रत=हरिता ह । धाम=शोण, बुबल ।

विशेष—(१) छ मत्त—छह शास्त्रों के सिद्धांत, जिनके प्रतिपादक महर्षियों के नाम ये हैं—

१ वैशेषिक के प्रतिपादक	कणाद	परमाणु प्रधान
२ साय	गौतम	द्रव्य प्रधान
३ साख्य	कपिल	पुरुष प्रकृति प्रधान
४ योग	पतंजलि	ईश्वर प्रधान
५ पूवमीमांसा	जमिनि	कर्म प्रधान
६ उत्तरमीमांसा	रास	ब्रह्म प्रधान

(२) भव गायक—श्रीरामेश्वर भट्ट ने इसको समस्त पूरा मानकर इसका अर्थ किया— 'और शिवजी भी जिसे गाते हैं । श्रीवज्रनाथजी ने जो अर्थ किया है— "रघुनाथक व कृपा दया आदि जो समूह कल्याण गुण हैं तिनको ग्राम रामायणादि किया ताको गायक होना । यहा भव का अर्थ शिव मुक्तिसंगत नहीं जान पड़ता है । वज्रनाथजी का भाव भी स्पष्ट नहीं हुआ है । भव का अर्थ ससार ही जाना चाहिए । अर्थात्, भव (में) भ्रष्ट हो जाते हैं । 'भव' के स्थान पर किसी किसी प्रति में गुणगायक पाठ पाया जाता है । किंतु आगे गुणग्राम आया है । अतः भव पाठ ही उपयुक्त है । नागरी प्रचारिणी सभा का प्रति में भयो पाठ आया है । ऐसा पाठ मान लेने से उसके सम्पादक इस भ्रष्ट से बच गये हैं ।

(३) 'तुलसिहि गुलाम को—यही गोसाइजी हरिमय जगत' को बहुत आदि से भी बढ़कर मानते हैं । ससार का महत्त्व इस युक्ति से स्पष्ट हो जाता है । उनका लिए रामगुलाम का जीवन स्वर्गीय जीवन से कहीं अधिक महत्त्व का है ।

बहा करो बहूत से कलपवृक्ष की छाँह ।

अहमद दाक सराहिए जो प्रीतम मल चाह ॥

१५६

वनि नाम वामतर राम को ।

दलनिहार दाहिद दुमाल दुम दाप धार धन धाम को ॥१॥

नाम लेन दाहिना होत मन, वाम विचाता वाम को ।

बहत मुनीम महिम महानम चलते सूधे नाम को ॥२॥

भनो लोच-परलोक तासु जावे बल ललित लनाम को ।
तुलसी जग जानियत नाम ते, मोक्ष न बूच मुकाम को ॥३॥

भाषाय—कलिपुग में योराम का नाम कल्पवृक्ष ह । वह दारिद्र्य दुमिच,
दुःख, दोष और त्रिषाप की कड़ी धूप बचाने के लिए और मेघरूप ह ॥१॥

राम का नाम लेते ही वाम विधाता का प्रतिकूल मन भी अनुकूल हो जाता ह,
झटा देव भी प्रसन्न हो जाता हैं । मुनारवर बा-मीनि न उलटे घघात मरा मरा नाम
की महिमा गाई ह । और शिवजी ने सीधे नाम का माहात्म्य बड़ा ह । (तात्पर्य यह ह
कि सलटा नाम जपते-जपते बाल्मीकि बहेनिय स ब्रह्मायि हो गय, और शिवजी सीधा
नाम जपने से हलाहल का पान कर गये तथा स्वयं भगवत्स्वरूप मान गये) ॥२॥

जिसे इस सुंदर से भी सुंदर प्रपवा सुंदर और सुरम्य रामनाम का बल भरोसा
है, उसके लोक और परलोक दोनों हो बन गये । हे तुलसी ! रामनाम स इस ससार में
न तो मौत की चिन्ता अनुभव होती हैं और न गमवास का क्लेश ही ॥३॥

गद्याय—दुवाल = दुमिच भकाल । दाहिनी = अनुकूल । वाम = प्रतिकूल ।
ललित लनाम = ये दोनों ही शब्द सुंदर ने बोधक हैं सुंदर स भी सुंदर ।

विनय—(१) कलिपुग में केवल रामनाम ही मोक्ष का मुख्य साधन है, इसे
सदय में रजते हुए गोसाइजी रामचरितमानस में लिखते ह—

‘कलिपुग जोग जग्य नहि ग्याना । एक अघार राम-गुन गाना ॥

सब भरोस सजि जो भजु रामहि । प्रेम समेत गाइ गुन-प्रामहि ॥

सो भव तब बछु ससय नहि । नाम प्रताप प्रकट कलि माहि ॥

(२) सोक्ष न बूच मुकाम का—रामनाम के प्रभाव स जीव जन्ममरण के
चक्र से छूट जाता ह ।

‘सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम ।

गुदात्त वरणो भूत्वा निर्वाणमपिमण्डति ॥’

[पद्मपुराण

१५७

सेइये सुसाहिब राम सो ।

सुखद, सुसील, सुजान सूर, सुचि, सुंदर कोटिक काम सा ॥१॥

सारद, सेस साधु महिमा कहैं गुनगन गायन साम सा ।

मुमिरि सप्रेम नाम जासो रनि, चाहत चंद्र-सलाम सो ॥२॥

गमन विदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत्त प्रनाम सो ।

साखी ताको विदित विभीषन, वेठा है अविचल धाम को ॥३॥

टहल, सहल जन महल महल, जागत चारो जुग जाम सो ।

देसत दोष न खीभन, रीयत सुनि सेवक गुन ग्राम सो ॥४॥

जाके भजे तिलोक तिलक भये, निजग जोनि तनु तामसो ।

तुलसी ऐसे प्रभुहि भजे जो न, साहि विधाता वाम सो ॥५॥

भाषा—श्रीराम सुंदर सुंदर स्वामी की सेवा करनी चाहिए, जो सुख देने वाले सुशील, चतुर, धीर, पुण्यलोक तथा करोडा कामदेवों के समान सुंदर ह, जिनकी महिमा का बखान सरस्वती शेषनाग और सतजन करते ह, जिनके गुण सामवेद सरीखे गायक गाते हैं, जिनका नाम प्रेमपूवक स्मरण करते हुए शिव सरीखे भी उनसे प्रीति जोड़ना चाहते ह ॥२॥

(उन श्रीराम की सेवा) जिनकी विदेश भ्रमति वन जाते समय तनिक भी क्लेश नहीं हुआ (वे ऐसे एकरस सदा प्रसन्न रहनेवाले हैं कि वन जाते हुए भी कष्ट नहीं हुआ) यदि कोई एक बार भी प्रणाम कर लेता ह, तो जो सकोच के मारे दब जाते ह (ऐसे शीलवान् ह), इसका साक्षी विभीषण प्रमिद ह कि जो आज भी (लका में) घटल राज्य कर रहा ह ॥३॥

(उन श्रीराम की सेवा) जिनकी आकरा बड़ी सहल ह (चूक भी पड़ जाये तो माफ कर देते ह), जो अपने भक्ता के घट घट में, चारो युगों में (रात्रि के अथवा अविद्या रपी रात्रि के) चारो पहर जागते रहते हैं (मोह या सकट के समय उनके हृदय में बठ कर चौकीदारी किया करते ह) जो अपराध दखते हुए भी सेवक पर नाराज नहीं होते ह और जब अपने सेवक की गुणावली सुनते ह तो उस पर निहाल हो जाते हैं ॥४॥

जिन्हें भजने से पशु-पक्षी एवं तामस शरीरधारी (राक्षस) भी त्रिलोक शिरोमणि बन गये । हे तुलसी ! ऐसे (सुशील सुन्दर जनवरत्नल पतितपावन एवं शरण्य) प्रभु को जो नहीं भजते, उन पर विपाता ही प्रतिकूल ह यही समझना चाहिए ॥५॥

भाषा—साम=सामवेद । चंद्रललाम=चंद्रमा ही जिनका भूषण ह, अर्थात् शिवजी । सकुल=एक बार । टहल=सेवा । ग्राम=भूगृह । त्रिजग=तियक, पशु पक्षी । तामसो=तमोगुणा ।

बिनेय—(१) 'गमन क्लेश को—श्रीरघुनाथ के इस एकरस भाव पर णोसाइजी ने रामचरितमानस में कहा ह—

‘पितु आयसु भूषन-वसन साज सजे रघुबीर ।

विसमय हरष ॥ हृदय कछु, पहिरे बसकल खीर ॥’

मुझ प्रसन्न मन राग न रोयू । सब कर सब विधि किय परितोयू ॥’

(२) जन महल जाम सो—भगवान की प्रतिज्ञा ह—

‘अनयाश्चिन्तयन्तो मा ये जना पयुपासते ।

तेषा नित्याभिपुस्तानां योषधेम बहाम्यम ॥

[भगवद्गीता

(३) त्रिजग जोनि तनु तामसो—जटायु बदरो रोछा तथा विभीषण से तात्पर्य ह ।

१५८

राग भट

कैसे देखें नाथहि खोरि ।

काम लोलुप भ्रमत मन ह । पति परिहरि तोरि ॥१॥

बहुत प्रीति पुजाइवे पर, पूजिबे पर थोरि ।
 देत सिय, सिसयो न मानत, मूढता अस मोरि ॥२॥
 किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
 सग बस किये सुभ सुनाये सबल तोब निहारि ॥३॥
 क्यों जो कछु धरो सचि पचि सुदृढ सिला बटोरि ।
 पेठि उर बरवस दयानिधि, दम लेत अँजोरि ॥४॥
 लोभ मनहि नचाव कपि ज्यो, गरे आसा डोरि ।
 वात कहो बनाइ दुष ज्यो, बर विराग निचोरि ॥५॥
 एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि ।
 निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहि छोरि ॥६॥

भावार्थ—मैं अपने स्वामी को कैसे दोष दूँ ! हे हरे ! तुम्हारे भक्ति को छोड़ कर मेरा मन काम-वासनामा में फँसा हुआ इधर-उधर भटकता रहता है । (एक क्षण भी निश्चल होकर तुम्हारा ध्यान नहीं करता) ॥१॥

अपने पुजाने पर तो मेरा बड़ा प्रेम है, सदा यही चाहता रहता हूँ कि लोग मुझे सन्त महान्त मानकर मेरी प्रतिष्ठा करें, किन्तु पूजने में मेरी बहुत कम श्रद्धा है । दूसरे को तो उपदेश करता हूँ (यह चाहता हूँ कि लोग मेरे उपदेश पर चलें) पर स्वयं किसी का उपदेश नहीं मानता हूँ ॥२॥

जिन जिन पापों को मने बड़े चाव से किया है, उन्हें तो हृदय में छिपाकर रख लिया, पर कभी किसी सत्संग में पड़कर मुझसे जो कुछ काम बन गये, उन्हें सारे ससार को निहोरा कर-कर सुनाता फिरता हूँ । सदा यही पढी रहती है कि दुनिया मुझे महारत्ना समझे ॥३॥

कभी जो कुछ सत्कर्म बन जाता है उसे खेत में पड़े हुए अन्न के दाना की तरह बटोर-बटोरकर रख सता है किन्तु हृदय में जबरदस्ती पठकर दम उसे भी खोज खोजकर बाहर निकाल फेंकता है । भाव यह, कि दम्भ सारे किए हुए को मिट्टी में मिला देता है ॥४॥

लोभ मेरे मन की आशाखूबी रस्ती से इस तरह नचा रहा है, जैसे कोई बन्दर क गले में डोरी बाँधकर उसे मनमाना नचाये । (और इसी लोभ के वश ही) मैं बराब्र और शरय ज्ञान की बातें बड़-बड़ पड़ितों की तरह बघारा करता हूँ ॥५॥

इतना सब होते हुए भी तुम्हारा (दास) कहाता हूँ । जो साज थी, उसे भी धोलकर मानो पी गया हूँ । हे रघुनाथजी ! (और तब मेरे पास कुछ रहा नहीं) बस, इस निलजता पर ही रीझकर मेरा बचन काट दो मुझे ससार जाल से मुक्त कर दो ॥६॥

शब्दाव—छोरि=दोष । सचि-पचि=मलमूलव रखकर, सेंट-सेतकर । सिला=खेत में पड़े अनाज के कण । अँजोरि लेत=साज लेता है । अँचई=पी गया ।

ह प्रभु ! मरोई सब दासु ।

सीलसिन्धु, कृपालु नाथ अनाथ, धारत-योसु ॥१॥

वेष वचन विराग मन अघ अरगुननि की कोसु ।

राम प्रीति प्रतीति पोनी कपट-करनर ठोसु ॥२॥

राम रग कुमग ही सो, साधु-सगति रोसु ।

चहत वेहरि-जसहि सइ मृगाल ज्यो मग्गोसु ॥३॥

सभु सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहि घोसु ।

दभह कल नाम कूभज साच-सागर-सोसु ॥४॥

मोद मगल मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।

रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहूँ परम परितोसु ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभा ! सारा मेरा ही दोष है । पाप तो शील के समुद्र कृपालु, अनार्यों के नाथ और दान-दुस्त्रिया के पालने पोसनेवाले ॥ ॥१॥

मेरे शेष और वचना में तो बराब्य भरक रहा है, किन्तु मन पापा और दुगुणा का खजाना है । हे श्रीराम ! आपकी भक्ति और भद्रा कलि ता मन मेरा पाला-खाखल है, उसमें तनिक भी भक्ति और विश्वास नहीं है किन्तु खन रूप के कामो के लिए ठोस है, कपट-ही कपट भरा है ॥२॥

जैसे वरगाश मियार (गोदड़) की सेवा करते सिंह की कीर्ति चाहता है वैसे ही मैं कुसगति से तो प्रेम करता हूँ भानन्द मानता हूँ, और साधु जना के संग में खड़ा रहता हूँ । (भाव यह है, कि जय सरगोश गीत के धूने पर सिंह का-सा यशस्वात्म करना चाहता है, गजेश के पछाड़न या बहादुरी सिपाना चाहता है, पर यह कैसे सम्भव है ? सियार तो उसका भक्षक है । यश दूर रहा उस प्राण्या से भा हाथ पान पडेग । इसी प्रकार जो कुसग में पड़कर कीर्ति कमना चाहता है, उस कीर्ति के बदन अपकीर्ति ही मिलगी) ॥३॥

शिवजी का उपदेश यही है कि 'नियं जित्वा से राम-नाम का कीर्तन करो । कलिपुग में दभ से भा गया हुआ राम-नाम अगस्त्य की तरह दुःख सागर को सोख लेता है । (दभ से लिया हुआ राम नाम भी नोक परनोक दोनों का चिन्तामा का दूर कर देता है) ॥४॥

राम-नाम भानन्द और कल्याण का जड़ है । यह मेरा निश्चय है कि अपने लिए तो एक राम नाम का धन्य अनुकूल है । राम-नाम का ऐसा प्रभाव सुनकर तुलसी की भी परम मनोरंज है (इसलिए कि वही उसका उद्धार करवसता है) ॥५॥

शब्दाव—कोसु = (कोप) राजाना । रसन = रसना, जीभ । घोसु = (घोष) शब्द उच्चारण कर । सोसु = सोच ले । निरजोसु = अनुकूल ।

विवेच—(१) 'रमन हूँ नित राम-नामहि घोसु'—नक्षत्र प्रह्लाद ने राम-नाम का ऐसा ही माहात्म्य कहा है—

'रामनाम जपता कुतो भय सबतापगमनकभेदजम् ।

पश्य तात मम पात्र सन्निधौ पावकोऽपि सन्नितापनेऽधुना ॥'

(२) 'दध्मह' सोमु — रामनाम किसी भी भाव में जपा जाय, वह मंगलकारी है—

भाव कुभाव अनप जातसहै । राम जपत मंगल दिति दसहू ॥

[रामचरितमानस]

(३) निरजोमु — थावजनाथजी ने इस शब्द का अर्थ या निष्ठा है—

'निरजोमु जोख सौल रहित, अनुल । श्रीदेवनारायण द्विवदा ॥ इमे निर्दोष'

का अपभ्रंश मानकर इसका अर्थ असुख किया है, जो समीचीन है । इसका अर्थ 'प्रत्यन्त अनुकूल' मुझे उपयुक्त जचता है ।

१६०

मैं हरि पतित पावन सुने ।

मैं पतित तुम पतित पावन, दोउ वानक वन ॥१॥

व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भन ।

और अधम अनेक तारे जात कापै गन ॥२॥

जानि नाम अजानि लीन्ह नरक जमपुर मन ।

दासतुलसी सरन आयो, राखिये अपन ॥३॥

भावार्थ—हे हर ! मैंने तुम्हें पापियों को पुनात करनेवाला सुना है । मैं पापी हूँ और तुम हो पापियों का उद्धार करनेवाले बस दोना के बाने वन गय, दोना का मेन बठ गया । भाव यह कि मुझे पतित-पावन की उच्छ्रित थी और तुम्हें पतित की । मेरी भी कामना पूरा हो गई और तुम्हारी भी ॥१॥

वेद साक्षी भर रहे हैं कि तुमने व्याध (वा-मोकि) गणिका (गिगला वेश्या), गजेन्द्र और अजामिल को ससार सागर से पार कर लिया (इतना ही नहीं) तुमने और भी अनेक अधमा को तारा है । उनकी गिनती किममें हो सकती है ? ॥२॥

जिन्होंने जानकर या बिना जाने भी तुम्हारा नाम स्मरण किया, उन्हें यम के लोक मरक में (अथवा स्वर्ग में भी) जान की मनाही कर दी गई है । व साध साकेत लोक चले गये (यह सब समय-बृम्भकर) तुलसी भी तुम्हारी शरण में आया है । इसे भी अंगीकार कर लो ॥३॥

विशेष—मैं पतित बने'—एक भक्त ने निम्ननिम्न कवित में स्वामी देवक के इसी भाव की सामने रखकर क्या ही सुन्दर जागृ मिलाई है—

'मैं तो हूँ पतित, आप पावन पतित भाय,

पावनपतित हो, तो पातक हरोइगे ।

मैं तो महाशीन, आप दोनब-पु दोनानाय,

दोनब-पुहो तो दया जीय में परोइगे ।

मैं तो हूँ गरीब आप तारक गरीबन क,

तारक गरीब हो तो गिरद बरोइगे ।

मेरी करनी ॥ कष्ट मुकर न कीज बाह !

करना निधान हो तो करना कराइगे ॥'

राग भसार

१६१ १^म

तो सो प्रभु जाये कहैं तोउ हानो ।

तो सहि निपट निरादर निमिन्नि रटि नटि एमा घटि का तो ॥१॥

कृपा सुधा-जलदान मांगियो कह्यो सा साँच निसाना ।

स्वाति-सनेह सजिल सुख गाहन चित चानक का पातो ॥२॥

काल-वरम वस मन कृमनोरय कवहुँ-कवहुँ कहुँ भो तो ।

ज्या मुदमय वसि भोन बारि तजि उछरि भभरि मत गाना ॥३॥

जितो दुराय दासतुलमी उर, क्या कहि आयन मोतो ।

तेरे राज राय दमरय के, लयो क्या त्रिनु जानो ॥४॥

भावार्थ—यदि तुम-सयोगा कही कोई दूसरा श्यामा हाना तो भला एमा कौन चूड़ या जो मरधिव अपमान सहकर नि राग तेरा नाम र' रटकर इस तरह बकता या चीण होता ? ॥१॥

जो म सुभमे कृपारूपी भगवन्जन माँग रहा है, वह सचमुच निरासा है । मर्यादितरूपी चातक का बच्चा प्रेमरूपी स्वातिनचक्र का भानन्दरूपी जल चाहता है । (तेरे प्रेमभानन्द के लिए मेरा चित्त तटप रहा है, उसे पलभर भी कस नहीं पड़ता बच्चा ही तो है, धीरज कैसे धरे ?) ॥२॥

काल अपना काम के कारण यदि कभी कभी मन में कोई बुरी वासना आ भी जाती है (उस प्रेमभानन्द से चित्त हटने लगता है) तो वह ऐसा ही है जैसे मछली सुख से झल में रहती हुई कभी कभी उछलती घोर फिर उसी में धराराकर मोता लगा जाती है (उसे उसे कुछ भ्रम का भी जन विमर्श सहन नहीं होता, वैसे ही मेरा चित्त चातक तेरे प्रेमजल से अलग होने पर धरारा जाना है और फिर उसीके लिए खेपटा करता है) ॥३॥

जितना धूल कपट तुलसादास के हृदय में है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है ? (पर इतना विश्वास है कि) वह दशरथ-न दन । तेरे राज्य में लोगो ने बिना ही जीत बाये पाया है । भाव यह कि बिना ही सनकम किए अनेक पापिया ने मोक्षनाम दिया है । मरी भी उसी प्रकार बन जायगी, यही विश्वास है ॥४॥

गवशाय—लटि=दुगला होकर । तो=था । निसानो=संज्ञा, भमल, निराला । पोतो=बच्चा । भो=हुआ । मोतो=उतना ।

विनय—(१) श्रीवैष्णवाचार्यग द्विवेदी ने अपने टीका में तो का अर्थ या सहो नहीं माना है और इसका अर्थ तुम्हारा या मुझ किया है । तो का अर्थ तुम्हारा भी कदाचिन् ही सकता है पर या यह अर्थ अशुद्ध नहीं है । बुलखण्डी में 'होता' और ना' दोनों ही 'या' के लिए प्रयुक्त होने हैं ।

(२) स्वाति पोतो—चातक का प्रेम भावश प्रभु माना गया है अनयता का अनुकरणीय है । एक कृष्ण विद्यागिनी बजाङ्गना कहती है —

‘बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो ।

बासर रनि नाम ॥ बोलत, भयो विरह-ज्वर कारो ॥

भाप दुखित पर दुखित जानि जिय चातक नाम तुम्हारो ।

देखो, सकल विचारि सखी, जिय, बिछुरन को दुख प्यारो ॥

जाहि सगै, सोई पै जानै प्रेमवान अनिपारो ।

‘सूरदास’ प्रभु स्वाति बूब लगि, तज्यो सि-धु करि खारो ॥’

【सूरसागर

(३) क्या मातो — बेचारी मछली जाये कहीं ? उसके लिए तो एक जल ही सबस्व है । सूरदासजी भी ऐसा ही कह रहे हैं—

‘मेरो मन अनस कहीं सुख पाव ।

जसे उडि जहाज को पछी, पुनि जहाज प आव ॥ इत्यादि ।

राग सोडठ
१६२

ऐसे को उदार जग माही ।

विनु सेवा जो द्रवै दीन पर रामसरिस कोउ नाही ॥१॥

जो गति जोग विराग जतन करि नहि पावत मुनि म्यानी ।

सो गति देत गोध सखी कहें प्रभु न बहुत जिय जानी ॥२॥

जो सम्पति दम सीस अरवि करि रावन सिब पहुँ लीही ।

सा सपदा विभीषन कहें अति सकुच-सहित हरि दीही ॥३॥

तुलसिदास सब भाति सकल सुख जो चाहसि मन मेरा ।

तौ भजु राम, काम सब पूरन करे कृपानिधि तेरो ॥४॥

भावार्थ—संसार में ऐसा और कौन उदाहरण है, जो बिना हा सबा किए दीन जना का निहाल कर देता है ? ॥१॥

जिस परमगति मुक्ति का बड़े-बड़े सन्तानो मुनि भा योग, वैराग्य आदि अनेक साधन कर कर प्राप्त नहुं कर पाउ, उसे प्रभु रघुनाथजी गोध और शबरा तक का दे देते हैं और उसे इन पर अपने मन में कुछ बहुत नहीं मानत उस थोड़ा ही लेखते हैं ॥२॥

रावण न शिवजी को अपने दसा सिंग चढ़ाकर उनसेजा सपना प्राप्त की था, वह रघुनाथजी ने बड़ सक्ताब के साथ विभीषण का द दी । (सकोच इजलिए हुआ कि हमने हम कुछ भा नहीं दिया लका का राज्य तो इसका आनुवर्तिक दी था, यह उसका उत्तराधिकारी बभ्रा-ज-ज-जी का होता हो) ॥३॥

तुलसीदास कहते हैं कि घर मन । जा तू सब प्रकार से सब गुण चाहता है तो गारामजी का भजन कर । कृपा-सागर प्रभु तर मन की सारी कामनाएँ पूरी कर देंगे तेरे सभी मनोरथ सफल हो जायेंगे ॥४॥

विनय—(१) ‘उत्तर’— श्रीमद्भगवद्गुणद्वय में उत्तरता का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

‘पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्युपेक्षणात् ।

वदायत्व विदुर्वेदा औदायवचसा हरे ॥’

(२) विनु सेवा पर—बिना किसी बदले की आशा के जो कृपा की जाती है, वही सच्ची कृपा है वहां सच्चा प्रेम है । बदले के लिए जा किया जाता है वह कोई कृपा नहीं, वह तो बाणिज्य है । निष्कारण कृपा करनेवाला अहेतुक प्रेम करनेवाला तो एक परमात्मा ही ॥

(३) ‘मोक्ष जटायु —रामचरितमानस में जटायु के प्रसंग का बड़ा हृदयद्रावक वर्णन किया गया है —

कर सरोज सिर परसेउ कृपासधु रघुबीर ।

निरखि राम छविधाम मुख, धिगत भई सब पीर ॥

जटायु को मोक्ष देने पर श्रीराम कहते हैं —

‘जल भरि नयन कहा रघुराई । तात कम निज ते गति पाई ॥’

‘अद्विस्त भक्ति मागि वर, गूढ गयो हरि धाम ।

तेहि की किया जयोचित निज कर कीही राम ॥

(४) ‘शबरी से श्रीराम कहते हैं —

‘जोगिबृद्ध दुरलभ गति जोई । तोकहैं आमु सुलभ भई सोई ॥

मम दरसन फल परम अनुपा । जोर पाव निजसहज स्वहपा ॥

(५) जा सपति दोहा —रामचरितमानस में भी —

‘जो सपति सिव रावनहि दोह दिपे दस माय ।

सो सपदा निभीयनहि सकुचि दोह रघुनाथ ॥

१६३ X

एकै दानि शिरोमनि साचो ।

जेइ जाच्यो सोइ जाचकताउस, फिरि बहु नाच न नाच्यो ॥१॥

सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत दिन पाये ।

कोसलपालु कृपालु कलपतरु द्रवत सकृत् सिर नाये ॥२॥

हरिहु और भवतार आपने, राखी बद-बडाई ।

ले चिउरा निधि दई सुदामाहि जयपि बाल मित्ताई ॥३॥

कपि, सबरी सुग्रीव, विभीषन को नहि कियो अजाची ।

अव तुलसीहि दुख देति दयानिधि, दारन आस पिताची ॥४॥

भावार्थ—सच्चा तो दानियों में शिरोमणि एक ही है । जिस किसाने एक बार उससे मांगा, उसे पाने के लिए बहुत नाच नहीं नाचना पना, वह तत्काल पूणकाम हो गया ॥१॥

देव, देव मनुष्य मुनि ये सभी मतलबाने हैं । बिना कुछ दिये कोई कुछ भी नहीं देता ॥ । किन्तु एक ऐसे कोशनेश कृपालु कलवृक्ष के समान आधारुनावजी ही हैं, जो एक ही बार प्रणाम करने पर प्रसन हो जाते हैं (यदि कोई निस्वार्थ मित्र है तो एक रामजी ही) ॥२॥

भगवान ने अपने और और अवतारा म भी वेदा की मर्यादा का पालन किया है । जैसे, यद्यपि सुतामा श्रीकृष्ण का बालपन का मित्र था पर उससे जब चावल के कण ले लिये, तभी उसे सम्पत्ति प्रदान की (सुपत म कुछ नहीं दिया) ॥३॥

हे नाथ । आपने सुग्रीव शबरो, विभीषण और हनुमान् इनमें से किस किसकी याचनारहित नहीं कर दिया अर्थात् इन सबके सभी मनोरथ पूर कर दिये (और बदले में इन लोगों से कुछ लिया नहीं) हे दयानिधे । यह दास्य आशात्पि पिशाचिनी भव तुलसी की भारी क्लेश द रही है (इससे पिंड छुड़ा दो) ॥४॥

शब्दाय—ब्रवत=पिचल जात है, प्रसन्न हो जाते हैं । सकुत=एकवार । चित्तरा=चावल के कण । निधि=संपत्ति ।

विशेष—(१) सत्र स्वारथी मुनि—

सुर नर मुनि सबही की रीती । स्वारथ लागि करहि सब प्रीती ॥'

(२) 'ब्रवत नाथ

सकृदेव प्रपन्नाय तवस्मोति च याचते ।

अभय सवभूतेभ्यो वदान्येतव व्रत मम ॥

[वाल्मीकीय रामायण

(१) 'आस —आशा पिशाचिनी पर कबीर साहब न क्या भ्रष्टा कहा है —

'आसन मारे क्या भया भुई न धन की आस ।

ज्या तेसी के बल को, घर हो कोस पचास ।

आसा जीव जग भर, लोक भर मन चाहि ।

धन सब सो भी भर, उबर सो धन चाहि ॥'

१६४

जानत प्रीति रीति रघुराई ।

नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगारै ॥१॥

नेह निगहि देह तजि दसरथ कीरनि अचल बलारै ।

ऐसेहु पितु तैं अधिक् गोध पर, ममता गुन गुनभारै ॥२॥

लिय बिरहो सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसरारै ।

रन परचो बधु विभीषन ही को, सोच हृदय अधिकारै ॥३॥

घर गुरुह, प्रिय-मदन सासुरे भई जब जहें पहुनारै ।

तत्र तहें कहि सवरी के फलनि की रचि मायुरी न पारै ॥४॥

सहज सरूप क्या मुनि बरनत रहत सकुचि मिर नारै ।

केवट मीत कहे सुम मानत, जानर-बधु बडारै ॥५॥

प्रेम-वनोडो राम मो प्रभु त्रिभुवन निहूँबाल न भारै ।

'तेरो रिनी कछो हौं कपि सा, एमी मानहि को सेवकारै ॥६॥

तुलसी राम-मनह-सील लखि, जो न भगति उर भारै ।

तौ तोहि जनमि जाय जननी जड तनु-तरुनता गैवारै ॥७॥

भावाय—प्रीति की रीति एक रघुनाथजी ही जानते ह। श्रीरामजी प्रेमी के माते के सामने सारे सम्बन्ध त्याग देते ह। अर्थात्, सगे सम्बन्धी को छोड़कर एक प्रेमी का ही मान रखते ॥१॥

महाराज दशरथ ने स्नेह निभाकर शरीर तक छाड़ दिया, जिससे उनकी कीर्ति अमर हो गई। किन्तु ऐसे (अपूर्व) पिता को भी गोत्र जटायु के आगे कुछ अधिक महत्त्व नहीं दिया। गोत्र पर अधिक महत्त्व और शील-गाभीर्य दरसाया अथवा उसके बरतव का भारी एहसान माना (इस कारण से कि इमने परोपकार के लिए सीता का रावण के हाथ से छुड़ाने के लिए अपने प्राण तिनके की तरह त्याग दिये) ॥२॥

सुग्रीव मित्र को स्त्री के बिरह में देखकर अपनी प्राणाधिक प्यारा जानकी का भी भुला दिया (जानकीजी का पना लगान की बात भुलाकर मित्रद्रोही बालि का बंध करने के लिए 'याकुल हो उठ)। रघुभूमि में तो अनुज लक्ष्मण (शक्ति के मारे) मूर्च्छित पड़े हैं पर (उसका दुःख भूलकर) हृदय में विभीषण की ही चिन्ता मत्ता रही ह। सात्त्विक यह कि श्रीरामचन्द्रजी साचते ह कि जब सदमण ही न बचेंगे तब मैं रावण के साथ युद्ध करके क्या कळंगा? मैं भी प्राण त्याग दूंगा। उस समय बचारा विभीषण किमका हाकर रहेगा? रघुनाथजी ऐसे परदुःख कातर ह ॥३॥

घर में गुप्त वसिष्ठ के आश्रम में प्रिय मित्रों के यहाँ, अथवा मसुराल में जब जहाँ मेहमानों का तब वहाँ यही कहा कि मुझे जसा शबरी के घरा में स्वाद और मिठास मिला था वसा अन्यत्र वही नहीं ॥४॥

जब मुनि लोग आपके सहजस्वरूप अर्थात् निगुण परमानन्दरूप का निरूपण करते हैं, तब आप लज्जा से सिर भीषा कर लते ह। किन्तु जब केवल आपका अपना मित्र एवं बन्धु अपना बन्धु कहने ह ता उसे अपनी बड़ाई समझने ह। अथवा केवट का खला कह जाने पर आप प्रसन्न हान ह और वानर बन्धु कहाने में अपनी बड़ाई मानते हैं ॥५॥

रघुनाथजी का समान प्रेम के अध्यान होनवाना हे भाई। तीनों जाका और तीनों काला में कोई दूसरा नहीं ह। जिन्होंने इनुमान से यह कहा कि 'मैं तेरा श्रेणी हूँ', उनकी तुलना में सवा के लिए वृत्तता प्रशंसा करनेवाला दूसरा कौन ह ॥६॥

हे सुनसी! श्रीराम का एसा स्नेह और शील देखकर भी उनके प्रति यदि तेरे हृदय में भक्ति का उदय न हुआ ता तेरा माँ न तुझ जम दफर 'यद्यपि अपनी युवावस्था भोवाई। भाव यह ह कि तुझे जनन से ता वह बान्धु हा प्रच्यवी थो ॥७॥

गद्याय—हान = दूर। गुरुश्राद्ध = बड़प्पन। मानुरो = मिठास। कनौजी = एहसानमद। जाय = मध।

विशेष—(१) एमहु गुग्गाई—राम-गीतावली में इस प्रसंग का निम्न निश्चित पद क्या हा भावपूर्ण ह—

राखो गोष मोद करि साहों।

नयन-सरोज सनह-सन्निह सुवि मनहुँ अरपवन दीहों ॥

मुगट सयन खगपतिहि भिन वन में विनु मरन न जायो।

सहि न सख्यो सो कृति विधाता वधा पटु आनुहि माया ॥

यद्विधि राम बहो सनु राखन, परमधीर नहि होत्यो ।
 रोजि प्रेम, अवलोकि बदन त्रिधु बचन मनोहर बोत्यो ॥
 सुलसी, प्रभु झूठे जीवन सगि समय न धोखे सहो ।
 जारो नाम भरत मुनि दुलभ तुमहि कहाँ मुनि पहाँ ॥

(२) 'रन पर्यो अधिकाई'—गोसाइजी ने कवितावली में इस प्रसंग को इस प्रकार विवृत किया है—

'सात को सोच न भात को सोच द सोच नहीं मोहि औष-तजे को ।
 सोच नहीं बनबास भयो कछु सोच नहीं मोहि सोय हरे को ॥
 लछिमन भूमि परपो नहि सोच, न साब कछु मोहि सक जरे को ।
 सोच भयो सुलसी इव मोहहँ भक्त बिभीषन बाह - गहे को ॥

(३) सबरी व पसनि का — सबरी के पला पर रसिकबिहारीजी की यह कितनी सुन्दर यमकालवृत्त उक्ति है—

बेर बेर बेर ल सराहँ बेर बेर बहु
 रसिकबिहारी बेत बधु कहँ केर केर ।
 चालि चानि भाँगी घट बाहूँ महान भीठी
 लेहु तो लयन यो यत्नानत हैं हेर हेर ॥
 बेर बेर देव बेर सबरी सु बेर बेर
 तोऊ रघुबीर बेर बेर तहि डेर डेर ।
 बेर जनि साबी बेर बेर जनि साबी बेर,
 बेर जनि साबी बेर साव क२ बेर बेर ॥

(४) तरा रिला सेवकाई—श्रीरघुनाथजी हनुमान् से कहने हैं—
 'मुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहि कोउ सुर नर मुनि ननुपारी ॥
 प्रत्युपकार करौ का तोरा । सनमुख होइ न सक सन मोरा ॥
 मुनु कपि तोहि उरिन म नाहीं । देखेउ करि विचार मन माहीं ॥

१६५

रघुवर रावरि यह बडाई ।

निदरि गनी आदरु गरीब पर, करत कपा अधिकाई ॥१॥
 यके देव साधन करि सब, सपनेहु नहि देत दिखाई ।
 केवट कुटिल भालु कपि कौनप, किया मक्कल सँग भाई ॥२॥
 मिलि मुनिवृद्ध फिरत दडक बन, सो चरचौ न चनाई ।
 वारहि वार गोध सगरी की वरनत प्रीति सुहाई ॥३॥
 स्वान बहे तैं नियो पुर बाहिर जती गयद चढाई ।
 तिय निदन मतिमद प्रजा रज निज नय-नगर बसाई ॥४॥
 यहि दरबार दीन को आदर रीति मदा चलि आई ।
 दीनदयालु दीन तुलसी की बाहु न सुरति कराई ॥५॥

जद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत, कहि न जाय अति भारी ।
 सबल लोक अवलोकि सो कहत, सरन गये भय टारी ॥४॥
 विहंग-जोनि आमिष अहार पर, भीष कौन व्रतधारी ।
 जनक समान त्रिया ताकी निज कर सब भानि सँवारी ॥५॥
 अघम जाति सवरी जोपित जड सोक् वेद तैं यारी ।
 जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥६॥
 कपि सुग्रीव बनु भय-व्याकुल आयो सरन पुकारी ।
 सहि न सके दारुन दुष जन के, हत्यो वालिसहि गारी ॥७॥
 रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी ।
 सरन गये आगे हूँ लीहो भँटया भुजा पसारी ॥८॥
 असुम होइ जिनक सुमिरे तैं, बानर रीछ विकारी ।
 वेद विदित पावन किये ते सब, महिमानाय, तुम्हारी ॥९॥
 कहँलगि कहो दीन अगनित जिहकी तुम बिपति निवारी ।
 कलिमल प्रसित दास तुलसी पर, काहु कृपा विसारी ॥१०॥

भावाव—दीना वा ऐसा हित करनेवाले श्रीरामजी ही ह । वे बड़े कोमल, कल्याण के भाण्डार दयामूर्ति और बिना ही किसी हेतु के दूसरा का उपकार करनेवाले हैं ॥१॥

साधनों से रहित दीन गौतम ऋषि की स्त्री अहंन्या अपने पापा के कारण पापाणी हो गई थी । उसे आपने घर से जाकर अपने पवित्र चरण से छूकर घोर शाप से छुड़ा दिया ॥२॥

गुह निपाद सदा हिंसा में ही रत रहता था । शरीर तामसी था जो पशु की तरह वन में फिरता रहता था । उसे आपने, वश और जाति का विचार किए बिना हा, प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया ॥३॥

यद्यपि इंद्र के पुत्र जयत ने इतना भारी अपराध किया था, कि कुछ कहा नहीं जा सकता (जयत ने कौए का रूप धरकर सीताजी के चरण में चोंच मारी थी) तथापि जब वह (रघुनाथजी के बाण से व्याकुल होकर प्राण पाने के लिए) सारे लाका में घूमता फिरा और अन्त में निराश होकर आपकी शरण में आया तब उसका सारा भय दूर कर दिया, उसका सारा अपराध भूलकर उसे निहाल कर दिया ॥४॥

जटायु गांध पक्षी की योनि का था, मदा माम गल्ला करता था । उसने ऐसा कौन सा व्रत साधा था, कि जिससे आपने अपन हाथ से पिना व समान, उसकी प्रत्यष्टि त्रिया की ? उसकी करनी सब प्रकार स बनाये ॥५॥

शबरी भीष जाति की भूर्खा स्त्री था । वह नाक और बाल दाया स ही बाहर थी, किन्तु उसकी भक्ति भावना देखकर, ह दयानु रघुनाथजी ! उसे भा दर्शन दिया उसका भा उद्धार कर लिया ॥६॥

सुग्रीव बानर अपने भाई (बानि) के डर के भारे व्याकुल होकर जब पुकारता

हुया आपकी शरण में आया, तब आप अपने दास का महान दुःख न देख सके और गालिया खाकर भी बालि का वध कर डाला ॥७॥

विभीषण, शत्रु (रावण) का भाई था और जाति का था राक्षस । वह किस भजन का अधिकारी था ? किन्तु जब वह (रावण से तिरस्कृत और बहिष्कृत होकर) शरण में आया, तब उसे आपने आगे बढ़कर लिया, स्वागत किया और बाहु पसारकर उसे छाती से लगा लिया ॥८॥

बदर और रोष ऐसे अधर्मी हैं कि उनका नाम तक लेने से अमंगल होता है किन्तु हे नाथ ! उन्हें भी आपने पवित्र बना लिया । वेद इस बात के साक्षी हैं । यह आपकी महिमा ही है ॥९॥

ऐसे अनेक दोन हैं जिनकी विपत्तियाँ आपने दूर कर दी हैं । मैं कहाँ तक गिनाऊँ ? पर मात्रम नहीं, इस तुलसीदास पर ही जो कलियुग के पापों से प्रसिद्ध हैं क्या आप कृपा करना भूल गये, क्यों उसे अभी तक नहीं अपनाया ? ॥१०॥

पदार्थ—गवनि = जाकर । सुरपति सुत = इंद्र का पुत्र जयत । महार पर = तानवाला । आपित = (यापित) स्त्री । विकारी = पापी ।

विनय—(१) गृहों गवनि — हमका यह तात्पर्य है कि रामचन्द्रजी घर से बेचन ग्रहत्या के सारन के लिए गये थे ताडका की मारने अथवा धनुष ताडन के लिए नहीं । यह बड़ी ही मुदर अवगति है ।

(२) द्राह किया गुरपति सुत — वामीरि और कानिदान ने किया है कि जयन्त न श्रीसीताजी के स्नान पर चाब न आयात किया था और एसा उसन कामयस किया था, किन्तु गामाइजी न, मर्यादा का पालन करने हुए, एसा न लिखकर यह किया है, कि उसन सीताजी के शरण में आव मारी थी ।

(३) अगुन विकारी — कहा है—

प्रातः सेइ जो नाम हमारा । ता दिन ताहि न मिल अहारा ॥

(४) कहें सबि कही—भार अगणित पात्रिया का उद्धार किया है—

एते जन तार जेने नभ में न तारे हैं ।

१५७

रघुपति भगनि वरन कठिनाइ ।

पहन मुगम करनी अपार तान मोइ जहि बनि आई ॥१॥

जा जहि बना-कुमन ताहें माइ मुनम मदा मुगसारी ।

मरगी भामुन जन प्रसा मुगसरी बहै मज भागी ॥२॥

उसा मरग मिने मिता मर, वन नैन वाउ विनगार ।

अति तय सूअन लीनिता, त्रिनु प्रवाम ही पार ॥३॥

मरन रय निज दम मनि, मार निद्रा तजि जागी ।

मोइ हरिपद अनुमर परम मुन, अनिमय द्वैत प्रियागी ॥४॥

सोव मोह भय हरप दिवस निसि देस-काल तहें नाही ।

तुलसिदास यहि दसाहीन ससय निरमूल न जाही ॥५॥

भावाय—धीरपुनावजी की भक्ति करो में भारी बठिनाता ह । कहना तो घासान ह, पर करना उसका कठिन ह । जिसमे करत बन गई, वही इसे जानता ह ॥१॥

जो जिस कला म प्रयोग ह उन्हे लिए वह सरल और सदा सुख देनेवाली ह । जैसे (छोटी-सी) मछली ता गंगा की घारा में सामने चली जाती ह, परतु बहुत बड़ा हाथी उसमें बह जाता ह । (क्योंकि वह मछली की तरह उसमें तैरना नहीं जानता) ॥२॥

(हूमरा उदाहरण उपस्थित करते ह) जमे यदि रेत में शक्कर मिल जाये तो उसे कोई चार लगाकर भ्रमण नहा कर सकता, किंतु उसने रेत को जान-बानी छोटी-सी चीटी उस सहज ही भ्रमण कर देती ह ॥३॥

जो योगी दशमात्र का, सार पंचभूतात्मक प्रपञ्च का, अपन पट म रख (चित्त वृत्ति निरोध द्वारा ससार का लय करके) निद्रा वा स्यामकर साता ह अर्थात् अविद्या हटाकर ब्राह्मण अवस्था में लीन हा जाता ह और भौतात्मक ज्ञान का अत्यधिक परित्याग कर देता ह, वही वच्छापद के परमानन्द की प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है ब्रह्मानन्द का पूर्णाधिकारी वही हो सकता ह ॥४॥

इस परा अवस्था में शोक माह भय, हृष, दिन रात और देश काल का नाम तक नहीं रह जाता, इन सबसे वह परे पहुँच जाता ह । है तुलसीदास । जब तक यह जाव इस दशा को नहीं पहुँचा तब तक सशय निमग्न नहीं हाने (कुछ न कुछ स हैद बना ही रहता ह और जब तक संदेह का लेश भी ह, तब तक नि श्रेयस प्राप्त हान का नहीं) ॥५॥

गद्याय—सफरी = मछली । सकरा = शक्कर । सिक्ता = रेत । निचोनिका = चीटी । दश्य = पंचभूतात्मक जगत । इत वियागी = जिनका भौतात्मक ज्ञान नष्ट हो गया ह । सशय = सदसत त्रिवेक का अभाव ।

विनय—(१) कहत सुगम—जमे, कहने में तो ये चीपाइयाँ ही बड़ी घासान ह कहने में जवान को भी डरा भी कष्ट नहीं पहुँचता—

‘सरल स्वभाव न मन कुटिलई । जयालाभ स तोष सवाई ॥

बर न रिग्रह आत न नाता । सुखमय ताहि सदा सज आता ॥

अनारभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोप दच्छ विप्यानी ॥

प्रीति सदा सजजन ससर्गा । तृप्तसम विषय स्वय अपवर्गा ॥

पर इन पर प्रमत्त करना बड़ा ही कठिन ह खाँद का धार पर दीड़ने के जसा ह । कहाँ तो कयनी और कहाँ करना ।

(२) ‘सफरी पाव’—धीरगवतरसिक्को ने भी ऐसा ही कहा ह—

‘भगवत स्यामा स्याम की पावःप्य विहार ।

नहि समय खगराज की करत चकोर अहार ॥

करत चकोर अहार कितकित जलचर लाव ।

स्याह सीख मृगराजवदन तें आमिष पाव ॥

ऐसे रसिक जनय और सज जानहुँ लयवत ।

सो पुराई सन, भजी किन माफिक भगवत ॥’

जो पै राम चरन रति होती ।

तो कत निविध मूल निमित्रासर सहते विपति निसोती ॥१॥

जो सतोप सुधा निसिवासर सपनेहुँ कवहुँरू पावै ।

तो कत विषय विलाकि झूठ जल मन कुरग ज्यो धावै ॥२॥

जो श्रीपति महिमा विचारि उर भजते भाव बढाए ।

तो कत द्वार-द्वार कूकर ज्यो फिरते पेट खलाए ॥३॥

ज लोलुप भये दास आस के, ते सबही के चेरे ।

प्रभु बिस्वास आस जीती जिह, ते सेवक हरि केरे ॥४॥

नहिँ एकौ आचरन भजन को, विनय करत ही ताते ।

बीजे कृपा दासलतसी पर, नाथ नाम के नाते ॥५॥

भाषाय—यदि श्रीरामचन्द्रजी के चरखा में प्रीति होती, तो रात दिन विपत्तियों के प्रवाहरूप तीनों प्रकार के कष्ट क्या सहत ? ॥१॥

यदि यह मन दिन या रात में कभी स्वप्न में भी सतोगरूपी समस्त पा जाये तो विषयों के मिथ्या भगजन को खींचकर उसके पीछे क्या हिरण्य की भाँति दौड ? ॥२॥

यदि हम भगवान् लक्ष्मणान्त की महिमा का हृदय में विचारकर भाव भक्ति से उनका भजन करत तो आज कुत्त की तरह द्वार-द्वार पेट दिखाते हुए क्या मार मार फिरते ॥३॥

जो तीनों जन आशा के दास बन गये व सभी के गुलाम हूँ और जिन्होंने भगवान् में विरवाग कर आशा को जीत लिया वही भगवान् के सच्चे सेवक हूँ ॥४॥

मैं आपसे इसलिए विनम्र कर रहा हूँ कि मुझमें भजन भाव का एक भी आचरण नहीं है (यद्यपि कातन कलम आदि मध्या भक्ति से विलग्न होरा हूँ) हे नाथ ! तुमछोटास पर अपने नाम व नाम से हा कृपा कीजिए (क्योंकि आपके नाम दीनबन्धन, दीनबन्धु आदि हैं) ॥५॥

गद्याय—निमानी = प्रवाह । कुरग = हिरण्य । सनाए = पचानाकर ।

विशेष— १) जो सतोप पात्र — क्याकि

गुरुदास प्रभु वामधेनु सजि छेरी कीन दुदास ।'

(२) १ मन्त्र कर — बवार गाढ़न कट्ट ह—

बदिरा नाभी जगन-गुरु तन जगत् की दास ।

१। जग की आमा कर जगत् गुरु वह दास ॥

हरिभक्त व । हिमा का आशा कर ? चित्ता हा निग वात को ?

भावनारत्नान विनां युया कुयनि बट्टव ।

याना विनयनरा देवा स भक्तान् विमुदयन ॥

१६६

जो मोहि राम लागते भीठे ।

तो नवरस, पटरस रस अनरस ह्वं जाते मव सीठे ॥१॥

वचक विषय विविध तनु घरि अनुभवे, सुन अरु डीठे ।

यह जानत हों हृदय आपने, सपने न अघाइ उबीठे ॥२॥

तुलसीदास प्रभु सो एकहि बल वचन कहत अति दीठे ।

नाम की लाज राम करुनाकर वहि न दिय कर चीठे ॥३॥

भाषा—यदि मुझे श्रीरामजी ही मोठे लग हाते तो नवरस (साहित्य के) एक घरस (भोजन के) नीरस और फीके पड़ जाने (पर रामजी तो मोठे लगने लगे) उनसे तो प्रेम ह नही, इसीलिण भोग विलास मधुर प्रतीत होते ह) ॥१॥

म माना प्रकार के शरीर धारणकर यह अनुभव कर चुका हूँ और मने सुना भी ह कि विषय सारे ठग ह (सत्कर्मों के लुटेर हैं) । यद्यपि यह म अपने जी में खूब समझता हूँ तथापि (समझने हुए भी) कभी स्वप्न में भा, इनसे तुष्ट होकर जी नही उठा, रुचि नही हुयी ॥२॥

तुलसीदास अपने स्वामी श्रीरघुनाथजी से एक ही बल पर ये ठिठाई भरे वचन कह रहा ह । (और वह बल यह ह कि) हे भाव ! आपने अपने नाम की लाज रखने के लिए किस किसक हाथ म दया करवा परवाने नही लिख दिये ह ? जिसे ससार से मुक्त कर देने का वचन नही दिया ? (भाव यह ह कि भाषक नाम म वह शक्ति ह जो जादू मात्र का भवसागर से तार देने में समर्थ ह । उसीका मुझे बल भरोसा ह) ॥३॥

भाषा—नवरस=भृंगार हास्य, कष्ट और रौद्र भयानक वीभत्स, प्रदु-भुत और शाव । पटरस=कटु तीखा, मरुर, कषाय, अम्ल और सवण । सीठे=फीके । डीठे=देखे । उबीठे=ठके, मन से उतर गये ।

विशेष—(१) ती सीठे—व्याप्ति—

‘रमा विलास राम-अनुरागी-तजत वमत इव जन बडभागा ॥

। [रामचरितमानस

कबीर साहब ने भी कहा है—

‘वीया चाहे प्रेमरस रीला चाहे मान ।

एक भ्यान में दो खटप, देखा सुना त कान ॥

(२) ‘वचक विषय—सत्संग से भयवा प्रारंभवश यदि जीव नाम रत्नो का सन्ध करता ह, तो इन्द्रिया के विषय चक्षुमर में उल्टे लूटकर से जाते हैं —

काम क्रोधइव लोभइव देहे निष्ठाति तस्करा ।

शानरत्नापहाराय तस्माज्जापत जापत ॥’

[श्रीशंकराचार्य

(३) ‘नाम की लाज’—यदि पतितपावन नाम रखकर पापिया का उद्धार न किया तो नाम मुक्त में बदनाम हो जायेगा । इसलिए जैसे-तैसे, अपनी बात रखने के लिए

पापिया का उद्धार करना हो सकता है। भक्तों का यह दृढ़-मंझा वचन है। गवारा हाँ
 सकता था—

‘‘हो पुनरि, पुनरि बहो अब, मेरी हठी भटि तेरी हठी है ॥’’

। १७० ।

या मा न चतुर्मुहं १ साग्यो ।

ज्या छन छानि सुभाय तिरार रत्न विषय प्रगुगम्पा ॥१॥

ज्या तिरार परागि, मुन पाता प्रपा पर पर प ।

त्या १ साधु मुग्गरि तरंग तिमस गुगना रघुवर प ॥२॥

ज्या तामा मुग-धरम-अन, रगा पटम्गरनि माती ।

राम प्रसाद मान जूठनि सगि त्या १ तलरि लनगानी ॥३॥

चन्दन चद्रवदनि भूपा पट ज्या बह पायर परम्पा ।

त्या रघुपति-भद-भदुम-भरग पा तनु पातकी १ तरस्या ॥४॥

ज्या राय भीति मुदय मुठातुर राय यपु बचा हिय है ।

त्या न राम सुटनम्य ज सकुचा मटन प्रनाम रिये है ॥५॥

चचल चरन लाभ सगि सानुप द्वारद्वार जग धामे ।

राम सीय आसमनि चलत त्या भय न समित अभाग ॥६॥

सकल अग पद विमुक्त नाथ मुग राम की छोट लई है ।

है तुलमिहि परतीनि एव प्रभुभूरति रुपामई है ॥७॥

भावार्थ—मेरा मन इन प्रकार कभी भी धासे नहीं लगा, जसा कि वह कपट
 घोड़कर स्वभाव से ही विषया में लगा रहता है विषया के प्रति जन उसकी सहज
 वासना रहती है ॥१॥

जसे, म दूसर की नारी को ताकता फिरता है पर पर प पाप भर प्रपन्न
 सुनता रहता है, वैसे न तो कभी साधुमा का दर्शन करता है और न गंगा की निमल
 लहरा प समान श्रीरघुनाथजी की गुणावली ही सुनता है ॥२॥

जसे, नाक सुगन्ध के रस के अधीन रहती है और जीभ छह रसों से प्रेम करती
 है, वैसे यह नाक भगवान पर चढ़ी हुई माला के लिए और जीभ भगवत् प्रसाद वष
 ललक-ललककर नहीं ललचाती ॥३॥

जसे यह प्रथम शरीर चन्दन चद्रवदना युवती और सुन्दर भलकारो एव
 (कीमल) वस्त्रों का स्पर्श करना चाहता है वम कभी यह श्रीरघुनाथजी के चरणकमला
 का स्पर्श करने के लिए उत्कण्ठित नहीं होता ॥४॥

जिस प्रकार मन शरीर वचन और हृदय से भली भाँति बुरे-बुरे देवों और
 दुष्ट स्वामिया की सेवा की वसे उन रघुनाथजी की सेवा कभी नहीं की, जो जरा-सी
 सेवा से अपने को अत्यन्त कृतज्ञ मानने लगते हैं, एक बार प्रणाम करने पर ही (सीशोन्म
 वश) सकुचा जानेवाले हैं ॥५॥

जसे, ये चञ्चल पैर साभवश द्वार-द्वार भटकते फिरते ह वसे ये अभाग्ये श्रीसीता रामजी के (पुण्य) आश्रमा में चलकर कभी थकित नहीं होना चाहते । (यह तात्पर्य नहीं है, कि पुण्य आश्रमा में चलते हुए थके नहीं ह किन्तु वहाँ गये ही नहीं तब थकेंगे क्या ?) ॥६॥

हे प्रभा ! मेरे अग प्रत्यग आपके चरणों से विमुक्त ह (किसी भी अग से चरणों की सेवा नहीं की) । केवल इस मुख से आपका नाम की ओट ले रखी ह (और यह इसलिए कि) आपकी मूर्ति कृपा का रूप ह । तुलसी का यही एक उल भरसा ह (कि आप कृपासागर होने के कारण तथा नाम की बात रखने के लिए मुझ अवश्य ससार सिन्धु पार कर देंगे) ॥७॥

शब्दाथ—लसकि = उमग में आकर । सङ्गत = एकवार । बागे = फिरे, चले । ओट = भरसा ।

विनय—(१) शरीर के समस्त अंगों की निरयकता तथा सायकता का यहाँ निरूपण कराया गया ह । एक ही वस्तु असार एक सारमय हो सकती ह अन्तर उसकी उपयोगिता में ह । इसी प्रकार जगत यदि हरिमय ह तो वह सत्य ह, धान-रूप ह, और यदि वह 'हरि शून्य ह, तो मिथ्या ह । आत्मा के अनुकूल प्रत्येक वस्तु सुखरूप ह उसके प्रतिबून वही दुःखरूप ह ।

(२) बुद्धेय—भूत प्रेत से आशय ह । गासाइजी ने भूत प्रेतों का जहाँ-तहाँ खूब फटकारा ह छोटी छानो बामनामा की पूति के लिए ही साथ भूत प्रेतों का भाना करते ह, फलत उनका विश्वास परमेश्वर पर से उठ जाता ह ।

१७१

बीजे मोको जम जातनामई ।

राम, तमस मुचि सुहृद साहिबहि मैं सठ पीठि दई ॥१॥

गरभ्रास दस नाम पालि पितु मातु रूप हित कीहा ।

जडाहि विवेक, सुसील खलहि, अपराधिहि आदर दीहो ॥२॥

कपट करी अतरजामिहैं सो, अघ व्यापकहि दुरावो ।

ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न किया मन वावीं ॥३॥

उदर भरौं किंकर कहाइ वैच्यो विपयनि हाथ हियो है ।

मोसे यचक को कृपालु छल छाडिने छोह कियो है ॥४॥

पल पल के उपकार रावरे जानि वृद्धि मुनि नोके ।

मियो न कुलिमहैं ते कठार चित कबहू प्रेम सिय-पीके ॥५॥

स्वामी को सेवक हितता सब, कछु निज साईं दोहाई ।

मे मति-तुला तोलि दखी भइ मेरेहि दिसि गरभ्राई ॥६॥

एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आयो, अरु करिहैं ।

तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौडो भरिहै ॥७॥

भाषाय—हे नाथ ! मुझे तो आप यम यातना (ज म परण) में ही डाल दीजिए, गरु में ही भेज दीजिए, क्योंकि हे श्रीराम ! मैं आप-सरोखे पत्रि और सुहृद स्वामी से विमुख हो गया हूँ (इसका दण्ड यम यातना ही हो सकता है सा मुझे वही दीजिए) ॥१॥

जब गभ म था तब आपन माता पिता के समान दस गहीने पालन पापण कर मेरा हित किया । मुझ मूल को आपने शुद्ध नान, मुझ दुष्ट को सुंदर शील और मुझ अपराधी का आदर दिया, (मुझे आपका कृतन होना चाहिए था आपका भजन करना चाहिए था । यह मैं हुआ उनते आपको भुलाकर कृतघ्नता का भागी बन गया ।) ॥२॥

म अंतर्यामी प्रभु के साथ छल करता हूँ । सबव्यापी घट घट में रमनेवाले से अपने पाप छिपाता हूँ । ऐसे दुबुद्धि नीच नीकर पर भी श्रीरघुनाथजी ने अपना मन प्रति-कूल नहीं किया । अब भी उस पर कृपा कर रहे हैं ॥३॥

आपका नास बनकर तो पेट भरा करता हूँ, किन्तु हृदय विषया के हाथ बेच दिया है । चाहिए तो यह था, कि जिसका खाना उसी का गाना पर मुझ अन्न से यह मैं हुआ) । मुझ सरोखे ठग पर भी कृपाल रघुनाथजी ने निष्कपट भाव से कृपा ही की है ॥४॥

एक एक पल के उपकारों को जानकर समझकर और अच्छी तरह सुनकर भी मेरे कठोर चित्त में कभी जानकी जीवन का प्रेम नहीं भिदा ॥५॥

मने जब अपनी बुद्धिरूपी तराजू पर एक ओर स्वामी की सारी जन वत्सलता और दूसरी ओर धोखी सी अपनी करनी रखकर तोली सब देखने पर मेरी आर का ही पनडा भारी निकला । यह मैं स्वामी की सीमाध लाफर कह रहा हूँ । तात्पर्य यह, कि जीव की क्षण भर की भी हरि विमुखता श्रीहरि की सारा कृपा की तुलना में भारी है, उसके कम ऐसे गिरे हुए हैं कि वह भगवत्कृपा होने पर भी क्षणमात्र में नरकगामी हो सकता है ॥६॥

किन्तु इनने पर भी मर कृपालु स्वामी ने मेरा भना किया है कर रहे हैं और करेंगे । वे सदा से मेरे हित हैं । तुलसी अपनी आर से जानता है कि इस कनौड का, एहसान से दबे हुए का स्वामी ही पालन करेंगे । (क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा है कि शरणागत का वे अवश्य परिपालन करते हैं) ॥७॥

गव्वाय—पाठि दई=विमुख हो गया । जडहि=मूल को । बावों=(वाम) प्रतिकूल । छाह=अनुग्रह । कनौडो=कृतन एहसान से दबा हुआ ।

विशेष—(१) उदर भरीं किंकर कहाइ—पाण्डव भेष धारणकर लोगो को ठगता करता है । दूसरा का दष्टि में धान का सत महामा सिद्ध करना चाहता है ।

तन को जोगी सब कर, मन को विरला कोय ।

सहस्रै सब सिधि पाइये जो मन जोगी होय ॥'

[कबीरदास

(२) प्रभुहि कनौड भटिहै—कहा कि भगवान् की यह प्रतिज्ञा सुप्रसिद्ध है—

अह भजनपराधीनो, दास्यत्र इव द्विज ।

साधुभिर्गहनहृदयो भजनभक्तजनप्रिय ॥'

[श्रीमद्भागवत

बबहुँक हों यहि रहनि रहौगो ।

श्रीरघुनाथ-रूपाकु-रूपा ते सन सुभाव गहौगो ॥१॥

जयालाभ सतोप भदा, काहू मो कहु न बहौगो ।

परहित निरत निरतर, मन त्रम वचन नम निबहौगो ॥२॥

परप वचन अति दुमह सवन मुनि तेहि पावन न दहौगो ।

विगनमान, सम मीतल मन, पर गुन नहि दोष बहौगो ॥३॥

परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौगो ।

तुलमिदान प्रभु यहि पथ रहि, अविचन हरि भक्ति लहागो ॥४॥

भाषाय—क्या म कभी हम रहनी म रहूंगा ? क्या कृपातु श्रीरघुनाथकी कौ

कृपा से कभी म मता का सा स्वभाव ग्रहण कर सकूंगा ? ॥१॥

क्या जा कुछ मिल जाय, उमोम सन्नुष्ट रहूंगा, किसीसे कुछ भी पाने की इच्छा

कहीं कहेगा ? सदा दूसरा की भलाई करने में क्या तत्पर रह सकूंगा ? मन से वचन से

श्रीर कम से कम निपमा का पालन कहेगा क्या ? ॥२॥

कठार और असह्य वचन सुनकर उसकी भाग में तो नही जलूंगा ? किसी से

मान पाने की इच्छा तो न कहेगा ? क्या मन का एकरम और शीतल रहूंगा ? ऐसा

स्वभाव कब बनेगा कि दूसरा के गुण दोष की चर्चा न करे प्रयत्न दूसरा का प्रशंसा तो

कर, पर उनका दोष न कहू ? ॥३॥

शागीरिक चिन्ताएँ छोड़कर श्रीर सुख दुख को कब एक सरीखा मानूंगा ? हे

नाथ । क्या तुमहीगत इस माय पर चमकर भटल भयवद्मक्ति की कभी प्राप्त कर

सकेगा ? (क्या कभी उसका यह मनोराज्य साकार होगा) ॥४॥

भाषाय—निरत=सजग तत्पर । क्रम=क्रम

विशेष—(१) मनोराज्य विषयक सूक्तियाँ भवती न अनेक प्रकार से कही ह ।

श्रीहरिराम यास कहते ह —

ऐसी कब करिहो मन मेरो ।

कर कइवा हरवा गुजन को, कुजन माहि बसेरो ॥

बजबासिन के दूक जूठ अइ घर घर छाछ महेरो ॥

भुव लग तब माँगि खाइहो, गिनो न साँझ सवेरो ॥

ऐसी आस 'ष्यास की पूजो, मेरे माम न खेरो ॥'

श्रीर ललितकिशोरी भी —

'जमुना पुलिन कुज गहवर की कोकिच हूँ द्रुम कूक भचाऊ ।

पद पञ्च प्रियलाल मधुर हूँ मधुरे मधुरे गुज मुनाऊँ ॥

फूलर हूँ बन बोधिन दोनों बचे सीध सतन के पाऊँ ॥

'ललितकिशोरी आस यही मन दज रज तजि छिन अनत न जाऊँ ॥'

(२) 'जयाश्रम सतोप —

'जब आव स तोप घन, सब घन धूरि समान ।'

(३) 'यहि पथ'—सत्ता का स्वभाव, राम भजन व सत्सङ्ग गन्धर्प में —

'नात समानमनसद्व सुगीनयुक्त—

स्तोयशमागुणव्यामृजुद्विभुक्त ।

विनानज्ञानविरति परमायवेता

निर्धामको भवमन स च रामभक्त ॥

[महारामायण]

१७३

नाहिंन आरत आन भरोमो ।

यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो ॥१॥

तप, तीर्थ, उपवास, दान, मख, जेहि जा रुचै करा सो ।

पायेहि पै जानिवो करम-जन भरिभरि वेद परोसो ॥२॥

आगम विधि जप-जाग बरत नर सरत न बाज करा सो ।

सुख सपनेहुँ न जोग सिद्धि-साधन, रोग वियोग धरा सो ॥३॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह भिनि ग्यान विराग हरो सो ।

विगरत मन स-यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥४॥

ग्रहुमत सुनि बहु पथ पुराननि जहा-नहा जगरा सो ।

गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज टगरो सो ॥५॥

तुलसी विनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पवि मरे सो ।

राम नाम बोहित भव सागर चाहै तरन तरा सो ॥६॥

भावाच—मुझे काइ दूसरा बल भरोसा नहीं है (केवल एक राम-नाम का ही भरोसा है) । इस कर्मियुग में जितने भी साधनरूपी वृक्ष हैं उनमें केवल परिश्रमरूपी फल ही फल से दोखने हैं । अर्थात्—उन साधना-रूप निष्पत्ति चाहें जितना धर्म किया जाय पर हाथ कुछ भी नहीं आता ॥१॥

तप तीर्थाटन, दान दान, यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे, सो करे । पर इन सारे कर्मों का फल पाने पर ही जान पड़ता यद्यपि वेदों में (पुस्तक) भर भद्रकर कर्मों का परोमा है । तात्पर्य यह कि वेदा में तो प्रत्येक कर्त्तव्य की फलश्रुति मनमानी लिख दी है पर कति महाराज के मार जब कोई सत्क्रिया सफल हो, तभी न उसका फल मिले ॥२॥

शास्त्राक्त विधि से मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं पर उनसे यथार्थ फल सिद्धि नहीं होती । योग सिद्धियों के साधन में सुख स्वप्न में भी नहीं । इसमें भी रोग और वियोग प्रस्तुत है । शरीर रोगी होने से प्रियजना से विछोह हो जाता है ॥३॥

काम क्रोध अहंकार मोह और मोह ने मिलकर ज्ञान-विराग्य को तो हर सा लिया है (इस व्यसना के सारे यह भी सपने के नहीं) और स-यास ग्रहण करने पर मन ऐसा बिगड़ जाता है जैसे पानी के पड़ने से कच्चा घड़ा गल जाता है ॥४॥

शास्त्रों के अनेक मत सुनकर और पुराणों में नाना प्रकार के पथ देखकर जहाँ-उहाँ भगड हो जान पड़ते हैं (कहीं भी कोई निश्चित दृष्टि नहीं मिल रही है) । गुरु ने

तो मुझे राम भजन का ही-रूपदेश किया ह और यही मुझे राज-भाग के समान भन्दा भी लगता ह ॥१॥

हे तुलसी ! विश्वास और श्रद्धा के बिना जिसे बार-बार पच-पचकर मरना हो, वह भले हो मरे, किन्तु ससार सागर पार करने के लिए तो एक राम-नाम ही जहाज ह ॥६॥

गन्धाय—ग्रागम = शास्त्र । सरत = पूरा होता ह । नावत = डालते हैं ।
भाम = कच्चा । घरो = घड़ा । डगरो = भाग ।

विशेष—(१) इस पद में गोसाइजी ने सिद्धान्तरूप से रामनाम का सहज साफल्य तथा सत्य साधना का वैषम्य दिखाया ह ।

(२) 'तप मख —प्रत्येक की कठिना देखिए —

तप—पश्चान्नि तापना, जल गयन करना, धोती, मेती आदि करना,

तीरथ—तीर्थों का दक्ष, भूल-भ्यास सहकर, पर्यटन करना,

उपवास—चात्रायण, कृच्छ्र, महाकृच्छ्र आदि व्रत करना,

दान—प्रसन्न चित्त से निष्काम बुद्धि से शास्त्रोक्त दान देना,

मख—अश्वमेधादि व्रत करना, जो महाकठिन हैं ।

(३) 'विगतर घरो सो'—संयास आश्रम मारे आश्रमों से कठिन है । जब मन समस्त विषया से तृप्त हो जाय इन्द्रियों का जीत लिया जाय और शान्ति का अनुभव होने लगे, तभी इस आश्रम में प्रवेश करना चाहिए । कम करते हुए भी, कर्म वासना का पूछतया त्याग कर देना संयास स्यास ह । ऊपर से कुछ कर्मों का त्याग संयास नहीं ह । निर्विकल्प मनवाले साधक ही संयास के अधिकारी ह । यों, यों जहाँ वहाँ अनेक संन्यासी भगवा वस्त्र पहने मूढ़ मुँडायें धूमते फिरते ह —

'बाड़ी मूछ मुँडायके, हुआ जु धोदम धोड ।

मन को क्यों नहि मूडिए जाये भरिया खोड ॥

'माला तिलक लगाइके, भक्ति न आई हाथ ।

बाड़ी मूछ मुँडायके, चले दुनी के साथ ॥

(४) बहुमत 'भगरो-सो'—

मत—वैशेषिक, यामी, सांख्य, योग, पूवमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा, इन शास्त्रों के तथा शैव वैष्णव, शाक्त, सौर, गणपत्य, बौद्ध, जैन आदि अनेक-सम्प्रदायों के मत मतान्तर ।

(५) 'गुद नीको —इस बात को दृढ़तापूर्वक हृदय में बैठा दिया गया कि—

'म सत्पुत्राण नहि यत्र रामो यस्या न रामो नृप सहिता सा ।

॥ नेतिहासो नहि यत्र राम काव्य न तैस्तुमनेहि यव राम ॥

[पंचपुराण

जाके प्रिय न राम-बेदेही ।

सो छाँडिये कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बधु, भरत महतारी ॥२॥

बलि गुरु तज्यो, वत ब्रज-चरितनि, भये मुद-मगलकारी ॥३॥

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुमेध्य जहाँ लौ ।
अजन यहा आँखि जेहि पूटे, बहुतक वही वहाँ लौ ॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारा ।
जासो होइ सनेह रामपद, एता मता हमारो ॥४॥

भाषाय—जिस थोराम-जानकी प्यार नहा उमे कराना शत्रुया के समान त्याग देना चाहिए, चाहे वह अपना अत्यंत ही प्यारा क्या न हो ॥१॥

(उदाहरण के लिए,) प्रह्लाद न अपने पिता (हिरण्यकशिपु) का विभाषण न अपने भाई (रावण) को मरत न अपनी माता (कन्यो) का राजा बलि न अपने गुरु (शुक्राचार्य) को और ब्रज गोपिया ने अपने अपने पतिया का (भगवत्प्राप्ति में बाधक समझकर) त्याग दिया और य सभी भानन्द और कष्टों को करनेवाच हुए ॥२॥

जहाँ तक मित्र और भली भाँति पूजन योग्य है सब धारधुनापजी के ही सबध और प्रेम से ऐसे माने जाते हैं । तात्पर्य यह कि यदि वे भगवत् दशन और हरि प्रेम में सहायक हैं, तो उन्हें मानना और पूजना चाहिए मर्यादा नहीं । जिस अजन के लगाने से भाँखें ही पूरा जाय वह अजन किस काम का ? इस सब अधिक क्या कहें ॥३॥

हे तुलसीदास ! जिसके कारण थोरामचन्द्रों के चरणों में प्रेम हो, वही सब प्रकार से परमहितकारी पननीय और प्राणा से भी अधिक प्यारा है । हमारा तो यही मत है ॥४॥

न-दाय—वन्त=पति । मतो=मत सिद्धान्त ।

विनय—(१) 'ब्रज वनितनि—महाभाग्यवती गोपियाँ तो प्रेम मन्दिर की 'धुजा थी ? एक प्रेम दीवानो गोपो यहा तक कहती हैं —

‘घर तजौ, वन तजौ नागर’ नगर तजौ,
बसीबट तट तजौ, काहू प न सजिहौ ।
देह तजौ नेह तजौ नेह कही कसे तजौ
और काज छाँडि जाज ऐमे साज सजिहौ ॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोक्षों
बावरी कहेतैं म हूँ बाहू ना बरजिहौ ।
बहैया-सुनया तजौ आप और भया तजौ,
बया । तजौ भया, प क हैया नाहि सजिहौ ॥’

[नागरीदास]

(२) ‘एतो मतो हमारो—इस पद पर से एक यह धारणा बन गई है कि यह पद मोराबाई के पनात्तर रूप में लिखा गया है । कहने हैं कि मोराबाई का उनके परिजनो ने बहुत परेशान किया तब उन्होंने गोसाई तुलसीदासजी का यह पद पत्र में लिखकर भजा—

‘स्वस्ति श्री तुलसी गुनभूषन दुषन हरन गुसाई ।
बारहिबार प्रनाम करौ अब हरहु सोक-समुदाई ॥
घर के सजन हमारे जेते, सबनि उपाधि बढाई ।
साधुसग अब भजन करत मोहि देत फलेस महाई ॥

बालपन में मीरा की ही गिरिधरलाल मिलाई ।
सा तो अब छूटत नहि बयोहैं, लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात पिता के सम ही हरि भक्तन मुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समुझाई ॥

श्रीतुलसीचरित' के अनुसार—

सो पद्या गुसाइ समाचार । जिमि लिखी हुती निज गति विचार ॥'

'जाके प्रिय न राम-बन्धेहो इत्यादि पर गोसाइजी ने मारावाई को लिख भेजा ।

यह बात-ब्याही प्रतीत होती है । मीरावाई का गोमोक प्रयाण सवत १६०३ में हो चुका था । उस समय गोसाइजी अधिक से अधिक १३ वष के रहे हाने । यह पद साधारणतया सभी के लिए रचा गया है । इसका पुष्टीकरण तुलसी-प्रयावली' के तीसरे खण्ड में स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने भी किया है ।

१७४ Important - 5

जो पै रहनि राम सो नाही ।

सौ नर दर कूबर सूकर सम वृथा जियत जग माही ॥१॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोद, भय, भूल, प्यास सबही के ।

मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय पी के ॥२॥

सूर, सुजान, सुपूत, सुलच्छन गनियत गुन गुहमाई ।

धनु हरिभजन ईनारन के फल तजत नही करमाई ॥३॥

कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि सील, सरूप सलोने ।

तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ॥४॥

भाषा—जिसकी श्रीरामचन्द्रजी से प्रीति नहीं है, वह इस ससार में गधे, कुत्ते और सूकर के समान वृथा ही जीवन बिता रहा है (मानव ज म रामभक्त होने से ही साधक हो सकता है अथवा नहीं) ॥१॥

या तो काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, निद्रा, भय, भूल और प्यास का सभी को अनुभव होता है पर जिस कारण से देवता और सतजन मनुष्य-शरीर की प्रशंसा करते हैं, वह तो श्रीसीतलाल रघुनाथजी का प्रेम ही है ॥२॥

कोई शूरवीर, चतुर, माता पिता की आज्ञा पालन करनेवाला सुपुत्र, सुन्दर लक्षणवाला तथा महान् गुणों से युक्त भले ही हो, परन्तु यदि वह हरिभजन नहीं करता, हरिपरायण नहीं है, तो वह इन्द्रायण के फल के समान है, जो देखने में सुन्दर होन पर भी अपना कड़वापन नहीं त्यागता ॥३॥

कीर्ति, उच्चवश, धन्यो करनी, बड़ी विभूति, शील और साधन्यमय स्वरूप होते हुए भी यदि उसका प्रभु रामचन्द्रजी के प्रति प्रेम नहीं है, तो ये सारे सद्गुण ऐसे हैं, जैसे बिना नमक की दाल या साग भाजी ॥४॥

गद्या—गहमाई = मारोपन, धन्य, ईनाम, ईन्द्रायण, एक कड़वा फल ।
सलोने = लावण्यमय, सुन्दर ।

विषय—(१) 'तो घर माही—हरि मित्र जोष की मुता मही मया, मुता घोर मूषर मे की गई है। 'मया इगति वि' यह मनुष्य-जोष का बरा भार ही हो रहा है उग गया बुद्धि का वि' का मुग भी हसा मही निगा। 'मुता इगति वि' बिता ही कारण नि' का मूषता रहता है या निगा म मग गता है, मूषर के पा पर सार टपकाता है। मूषर इन कारण वि' यह विषयकी मय प्रमय सब मूष ताता रहता है।

(२) 'बाम पीने—यह हम रसोय का पायागुवा मान्य होता है —

आहार निद्रा भय-अपुनं च, सामा-यमेनम् पशुभिर्-सामानम् ।

यमोहि तेयामपित्री विनोयो यमोहरीना पशुभि सामाना ॥

। १७६

राख्यो राम सुस्वामी मो नीच नेह १ नातो ।

एते अनादर हूँ तोहि ते न हाता ॥१॥

जोरे नये नाते नेह फोवट फीने ।

देह के दाहक गाहक जो वे ॥२॥

अपने अपने को मग आहत नीचो ।

। मूल दुई को दयालु दूल्हा सी को ॥३॥

जीव को जीवन, प्रान को प्यारो ।

। सुख हूँ को सुख राम सो बिसारो ॥४॥

कियो परेगो तोसे खल को भला ।

। ऐसे सुसाहब सा तू कुचाल क्यों चल्यो ॥५॥

। सुलसी सेरी भलाई अजहूँ भूझे ।

राठउ राठउ होत फिरिबे जूझै ॥६॥

। भाषा—रे नीच ! तूने श्रीरामचन्द्रजी-समस्त सुन्दर स्वामी से न तो प्रेम रखा और न नाता ही जोडा । इतना अनादर करने पर भी उन्होंने तुझे नहीं रमाया । तूने उन्हें छोड़ दिया, भुला दिया, पर वे जनबात्सल्य के नाते फिर भी तुझसे भलग नहीं हुए सदा तेरे साथ ही रहे ॥१॥

। तूने नय-नये नाते और भिया-नया प्रेम जोडा जो सब-सब घोर मोरस के रस सबसे कल्याण होना तो दूर रहा बरन) वे (जगटे) तेरे शरीर को जलानेवाले और प्राणा के गाहक थे (मित्रजनों के न मित्रने अथवा मित्रकर बिछुड़ जाने से प्राणान्तक दुख होता है) जीव उनके कारण और भी ससार-बधन म दिन दिन जकड़ता जाता है ॥२॥

अपना और अपने का तो सभी भला चाहते हैं किन्तु दोना के कल्याण के मूल एक श्रीजानकी-वत्सल्य ही है ॥३॥

वे जीवा के जीवन ह, प्राणा के प्यारे ह और सुख के भी सुख हैं अर्थात् जितने

भी मुक्त माने जा सकते हैं, उनसे मूल कारण है। ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को तूने मुला दिया। ॥४॥

जिहोने तेरा सदा भना किया और आगे भी जो भना हो करगे, एम भरे स्वामी के साथ तू ऐसी कुचालें क्यों चना ? ॥५॥

हे तुममी 'यदि तू अब भी समझ जाय तो तेरी बन सकती है, क्याकि बार-बार लड़ने से कायर भी शूरवीर हो जाता है। (साराश यह कि अब भी चेत जा, पुरुषाद कर, तेरी सारी बिगड़ी करनी बन जायगी। निराश होने का कोई कारण नहीं) ॥६॥

शब्दाय—हातो = अलग हुआ। फोड़ = बेकाम। सी = सीताजी। राउ = कायर भी। राउत = बीर।

विशेष—(१) जों फोके—स्त्री-पुनर्जा के साथ सम्बन्ध जोड़ना यर्थ इसलिए है कि वे उपस्थित मृत्यु से नहीं बचा सकने, बल्कि उनके लिए जितने सुकर्म-कुर्म किए उन सभी का पत्र भोगना पड़ेगा। अतएव उनके साथ का सम्बन्ध बूझा है। कहा है—

‘गुण स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।

बन्ध न तत् स्यान्नृपतिन स स्यान्नमोवपेक्ष समुपेक्षमृत्युम् ॥

और फोके तो है ही, क्योंकि जो नित्य नहीं है परिवर्तनशील है, उनमें सरलता और आनन्द नहीं ?

(२) जीव—प्यारो—रामचरितमानस में भी यही कहा है—

प्रान प्रान की जीवन जी की

गीता के ‘पुरुषस्त्वयस्तदुच्यते’ के अनुसार आत्मा का नियन्ता कोई प्रय है। वही जीव है जीव आत्मा का आत्मा प्राण का प्राण है।

(३) प्राण—प्राण पाच प्रकार के माने गये हैं—हृदय में प्राण गुदा में अपान, नाभि में समान कण्ठ में उदान और सब शरीर में यान। इन सबका संचारक परमात्मा है।

८ — — — १७७

जो तुम त्यागो गम, हो तो नहीं त्यागो।

परिहरि पाय काहि अनुरागा ॥१॥

सुखद सुप्रभु तुम सो जग माही।

सवन नयन मन-मोचर नाही ॥२॥

हो जह जीव, ईस रघुगया।

तुम मामापति, हो बस माया ॥३॥

हो तो कुजाचक, स्वामि सुदाता।—

हो कृपूत, तुम ही पितु-माता ॥४॥

जो पै वहु कोड पूछत जानो।

तो तुलसी-विनु मोल बिकातो ॥५॥

भाषा—हे रामजी ! या यदि मुझे त्याग ॥ २ ॥ तो भी मैं भागते त्यागन
 जाना लूँ क्या कि यागन चरणों को छोड़कर मैं और निजने साथ करता प्रम
 जोड़ूँ ? ॥१॥

यागन समाप्त गुण दाशना गुणर स्वामी (आनन्द) इन मंगल में न जाना ते
 सुना ह न सोया स देगा है, और न मन में अनुमान न हो बाई दूसरा भाग है ॥२॥
 ह रघुनाथजी ! मैं जड़ जीव हूँ और याग विभु हूँ दरबार है याग माया के
 स्वामी हूँ (माया यागने अधीन ह) और मैं माया व वरा होकर रहना हूँ । (माया के
 आचरण रहना हूँ अतएव विचारो हूँ) ॥३॥

मैं एक भिरामना हूँ और याग बड़ हो उगार स्वामी हूँ । मैं मानना कुतूहल हूँ
 और याग मर माता विना हूँ । भाव यह कि मैं क्या भागने जाना नहीं मानना, तो
 भी याग सग मरा बालन पाण्डु किया करता हूँ ॥४॥

यदि वही बाई भी मरी याग पूछता (मेरी जरा भी इच्छा करता) तो मैं
 बिना ही मात (उपके हाथ में) बिच जाता । (पर किसी न मुझ रसा ही तह कयावि
 पौरुषहीन हूँ, मुझ दरबार कोई करना क्या ? मर तो यदि बाई दाढ़क ह, तो एव
 भावही ह भावही मझ तरोदर भवना दान बना लीजिए) ॥५॥

गणनाय—गावर = इन्द्रियों के विषय । बाती = जात ।
 विनय—(१) हो जड़ बस भाषा—स्पष्टत जीव और ब्रह्म का भिन्नत्व

महाँ सिद्ध किया गया ह । जीव को जड़ इमलिए कहा गया ह कि मायावृत आवरण
 के कारण सत्सत ज्ञान का उसमें अभाव रहता ह । अणुत्व होने से उसका ज्ञान
 परिमित रहता ह । वह स्वपुरुषाय से अनन्त के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सोच सकता
 अतएव वह चतय होत हुए भी, जड़ ही ह । इसने विरुद्ध परमात्मा ईश ह, विभु ह,
 अनन्त ज्ञानसंपन्न है । माया के अधीन होने से जीव में सुग-नुस आदि द्वन्द्व रहत ह
 किन्तु स्वस्वरूप वह माया अपरिचित न परमात्मा द्वन्द्व से विमुक्त है । तत्त्वत ब्रह्म का
 अश्वरूप (ममवाशो जीवकोके —गीता) होने के कारण जीव का ब्रह्म के साथ
 तात्पर्य अवश्य ह किन्तु माया के प्राचय से जो माया ब्रह्म के अधीन ह, जीव अपना
 'स्वरूप' भूल बठा ह । यदि माया मिथ्या न होतो, तो ब्रह्मस्वरूप जीव पर उसका कुछ
 भी प्रभाव न पड़ता । पर ऐसा नहीं ह ।

(२) 'जो ब्रिक्ता'—निवा भर मैं धूम फिर चुनन के अनन्तर आपके द्वार
 पर आया ह । यही एसा एक बाजार ह जहाँ रहों से भी रही चीज बिक जाती ह ।
 और यह दरबार दोन को आदर यह भी सुना था, इसलिये मुझ पुरा विश्वास हो
 गया कि यहाँ अवश्य ही मर आनर होगा ।

१८८

भयें हैं उदास राम, मेरे आस रावरी ।
 आरत स्वारथी सब कहैं वावरी ॥१॥
 जीवन की दानी धन कहा चाहि चाहिए ।
 प्रेम नेम के निवाहे चातक सराहिए ॥२॥

मीन तें न लाभ लेस पानी पुन्य पीन को ।
जल विनु थल कहा मीचु विनु मीन को ॥३॥
बड़े ही की ओट, बलि, बाचि भाये छोटे है ।
चलत खरे के सग जहा-तहा खोटे हैं ॥४॥
यहि दरबार भलो दाहिनेहूँ-वाम को ।
मोको मुभदायक भरोसो राम नाम को ॥५॥
बहुत नमानी हूँ है हिये नाथ, नीका है ।
जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥६॥

भावाय—हे रघुनाथजी ! आप भले हो मेरी छार मे उदासीन हो जायें, पर मुझे तो आपकी ही आशा है । जो लोग दुखों भयवा स्वार्थी होते हैं, वे पागला की-सी बातें किया करते हैं, विचारकर घाते नहीं करते (यही दशा मेरी है) ॥१॥

जो मेघ पानी का दान करता है मार प्राणिमो की रक्षा करता है, उस किस वस्तु की कमी ? किस प्रेम का (घटल) नियम निबाहने के कारण पयोहे की ही प्रशंसा होती है । (भाव यह है कि मेघ पयोहे को किसी स्वायत्त शक्ति का जन नहीं वेता केवल उसका प्रेम-भोग देखकर ही वह ऐसा करता है, किन्तु उसका प्रेम इतना बड़ा होता है कि देनेवाले की तो तारीफ नहीं हातो बरन् सेनेवाले पपाहे की ही हाती है ॥२॥

पवित्र और पुष्टिकारक जन को मछली से लक्ष्मण भी लाभ नहीं, पर मछली के लिए, जल को छाड़कर, वही ऐसा भी कोई स्थान है जहां वह अपने प्राण बचा सके ? (तात्पर्य यह है कि वह जन को छान्दकर वही भी जीवित नहीं रह सकती, जल पर उसका अगाध प्रेम है और इसी कारण से उनकी प्रशंसा हाती है) ॥३॥

म आपकी बलया सेता हूँ देखिण, बड़ा के सहारे ही (सदा) छोटे बचते भाये हैं, जहाँ-तहाँ खर सिक्कों के साथ खोटे भी चल जाते हैं । (भाव यह कि आपके सच्चे भक्त असली सिक्के हैं, और मैं एक पालखी नकली सिक्का, किन्तु आपके नाम को आप से तथा सत्संग से मैं भी उनका साथ समार सागर पार कर जाऊँगा ॥४॥

आपका यह दरबार कुछ ऐसा है, कि यहां भने-बुर सभा का मला होता है, भले ही कोई आपके अनुकूल हो या प्रतिकूल । (जब विमोपख सम्मुख होने से तथा रावण विमुख होने से मुक्त हुआ) । हे नाथ ! मुझे तो कवन आपके श्रेयस्कर नाम का ही बल भरोसा है ॥५॥

कह देने से बात बिगड़ जायगी, (क्योंकि वाक्य है थात हूँ स्वार्थी है) इसलिए मन को मन में ही रखना अच्छा है फिर आप तो तुलसी के जो हैं, हे कृपानिधान, सब जानते ही हैं । क्योंकि आप अन्तर्यामी हैं, आपसे कुछ छिपा नहीं ॥६॥

गद्यार्थ—जीवन=पानी, जन । पीन=पुष्ट । मीच=मीन । बाचि भाये=बच भाये । सरा=चोखा, अमना । दाहिना=अनुमन । वाम=प्रतिकूल ।

विशेष—(१) 'वाचक सराहिए—उत्तरता तो मेघ का है, परन्तु प्रशंसा वाचक की की जाती है । इसी प्रकार मुझे निहाल तो आप करेंगे, पर तारीफ होगी मेरी । यह

घापरी घाय भविषी महिमा : और एही घायना घावरी कृपा से हा भिनती है ।
मृत्यु जोध है जो कुछ भा पीयूष है उसके मूत्रारण भाग हो ॥

(२) "अनु बिनु भाग को"—बयानि—

'सर सुने छो उड़ और सरति समाहि ।

और मीन बिनु पल के, बहुत खीम कहे जाहि ॥'

इसी अन्वय निष्ठा के कारण मीन की सरिता होती है । इसी प्रकार घावरी छोड़कर मुझे वही भो ऐसा कोई और ठिकाना नहीं जहाँ मैं बरान, बान का प्रायः न बन सकूँ । रहता तो मैं स्वायम्भुव घावरी शरण में हूँ पर इस 'घायना' कहा जाता है । और मेरी प्रशंसा के पुन बाँधे जात है । इसे घायना कहने से घोर मरी तारीफ़ करते हैं । यह घावरी ही कृपा है ।

(३) बड़े छोटे ह—जैसे अजामल घोंग से घावका तारामण मह नाम पुकारकर यम-याचना है बाण का गया ।

(४) 'कहत नसानी तू ह'—बयानि भारत स्वारथी सब कह बात बावरा ।'
'बान कहीं सब स्वारथ हेतु । रहत न आरत के चित धेनु ॥

[रामचरितमानस]

उपा—

'कामार्ता हि प्रवृत्ति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु । [मेघदूत]

राम बिलावल

१७६

कहा जाऊँ, कासो कहो, को सुनै दीन की ।

त्रिभुवन तुही गति सब अगहीन की ॥१॥

जग जगदीस घर घरनि घनेरे है ।

निराधार के आधार गुनगन तेरे हैं ॥२॥

गजराज-काज खगराज तजि धायो को ।

मोसे दोष कोष पोसे तोसे माय जायो को ॥३॥

मोने कूर कायर कुपूत कौडी आध के ।

किये बहुमोल ते करेया गीघ आध के ॥४॥

तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि बनेगी ।

प्रभु की विलव अब दोष दुख जोगी ॥५॥

पृ १८५

.....—कहाँ जाऊ ? किससे कहू ? कौन इस (साधनहीन) दीन की सुनगा ?
जिसे वही और ठिकाना नहीं, जो सब तरह से नि सहाय है उसकी गति तीनो लोको में एक तू ही है । (केवल तू ही उसे शरण में ले सकता है) ॥१॥

पृ १८६

मो तो दुनिया में घर घर जगदीश भरेपते हैं (सभी अपने-आपको कहते हैं, कि दुनिया के मालिक हमी हैं ।) पर जिन कोई सहारा नहीं उसके लिए तो एक तेरे ही

गुणों का आधात है। (भाव यह, येरे ही गुणों का गानकर ससार सिधु का वह पार करता है) ॥२॥ ।

गजेन्द्र को छुड़ाने के लिए गरुड की सवारी छोड़कर भी कौन दौड़ा था ? जिसने मुझ-जैसे महान् अपराधी का भी पालन-पोषण किया, ऐसा एक तुम्हे छोड़कर किस जननी ने जना है ? (जिसी माई के सात में यह बलबूता न था, जो मुझ-सीखे धार पातकी का उद्धार कर देता) ॥३॥

मुझ-जैसे दुष्ट, कायर, कुपूत और आधी बौड़ी की कीर्तनवाला को भी हे जटापु के श्राद्ध करनेवाले ! तूने बहुमूल्य बना दिया (मुझे पहले काई फूटी बौड़ी के बराबर भी नहीं समझता था, पर आज, तेरी कृपा से, मैं जगत में पूज्य माना जाता हूँ) ॥४॥

बलिहारी ! तुलसी की (बिगड़ी हुई) करनी तेरे ही बनाये बन सकेगी । तारी विलम्बरूपी माता दोष और दु खरूपी सत्ताम ही जनेगी । भाव यह, कि यदि तूने मुझ निहान करने में देर लगाई, तो फिर मुझे दोष और दु ख के सिवाय और मिलेगा ही क्या ? (पर तू शीघ्र ही मेरी बिगड़ी करनी को सुधार दे) ॥५॥

शब्दाय—अगहीन = नि सहाय । खगराज = गरुड से तात्पर्य है । दोषकोप = अपराधी का भाण्डार महान् अपराधी । पोषे = पोषण किया, पालन किया । जामो = जना, पैदा किया ।

विनय—(१) अगहीन—अगहीन पर यह दोहा बहुत ठोस पड़ता है—

‘नहि विद्या, नहि बाहुबल, नहि खरचन की वाम ।’

‘तुलसी’ मोते पतित की, मुम पति । राखो राम ॥’

(२) ‘गिराज’ धाया की—देखिए, यह भावपूर्ण कवित्त—

‘दीन भयो गिराज, हीन भयो बल है ते,

हुटि गयो मान—देरयो हरी-हरी’ करिक ।

‘मोहे प्रभु इमा-सग पीत-पट राते रग,

सीये उठि पाये नाय ननु भाये भरिक ॥’

आचौरात पाये नाय खर मुदसैन लिये

काटि दीनो—प्राहकव जरी-जरी करिक ।

‘तुलसी’ जिलोकी-नाय, भक्तनि के मदा साथ,

गड़छाडि पाये नाय—‘करी-करी करिक ॥’

(३) ‘मोहे कूर बहुगोन—नवितावली रामायण में इसीकी ज्यों का त्यों दोहराया गया है—

‘राम नाम ललित ललाम बियो लाखनि को,

बड़ो कूर कायर कुपूत बौड़ी आध को ।’

साहित्य सरनपात्र सरल न दूगगा ।
 तरा नाम लत ही मुरोत होत ऊमरो ॥२॥
 वचन वरम तर भर मन गढे हैं ।
 देखे गुन जात में जहाज जन बडे हैं ॥३॥
 कौन बिया समाधान सनमान मीला का ।
 भुगुनाय सो रिपी जितेया कौन लीला का ॥४॥
 मातु पितु-चघुहित साव वदपाल को ।
 बाल को अचल, नत करत निहाल को ॥५॥
 सग्रही सनेहवम अघम असाधु को ।
 मोघ सवरी को वही करिहै सराधु को ॥६॥
 निराधार को अधार दोन को दयाधु को ।
 मोत कपि बेबट - रजनिचर भातु को ॥७॥
 रव, निरगुनी, नीच जितन निवाज है ।
 महागज ! सुजन-ममाज ते विराज है ॥८॥
 साची बिरुदावली न बढि कहि गई है ।
 सीलसिधु ! ढोल तुलसी की वेर भई है ॥९॥

भावार्थ—हे नाथ ! बलिहारी ! एक बार मरी और देखकर मुझे भी अपना लीजिए । हे श्री दशरथ-नन्दन ! आप उतड़ हुए जीवों को भी फिर से जमानवाले हैं । (जिनका सचरव हरण हो चुका उन्हें भी उसक पद पर पुनः स्थापित करनेवाले हैं) ॥१॥

आपक समान कोई दूसरा शरणागतता का पालनवाला सबसेमय स्वामी नहीं है । आपका नाम लत ही ऊमर खत भी उपजाऊ हो जाता है । (भाव यह कि जिनके पूव सत्कारों में सुख का वही नाम भी नहीं था वे भी आपके नाम के प्रभाव से भक्ति आनन्द आदि धाय से सम्पन्न हो जाते हैं) ॥२॥

आपके बचन और कम भर मन में जम गये हैं । (यह दृढ विश्वास हो गया है कि शरणागतता का उद्धार और दीनो पर दया करना आपका स्वभाव है) । और माने उन लोगों को भी देख सुन और समझ लिया है जो दुनिया में बड़ कहे जाते हैं ॥३॥

उनमें से किसन पापाणी ग्रहल्या का शाप दूर कर उसे शान्ति प्रदान की, और किसने सहज ही परशुराम जैसे महाक्राधी ऋषि को जीत लिया ? ॥४॥

माता पिता और भ्राता के लिए किसन लोक और वन की मर्यादा का पालन किया ? कौन अपने बचना पर अडिग रहा ? और प्रणाम के करते ही प्रणत की किसने निहाल कर दिया ? ॥५॥

प्रेम के अधीन हाकर किसने नीचों और दुष्टों को झट्टा लिया अपनाया ? और मोघ और सवरी का पिता माता को तरह और कौन आद करवा ? ॥६॥

जिनका कही भी कोई धायय नहीं, उनका आचार (सिवा आपके) कौन ह ? दोनों पर कृपा करनेवाला कौन ह ? और बानर निपाद, राक्षस तथा रीछों का मित्र कौन ह ? (सिवा आपके दूसरा कौन हा सकता ह ?) ॥७॥

हे महाराज ! आपन जितने दोनों, भूखों और नाचा पर कृपा की हैं व सब साधुभा के समाज में धाज सुशामित हो रहे ह, सन्त-समाज में उनकी भी अच्छी मणना हो रही ह ॥८॥

यह आपकी सच्ची-सच्ची बहाई कही गई ह, (एक भ्रतर भी) बढाकर नहीं बहा है । किन्तु, ह शील के समुद्र ! तुलसीदास के ही लिए कतना अधिक विलम्ब क्यों हा रहा ह ? (यही एक आश्चर्य ह ! आपकी विरदावली के अनुसार तो अब तक इसकी भी सुनाह हो जानी चाहिए थी ।) ॥९॥

विनय—(१) 'उपपा पापनो'—जसे सुधोव और विभीषण का, जो अपने अपने भाई के साथ द्राह करने से जड से उखड चुके थे फिर स स्थापित किया, उन्हें रायपद दिला दिया ।

(२) सीता—शिला का अपभ्रंश ह ।

(३) 'भगुनाथ सा — सा (सरीखा) परशुरामजी के अपरिमित बल, धीय और तेज का द्योतक ह ।

(४) 'न बडि कहि गई ह'—इस कथन में अत्युक्ति या कवि चमत्कार लेशमात्र भी नहीं ह । यह हृदय के सच्चे उद्गार, ह ठठुरसाहासी नहीं है ।

१८१

केहू भाति कृपासिन्धु मेरी और हेरिए ।

मौकी और ठौर न, सुटव एक तरिए ॥१॥

सहस सिला तें अति जह मति भई है ।

पासो वही, कौन गति पाहनहि दई है ॥२॥

पद राग-जाग चहो कौमिक ज्यो कियो हों ।

कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हों ॥३॥

करम कपीस वालि बली पास त्रस्यो हों ।

चाहत अनाथ-नाथ ! तेरी बांह बस्यो हों ॥४॥

महामोह - रावन विभीषन ज्यो ह्यो हों ।

नाहि तुलसीस ! नाहि तिहूँ ताप तयो हों ॥५॥

भाषाय—हे कृपासागर ! किसी भी तरह मेरी आर दशा ता । मेरा कोई और निवाना नहीं ह, एक तुम्हारा ही पक्का आगर ह (यदि तुम्हीं ने छोड़ लिया, ता फिर कहीं, किमका हाकर रहूंगा ?) ॥१॥

मेरी बुद्धि हजार शिनाभा से भी जल्हा गई ह । (अब म उय चतय करने के लिए तुम्हें धोकर) और किसम बहू ? पायरो का किमने मुक्त किया ह । तुम्हीं ने, बस इतने ही से समझ लो । जसे तुमने एक पागण्डी का उद्धार कर दिया था उसी प्रकार मेरी जल्हा बुद्धि का भी चतय और शुद्ध बना दो ॥२॥

जिस प्रकार महर्षि विश्वामित्र ने (तुम्हारे संरक्षण में निविष्ट) यज्ञ किया था, उसी प्रकार मैं भी एक यज्ञ करना चाहता हूँ। वह यज्ञ है तुम्हारे चरणा में भक्ति-ज्ञान करना। किन्तु बलि के पाप-पत्नी दुष्टा को देखकर मैं अत्यन्त डर-गया हूँ (कि कहा ये सारा किया-कराया नष्ट भ्रष्ट न कर दें जैसे भारीच, ठाडका आदि राजस विश्वामित्र का यज्ञ विध्वस्त कर दिया करते थे) ॥३॥

कुटिल कमरूपी बदरो के बलवान राजा बालि से बहुत डर रहा है। सा हे धनार्थी के भाय ! जैसे तुमने बालि को मारकर सुग्रीव को अभय कर दिया था, उसी प्रकार मैं भी आपकी बाहु को छाया में बसना चाहता हूँ मुझे भी कुटिल कर्मों से बचाकर अपना लो ॥४॥

जस, रावण ने विभीषण का मारा था, उसी प्रकार मुझे यह महान मोह मार रहा है। हे तुलसी के स्वामी ! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो मैं संसार के सीता साप से जला जा रहा हूँ ॥५॥

ग-वाय—टेक—छहारा बल । पद राग—चरणों में अनुराग । जाग—(याने) यज्ञ । भियो हों—डर गया हूँ । तया हों—जल रहा हूँ ।

विशेष—(१) तिहूँ ताप—दैहिक, भौतिक और दैविक ।

५१५५

। १८२ —

नाथ ! गुनगाय सुनि होत चित चाउ सो ।
 राम रीझिबे को जानौ भगति न भाउ सो ॥१॥
 करम, सुभाउ, कौल ठाकुर न ठाउ सो ।
 सुधन न, सुतन न, सुमन सुभाउ सो ॥२॥
 जाचौ जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो ।
 पासो कहीं बाहु सो न बढत हिआउ सो ॥३॥
 बाप ! बलि जाउ आपु करिये उपाउ सो ।
 तेरेही निहारे परै हारेहु सुदाउ-सो ॥४॥
 तेरेही सुझाये सूझै अमुझ सुझाउ सो ।
 तेरेही सुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥५॥
 नाम अवलबु अबु दीन मीन राउ सो ।
 प्रमु सों बनाइ कहौ, जीह जरि जाउ सो ॥६॥
 सब भाँति विगर एक सुबनाउ सो ।
 तुलसी सुमाहिबहि दिया है जनाउ सो ॥७॥

भाषार्थ—हे भाय ! आपकी गुणावली को सुन-सुनकर मेरे चित्त में चाप-सा होता है किन्तु हे रघुनाथजी ! जिस भक्ति और भावना से आप प्रसन्न होते हैं, उसे मैं नहीं जानता (यदि जानता होता, तो मुझे आपके गुणों के सान्निध्य से परमानन्द प्राप्त न हो गया होता ?) ॥१॥

५ - : बारण कि ॥ तो मेरी करनी अच्छी ह, १ स्वभाव उत्तम ह और न समय ही अनुकूल ह (कल्पिगुण ह), न कोई मानिव ह, न कही कोई ठौर ठिकाना ह, न (साधन स्त्री) धन ह, न नीरोग शरीर ह (कि जिसमे योग्यात्म्या आदि ह), न निरबल चित्त है, और न लम्बी आयु ही ह । (साराश, भगवत्प्राप्ति का एक भी साधन मेर पास नहीं ह । सब प्रकार स बिना साधार का हैं) ॥२॥

जिससे य, व्यास के मारे पानी माँगता हूँ, वह उलटा मुझमे ही अमृत पिलाने के लिए कहता ह । य अपने वात जिससे बहूँ ? कहन की किसी स हिम्मत नहीं पड़ती (मन की मनु म ही रखता ह) ॥३॥

हे पिताजी ! बलिहारी ! आप ही कुछ ऐसा उपाय कर दीजिए (कि जिससे यह सारा अजमजम दूर हो जाय) क्योंकि आपके दक्ष देने मात्र से हारने पर भी अच्छा दाँव सा हाथ लग जाता है । बड़-बड़े पापों भी आपके कृपा से बहुल-धाम के अधिकारी हो जाते हैं ॥४॥

आप यदि सुभा दें तो अदृष्ट वस्तु भी देखने लगती ह, और आपके समझ देने पर अगोचर वस्तु भी अनुभव में आ जाती ह । अब जो मेरी समझ में नहीं आ रहा ह, उस आप ही समझा दीजिए ॥५॥

देखिए आपके नाम का जो आधार ह, वही तो पानी ह और उसमें रहनेवाला मैं हीन मोनों का राजा ह । बड़े भारी मत्स्य के समान हूँ, जो मैं अपन स्वामी स कपट करी बात कहता होऊँ तो यह जीम जल जाय ॥६॥

मेरी करनी सभी प्रकार से विगड़ चुकी ह, केवल एक ही अच्छी बात बनी हुई ह । वह यह कि तुलसीदास ने अपनी करनी अपने मालिक को वन पर जना दी है ॥७॥

गदाय—ठाकुर=मालिक । सुभाउ=(सुभायु) बड़ी । उन्न । अमिय=अमृत । हिमाउ=साहस । अमुक=जो समझ में न आय । जीह=जीम । जनाउ=सूचना ।

विशेष—(१) करम सुभाउ—एक तो कुटिल कर्म फिर नीच स्वभाव, तिस पुर कल्पिगुण । सब तरह स अनाथ भी हूँ, कोई धनी घोरी नहीं, ठौर ठिकाना नहीं, सुहावना, आजीवन रोगी, और चंचल चित्त । यह भी नहीं, कि आयु लम्बी हो, जिसने कुछ-न कुछ साधन बन जाय । मेरा उपचार क्या कर हो सकता ह ?

‘ग्रह-ग्रहीत पुनि बात बस तापर बोली मार ।
ताहि पिपाइय बावनी कही कौन उपचार ॥’

(२) जाँचो पिपाउ सो—तात्पर्य यह ह कि जब मैं किसी से भूल-व्यास के मारे कुछ माँगता हूँ, तब वह मुझे सिद्ध महात्मा समझकर—मुझमे उलटा धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र आदि माँगता ह । यह लोकमायता मुझे बहुत खन रही ह, क्योंकि—

‘लोकमायता अनन्त सम, कर तप-कानन शह ।’

(३) ‘तेरे हा सुदाउ-सो’—गरतजी ने भी यही कहा ह—

‘हारेहु खेल जितायेहु मोही ।’

(४) ‘मीन राउ बड़ा मत्स्य तानाव में नहीं रह सकता । उसका निवास

[रामचरितमानस

स्थान तो समुद्र ही है। अतः मैं केवल राम नामस्मयी महाप्रभु में ही आनन्द कल्लोल कर सकता हूँ, अन्यत्र नहीं।

राम जासावरी

१८३

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूर करे,
ऐसी विरुदावली, बलि वेद मनियत है ॥१॥
गोध को कियो सराध, भीलनी को खायो फल,
सोऊ साधु-सभा भली भाति मनियत है।
रावरे आदरे लाक बढ हूँ आदरियत,
जोग ग्यान हूँ से गरु मनियत है ॥२॥
प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलि हूँ काल,
महिमा समुझि उर मनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबन्धु । द्वारे हठ ठनियत है ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! प्रीति की रीति आप ही अपनाया जानने है। बलि-हारी ! वेदों ने आपकी विरुदावली इस प्रकार मानी है कि घोर बड़े का बड़प्पन (प्रतिमान) घोर छोटे की छोटाई अथवा दीनता को दूर कर देते हैं ॥१॥

आपने जटायु गोध को पिण्डदान दिया और शबरी के फल (वेर) खाये। यह बात भी सब समाज में अच्छा तरह बखाना जाता है। जिस किसी ने भी आपसे आदर सम्मान पाया उसका लोक और बे-दानो ही आदर करते हैं। आपका प्रेम योग और गान से भी बड़ा माना जाता है ॥२॥

हे कृपालु ! आपकी कृपा से इस करान किस्सन में भी आपकी महिमा को समझकर हृदय में धारण करता हूँ। यद्यपि तुलसी परायण अथवा विरयों के अधीन होकर आपके प्रेम से अनरस अथवा आपके प्रमानन्द से विमुख हो रहा है तथापि है हर ! वह आपके द्वार पर अड़ा बड़ा है (बिना आपके कृपा-दृष्टि पाये वह हटने का नहीं) ॥३॥

गण्य—सराध = आदर । मनियत है = कहत है । गरु = भारी ।

विशेष—(१) प्रीति—प्रीति राम के छह प्रकार है—

‘ददति प्रत्यूहति गुणं वक्ति च पृच्छति ।

भुञ्जति भोजयति च पश्यति प्रीतिरक्षयः ॥’

(२) गाय—जगद्गुरु का उत्तरक्रिया पर कहा है—

दगरथ त दसगुन भगनि सहित सागु करि काज ।

सोचन बन्धु समेन प्रभु कृपासिन्धु रघुराज ॥’

(३) 'भीलनी'—शरी ने श्रीराम का इस प्रकार अनुग्रह आतिथ्य लिया—

पद पकजात पत्थारि धुजे पय स्रम विरहित भये ।
फल फून अकुर भूल धरे सुघारि भरि दीना नये ।
प्रभु खात पुलकित गान, स्वाद सराहि आदर जनु लये ।
फल चारिहूँ फलचारि दे परचारि फन सबरी दये ॥

(४) 'रावरे' आदरियत — कहा ह—

'जापर कृपा राम की होई । ता पर कपा कराहि सब कोई ॥

[रामचरितमानस]

१८४

राम - नाम के जपे जाइ जिय की जरनि ।
कलिकाल अपार उपाय ते अपाय भये,
जैसे तम नासिबे को चिन के तरनि ॥१॥
वरम - बलाप परित्याप, पाप साने सब,
ज्यो सुफून फूने तरु फोकट फरनि ।
दम्भ, लोभ, लालच, उपासना बिनामि नीके,
सुगति साधन भई उदर - भरनि ॥२॥
जोग न समाधि निरुवाधि न विराग ग्यान,
वचन विसेष वेप, कहै न करनि ।
कपट कृपय कोटि, कहनि रहनि सोटि,
सबल मराहै निज - निज आचरनि ॥३॥
मरत महेम उपदेम हैं कहा करत,
सुरमरि तीर रामी धरम - धरनि ।
राम नाम का प्रनाप, हर कहै, जपे आपु,
जुग - जुग जान जग बेदहै बरनि ॥४॥
मति राम-नाम ही सो, गति राम-नाम ही सो,
गति राम - नाम ही की विपति-हरनि ।
राम-नाम सो प्रतीनि प्रीनि राखे कबहुँक,
तुलसी ढरैगे राम आपनी ढरनि ॥५॥

भावार्थ—मन का जवन राम-नाम के जपने से ही जाती है (मन शान्त होता है) कलियुग में और जितने कुछ साधना है वह ऐसे व्यर्थ हो जाने है, अथ अधिकतर दूर करने से निरुपनिहित मूल्य ॥१॥

कर्मों का तो समुद्र का-समुद्र है । (कर्मकाण्ड शास्त्रा में बताया गया पडा है) परन्तु वह सब दुःख और पाप में बना हुआ है । (पाप-मत्तान के कारण एक भी उत्तम विधि विहित पुण नहीं है पाता) । कर्मों का करना ऐसा है जब किसी कृप में गड़े ॥

गुप्तर पून फँसे, पर फन लगे ही गही । भाव यह है बि यज्ञ, बाग घाति गाधन दगन
गुनने म सा गुताध्य और सरल जान पत्त ह । पर अत में दु गाम्य हा जान ॥ त्रिगुमे
फल कुछ भी हाय गहा लगता । पागण्ड साम और साधन ग उपागना बा चौपट कर
गिया ह । और मोल पट भरन बा साधन हा गया है ॥२॥

त तो योग बनता ह न समाधि हो उपाधि रहित सधनी है (उगमें भी सधन्य
विकल्प उठा करत ह) बराम्य और गान सधनी चौडी बाग मारने और ऊरा वरा
धूपा के लिए हो रह गय है करनी कुछ भी नही बोरी बधनी हा ह । कपट भरे करोडा
धुमाग चल पत् ह । कहनी और रहनी सभी साटा हो गई ह । सभी धपन धपन धाव
रणो की डीग हावते ह सभी धपने बा मवधष्ट समझ रह ह ॥३॥

शिवजी गया के तट पर बाशी की पवित्र भूमि पर भरत समय जीव को क्या
उपदेश दते ह ? वे श्रीराम-नाम के प्रताप का वगन करते हैं । दूसरा से कहते हैं और
स्वय भी जपते ह । अनेक युग से इसे ससार जानता है, और यद भी कहते चले भाये
है ॥४॥

राम-नाम में ही बुद्धि को लगाना चाहिए राम नाम से ही लगन लगानी चाहिए
और राम-नाम की ही शरण लनी चाहिए, क्योंकि एक यही साधन जन्म मरणरूपी
विपत्तियों को दूर करनेवाला ह । हे तुलसी ! यदि तू राम-नाम पर विश्वास किए रहगा
और सग धपना प्रम दन बनाये रहगा तो श्रीरघुनाथजी कभी न कभी अपने दमानु
स्वभाव से तुझ पर अवश्य कृपा करग ॥५॥

ग-दाय—अपाय—वय धनिष्टरूप । तरनि—सूप । कलाप—समूह । फोपट
= वृथा किसी काम का नही । डरेंगे = कृपा करेंगे ।

विनय—(१) वेप करनि —

‘करनी बिनु कधनी कय ज्ञानी दिन रात ।
कूजर ज्यो भूकत फिर सुनी-सुनाई बाग ॥

[रक्षीर

(२) भरत धरनि —

पेय पेय अवलणुटके रामनामाभिराम
ध्येय ध्येय मनसि सतत तारक ब्रह्मरूप ।
जल्पन जल्पन प्रकृति विकृतौ प्राणिना करणमे
वीर्या वीर्यामदति जटिल कोटिपि कानो निवासो ॥

[काशी खण्ड

लाज न आवत दास कहावत ।

सो आचरन विसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहें भावत ॥१॥

सरल सग तजि भजत जाहि मुनि, जप, तप, जाग बनावत ।

मो सम मद महाखल पावर, कौन जतन तेहि पावत ॥२॥

हरि निरमल, भलप्रमित हृदय, अममजस मोहि जनावत ॥
 जेहि मर काक कक वक् मूकर, क्यो मराल तहें आवत ॥३॥
 जाकी सरन जाइ कोविद दारुन जयताप बुझावत ।
 तहें गये मद मोह लोभ अति सरगहूँ मिटत न सावत ॥४॥
 भव-सरिता वहे नाउ सन्त यह कहि औरनि ममुझावत ।
 हौं तिनसो हरि परम वेर करि, तुम सो भलो मनावत ॥५॥
 नाहिन और ठोर भो कहें, ताते हठि नातो लावत ।
 राखु सरन उदार झुडामनि । तुलसिदास गुन गावत ॥६॥

भाषाय—हे रघुनाथजी ! मुझे (प्रापका) दास कहलान भ शम भी नहा पाती ।

जो आचरण आपका अच्छा लगता है, उसे मैं बिना किसी विचार के छोड़ देता हूँ ।
 (सत्ता का आचरण छोड़ देने पर मुझे परचात्ताप भी नहीं होता । इतने पर भी मैं आपका दास बनता हूँ) ॥१॥

सब प्रकार की आसक्ति छाड़कर जिस मुनिगुण मजते हैं, जिसके लिए जप, तप और धन करते हैं, उस प्रभु को मुझ जसा मूख, भारी दुष्ट और पापी कैसे पा सकता है ? ॥२॥

भगवान् तो परम विशुद्ध हैं और मेरा हृदय है पापपूर्ण, महामलिन । मुझे यह असमजस जान पड़ता है कि जिस तालाब में कोई गीघ, बगुले और सूअर रहते हैं वहा हल क्या पाने लगे ? आशय यह कि मेरे महामलिन हृदय में भगवान् वास करने नहीं पायेंगे । व सो उन्ही मुनिया के हृदय मंदिर में विहार करेंगे, जिन्होंने ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि साधना द्वारा अपने हृदय का निमल बना लिया है ॥३॥

जिनकी (सीधों की) शरण में जाकर ज्ञान के साधक जन सासारिक सीता कठिन तापा को शान्त कर देते हैं अर्थात् दहिव दहिक और भौतिक दुःखा से मुक्त हो जाते हैं वहा भी जाने पर मुझे अहंकार, अज्ञान और लोभ अधिक सहायेगे, क्योंकि सीतियाडाह स्वर्ग में भी नहीं छूटता, वहाँ भी वह साथ ही लगा फिरता है ॥४॥

मैं दूसरा का यह कहकर समझाता रहता हूँ कि ससाररूपी नदी के पार जाने के लिए सततगन ही नौका है किन्तु हे हरे ! मैं (स्वयं) उनसे भारी शत्रुता रखकर आपने अपने कल्याण का इच्छा रखता हूँ ॥५॥

मैं सत-त्रोही होने के कारण आपके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लायक तो नहीं हूँ, (पर वक् क्या लाचारी है) मुझे नहीं और ठीर ठिकाना तो ॥ हो नहीं, इसीलिए खबर-दस्ती हो आपसे नाता जोड़ता फिरता हूँ और आपका बनना चाहता हूँ । हे दाताओं में शिरोमणि रघुनाथजी ! यह तुलसीदास आपके गुणों का गान कर रहा है, इस अंगीकार कर लाजिए (मेरी भलाई-बुराई को ताक पर रख दाजिए और अपने सहज स्वभाव से मुझ पर शृपा कर दोजिए) ॥६॥

पदाय—भावत=अच्छा लगता है । सम=आसक्ति । वक्=गीघ । 'सावत=

ईप्स

विशेष—(१) 'क्यों मराल आवत'—जिस सरोवर में बीघमरूपी हल

विहार करते हैं, उसका बखान भगवन् बजनायजी ने इस प्रकार किया है —

‘जिनके हृदयरूपी तडाग में प्रेमरूप पावन अमल जल भरा समता, शांति, सत्ताप, पान विराग, विवेक कमल फूले, राम-नाम स्मरणरूप मुक्त्याममूह तहाँ रामरूप हस विहार करत है । अरु मरे हृदयरूप तडाग में जा विषय-वासनारूप मना जल भरा, परस्त्रीचाह विष्टा है ताने कामरूप सूकर वगैर परधन चाह शबक भक्त है तहाँ सोम रूप बगुला है, परहानि अपवाद मृतक मास है ता हेतु क्रोध, ईर्ष्या याक कक बसत, तहाँ राघवरूप हस अने आबहिने ? ’

(२) मिटत न सावत्—जीव की दो स्थितियाँ हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति । ये दोनों दिन रात कसह मचाये रहती हैं । स्थूल शरीर छूट जाने पर इनसे पिड नहीं छटता । सूक्ष्म शरीर में भी इनका लडना-पगडना बना रहता है । जहाँ कहीं भी जीव जाता है, य दोनों सौतिमा डाह से उसके पीछे पीछे लगी फिरती हैं ।

१८६

कौन जतन विनती करिये ।

निज आचरण विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥१॥
जहि साधन हरि, द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये ।
जाते विपति जाल निसिदिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥
जानत हूँ मन बचन करम परहित कीटै तरिये ।
सो विपरीत देखि परसुख, बिनु कारन ही जरिये ॥३॥
सूति पुरान सबको मत यह सत्तम सुदढ धरिये ।
निज अभिमान मोह ईर्ष्या बस तिन्हि न आदरिये ॥४॥
सतत सोइ प्रिय मोहि सदा जाते भवनिधि परिये ।
कहौ अब नाथ, कौन बल ते ससार मोग हरिये ॥५॥
जब कब निज करना सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिये ।
सुलसिदास बिस्वास आन नहि, कत पचि पचि मरिये ॥६॥

भाषाय—हे नाथ । मैं किस प्रकार विनती करूँ ? जब अपने (जीव) आचरणों की ओर देखता हूँ उन पर विचार करता हूँ समझता हूँ सब साहस छोड़कर हृदय में हार मानकर डर जाता हूँ । (म तो आपके सामन आने ही योग्य नहीं ऐसा घोर पापी हूँ) ॥१॥

हे हरे । जिस साधन से आप इस जन का दास जानकर इस पर कृपा करते हैं, अपना लेते हैं उसे मैं हठपूर्वक छोड़ रहा हूँ । जहाँ दिन रात विपत्ति के जाल में फँसकर दुःख ही मिलता है उसी रास्ते पर चला करता हूँ ॥२॥

मैं जानने हुए भी कि मन, बचन और कर्म से दूसरा का भलाइ करने से ससार सागर पार कर जाऊँगा, मैं उनका ही आचरण करता हूँ दूसरों के सुख को देख कर पिता ही का रहा जला पा रहा हूँ ॥३॥

वेदा और पुराणा सभी का यह सिद्धांत है कि सन्ता का सग खूब दृढ़तापूर्वक करना चाहिए, सत्सग किसी भी प्रकार नहीं छोड़ना चाहिए, पर म अपने अहंकार, अज्ञान और ईर्ष्या के बरा होकर सत्सग का आदर कभी नहीं करता, सन्ता के साथ सदा द्राह ही करता है ॥४॥

मुझे सदा बहो अच्छा लगता है, जिसमें ससार-समुद्र में ही पड़ा रहूँ। फिर, हे नाथ ! आप ही कहिए, मैं किस बल-बूते पर ससार के ॥ ख दूर बहूँ ? ॥५॥

यदि कभी आप अपने कारुणिक स्वभाव से मुझ पर पिघल जाय, तभी मेरा निस्तार होगा अथवा नहीं, क्योंकि तुलसीदास को किसी और का विश्वास नहीं, तब वह किसलिए (दूसरे साधना में) पच पचकर मरे ॥६॥

शब्दाथ—द्रवहु=टूपा करते हैं। अनुसरिये=चलते हैं। सतत=सदा। सौग=शोक।

११८७

ताहि ते आयो सरन सवेरें।

ग्यान, विराग, भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरें ॥१॥

लोभ मोह मद, काम, जोष रिपु फिरत रैन दिन घेरें।

तिनहि मिले मन भयो कुपय रत फिरे तिहारेहि फेरें ॥२॥

दोष निलय यह विषय सोव प्रद कहत सत स्तुति टेरें।

जानत हूँ अनुराग तहा अति सो हरि तुम्हारेहि प्रेरें ॥३॥

त्रिप पिथूप सम करहु अग्नि हिम, तारि सकहु तिन बेरें।

तुम सम ईस कृपालु परमहित पुनि न पाइहौं हेरें ॥४॥

यह जिय जानि रही सब तजि रघुवीर भरोसे तेरें।

तुलसिदाम यह विपति बागुरो तुमहि सा वनै निवेरें ॥५॥

भाषाथ—हे नाथ ! इसी कारण मैं जल्दी आपकी शरण में आ गया ॥ (जल्दी इसलिए कि न जाने कब मृत्यु का आस हा जाना पड)। मेरे पास स्वप्न में भी गान, वैराग्य भक्ति आदि साधन नहीं हैं (जिनके बल पर मैं ससार-विधु से पार हो जाता) ॥१॥

लोभ, अज्ञान अहंकार, काम और क्रोधरूपी शत्रु मुझे सदा घेरे रहते हैं, (सण भर भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ेंगे)। इन सबके साथ मिनकर यह मन भी कुमांगी हो गया है। अब यह आपके ही फेरने से फिरेगा (निरचल होगा, अथवा नहीं) ॥२॥

सतजन और वेद पुकार पकारकर कहते हैं कि यह विषयासक्ति, दोषों की खानि है दुःखदायक है पर यह जानते हुए भी मैं अनुरक्त रहता हूँ। सो, हे हरे ! यह आपके ही प्रेरणा का नहीं है ? (नहीं तो ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो जानबूझकर कुएं में गिरेगा ?) ॥३॥

आप (अपने सामर्थ्य से) विष का घमट एव अग्नि को हिम बना सकते हैं, आप बिना ही बड़े के पार कर सकते हैं। आपके ममान समर्थ, कृपालु और परमहित दूढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। (यदि इस जन्म में आप-मरीचे स्वाध्मे को भूलकर चूक

गया तो फिर अगले जगो में ऐसा दाँव मिलने का नहीं ॥४॥

हृदय में यह जानकर हे रघुनाथजी ! मैं सब छाड़ छाड़कर भापने ही भरोसे आ पड़ा ॥ तुलसीदास का यह विपत्तिरूपी जाल भापने ही काटे कटेगा ॥५॥

ग दाय—सबरेँ = जल्दी, पहले से ही । नितय = घर । बरे = बेड़ा । बागुरो = जाल ।

विशेष—(१) ताहि त'—क्योंकि हे प्रभो ! मैं भापकी यह प्रतिज्ञा सुन चुका हूँ—

‘सवधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज ।

अहं त्वां सवपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥’

[भगवद्गीता

(२) विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ।

(३) तुम्हरेहि प्रेरे—जीव का प्रेरक परमात्मा है । जो कुछ वह करता है, वही यह करता है । दुर्बोधन ने कहा था—

जानामि धम न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधम न च मे निवृत्तिः ।

केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

(४) तुमहि सो बन निबरें—क्याकि जो बाँध सोइ छोरे ।’

१५८

मैं तोहि अब जाँयो समाँ ।

बाधि न सकहि मोहि हरि के बल, प्रगट कपट प्रागार ॥१॥

देखत ही कमनीय, कछु नाहित पुनि किये विचार ।

ज्यो कदलीतर मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥२॥

तेरे लिए जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार ।

महामोह-भृगजल सरिता महँ बोरयो ही वारहि वार ॥३॥

सुनु खल, छल बल कोटि किये बस होहि न भगत उदार ।

सहित सहाय तहा बसि अब, जेहि हृदय न नन्दकुमार ॥४॥

तासा करहु चातुरी जो नहि जानै मरम तुम्हार ।

सो परि ढरे मरे रजुअहि ते बूझै नहि ध्यवहार ॥५॥

निज हित सुनु सठ, हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार ।

तुलमिदास प्रभु के दासनि तजि भजहि जहा मद भार ॥६॥

भावाय—हे ससार ! आज मैं तुम्हें जान-पहचान लिया तरा ठीक-ठीक भेद आज मेरी समझ में आ गया । तू सानहों आने कपट का घर है पर अब तू मुझे (अपने कपट जाल में) नहीं बाँध सकता क्योंकि मुझे आहुरि का बल प्राप्त हो गया है (पर मात्मा के सामने तरा अस्तित्व तक नहीं रहता छलबल की ताँ बात ही क्या) ॥१॥

दखने मात्र मैं हूँ तू मुझ पर प्रताप हाता है पर विचार करन पर विवेकबुद्धि से घाघने पर तू कुछ भी नहीं, वस्तुन तरा अस्तित्व ही नहीं है । जय केले के पेड़ को देखो

तो उसमें से कभी गूदा निकलता हो नहीं, जितना ही छोड़ो, छिलका ही छिलका निकलता जायेगा। (यही दशा ससार की है। जितना ही अधिक इम पर विचार किया जाये उतना ही यह नि सार प्रतीत होगा) ॥२॥

तेरे लिए मैं अनेक जन्मों से मटकता रहा हूँ, पर धान तक तेरा पार नहीं मिला। (यह जान नहीं हुआ कि तू क्या है, किसलिए है, मेरा-तेरा क्या रिश्ता है) तूने मुझे महामोहपूर्ण भगतधृष्टा की नदी में बार-बार डुवाया। (ससार की भूली विपयासक्ति में मुझे अनेक बार फँसना पड़ा) ॥३॥

अरे शठ ! मुझे तू करोड़ों प्रकार के छलबल किया करे, पर श्रीकृष्ण का परमभक्त तेरे वश में होनेवाला नहीं। तू तो अपनी सेना समेत वही जाकर डेरा डाल जिस हृदय में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का वास न हो (भगवत् शून्य हृदय में ही सासारिक प्रवृत्तियाँ का साम्राज्य रहता है) ॥४॥

जो तेरा भेद न समझता हो उसी के साथ तू अपनी चाल चल, क्योंकि वही रस्सीटपी साप से डरकर मरगा, जो उसके रहस्य को न जानता होगा ॥५॥

अरे दुष्ट ! अपने हित की बात सुन जो तू कुटुम्ब समेत अपनी खर बाहवा हूँ तो धन हठ न कर। तुलसीदास के प्रभु श्रीरघुनाथजी के सेवका को छोड़कर तू वहाँ भाग जा, जहाँ अहंकार और काम निवास करते हैं ॥६॥

शब्दाय—आगार = स्थान। विचार = जान। सार = गुण। सहाय = सेना।

विशेष—(१) इस पद में मासाइजी न ससार को मायावाद मिद्धान्त के अनुसार मिथ्या माना है, पर साथ ही हम उनका यह वाक्य—“कोई कह सत्य, भूठ कह कोई जुगल प्रजल करि मान। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पद्विषानै नहीं भूने। हरि प्राप्ति के लिए विरक्ति का होना आवश्यक है और इसलिए ससार तो क्या, प्रसन्न में ससार की विपयासक्ति को मिथ्या माना गया है।

(२) 'न पायो पार—वस्तुतः जिन समुद्र का अस्तित्व ही नहीं, उसका पार क्या मिलेगा ? पार या सेना 'वध्यापुत्रा-बेपण ही है।

(३) 'सहित नन्दकुमार—क्याकि—

'बहु रहाम का करि सक ज्वारी चोर लवार।

जो पति राखनहार है माखन चाखनहार ॥'

राम गौरी

१८६

राम बहत चलु, राम बहत चनु, राम बहत चलु भाई रे।

नाहि तो भव-वेगारि महुँ परिही छूटत अति बठिनाई रे ॥१॥

वाम पुरान साज सब अठगठ मरल तिकोन खटोला रे।

हमहि दिहल करि कुटिल करमचंद मद मोल जिनु डोला रे ॥२॥

विपम बहार भारमदमान चलहि न पाउँ बटोरा रे।

मद विलद अमेरा दलवन पाइय दुग खच्योरा रे ॥३॥

काट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाउँ वयाऊ रे ।
जस जस चलिथ दूरि तस तस निज वाम न भट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम सग नहिं सवल नाउँ गाउँ कर भूला रे ।
तुलसिदाम भव नाम हरहुं अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

भावाथ — धरे मार्ग । राम राम राम राम बहुत चलो नही तो कहो ससार की बगार में पन गय । छटना क्या कठिन हो जायगा । (अत्यन्त कठिन इसलिए कि न तो ससार का कभी अन्त होगा और न सरी प्रवृत्ति का ही । जन्म मरण का चक्र सदा चलता ही रहगा । हा यदि तू राम राम जपता चला जायगा तो माया जय विषयदृष्टी शत्रु तुझ बगार में न पकड़ सकेंगे (क्याकि राम के दास पर उनकी माया नहीं चलती ।)

हमार कुटिन मन्त्र कमचन्द न बिना हो मोन का ऐसा निक्कमा डोला मर्य मड दिया ह कि जिसम बास पुराना लगा ह बतरतीब अटसट साज लग हुए ह जा सग हुमा ह और तिकोना ह (यहा दस तिकान खटाल से शरीर की उपमा दी गई ह । कम चन्दी ह उसन हम शरीररूपी डोला बनाकर मुफ्त दे दिया ह । हमारी तो इसे जान की इच्छा भी नहीं थी । अनक जन्म जन्मान्तर स जा विषय प्रवृत्ति चनी भा रही ह, वही इसम पुराना बाग ह । प्रकृति, महत्त्व और अहंकार य तीन पाटियाँ तथा सब, रज और तमागुण, य तीन पाय ह । यही इसमें अटसट साज लग ह । असन म, इसकी सारी ही सामग्री, ज्ञान-शक्ति से अणुमगुर ह । इसीसे इसे सग कहा गया ह । जागृति स्वप्न और सुषुप्ति य तीन अवस्थाएँ ह य ही इन खटाल के तीन कोन ह । अज्ञानियों के लिए तो यह डाला ही ह, व इसी शरार को सबसब मानकर विषय वासना का म आकष्य दूब हुए सुन भान रह ह पर नामिका की शक्ति में यह मन्त्र डोला ह यह स्वयं सब लिए भारदस्त हो रहा ह जन्म मरण का कारण बन रहा ह । अब इन शरीररूपी डाल के सबध में और भी स्पष्ट राशि स कहन ह) ॥२॥

इनका उठानवान कहार विषय ह (दा, चार या आठ कहार डोला उठाया करते हैं पर इन शरारत्मा डाल के उठानवान कहार पाँच ह और व ह जिह्वा नत्र नामिका अवस्थ और त्वचा अथवा इनके विषय रस रूप गन्ध शब्द और स्पर्श) य कहार कामरूपी मदिरा पीकर मत्तवान ह रह ह इसलिए एक-न पर खन हुए नहीं चन्ते कोई किधर पर रखता ह तो कोई किधर (नेत्र अपने विषय की ओर दीप्त ह तो कान अपने विषय का ओर नाक किधर का भासती ह तो जीभ शिष्टा ओर हो तरफ । इस मनमानी परजाना ध्यान ध्यान में डाला जब तक धन मुक्या और कहाँ न जाकर पक देगा) कमा नीच की ओर कमा ऊँच का ओर जनान म धन की ओर गन्ध लग रह है और इस मोचडान में भारी कष्ट हो रहा ह (निष्ठा कमा बुद्धि जामनामा की ओर दीप्ता ह और कमा सुशुभनामा का ओर किन्तु मा के संकल्प विनय के कारण पूरा कुछ ना रहा कन्ना जब बचारा बान में रम्य ह यका ला रहा ह इस ऐवागिनी में पटक रा राकर नि निजा रहा ह) ॥३॥

रात्रे म कष्ट विदे है (अनक दिवस-रात्रि उन्मियत ह) कहल दइ है लपन कना बने (मन का लपट) निज बडा है । टेर-टोर पर लपन है (गरीब-गना

के माग में अनेक घाटाएँ ह, मोह-ममता ही ककड़ ह, विपत्ते विषय वेलें ह घोर कर्मों की विकट भभट ही उलझत ह । इन सब कारणों से पग पग पर रुक जाना पड़ता ह । शरीर यात्रा निर्विघ्न हा नहीं सकती) । और ज्या-ज्या आगे बढ़ते जाते हैं, त्या त्या लक्ष्य-स्थान दूर होता चला जा रहा ह । (प्राणय यह ह कि आत्मानुभूति करने के लिए जा जो उपाय करते ह, माया बीच में पड़कर सारे किये कराये पर पानी फर देती ह । चाहते ह कि ग्रहानन्द का पीयूष पान करें, पर मिलता ह विषय सुखा का विषभरा प्याता । सुलभने का ज्यों-ज्या प्रयत्न करते ह त्या त्या घोर और घोर उलझते ही जात हैं ।) कोई ऐसा सगी साधो भी नहीं मिलता, जिसके साथ जस तम बड़ा ठक पहुँच जाये ॥४॥

भाग बड़ा कठिन ह साथ में राहु-खच भी नहीं (ऐसे सत्कर्म भी नहीं किए ह, कि जिनके भरोमे रास्ता तय कर लिया जाय) और जहा जाना ह, उस गाँव का नाम तक याद नहीं (कही जसे-तैसे चलते चलते किसी और ही गाँव में पहुँच जायें तो बड़ी आपत्त हो) इसलिये हे श्रीरामजी ! इस तुनसोदास के (जन्म मरणरूपी) ससार भय की आप ही कृपाकर दूर कीजिए ॥५॥

विनये—(१) राम कहत भाई रे—यहा राम कहत चनु तीन बार लिखा गया ह । समझ ह जीव का त्रिविध दुःख याने दैहिक दैविक और भीतिक दूर करने के लिए तीन बार यह उपदेश दिया गया हा ।

(२) विषम बगारा र—स्वर्गीय रामेश्वर भट्टजी ने इस चरण का अर्थ लिखते हुए इन्द्रिया के वषम्य और त्रासतान पर एक सुंदर छण्ड दिया है —

‘कान निरन्तर गान-तान सुनिबोही चाहत ।

आँखें चाहति रूप रनिदिन रहति सराहत ॥

नासा अंतर-सुगंध चाहति फनन की माला ।

त्वचा चाहति सुख तेज सग कोमलतन बाला ॥

जाकी रसना है चाहति रहति नित छाटे भीटे चरपरे ।

इन पंचन इहि सरपच सों भूषन की भिच्छुक करे ॥

(३) इस पद की भाषा जन साधारण की ह । कई अवधोभाषा के शब्द भाये हैं । मुहावरे भी प्रामोण्य हैं । इतना ऊँचा दाशनिक् सिद्धांत सबसाधारण के हृदय में बढाने के लिए ही सम्भवत गंगाइजी ने ऐसा किया है ।

१६०

सहज सनेही राम सा तैं नियो न सहज सनेह ।

तातैं भव भाजन भयो, सुनु अजहूँ सिखावन एह ॥१॥

ज्या मुख मुकुर विलाकिये, अरु चित न रहै अनुहारि ।

त्यो सेवतहुँ न आपन, ये मातु पिता, सुत, नारि ॥२॥

दैन्द्रे सुमन तिल दासिने अरु खरि परिहरि रम लेत ।

स्वारय हित भूतल नर मन मेचव, तनु सेत ॥३॥

वरि वीर्यो, अन्न वरतु है, कग्नि हित भीत अपार ।

कन्हूँ न कोउ रघुवार-सो नह निवाहनहार ॥४॥

जासो सब नातो फुरे, तासा न करी पहिचानि ।
 ताते बहुत समुझयो नही, कहा लाभ वह हानि ॥५॥
 साचो जायो झूठ को, झूठे कहें सांचो जानि ।
 को न गयो, को न जात है, को न जेहै करि हितहानि ॥६॥
 वेद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु होहुं बहुत ही टरि ।
 तुलसी प्रभु सांचो हित, तू हिय की आखिन हरि ॥७॥

भावार्थ—तू स्वभाव से ही स्नेह करनेवाले आरामचरित्रों से सहज स्नेह नहीं किया । इसीलिए तू सगार में बार-बार जन्म-मरण का योग्य हुआ है बार-बार जन्म और मरण का पात्र हुआ है । (फिर भी अभी कुछ बिगड़ा नहीं) अब भी तू मेरी यह सिखावन सुन ॥१॥

जैसे दण्ड में मुख का प्रतिबिम्ब दोटा पड़ता है पर वह मुलाक़ाति वस्तु में उससे अलग नहीं होता उसी प्रकार ये माता पिता पुत्र और स्त्री सेवा करते हुए भी वस्तुतः अपना नहीं है । तात्पर्य यह कि इनके साथ जो रिरते मान लिए गए हैं वे कदल स्वाय के हैं वास्तव में कोई भी किसी का सगा सम्बन्ध नहीं है ॥२॥

(अब तनिक इन स्वार्थियों की लीला तो देखो) जैसे, तिलो में फूट रख रखकर उन्हें सुगन्धमय बनाते हैं किन्तु तल निकाल लेने पर खली को फोफ समझकर फेंक देते हैं वैसे ही सम्बन्धियों की दशा है (अर्थात् जब तक किसी में सौन्दर्य रहता है धन कमाने की शक्ति रहती है बल पौरुष रहता है तब तक उसका सम्मान किया जाता है उस पर सबस्य निष्ठावर किया जाता है किन्तु रूप धन और बल नष्ट हो जाने पर उसे कोई पछता भी नहीं । इस पथिवी पर ऐसे ही स्वार्थी लोग भर पड़े हैं जिनका मन काला है और शरीर शुभ्र है ऊपर से तो बड़ सुन्दर दीखते हैं पर मन उनका महामलिन और धन कपट से भरा है ॥३॥

तूने कितने मित्र बनाये कितने बना रहा है और कि-
 कभी निकान में भी श्रीरघुनाथजी-सरीखा प्रेम को (एकरस) कि-
 मिलने का नहीं ॥४॥

जिसके कारण सारे सम्बन्ध सच्चे प्रतीत होने हैं उसके साथ तूने (प्राज्ञ तक) पहचान तक नहीं की । इसी कारण तू अभी तक यह नहीं समझ पाया कि क्या तो सच्चा लाभ है और क्या हानि ॥५॥

जिसने असत (जगत्) को सत्य और सत (परमात्मा) को मिथ्या मान रखा है, ऐसे अपने हित का नष्ट करनेवाले कौन है जो अपने सच्चे कल्याण का नाश करके (ससार से) नहीं चला गया कौन नहीं जा रहा है और कौन नहीं जायगा । (साराश ऐसे मूर्ख जीव सहसा को सख्या में मरते जीते रहते हैं उनका जन्म लेना ही व्यर्थ है) ॥६॥

वन् ने कहा है विद्वान् कहते हैं और मैं भी पुकार पुकारकर कह रहा हूँ कि तुमसे के स्वामी श्रीरघुनाथजी ही सच्चे हैं । तनिक तू अपने हृदय के मन्त्रों से देख तो भक्त करण में इस बात पर विचार तो कर ॥७॥

नाम—मैं भोजन—मसार में बार-बार जन्म मरण के योग्य । अनुहार—

सूरत । खरि = खलो, तेल निकाल लेने के बाद तिना में से जो फाक निकलता है ।
मेचक = काला । फुर्र = सच्चा साबित होता है ।

विशेष—(१) द-द सेत'—यह दृष्टान्त बड़ा ही उपयुक्त है । स्वार्थी मनुष्य वास्तव में, काम-वश सौंदर्य आदि का 'उपभाग' करत है, 'उपासना' नही । यदि परमेश्वर का विभूतिर्पा समझकर वे उनकी उपासना करें, उनका उपभाग करना छोड़ दें, तो यह संसार उसी क्षण स्वर्ग में परिणत हो जाय, मिथ्या जगत सत्यरूप हो जाय ।

(२) 'मन सेत —अथवा या कह सकने है कि—

बिपरस भरा कनकघट जैसे ।'

(३) 'नेह निवाहनिहार —प्रेम तो क्या अधिक प्रेम को भासक्ति एक क्षण में ही हो जाती है । बाह्य जगत का प्रेम ऐसा ही अस्थायी माना गया है । प्रेम तो भ्रान्तजगत् का ही, भगवदीय ही, सच्चा, सदा एकरस है ।

(४) साँचा जानि —आत्म को अनात्म और अनात्म को आत्म मानना ही भ्रमिदा है । कुछ-का-कुछ मान लेने से तो किसी वस्तु का सबषा ही न जानना कही अच्छा है ।

१६१

एक सनेही साचिला केवल कोसलपालु ।

प्रेम कनीठो राम-सा नहि दूसरो दयालु ॥१॥

तन-साथी सब स्वारथी, सुर व्यवहार-सुजान ।

भारत भ्रम भ्रमाय हित को रघुवीर समान ॥२॥

नाद निहुर, ममचर सीखी, सलिल मनेह न सूर ।

ससि मरोग दिनकर बडे, पयद प्रेम-पथ कूर ॥३॥

जाको मन जामो बँध्यो, ताको मुखदायक सोइ ।

सरल सील साहिब सदा, सीतापति सरिस न काइ ॥४॥

सुनि सेवा सही को करै परिहरै को दूषन देखि ।

केहि दिवान दिन दीन को, आदर अनुराग प्रियेखि ॥५॥

खग-सवरी पितु मातु ज्यो माने, कपि को किये मोन ।

केवट भँटजो भरत-ज्या, ऐसो को बहु पतित-पुनीत ॥६॥

देह भभागहि भाग को, को राखै सरन सभोत ।

वेद विदित, विरुदावली कपि कोविद गावत गीत ॥७॥

कैसेज पोंवर पातकी, जेहि लई गाम को मोट ।

गाँठी बाँध्यो दाम ता परन्या न फेरि सर-मोट ॥८॥

मन मनीन तलि किनरिणी होन मुनन जामु कृन-बाज ।

सो तुलसी कियो आपनो, रघुवीर गरीब निवाज ॥९॥

भावार्थ—केवल कोनेत्र धोरानव-द्रुग ही एक सच्च स्नेही है । प्रेम प्राणि का

जो जातिनाथ मा ताता १७ १ तीन ।

रमारथ परमारथ गता, वनि मुग्ध रिमाता यीन ॥१॥

धरम बरता भाग्यमति न पेया पायिता पुरात ।

तरतय त्रिपु १७ दगिय जग गरीर बिपु प्रात ॥२॥

वेदप्रतिनि मापन सये मुगिया दामन फन बारि ।

राम प्रेम त्रिपु जातिवा जेम मर भरिता बिपु बारि ॥३॥

नाता पय निरुता के, ताता रिपात बहु भाति ।

तुलसी तू मर कह जपु राम-नाम दिराति ॥४॥

भाषाय—अर तोष ! यदि श्रीजगन्नाथनाथ रामचन्द्रजी से दूने प्रेम महा विद्या, वास माता रही जाय तो स्वयं और परमाय तू कैसे सिद्ध कर सक्या ? (आर यह ह, कि बिना भगवत् प्रेम के न तो कोई यह सब बना सक्या है न परतोर हा) ॥१॥

पारों वल और पारा आश्रम न पम बचन पाविवा और पुराणा में ही निने पाय जाते हैं, उनसे अनुसार बसाम्बरम कोई नहीं करता । करती बही नहीं जिताई देती केवल भय ही दोगते ह । जग बिना प्राणों के शरीर, बने ही बिना धर्मावरण के ये शरीर भय ह ॥२॥

मुनते ह कि वडा में जितन भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध (ब्रह्मबाण्ड के) साधन हैं व सब अथ, धम काम और मोच के देनेवाते ह किन्तु बिना श्रीरामभक्ति के उा सबका मानना ऐसा ह, जैसे बिना पागे के तालाब और ननिया । (पारांच यह कि भगवत् प्रेम बिहीन समस्त वेद-अद्वान्त का ज्ञान निस्तार ह) ॥३॥

मुक्ति के या अनेक पय ह भाति भाति के उपाय ह किन्तु हे तुलसी ! तू तो मेरे कहते से, तिन रात केवल राम नाम का ही जप रिया कर (अथ साधना और मय मतान्तरों से तू कुछ भी प्रयोजन न रख) ॥४॥

विशेष—(१) 'नातो—से' यह सबक भाव के नाते से ही प्रयोजन हो सकता ह क्योंकि बिना इस सम्बन्ध के मुक्ति दुलभ ह । कहा भी ह—

सेवक सेव्य भाव बिनु, तरिय न भव उरवारि ।

[रामचरितमानस]

(२) 'करतव्य देखिए'—बबीरदासजी ने कहा ह —

साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार ।

बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भगार ॥

(३) 'रामप्रेम बारि'—यही सिद्धांतरूप से भक्ति ज्ञान से बड़ो मानो ह ।

केवल 'ज्ञान भक्ति के बिना निष्प्राण ह सानुराग ज्ञान ही मुक्ति का भुवन द्वार ह ।

(४) 'नाना पय निरवान के—'दाशनिका ने मोच की अनेक परिभाषाएँ लिखी

ह । जैसे—वस्तु का सावयव (सागोपाग) ज्ञान ही मोच ह शास्त्रा के अथ के अनु फूल निर्दिष्ट आचरण करना ही मोच ह, दश्य और अदृश्य के ज्ञान का जो अभाव ह, वही मोच ह महावाक्यों (तत्त्वमसि साह्य आदि) का विवरण ही मोच ह स्वात्मा

मन्द की शानमयी अवस्था ही मोक्ष है । 'अस्ति' और 'नास्ति' इस उभयात्मक ज्ञान के विच्छेद को ही मोक्ष कहते हैं , 'शब्दब्रह्म' के यथेष्ट ज्ञान का ही मोक्ष मानना चाहिए, निर्विकल्प समाधिगत भानन्द का मोक्ष मानना चाहिए । एकदशक सिद्धांत से सिद्ध ज्ञान भक्ति का विधान है । वही मोक्ष है , आत्मसमर्पण करने के अनन्तर भगवत्प्राप्ति के लिए जो परम विराहकुलता अनुभव हावी है, उसे ही मोक्ष कहना चाहिए, इत्यादि अनेक मत और 'याह्याएँ' मोक्ष का हैं ।

(५) 'तू मेरी रीति'—जब 'राम नाम-स्मरण' से मुक्ति की प्राप्ति संभव है, यही निष्कप निश्चलता है । मोसाइजी का यही सवताभद्र सिद्धांत है ।

१६३

अजहूँ आपने राम के करतव्य समुझत हित होइ ।
 कहें तू, कहें कोसलधनी, तोको कहाँ कहत सब कोइ ॥१॥
 रीक्षि निवाज्यो कर्वाहि तू, कव खीक्षि दई तोहि गारि ।
 दरपन बदन निहारिबै, सुबिचारि मान हिय हारि ॥२॥
 विगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगे न आबु ।
 'पाहि कृपामिधि' प्रेम सो कहें को न राम कियो साधु ॥३॥
 बाल्मीकि केवट-कथा, कपि भील भालु सनमान ।
 सुनि सनमुख जो न राम सो तिहि को उपदेसहि ॥ग्यान ॥४॥
 का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति रीति निरवाहु ।
 जासु बंधु बध्या व्याध ज्यो, सो सुनत सोहात काहु ॥५॥
 भजन विभीषन को कहा, फल कहा दियो रघुराज ।
 राम गरीब निवाज के बड़ी बाह बोल की लाज ॥६॥
 जपहि नाम रघुनाथ को, चरचा दूसरी न चालु ।
 सुमुख, सुखद, साहिब, सुधी, समरथ, कृपालु, नतपालु ॥७॥
 सजल नयन, गद्गद गिरा, गह्वर मन, पुलक सरोर ।
 गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भव भीर ॥८॥
 प्रभु कृतम्य सरवम्य हैं, परिहर पाछिली गलानि ।
 तुलसी तोमा राम सो कछु नई न जान-महिचानि ॥९॥

भाषा—अब भी, जो तू अपन (नीच कर्मों को) और श्रीरामचन्द्रजी के (कल्याणपूर्ण) करतव्यों को समझ ले, ता तेरा कल्याण हो सकता है । कहाँ तो तू और कहाँ कोशनेन्द्र महागज रामचन्द्र ! (पृथिवी-आकाश का अन्तर है) तुझे सब लोग क्या कहते हैं ? (तदीय अर्थात् यह जीव भागवत है । 'तू भगवान् का है, क्या यह सम्बन्ध सुलभ है ? ऐसा सम्बन्ध बड़े बड़े योगियों को भी प्राप्त नहीं होता पर तुझे यह सीमाव्यक्त सुलभ हो गया है) ॥१॥

प्रसन्न होकर रघुनाथजी न कब तुझ पर कृपा की और अप्रसन्न होकर कब ? और फिर (अपनी करतूतों के लिए हार मान से) विवेकरूपी दण्ड में देखने से यह प्रकट

विनय (१) 'ग्यान विराग द्विदारे'—भाय गादुरय मगि—

'श्रेय श्रुति भक्तिभुवस्य त विभो,

विम्वयति ये बयत घोषमप्यये ।

तेषामसौ वनगन्ध ऽय न्दित्या

तायद्यथा श्रुतनुपायपानिताम् ॥

[श्रीमद्भागवत

१६५

बलि जाउँ ही राम गुमाद । बीजै टूपा आपनी नाद ॥१॥

परमारथ सुरपुर साधन सत्र म्वारथ मुगद भलाई ।

कलि सकोप लोपी मुचाल, निज कठिन मुचाल चलाई ॥२॥

जह-जहँ पित चितयत हित तह तिन नय विपाद अधिकाई ।

रचि भावती भभरि भागहि, समुहाहि प्रमित अनभाई ॥३॥

आदि मगन मन, व्याधि विबल सन, वचन मलीन झुटाई ।

एतेहुँ पर तुमसो तुलसी बी, प्रभु, सकल सनह संगी ॥४॥

भाषाय—ह श्रीराम ! ह नाथ ! मैं अपने को आप पर छोड़ाकर करता हूँ ।

आप अपने स्वभाव से ही (दीन वत्सलता की दृष्टि से) मुझ पर कृपा कीजिए ॥१॥

परमाथ के, स्वयं के तथा स्वायं व धर्मार्थ व्यवहार के जो-जो गुण देनवाले और कल्याणकारक उपाय हैं उन सबकी रीतियों को कलिपुत्र ने बाध करके नुस्त कर दिया है और अपनी दुःखदायक कुचाला को चला दिया है (पुण्या और सत्कर्मों का लोप करके अशुभ छल कपट आदि का प्रचलन किया है ॥२॥

जहां जहां यह मन अपना हित देखता है तहां नित्य नूतन दुःख ही बढ़ते जाते हैं । रचि को अच्छी लगनवाली बातें दूर से ही डरकर भाग जाती हैं मनचाही एक भी बात पूरी नहीं होती, और मामने से ही चीजें घा जाती हैं, जो पसंद न हों । (भाव इष्ट साधन करते हुए अनिष्ट घेर सत है) ॥३॥

मन सकल्प विकल्प में लीन हो रहा है शरीर रोगों से व्याकुल है, और बाणी भूटी और मलिन हो रही है किंतु यह सब होते हुए भी हे नाथ ! आपके साथ इस तुलसीदास का सम्बन्ध और प्रेम ज्यों का त्यों बना हुआ है ॥४॥

विनय—(१) कलि चलाई—कबीर साहब क्या ही स्पष्ट शब्दों में कहते

हैं—

'डर लाग औ हासी आव जजब जमाना आया रे ।

धन दोलत से मास खाना बेस्था नाव नाचाया रे ॥

मुट्ठी अन्न साधु फोड़ मांग, कहैं नाज नहि दाय्या रे ।

क्या होय तहें सोता सोव यकता मूड पचाया रे ॥

होय जहा कहि त्याग तमाया, तनिक न नींद सताया रे ।

भग, तमाखु, सुलफा, गाँजा सूखा खब उड़ाया रे ॥

गुरु चरनामत-नेम न धार, मधुवा चाखन आया रे ।
उलटो चलन चली दुनिया में, ताते जिय धराराया रे ।
बहुत कबीर सुनो भाई साधो, का पीछे पछताया रे ॥'

(२) समुहार्हि भनभाई—स्वर्गीय भट्टजी ने इसका यह अर्थ किया है—वे समुहार्हि कहिये सामने इतनी चली आती ह कि जिनका ठिकाना नहीं । जिनका ठिकाना नहीं' कदाचित् 'भनभाई' का अर्थ किया गया ह । किन्तु 'भनभाई', 'रुचि भावती' का उलटा शब्द ह जिसका अर्थ 'नापसन्द ह ।

(३) सगाई—सेवा-सेवक भाव का सम्बन्ध ।

गन्धार्थ—लोपी = मेट डालो । भावती = मनोवाञ्छित । भमरि = डरकर ।
समुहार्हि = सामने आ जातो है । भनभाई = बुरी, अनिष्टकारिणी । भाधि = घिता सकल्प-विकल्प । व्याधि = रोग ।

१६६

काहे को फिरत मन करत वहु जतन,
मिटे न दुख विमुख रघुकुल-वीर ।
कीजै जो कोटि उपाइ, त्रिविध ताप न जाइ,
कह्यो जो भुज उठाय मुनिवर कीर ॥१॥
सहस्र टेव बिसारि तुही धौं देखु विचारि,
मिले न मयत वारि घृत विनु छीर ।
समुजि तजहि भ्रम, भजहि पद-जुगम,
सेवत सुगम गुन गहन गंभीर ॥२॥
आगम निगम ग्रन्थ, रिपि मुनि सुर सत,
सबही को एक मत, सुनु मति धीर ।
तुलसिदास प्रभु विनु, पियास भरे पसु,
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर ॥३॥

भावार्थ—भरे मन ! तू किसलिए बहुत-सारे उपाय करता फिरता ह ? (तू मने ही अनेक यत्न किया कर, पर) या तेरे दुःख तब तक दूर हाने के नहीं, जब तक तू रघु या शिरामणि श्रीरामचन्द्रजी से विमुख ह । भगवद्विमुख कोई करोड़ों उपाय क्यों करे, परन्तु उसके तीनों ताप (दहिक दहिक भौर भौतिक) नष्ट नहीं हो सकते, यह बात मुनिर्घोष शुक्देवजी ने भुजा उठाकर कहा ह ॥१॥

अपने सहज स्वभाव को भूलकर अथवा चंचलता छाड़कर एकाग्रचित्त से तू ही विचारकर देन सो, कि कहा पाना के मयन से, बिना दूध के, घी मिल सकता ह ? (इसी प्रकार विषया में अनुरक्त रहकर कोई ब्रह्मानन्द का पीयूष पान नहीं कर सकता यह सुना तो विरक्ति भौर विवेक से हो प्राप्त होगी ।) इस बात को समझकर तू भ्रम को छाड़ दे (जो तू शरीर ही को आत्मा मान रहा ह इस मिथ्या पान को त्याग दे) भौर श्रीरामचन्द्रजी के उन युगल चरणा का सदन कर, जो सेवा से सुलभ हैं, भौर सबुद्धों के गम्भीर

वन है भर्षति जिन चरणा की सेवा करना स विनय वैराग्य, चमत्ता, शक्ति प्राप्ति
सदगुण घनावास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

बुद्धि को स्थिर करके शास्त्रा वेत्त अथ यथा तथा ऋषिणा मुनिना, देवतामा
भोर सतों का जो एक निश्चिन सिद्धान्त है उसे ध्यान से तू सुन (और यह सिद्धान्त यही
ह कि विषयासक्ति को छात्रवर भगवद्भजन करना चाहिए) । हे तुनगीदाग ! यद्यपि
गंगा-तट निकट ह तो भी बिना स्वामी य पशु प्यात्रा हा मर जाता है (इसी प्रकार
यद्यपि भगवत्प्राप्ति के सार साधन विद्यमान ह तव्यापि बिना भगवन्-प्राप्ति के यह जीव
शान्ति-साम करने के लिए तड़प तड़पकर मर रहा ह) ॥३॥

गन्दाध—कीर=शुद्धदेव से अभिप्राय ह । टव=भ्रातृ । जुगम = (दाम) दोना ।
आगम = शास्त्र । नियम = षड ।

विशेष—(१) कह्यो कीर—प्राग्भूमागत भ मुनिपण्ड परमहंस शुद्धदेवजी
न कहा ह—

घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवाजिता ।

वासुदेववरा मर्त्यास्ते कृतार्था न स'य ॥'

(२) सहज टव—जसे—

हरप विषाद ध्यान अध्याना । जीवधम अहमिति अभिमाना ॥'

१६७

नाहिंन चरन रति ताहि तैं सहो बिपति

कहन स्मृति सकल मुनि मतिधीर ।

वसै जा ससि उछल सुधा-स्वादित कुन्ग

ताहि धयो भ्रम निरखि रविकर नीर ॥१॥

सुनिय नाना पुरान, मिटत नाहि अज्ञान

पढिय न समुझिय जिमि खग कीर ।

वहत बिनहि पास सेमर सुमन ग्रास,

करत चरत तइ फल बिनु हीर ॥२॥

कछु न साधन सिधि जाना न निगम विधि,

नहि जप तप बस मन न समीर ।

तुलसिदास भरोम परम करुना कोस,

प्रभु हरिहे विषम भवभीर ॥३॥

भावाध—मरा प्रम श्रीरघुनाथजी के चरणां य नहीं ह इसीसे नाना प्रकार
दुःख य भोग रहा है (मन ही नहीं) वदा और समस्त बुद्धिमान मुनिना उ भा यहो कहा
॥ क्योंकि जो हिरण्य चंद्रमा की गोद में अमृत का स्वाद खा रहा ह उसे भला मगत्पुष्पा
के जल य भ्रम क्यों होगा ? (जिस जीव को ब्रह्मानन्द के रस का चस्का लग गया उसे
ससारी विषय धोले में नहीं डाल सकने । य विषया में पडा हुआ है इसलिए दुःख भोग
रहा है ! जो श्रीहरि के चरणा का उपासक होता तो य विपत्तियाँ ही क्यों घाती) ॥१॥

जैसे तोता पढ़ता या रटता तो सब कुछ ह, पर समझता कुछ भी नहीं, वैसे ही अनेक पुराणों के सुनने मात्र से मोह दूर नहीं हाता । (मनानी) तोता बिना फंटे के स्वयं बंध जाता ह, घाप ही चौंगली पकड़कर लटक रहता है, वह सेमर के फूँ की आशा करता ह, (देखता ह, कि इसका फूल इतना सुंदर ह तो फन कितना मीठा न होगा, पर) ज्योंही उसमें चाब मारता ह, उसे बिना गूँ का सारहीन फन मिलता ह, यर्थात् रुई के सिवा उसमें खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता तब पछताना है (इसी प्रकार मनुष्य विषयरूपी चौंगली पकड़कर आप ही बंधा रहता है स्त्री, पुत्र, धन आदि पर मोहित होकर उनका संग्रह करने में लगा रहता ह । पर उनसे विछुड़ते ही दुखी हो जाता ह ॥२॥

न तो मेरे पास कोई साधन है, और न कोई सिद्धि ही प्राप्त हुई ह । मुझे वैदिक विधिया भी ज्ञात नहीं । जप-तप भी करना नहीं जानता, और न प्राणायाम से मन ही बश में किया ह । इस तुलसीदास को तो वरुणा के भाण्डार भगवान् रामचन्द्रजी का ही एकमात्र भरोसा ह । वही इसकी भयानक सासारिक विपत्ति को दूर करेंगे, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करेंगे ॥३॥

गद्दाय—उज्जय=गोद । कुरग=हिरण । रविकरनोर=मृगतृष्णा का जल । कीर=तोता । वषत=बंध जाता ह । पास=(पाश) जान । चरत=चाब मारता ह । हीर=गूँ ।

विनय—(१) सुनिय अग्यान—कबीर साहब भी कहने ह—

पढे - गुने सीखे सुने बिटी न ससय - सुल ।

बह बबीर बासों बहै, ये ही दुख का मूल ॥ -

साक्षी बहै गहै नहीं चाल चलती नहिं जाय ।

सलिल मोह - नदिया बहै पाँव नहीं ठहराय ॥'

(२) 'सेमर हीर—तोते को ऐसी ही चेतावनी कबीर साहब भी दे रहे हैं—

'सेमर सुबन बेगि तजु, धनी बिगुचन पाँव ।

ऐसा सेमर जो सेव, हिरदय नाही आँव ॥'

(३) 'बिधि'—शौच, दान भगानुष्ठान पुरश्चरख यज्ञ-मंत्र, पचाग्नि, प्राणा याम, समाधि साधना आदि ।

(४) 'करुना'—श्रीवज्रनाथजी ने 'करुणा' की परिभाषा इस प्रकार की ह—

सेवक-दुख ते दुषित ह्वै, स्वामि बिबल ह्वै जाय ।

दुख हरि गुण साज तुरस करुना गुन सो जाय ॥'

१८९५

मन पछितै अवसर बीते ।

दुलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते ॥१॥

सहसबाहु दमवदा आदि नृप, वचे न वान बली ते ।

हम हम करि धन-धाम सेवारे अन्त चले उठि रीते ॥२॥

सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।

अन्तहुँ तोहि तजै पामर । तू न तजै अबहो खे ॥३॥

वन हैं, अर्थात् जिन चरणों की सेवा करने से विनय, वरामय, चमता, शांति प्रादि सदगुण मनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

बुद्धि की स्थिर करके शास्त्रों, वेदों अथ ग्रन्थों, तथा ऋषियों, मुनियों, देवताओं और सत्तों का जो एक निश्चित सिद्धान्त है उसे ध्यान से तू सुन (और वह सिद्धान्त यही है, कि विषयासक्ति को छोड़कर भगवद्भजन करना चाहिये) । हे तुलसीदास ! यद्यपि गंगा-तट निकट है, तो भी बिना स्वामी के पशु प्यावा ही मर जाता है (इसी प्रकार यद्यपि भगवत्प्राप्ति के सारे साधन विद्यमान हैं तथापि बिना भगवन्-रूपा के यह जीव शान्ति-लाभ करने के लिए तड़प तड़पकर मर रहा है) ॥३॥

भावार्थ—कीर=शुकदेव से अभिप्राय है । देव=मादत । जुगम = (युग) दाना । भागम = शास्त्र । नियम = वेद ।

विशेष—(१) 'कह्यो कीर—धामद्भागवत में मुनिश्रेष्ठ परमहंस शुकदेवजी ने कहा है—

‘घोरे कलियुगे प्राप्ते सबधमविवर्जिता ।

धामुदेवपरा मर्त्यास्ते कृनार्या न सशय ॥’

(२) ‘सहज देव’—जैसे—

‘हरप बिषाय ग्यान अग्याना । जीवधम अहमिति अभिमाना ॥’

११७

नाहिंन चरन रति ताहि तैं सहो बिपति

कहत स्रुति सक्त्त मुनि मतिधीर ।

वसे जो ससि उछग सुधा स्वादिन कुरग,

ताहि क्या भ्रम निरखि रबिकर कीर ॥१॥

सुनिय नाना पुरान, भिटत नाहिं अज्ञान

पडिय न समुझिय जिमि खग कीर ।

वसत बिर्ताहि पास सेमर सुमन प्राप्त,

करत चरत तेइ फल विनु हीर ॥२॥

कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम बिधि,

नहिं जप तप बस मन न समीर ।

तुलसिदास भरोस परम कएना कोस,

प्रभु हरिहैं विषम भवभीर ॥३॥

भावार्थ—मेरा प्रेम श्रीरघुनाथजी के चरणा में नहीं है, इसीसे नाना प्रकार दुःख में भोग रहा हूँ, (मने ही नहीं) वेदा और समस्त बुद्धिमान मुनिषा ने भी यही कहा है क्योंकि जो हिरण्यचद्रमा की गोद में धमल का स्वाद ले रहा है उसे भला मगतप्राणा के जल में भ्रम क्यों होगा ? (जिस जीव को ब्रह्मानन्द के रस का चसका लग गया, उसे ससारी विषय घासे में नहीं डाल सकते । मैं विषया में पड़ा हुआ हूँ, इसीलिए दुःख भोग रहा हूँ । जो श्रीहरि के चरणा का उपासक होता तो ये विपत्तियाँ ही क्या पाती) ॥१॥

जैसे तोता पढ़ता या रटता तो सब कुछ ह, पर समझता कुछ भी नहीं, वैसे ही अनेक पुराणों के सुनने मात्र से मोह दूर नहीं होता । (भजानों) तोता बिना फंदे के स्वयं बंध जाता ह, घाप ही चोंगली पकड़कर लटक रहता ह वह सेमर के फूल की आशा करता है, (देखता ह, कि इसका फूल इतना सुंदर ह, तो फल कितना मीठा न होगा, पर) ज्योंही उसमें चोंच मारता ह, उसे बिना गूल का, सारहीन, फल मिलता ह, अर्थात् रुई के सिवा उसमें खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता, तब पछताता ह (इसी प्रकार मनुष्य विषयरूपी चोंगली पकड़कर आप ही बंधा रहता ह स्त्री, पुत्र, धन आदि पर माहित होकर उनका संग्रह करने में लगा रहता ह । पर उनसे विछुड़ते ही दुखी हो जाता ॥ १२॥

न तो मेरे पास कोई साधन है, और न कोई मित्र ही प्राप्त हुई ह । मुझे वैदिक विधियाँ भी नात नहीं । जप-तप भी करना नहीं जानता, और न प्राणायाम से मन ही बरा में किया ह । इस तुलसीदास को तो वरुणा के भाण्डार भगवान रामचन्द्रजी का ही एकमात्र भरोसा ह । वही इसकी भयानक सासारिक विपत्ति को दूर करेंगे, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करेंगे ॥ ३॥

गव्यार्थ—उछग=गोद । कुरग=हिरण । रविकरनीर=मृगतुण्ड का जल । कीर=तोता । वसत=बंध जाता ह । पास=(पाश) जाल । चरत=चाब मारता है । हीर=गूदा ।

विशेष—(१) 'सुनिय अग्यान'—कबीर साहब भी कहते ह—

'पढे - गुने, सीखे - सुने मिटी न ससय सुल ।
बह कबीर कासो कहै, ये ही दुख का भूल ॥ -
सासो बहै गहै नहीं चाल खली नहि जाय ।
सलिस मोह नदिया बहे, पाव नहीं ठहराय ॥'

(२) 'सेमर हीर—तोते को ऐसी ही चेतावनी कबीर साहब भी दे रहे हैं—
सेमर मुखन बेनि सजु, धनी त्रिगुवन पाँख ।
ऐसा सेमर जो सेव, हिरवय नाही आँख ॥'

(३) 'विधि—शौच, दान यनानुष्ठान पुरश्चरण, यन मंत्र, पचामि, प्राणा याम, समाधि, साधना आदि ।

(४) करना—श्रीब्रजनाथजी ने 'कहणा' का परिभाषा इस प्रकार की ह—
सेवक दुख ते दुखित हूँ, स्वाभि विरल हूँ जाय ।
दुख हरि मुख साज तुरत, करना गुन सो आय ॥'

१६५

मन पछितेहै अवसर बीते ।

दुलम देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते ॥१॥

सहसबाहु दसवदन आदि नष वचेन बाल बली ते ।

हम हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त खलि उठि रीते ॥२॥

सुत धनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।

अन्तहुँ तोहि तजै पामर । त न तजै अन्तही ते ॥३॥

अथ नाथहि अनुरागु, जागु जह त्यागु दुरासा जी ते ।

बुझै न काम अग्निनि तुलसी कहै, विषय भोग बहु धी ते ॥४॥

भावार्थ—धरे ! अवसर बीत जाने पर तेरे मन को पछताना पड़ेगा, इसलिए कठिनाता से मिलनेवाला मनुष्य शरीर पाकर भगवच्चरणारविन्दों का भजन कम बचन और हृदय से तू कर (अब भी कुछ नहीं बिगड़ा) ॥१॥

सहस्रबाहु और राखण सरोखे (महाप्रतापी) राजा भी बलवान काल से नहीं बचे उन्हें भी काल का घास बनना पड़ा । जो 'हम, हम' करते हुए घन और घाम सँभालने में लगे रहे व भी अन्त समय यहाँ से खाती हाथ ही चले गये (एक कौड़ी भी उनके साथ न गई) ॥२॥

पुन स्त्री आदि का मतलबी पार समझ इन सबसे तू प्रेम न बढ़ा, क्योंकि तेरे ये सदा के साथी नहीं ह, न पहले ये और न आगे रहेंगे । रे मूख ! जब ये सब के सब तुझे अन्त समय छोड़ ही देंगे तो तू इन्हें अभी से छोड़ क्या नहीं देता ? (जैसे, ये तेरे साथी न बनेंगे, वैसे तू भी इनका साथी न बन) ॥३॥

रे मूख ! (अविद्यारूपी निद्रा से) जाग जा, अपने स्वामी (श्रीरघुनाथजी) से प्रेम कर और विषयो से सुख पाने की दुराशा को मन से छोड़ दे । हे तुलसीदास ! कहीं कामनारूपी अग्नि बहुत-सा विषय-रूपा धी डालने से बुझती है ? (वह तो और भी प्रज्वलित होगी । शानिरूपी जल से ही बुझती है) ॥४॥

गद्यार्थ—ही त = हृदय से । रोते = खाती हाथ ।

विशेष—(१) हम हम रोते कबीर साहब सुनिए क्या चेतावनी देते हैं—

हम का जोड़ाव चढ़रिया चलती बिरिया ।

प्रातः राम जब निकसन लागे उत्तल गइ बोट नन पुतरिया ॥

भीतर से जब बाहर लागे छूट गइ सब महल अतरिया ॥

चार जने मिनि छाट उठाइन रोवत ल चले डगर-डगरिया ॥

बहुत कबीर सुना भाई साथी सग चली वह सुखी सकरिया ॥

तथा—

पाँचों नौबत बाजतीं, होत छतीसों राग ।

सो मन्दिर खाली पडा बटन लागे बाग ॥

भात-पात जोपा छडे, सबी बजाव गाल ।

मोठा महल से ले चला ऐसा कान कराल ॥'

(२) मुक्त ब्रजिनि "स्वारयण —ऋषि वामात्रि का उपाहरण ह । देवपि मारद के कहने पर जय उठान अपन कुम्भी जना में पूछा कि तुम लोग मरे पुण्य-पाप के साधा हा या नहा तो उनका उत्तर था हमें तुम्हारे पुण्य-पाप से क्या मतलब ? हम तो सानन्दन के साधा हैं । हम क्या जानें कि तुम हमारे लिए कहीं से किस प्रकार क्या क्या साज हो ? वामात्रि के हृदय में तत्काल ज्ञान का उदय हो गया ।

(३) बुझै न काम पात —गिरा भाव-गारय—

न तातु काम कामानामुपभागेन नाम्नि ।

हरिया हृदयमेंव भ्रम एवाभिव्यथन ॥'

वाहे वो फिरत मूढ मन धायो ।

तजि हरिचरन मगोज सुधा रस, रविकर जल लय लायो ॥१॥
 त्रिजग, देव नर, असुर अपर जग जोनि मक्कल भ्रमि आया ।
 गृह वनिता, सुन, वधु भये बहु, मातु पिता जिह जाया ॥२॥
 जाते निरय निकाय निरतर, सोइ इह तोहि मिखायो ।
 तुव हित होइ कटे भव-वचन सो मगु तोहि न बतायो ॥३॥
 अजहूँ विषय कहूँ जतन करत, जद्यपि बहु विवि डहूँ कायो ।
 पावक-काम भोग घन तैं सठ, केने परत बुझाया ॥४॥
 विषयहीन दुग मिले विपति अति, सुख सपनेहुँ नहि पायो ।
 उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यो घन दुखप्रद स्मृति गायो ॥५॥
 छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु वृथा गँवाया ।
 तुलमिदास, हरि भजहि आस तजि काल उरग जग खायो ॥६॥

भावाथ—रे मूढ मन ! जिसलिए इधर उधर दौडा दौडा किन्ता ह ? श्रीहरि-चरणारवि-का का समतल रम छोड़कर ममतण्या के जल में क्या ली लपा रहा ह ? भाव यह कि ब्रह्मानन्द को छोड़कर ससार के भूते विषयों की ओर मन मन को क्यों दौग रहा है ॥१॥

पशु पक्षी, देवता, मनुष्य राक्षस एवं अनेक सासारिक यानियों में तू भटक आया ह जहा जहा तू गया वहाँ बहुत सारे घर, स्त्री, पुत्र भाई तथा तुझे जन्म देनेवाले माता-पिता हा चुके ह (न जाने किननी बार तू कितनों से रिश्ता जोड़ चुका ह) ॥२॥

जिस काम के करने से तुझे सदा अनेक नरका में जाना पड़ता ह लागे ने तुझे वही विषय भागों का पाठ सिखाया । वह भाग नहीं मुझा था जिस पर चले से तेरा सासारिक बण्ट कट जाये जन्म मरण से तू छूट जाये ॥३॥

इस प्रकार कई तरह से तू धसा जा चुका ह, फिर भी आज तक तू विषय भागों के ही लिए उपाय कर रहा है । रे दुष्ट ! (तनिक विचार तो कर) कामरूपी अग्नि में भागरूपी धी डालने से वह कैसे शान्त होगी ? (जितना ही विषय भोग तू करेगा, उतनी ही कामाग्नि और और भड़केगी, वह तो विरक्षितरूपी जल से ही बुझेगा, अन्यथा नहीं) ॥४॥

फिर जब तुझे विषयों की प्राप्ति नहीं हुई, तब वडा ही दुःख हुआ स्वप्न में भी सुख नहीं मिला । इसलिये वेला ने विषयरूपी सम्भ्रति का दानों ही प्रकार से प्रेत की लाग के समान दुःखद बतलाया ह । (जैसे वन में यात्री भ्रम की भाग देकर भाग भूल जाने ह, और भ्रम में पडकर उनसे न भागे बटा जाता ह न पीछे का ही पीछे बतता है, उसी प्रकार विषयों के मिथ्या प्रलाभन में पडकर, मनुष्य लाख और परलोक दानों से ही हाथ धा बठता ह । न तो उसे थोड़ा विषय-साधन मिलते ह और न उनका भार से धरति ही हावी ह) ॥५॥

तथा जीवन क्षण चण म क्षीण होता जा रहा ह । इस दुर्लभ शरीर को तूने व्यर्थ

ही गेवा लिया । अतएव, हे तुनसोदास ! तू ससारी सुगा की आशा छोड़कर केवन श्री हरि का भजन कर । साधधान ! कालम्पी साँप ससार की ग्रमे जा रहा ह (त जाने, कय किस घड़ी तू भी कान का घास बन जाय) ॥६॥

गन्दाथ—रविवरजल=मगतृष्णा का पानी बेरा भ्रम । त्रिजग=(तिमक) पशु पक्षी, सप आदि । निरय=नरक । निकाय=समूह । ढहनायो=छना गया । प्रेत पावक=लुक की चमक जिमे लोग भूत की घ्राण कहा करते ह । यह जगला में प्राण दिखाई दतो ह, और चमककर तुरंत बुझ जाती ह ।

विशेष—(१) तुव बतायो—जिन्होंने अपनी सतति को बचपन से ही परमाथ का उपदेश दिया, ऐसे माता पिता इन गिने हो मिलते ह । कहाँ मिलती ह ध्रुव की माता सुनीति और महारानी मन्नालसा-जसी माताए ?

(२) पावक बुझायो—जय तक विषयो में आसक्ति रहेगी, तब तक वे कभी शान्त होने के नही । अनासक्त कम बन्धन का कारण नही ह, परन्तु अनासक्ति अत्यन्त कठिन ह । अत वराम्य और अम्यास दोनों आवश्यक ह । यह मन अम्यास और वराम्य से ही बश में हो सकता ह । गीता में कहा ह—

‘असक्त्य महाबाहो, मनो दुर्निग्रह चल ।

अभ्यासेन तु को तेय, वराम्येण च गृह्यते ॥’

(३) छिन छिन तनु —

पानी बेरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।

देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥’

[कबीर

२००

तावे सो पीठि मनहुँ तनु पायो ।

नीच मोक्ष जानत न सीस पर ईस निपट बिसरायो ॥१॥

अवनि रवनि, धन धाम सुहृद सुत, को न इहहि अपनायो ।

काके भये, गये सँग काके, सब सनेह छल छायो ॥२॥

जिह भूपनि जग जीति बाधि जम अपनी बाह बसायो ।

तेऊ काल कलेऊ कीहे तू गिनती कब आयो ॥३॥

देखु विचारि सार का साचो, कहा निगम निजु गायो ।

भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तहि, जेहि महेस मन लायो ॥४॥

भावाथ—र जीव । (क्या कहना !) मानो तूने तबि से महा हम्रा शरीर पाया

ह । तभी तो तू इस पानी क बुलबुले के समान क्षणभंगुर शरीर को प्रजर प्रमर मान कर विषय भागो में लीन हो रहा ह । ह नाच ! तू यह नही जानता, कि मोक्ष तरे तिर पर नाच रही ह ? तूने परमात्मा को बिलकुल ही भुला लिया (शरीर का भरण-पोषण ही जीवन का सर्वस्व समझ लिया ।) ॥१॥

पयिवी स्त्री घन मकान मित्र और पुत्र को किसने अपना नही माना ? किन्तु

(तनिक विचार तो कर) ये किसके हुए ? किसके साथ (मरते समय) गये ? इन सबके प्रेम में केवल कपट भरा हुआ है ॥२॥

जिन राजानों ने सारे ससार को जीतकर, दिग्विजय कर कात को भी चढ़ाकर अपने अधीन कर लिया था, उन्हें भी जब एक क्षिण मृत्यु ने अपना घास बना लिया, तब तेरी तो गिनती ही क्या है ? ॥३॥

विचारपूर्वक (गान-श्रुति से) देख सच्चा सार क्या है ? और, वेदा ने निश्चय रूप से क्या कहा है ? हे तुमसी ! अब भी तू श्रीराम का समनवर नहीं भजता है ।

शांदाय — मोक्ष = मोक्ष । रवनि = (रमणी) स्त्री । कलेऊ = कलेवा भोजन । निजु = सिद्धांतरूप से । लायो = लगाया ।

विशेष—(१) नीच सोस पर'—कबीर साहब की इस पर साखी है—

'माली आवत देखिकै, कलिया कर पुकार ।

फूली-फूली चुनि लइ, काल्हि हमारी बार ॥

(२) 'गये सँघ काक'—

'इक दिन ऐसा होइगा, कोउ काहू का माहि ।

पर की नारी की कहै तन की नारी जाहि ॥'

(३) जेहि महेस मन लायो — शिवजी पावती सं कहते हैं—

'अह जपामि दयेशि, रामनामाक्षरद्वयम ।

श्रीरामस्य स्यटपस्य ध्यान कृत्वा हविस्थले ॥

२०१

लाभ कहा मानुष-तनु पाये ।

काय वचन-मन सपनेहुँ कवहुँक घटत न काज पराये ॥१॥

जो सुख सुरपुर नरक, गह-वन आवत निहि बुलाये ।

तेहि सुख कहै यहू जतन करत मन समुत नहि समुताये ॥२॥

पर-द्वारा पर-द्रोह, मोहवस किये मूढ़, मन भाये ।

गरभदास दुखरासि जातना तीव्र विपति विसराये ॥३॥

भय, निद्रा, मेथुन, अहार सबके समान जग जाये ।

सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥४॥

गई न निज पर-बुद्धि सुद ह्वै रहे न राम लय लाये ।

तुलसिदाम यह अवसर बीते का पुनिके पड़िताये ॥५॥

भावाय—मनुष्य शरीर पाने से लाभ ही क्या हुआ यदि वह सभी स्वप्न में भी मन, वचन और कर्म में पराये काम नहीं प्राया, उसमें कोई परोपकार नहीं बना ॥१॥

विषय-मग्ध जो मुख विना ही बुलाये, आपस आप स्वयं नरक पर और वन में प्राप्त हो जाता है, उस मुख के लिए रे मन ! तू आक प्रकार के उपाय कर रहा है ! समझाने पर भी नहीं समझता ॥२॥

धरे मूढ़ ! तूने अज्ञानवश पराई स्त्री के लिए और दूसरों से बर बाँचने के लिए

जो मन म आया सो बिया (विवेक से काम नहीं लिया) ! पूबजम में तूने गम में जो महान दुःख भोगे उनका दारुण कष्ट भूल गया ? (यह तूही सांचा कि इन मनमाने कुकर्मों से फिर वहां गमवास क दुःख भोगने पड़ेगा) उनके कारण गम में माना पडा ॥३॥

या तो जिस किसी ने ससार में जन्म लिया, उसमें भय, नीद, काम, आहार आदि एक सरीखे हो पाये जाते हैं किंतु देवतामा को भी दुलभ मनुष्य शरीर पाकर तूने भगवान का भजन नहीं किया और मद और ग्रहकार में उसे खो दिया ॥४॥

जिहाने अपने और पराय का भेद नहीं छाडा और निमल धन्त करण से श्री रघुनाथजी से प्रेम नहीं जोडा उन्हें, हे तुलसीदास ! ऐसा सुभवगर निज जाने पर फिर पछताने से क्या मिलेगा ?

गद्याय — काय = (काया) शरीर । घटत = करता है, खाता है । निज पर बुद्धि = अपने और पराये का भेद भाव ।

विशेष—(१) 'घटत न काज पराय — पिछले कई पदों में वराम्य का प्रतिपादन किया गया है । कच्चे दिलवाला पर वराम्य का रंग बढी जल्दी चढ जाता है और उतर भी तुरन्त जाता है । ये जन अज्ञानवश ससार का ठीक ठीक रहस्य नहीं समझ पाने उसे दूर से ही देखकर डर जाते हैं और बायर की तरह पूछ दबाकर भागन हैं । वराम्य का प्राय मही भ्रम किया जाता है कि ससारो पदार्थों को जिस रूप में वे हैं उसी रूप में, छोड़ देना चाहिए भले ही उनमें आसक्ति बनी रहे । इस पद में मोसाइजी स्वार्थ से विरक्त कराकर जीव को पुन परोपकार में लोक सग्रह के कर्मों में प्रवृत्त करा रहे हैं । वे विरक्त का अर्थ 'बीर' करत हैं, 'कायर नहीं । परोपकार अर्थात् लोकोपकार के लिए स्वाय त्याग की बडी आवश्यकता है, और इसी कारण विषया की ओर से घणा कराकर विरक्ति का उपदेश किया गया है । यह पद गीता के कमयोग की ओर हठात मन को आकृष्ट करता है ।

(२) भय जाये — भाव उत्पन्न देखिए—

'आहारनिद्राभयमैशुनञ्च सामाग्रमेतत्पशुभिर्निराणाम ।'

[भक्त हरि

(३) 'यह अवसर पक्षिताये — सत्य है,

आछे दिन पाछे गये हरि से किया न हेत ।

अब पछतावा क्या करे, चिडिया छुम गई खेत ॥'

[कबीरदास

काज कहा नरतनु घरि सारयो ।

पर उपकार सार स्रुति का जो छोखेहुँ न विचारयो ॥१॥

हैं तमूल भय मूल सो क फल, भवतरु टरे न टारयो ।

रामभजन तीछन कूठार लै सो नहि काटि निवारयो ॥२॥

ससय सिन्धु नाम बौहिन भजि निज आतमा न तारयो ।

जनम अनेक विवकहीन बहुजोनि भ्रमत नहि हारया ॥३॥

देखि आन की सहज सम्पदा, द्वय अनल मन जारयो ।
सम, दम, दया, दीन-पालन, सीतन हिय हरि न सँभार्यो ॥४॥
प्रभु गुर पिता सखा रघुपति ते मन प्रेम वचन निमारयो ।
तुलसिदास यहि आन सरन राखिहि जेहि गोघ उधारयो ॥५॥

भावाय—मनुष्य शरीर धारण करके तूने आविर किया क्या ? जो परास्फार वेदों का सार है उस पर तूने नूनकर भा विचार नहीं किया ॥१॥

यह ससार मानो एक वृक्ष है । इसका अन्त भेदबुद्धि का इसकी जड़ है, भय काटे है और कुछ इसके फल है । यह वृक्ष हटान पर भी नहीं हटता । क्याकि जब तक इसकी दृष्टिस्वीय जड़ बट नहीं जाती तब तक इसका हटाना सम्भव नहीं । यह सा केवल रामनामस्वीय तेज कुहाड़ी से ही कटता है । परन्तु तूने ऐसा किया नहीं ॥२॥

सशयस्वीय समुद्र से पार हो जाने के लिए राम-नाम नौका है, सा उसका सेवन कर, भजन कर, तूने अपनी आत्मा को (अविद्या से) नहीं तारा । अनेक जन्म तन अज्ञान वश अनेक यानियों में घूमता हुआ भा अब तक तू नहीं बचा ॥३॥

दूसरा की सहज सम्पत्ति दत्तकर ईर्ष्याहीन प्राय में मन का जवाता रहा । शम दम, दया और दीन का पालन करते हुए हृदय को शांत कर तूने भगवत्स्वभाव नहीं की ॥४॥

तूने मन से, कम से, और वचन से उन धारधुनायका का भुजा दिया जो तेरे (सच्चे) स्वामी हैं, गुरु है पिता है और मित्र है । हे तुलसीदास ! इनकी सा आशा फिर भी है, कि जिसने जगत्प्रभु गोघ का तार दिया, वही तुझे अपना शरण में रखेंगे ॥५॥

गद्याय—सारथा=पूरा किया, बनाया । बाहिर=नीका ।

विनय—(१) पर उपकार सारस्वति का—'याम भगवान् कर्तुं ह—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।

परोपकार पुण्याय पापाय परपोदनम् ॥'

(२) 'भवतश्च—नीचे के पद्य में 'ससार-वृक्ष का सायापाग वणन आया है—

'अत्मवत् मूलमनादि तद्वत्त्वच चारि निगमागम भवे ।

पट कष साया पर्वविस अनेक पन सुमन घने ॥

पल शुभल बिधि कटु मयुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।

पल्लवित फूलति अवल नित ससार बिटप नमान् ॥'

[रामचन्द्रनाम]

ससार-वृक्ष का रुकक बहुत प्राचीन है । वेद में भी यह शब्द है—

पाशेभ्य विवाभूतानि त्रिपादस्यापत विवि ।'

२०३

श्रीहरि गुरु - पदकमल भजहु मन तजि अनिमान ।

जेहि सेवत पाइय हरि सुख - निधान नगदल ॥१॥

परिवा प्रथम प्रेम त्रिनु राम मिनन अति दूहि ।

जद्यपि निवट हृदय निज रहे सदन नगिनि ॥२॥

कार किया जाये । (परोपकार में ही नर शरीर की सायकता है) ॥८॥

षष्ठमी के समान षाठवाँ उपाय यह है, कि श्री रामचन्द्रजी षष्ठप्रवृत्ति (पुण्यी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन बुद्धि और महार) से पर शुद्धस्वरूप हैं। जन्म तक हृदय से अनेक प्रकार की कामनाएँ दूर नहीं हुईं तब तक वे कैसे मिल सकते हैं ? (शुद्ध ध्यान-दहन भगवान का निवास तिष्ठाग, निर्विकार पवित्र हृदय में ही होता है ।) ॥९॥

नवमी के समान नवाँ साधन यह है कि जिसने इस मो दरवाजे की नगरी अर्थात् मो छेद वाले शरीर में रहकर अपनी आत्मा का श्रेयस नहीं साधा, वह नामा योनिया में भटकता क्रियेगा । (क्यावि विषयो म पँसकर यह कभी जन्म मरण ने छुटकारा न पा सकेगा, और सदा आत्मघाती ही कहा जाएगा ।) ॥१०॥

दशमी के समान दसवाँ साधन यह है कि समय करना चाहिए क्योंकि जिसने दसो इन्द्रिया का समय करना नहीं जाना इन्द्रिया को बश में नहीं किया, उसके सार ही साधन निष्फल जाते हैं उस असमय मनुष्य को घनुर्घारी श्रीराम का दर्शन नहीं होता । (इन्द्रिय लोलुप की भगवत्तरमास्वादन स्वप्न के समान है ।) ॥११॥

एकादशी के समान ग्यारहवाँ साधन यह है कि एकवृत्त चित्त करके (सब धार से हटाकर एक लक्ष्य में लगाकर) भगवत्सेवा करनी चाहिए । इसी धाराधना से (पर माधरूपी एकादशी) व्रत का फल मिलता है और वह फल है जन्म मरण से मुक्त हो जाना ॥१२॥

द्वादशी के दिन जसे (व्रत के उपरांत) दान दिया जाता है वैसे ही बारहवाँ साधन यह है कि ऐसा दान देना चाहिए कि जिससे तीनों लोकों में कोई भी भय न रहे । उस द्वादशीरूपी बारहवें साधन का पारण यही है कि सदा परोपकार में लगा रहना चाहिए । (इस दान और पारण से) फिर शोक नहीं यापता ॥१३॥

त्रयोदशी के समान तेरहवाँ साधन यह है कि जागृति स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं को त्यागकर भगवान का भजन करना चाहिए (सदा एकरस निर्बाध रूप से भगवद्भजन करना चाहिए) नारायण मन, कम और बाणी से परे है सबमें याप रहे हैं, स्वयं याप्य है अर्थात् दृश्यरूप भी है और अनन्त अपरिमित है । (प्रत्येक उनका भजन इन अवस्थाओं को त्याग देने पर ही सम्भव हो सकता है, क्योंकि जब तक जीव अवस्था भेद में रहेगा, तब तक वह अनन्त, सब यापी परमात्मा का पूरुरूपेण चित्तन कर नही सकता ।) ॥१४॥

चतुर्दशी के समान गोपाल (इन्द्रियों के नियन्ता) भगवान चौदहवो लोकों में रह रहे हैं । जड़ और चतुर्दश सब कुछ भगवान् का ही रूप है । जब तक जीव की भेद बुद्धि दूर नहीं हुई, मेरे-तेरे का भेद भाव नाश नहीं हुआ तब तक श्रीरघुनाथजी सासाररूपी बाल की छिन्न भिन्न नहीं करते जन्म मरण से नहीं छुड़ाते ॥१५॥

अव पूणमासी के समान पंद्रहवाँ साधन जो सर्वोत्कृष्ट, पूण साधन है, यह है कि प्रातः शीतल अभिमान रहित ज्ञानमय और सबविषयों से विरक्त हो जाना चाहिए तभी परमानन्द का अमूर्तरस उपलब्ध होगा । इस महारस की केवल भगवान् कि सबक ही जानते हैं । (विषयी जन इस क्या समझ सकेंगे !) ॥१६॥

यहाँ गोसादजी ने पण्णमास की पूणमासी का बखन किया है । यह पूणमासी

अप्य महीनों की पूणमासी से कही अधिक आनन्दमयी समझी जाती है) । होनी में दहिक, भौतिक और दबिक इन तीनों तपों को जना दना चाहिए । फिर पाग खेलनी चाहिए (आनन्द मनाना चाहिए जब तक ससारो दुःख का लेश भा रहेगा, तब तक जीव निश्चित होकर परमानन्द प्राप्ति का महोत्सव नहीं मना सकता ।) जा तू अपने मन में परमानन्द प्राप्ति की इच्छा करता है, तो इस माग पर चर (उपयुक्त पदार्थ साधना को क्रम-क्रम से साथ) ॥१७॥

वेदों, पुराणों और पंडितों का यही मत है कि भगवान् की साक्षात्ता का कीर्तन ही होती है प्रवचन पर गाने व गीत है । इन सब साधना पर विचार करके ससार सागर को पार कर जाना चाहिए और फिर कमी (भूलकर भी) यम-सेना के क्रन्दों में न पड़ना चाहिए । (जन्म मरण के चक्र में न फँसना चाहिए ।) ॥१८॥

अविद्या का नाश करनेवाले दुःख व हर्ष और आनन्द की राशि केवल नारायण ही हैं । भले ही अनेक उपाय करा पर वे, सत्तों के अनुग्रह के बिना, प्राप्त होने के नहीं (सन्त-श्रुति सबसाधना में प्रधान है) ॥१९॥

ससार-समुद्र से तरल के लिए सन्तों के पवित्र चरण ही नौका है । हे तुलसीदास ! (इस नौका पर चढ़कर अर्थात् सन्तों के चरणों की सेवा करके) दुःख का नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बिना ही प्रयास प्राप्त हो जाते हैं ॥२०॥

शब्दाय—द्वैतमति=भेद-बुद्धि । चरहि=विचरण कर । परस=स्पर्श । पद वग=काम, क्रोध, लोभ, माह, मद और मात्सर्य । सप्यधानु=अस्थि, चर्म रक्त, मांस, मज्जा मेद और बीज । नौद्वारपुर=नी छेदवाला शरीर । पारन=व्रत । उपरान्त का भोजन । अति=जड़ से । लागु=आरुढ़ हो जा । चांचरि=पाग के गीत ।

विशेष—(१) श्रीहरि गुरु—यही गुरु और हरि में अभेदत्व का प्रतिपादन किया गया है । गुरु की सेवा करने से हरि की प्राप्ति होती है । क्वार साह्य कहते हैं—
'गुरु गोविन्द दोऊ छडे, बाके लागौ पाय ।

बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो लवाय ॥'

(२) परिवा—चंद्रमा की पीडश बताएँ हैं । एक-एक ठिथि में एक-एक कला की बुद्धि होती है ।

'अमृतां मानदां तुष्टिमुष्टिम्प्रीतिं रतिं तथा ।

सज्जां, धियं, स्वर्णं, रात्रिं, ज्वात्सना, हसयनीं तत ॥

छायां च पुरणीं यामाममाचद्रकला इमा ॥'

[शारदा तिलक

श्रीवैष्णवायजी ने इसा प्रकार भाव की भी पीडश बताई कही है—निराशा, उदासता, कान्ति, त्रिगाथा, कण्ठा, मुदिता मिरता, सुसग, उन्मादीनता, श्रद्धा, सज्जा, साधुता, सुप्ति, चमा विवेक और विद्या ।

(३) 'प्रेम दूरि'—

'जद्यपि प्रभु सत्रय समाना । प्रेम ते प्रगटि होत भगवाना ॥'

[रामचरितमानस

(४) 'राम विचार'—

'जारे बेह भगवत हई गार्ह, गाढ़े भारी सार ।

बारी कुम्भ उबर उरी सारिया गन की सरी बरदाई ॥

(५), 'गंगाधर'—गंगाधर के नाम पर विषय व विचार—

'ऐसी गरिया में बाढ़े विष रसा । विष उर बरदाई सगरी सार ॥

एक कुम्भ पानी पनितारी । एक सज्जन भर मो मारी ॥

एक गया कुरी विषय गई बारा । विषय भई पानी पनितारी ॥

बारे बरदार नाम विषु भरा । उर गया हारिण गुन गया बरा ॥

(६) गारगसावि—प्रबल इन्द्रिय पर विषय-भाव बरदाई विषु अनुसार राम का स्मरण यही विषय गया है ।

(७) गीत भुदा—मू भुव हर मई जन ता सय सन, प्रजन, विषय गुनन समानन समानन घोर वागान ।

(८) गंगा व वरम—नयावि—

मपुरा भाव द्वारिका भाव आ जगनाथ ।

साधु धरन सेवन विद्या, बसु ना भाव हाथ ॥

(९) यह एक गार्हव्य, भक्ति लय सत्वशा की दुर्ग से बड़ा हा सुन्दर है । सायब जना ये ता हृदय का यह एक हार ही है । ब्रमरा इन पर बनना हुआ सायब पुन सिद्धावस्था का प्राप्त कर सज्जन है इनमें विविमान भी गार्ह तहीं ।

२०४

जो मन लागे रामारन भग ।

देह गेह सुत धित नसत्र महुं मगा होन त्रिनु जतन रिये जस ॥१॥

द्वन्द्वरहित, गतमान ग्यानरत, विषय निरत खटाई माना पस ।

सुखनिधान सुजान बोलवनि ह्वै प्रसन्न बहु क्या न होहि बस ॥२॥

सबभूत हित, निर्व्यलाव चित, भगति प्रेम दृढ नेम एकरस ।

सुलसिदास यह होइ तवहि जब ब्रवे ईस जेहि हतो सीसदम ॥३॥

भावाय—यदि यह मन धीरपुनाथजी के घरछा में इस प्रकार लग जाय जसे यह शरीर गृह पुत्र धन और स्त्री में भग्न हो जाता है (स्वभाव से ही उनके मोह में फँस जाता है) ॥१॥

तो यह द्वन्द्व (सुख दुःख आदि) से रहित हो जाय, इसका अभिमान दूर हो जाय यह नान में तल्लीन हो जाय तथा अनेक कष्टों से या अपाया से निमल हाकर या देहासक्ति से हटकर विषया से निरक्त हो जाय । ऐसे भाव पर आनन्दपन सुचतुर काश लेख धीरामचन्द्र जी क्या न उससे बरा में हो जायें ? ॥२॥

(जो जीव भगवच्चरखारविदा म इस प्रकार प्रेम करेगा) वह सब प्राणियों के हित में अपने को लगा देगा उसका चित शुद्ध हो जायगा भक्ति और प्रेम दृढ़ हो जायेंगे और लम्बे विषय त्रिकालावाधित सदा एकरस रहेंगे अर्थात् वह सुख-दुःख संपत्ति-

विपत्ति आदि द्वन्द्वा में सम्पन्न वा विपन्न न होगा। हे तुलसीदास हो सकेगी, जब रावण का वध करनेवाले समय स्वामी (श्रीरामजी)

शब्दाथ—कलत्र=स्त्री। खटाई=निभा जाये परख में कस=परीक्षा। नियसीव=निमल, निष्कपट। एकरस=त्रिकालावधि विशेष—(१) 'जो मन अस—इस प्रकार भगवत्सेवा करनी कि श्रीमदभागवत में कहा गया है—

स च मन कृष्णपदारविन्दमोववांति बहुशुणानुवर्णने ।
करी हरेमदिरमार्जनादिषु श्रुति चकाराच्युनसत्कयोदये ॥
सुकुन्दलिंगात्पदशने दृशौ सवभृत्यगात्रस्पर्शज्ञानमम ।
प्राण च तत्पाद सरोजसौरभे श्रीमत्सुसम्पारसना तदर्पिते ॥
पापी हरे स्नेहपदानुसरणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
काम च दास्येन पु कामकाम्यया ययोत्तमश्लोकशुणानुवर्णने ॥

(२) 'खटाई नाता कस—श्रीवज्रनाथजी के अनुसार स्वर्गीय भट्टजी ने इसका यह ग्रन्थ किया है—'वह (ससार के) विषया से ऐसे ग्रन्थ हो जाता है, कि जस कस (काँसा) के पात्रा में घरी अनेक खट्टी वस्तुओं से मन फिर जाता है।' यह ग्रन्थ भी घट सकता है श्रीवज्रनाथजी ने इस विस्तार के साथ लिखा है।

(३) जेहि सीतारस—जिसने दस शिरवाले रावण का वध किया है वही दशो इन्द्रिया पर विजय-लाभ कराकर परमहंस अवस्था को प्राप्त कराएगा।

(४) सहज स्वभाव से निष्कपट भाव से भगवच्चरणारविदा में प्रेम करना चाहिए—यही इस पद का निषेध है।

२०५५ ५

जो मन भज्यो चहै हरि मुरतरु ।

तौ तजि विषय विकार सारभजु, अजहै जो मे कहौ सोइ कर ॥१॥
सम, सतोष, विचार विमल अति सतसंगति, ये चारि दृढ करि धर ।
काम, क्रोध, अर लोभ, मोह मद, राग, द्वेष निमेष करि परिहर ॥२॥
स्रवन कथा, मुख नाम हृदय हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसर ।
नयनन निरखि कृपा-समुद्र हरि अग जगरूप भूप सीतावर ॥३॥
इहै भगति वैराग्य-न्यान यह हरि-तोषन यह सुम व्रत आचर ।
तुलसीदास सिव-मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डर ॥४॥

भाषा—हे मन ! जा तू याहरिरूपी कल्पवृक्ष का स्वन करना चाहता है, तो विषय विकारों को, काम सिप्ता को छोड़कर साररूप श्रीराम-नाम का नजन कर, और जो मैं कहता हूँ उस पर अब भी धारण कर (अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं) ॥१॥

समता सन्तोष, निमल ज्ञान और सत्संग, इन चारों को दन्तानुवर्ण (हृदय में) रख ले इनको हृदयगम करके इनका अनुसरण कर। काम क्रोध, लोभ भ्रमान महार एव राग और द्वेष को सबका त्याग दे हृदय में इनका सेवामात्र भी न रहे। (क्योंकि जब-

य दुःख हृदय में रहेंगे तब तक सद्गुणों की वहाँ दाग बनने की नहीं, काम कांचन के आगे धमकम का निवाह हो नहीं सकता) ॥२॥

बाना स भगवत्तथा सुनाकर मग्न से (राम) नाम का स्मरण हृदय में भगवद् ध्यान और मस्तक से प्रणाम तथा हाथा में भगवान् की सेवा किया कर। नगा में टूपा सागर जड चनय में दास महाराजा जानकीर रामचन्द्रजी का दर्शन किया कर (इसी में तर शरीर की साधकता है नहीं वा विषया का अनुमरण करता हुआ तू मनुष्य शरीर को या ही यथ स्वीकार न ता लोका बनया न परनाक हो) । ३ ।

यही भक्ति है यही वगवत् ८ यही नाम है और इसी में भगवान् प्रसन्न होते हैं, अतएव तू इसी शेष कल्याणकारी व्रत का साधन कर । हे तुमहीदास ! यह माग शिवजी का बतलाया हुआ है । इस (कल्याणयुक्त) माग पर चलन में स्वप्न में भी (जन्म-मरण का) भय नहीं रहता ॥४॥

शब्दाय — सम = (शम) शान्ति, समभाव । निषेप = (नि शप) पूणतया । भग्न = जड । जग्न = चतय । तापन = प्रसन्न करनेवाला । शिवमत = शिवजी का कहा हुआ सिद्धांत कल्याणकारी मत ।

विशेष — (१) विषय विचार — शब्द रूप रस गंध, स्पर्श, इंद्रिया के भोग विलास जो नितांत निस्सार हैं । विषय द्वारा इन विषयों को निस्सारता देखकर सार स्वल्प ग्रामा की उपामना हो श्रयस्कर है । जब अन्त करणचतुष्टय नि शपरूप से विशुद्ध हो जाता है सभी भगवद्भक्ति का, हरि कव्य का, भविष्य प्राप्त होता है ।

(२) भग्न जग्न रूप — सब बाधों परमात्मा ।

सिधारासमय शत्रु जग्न जानी । करहुँ प्रवाम जोरि जुगुपानी ॥

[रामचरितमानस]

(३) हरि तोषन — भगवान् केवल अनय भक्ति द्वारा ही प्रसन्न होते हैं ।

अनय उपसक का लक्षण है—

न विविध निषेधश्च प्रेमयुक्त रघुत्तमे ।

इन्द्रियाणामभाव स्यात् सोऽनयोपासक स्मृत ॥

[श्रीमहाराजनाथ]

(४) सपनहुँ नाहिन डह — प्रमाण है—

‘निभय वक्ष्येव वन ।

शरणागत जीव वास्तव में निभय हो जाता है । भगवान् ने स्वयं उसे निभय कर दन का वचन दिया है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवात्मीति च याचते ।

अप्यस्य स्वयंभूतेभ्यो ददाम्येतद्दत्तं मम ॥

[वाल्मीकि रामायण]

नाहिन और कोउ सग्नलायक दूजो श्रीरघुपति-सम विपति निवारन ।

काका सहज सुभाउ सेवकवस काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि त्रिलोकि विसारन ।
परम कृपालु, भगत चिंतामनि, विरद पुनीत पतितजन-तारन ॥२॥
सुमिरत सुलभ दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पटपीत सँभार न ।
साखि पुरान निगम आगम सब जानत दुपद-सुता अरु वारन ॥३॥
जाको जस गावत नवि कोविद, जिहवे लोभ, मोह मद, मार न ।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनिवधू-उधारन ॥४॥

भाषार्थ—श्रीरघुनाथजी के समान विपत्तियों का दूर करनेवाला तथा शरण लेने योग्य कोई दूसरा नहीं है (शरण तो उसी का लेनी चाहिए, जो निमग्न हाकर रक्षा कर सके, सो श्रीराम का छोड़कर ऐसा कोई समय नहीं । सभी किसी-न किसी भय से स्वयं ही पीड़ित हैं) । शरणागतता पर किसका अकारण प्रेम है ? ॥१॥

जब श्रीरघुनाथजी अपने दास के जरा से गुण को देखते हैं, तब वे उसे सुमेरु पर्वत के सदृश महान् मानते हैं, और उसके कराँडा दोषा को देखकर भी भूल जाते हैं । कारण कि वे बड़े ही दयालु भक्ता के लिए चिंतामणिरूप हैं (जो-जो भक्त माँगते हैं, वह पाते हैं) और पवित्र करने के विरहवाले तथा पापिया का (ससार सागर से) उद्धार कर देनेवाले हैं ॥२॥

स्मरण करते ही जिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो जाते हैं । अपने दास का बख्त सुनकर इतनी शोचता से (दुःख दूर करने का उसके पास) दौड़ भाते हैं कि अपने पीताम्बर तक का नहीं सम्मानते (जहाँ जैसे बड़े होत हैं, वहाँ से वैसे ही दौड़कर चने भाते हैं) । इन बात के साक्षी पुराण, वेद शास्त्र द्रौपदी और गजेंद्र, ये सब हैं (मैं कवि कल्पना से काम नहीं ले रहा हूँ इसके उदाहरण भी पाये जाते हैं) ॥३॥

जिनके अन्तर में लोभ, मोह अहंकार और काम नहीं हैं, ऐसे कवि और ज्ञाना पुरुष जिनकी कीर्ति का गान करते हैं हे तुलसीदास ! सारी लोक परलोक की आशाआ को छोड़कर, महत्वा का उद्धार करनेवाले उन कोशलेश श्रीराम का हो तू भजन कर ॥४॥

पाठार्थ—दवन = (दमन) दूर करनेवाला । समन = (शमन) शान्ति देनेवाला । सिराहि न = दूरे नहीं होते हैं । बारन = एक बार । सुख = लोभी । सुगति = मोक्ष । मान्नीक = कृपालु ।

विनय—(१) प्रीति प्रकारन — निष्कारण निष्काम प्रेम ही, वास्तव में प्रेम है । जिसा वस्तु की इच्छा करके जो प्रेम किया जाता है वह तो व्यापार है । सकाम प्रेम स्थिर भावही रहता । सा ऐसा निष्काम प्रेम भगवान् ही जीवा पर करते हैं, और किसी का सामर्थ्य नहीं है ।

(२) 'पटपीत सँभार न'—श्रीमद्भक्त ने यह अर्थ किया है—“दास के दुःख का सुनते ही वे तुरत अपने पीताम्बर को सम्भालकर चलते हैं अर्थात् भक्त का दुःख दूर करने के लिए पीताम्बर पहन, तुरन्त जाने का तयार हो जाते हैं, पर यदि पीताम्बर पहनने लगें तो देर न हो जायगी ? पीताम्बर तो पहने से ही पहने हुए हैं । अतः तुरत दौड़कर बिना उस सँभाले ही अपने भक्त के पास चले जाते हैं । पाठ 'सँभार न' है, न कि

भजिघेलायक, सुगदायक रघुनाथ गरिम सराप्रद दूजा जाहि ।
 आनंदभयन, दुःखदयन, सोरममन, ग्याग्मन गुा गाग गिगहि ॥१॥
 आरत, अघम, बुजाति, बुटिल, राल पाग, ममीन कहे जे गमाहि ॥
 सुमिरत नाम भियसहै वारक पावा मो पद, जहाँ गुर जाहि न ॥२॥
 जाके पद-यमल सुध मुनि मधुकर, विरत जे परम सुगतिहु सुभाहि ॥
 तुलसिदास सठ तेहि ॥ भजसि यस, वाखोत जो भनार्याहि दाहिन ॥३॥

भाषाय—भजा करन योग्य, पाग दनवाता और शरण में रगनेवाला हमारे
 और रघुनाथजी के समान कोई दूसरा नहीं है । उन आनन्द-प्राप्त, दुःख नाश करनेवाले,
 शोक हरनेवाले समीपगत भगवान् के मुख गिनते गिनत कभी पूर नहीं होता । क्योंकि य
 अनन्तगुण विशिष्ट हैं ॥१॥

जो दुःख, नीच, घटपट, कपटी, दुष्ट पावो और भयभीत कही भी शरण नहीं
 पा सकते, वे भी एक बार हो श्रीरामनाम स्मरण कर उस पर पर पहुँच जायें हैं । तहाँ
 देवता भी नहीं जा सकते ॥२॥

जिनके चरणरूपी कमला में ऐसे विरक्त मुनि मधु सुध रहने हैं (रसलोलुप बने
 बैठे हैं), जिन्हें मोक्ष तक का लाल नही (जो मोक्ष-मुक्त का भी सुख समझकर भगवान्
 चरणारविन्दों का परागपान कर रहे हैं) है शठ ! तुलसीदास ! उन वरुणात्म्य प्रभु का
 भजन तू क्यों नहीं करता है जो भनाया पर सदा कृपा करते हैं ? ॥३॥

गद्याय—दवन=(दमन) दूर करनेवाला । समन=(समन) शान्ति देनेवाला ।
 सिराहि न=पूर नहीं होने हैं । वारक=एक बार । सुध=लोभी । सुगति=भाग ।
 कास्मीक=कृपासू ।

विशेष—(१) 'सुमिरत जाहि न'—प्रमाण है—

'सहस्रचारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम ।

तुदात्त करणी भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥

[पद्मपुराण]

(२) सुगतिहु सभाहि न —क्याकि—

'सगुन उपासक मोछ न सेही —

[रामचरितमानस]

'चारों मुक्ति अरें तह पानी, घर छावे ब्रह्मपानी ।

—हरिराम यास

राग कल्याण

२०८

नाथ सो कौन विनती कहि सुनावी ।
 त्रिविध विधि अमित अवलोकि अघ आपने,
 सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावी ॥१॥

बिरचि हरिभगति को बेप वर टाटिका,
 कपट-दल हस्ति पल्लवनि छावों ।
 नामलंगि लाइ लासा ललित वचन कहि,
 व्याध ज्यो विषय प्रहँगनि बझावों ॥२॥
 कुटिल सतकोटि मेरे रोम पर वारियहि,
 साधुगनती मे पहलेहि गनावों ।
 परम वर खब गव पवत चढयो,
 अग्य सवग्य, जन भनि जनावों ॥३॥
 साच किचों झूठ मोको कहत, कोउ
 कोऊ राम ! रावरो, हों तुम्हारो कहावों ।
 बिरद की लाज करि दासतुलसिहि देव ।
 लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावों ॥४॥

भाषा—हे नाथ ! आपकी म किस प्रकार अपनी विनती कह सुनाऊँ ? अपने
 ताना प्रकार के (मन वचन और कम से उत्पन्न) भगणित पापों की भार देवकर जब मैं
 आपकी शरण में आता हूँ, तब सामना होते ही सज्जावश धिर नीचा कर लेता हूँ (भाल
 स भाल नहीं मिला सकना, क्योंकि मेरे पास एक भी पुण्य का बल नहीं, कि जिससे
 आपकी शरण प्राप्त कर सकूँ) ॥१॥

भगवद्भक्तों का भेष धारणकर सुन्दर दृष्टी बनाता हूँ, और कपटरूपी हरे हरे
 पत्ता से उठे छा देता हूँ । (तिलक लगाकर कण्ठी माथा पहनकर राम-नाम जपता हूँ और
 इस धोखे से दूसरों की भाला में धूल झाँकता हूँ । पावण्ड कर-कर लोगो को ठगना मेरा
 कृत्य हो गया है) । आपके (राम) नाम की लम्बी लगाकर मधुर वचना का लासा लगा देता
 हूँ । (राम राम जपता हुआ ऐसी मधुर वाणी बोलता हूँ कि सोम सचमुच ही मुझे महात्मा
 समझने लगते हैं) फिर बहेनिया की तरह विषयरूपी पक्षियों को फँसा लेता हूँ । (लोगों
 की दृष्टि में तो बपुण्य बनकर राम राम जपता हूँ पर करता क्या था हूँ सो मुनि
 रूपवती स्त्रिया की काम-दृष्टि स नखता हूँ, काम-वार्त्ता सुनता हूँ सुगणित माला धारण
 करता हूँ और जितने भी भोग बिलास हैं उन सभी में इद्रिया को फँसाता हूँ) ॥२॥

मेरे एक रोम पर सौ करोड़ पापी निछावर किए जा सकते हैं, पर तो भी अनेक
 साधुमा की गणना में सबप्रथम गिनवाना चाहता हूँ सत शिरोमणि बनने का दावा रखता
 हूँ । म बड़ा ही असम्भ और नीच हूँ, पर अभिमान के पहाड़ पर चढ़कर बठा हूँ । महामुख
 होते हुए भी अपने आपको श्रेष्ठ बतलाता हूँ ॥३॥

हे भगवन् ! कह नहीं सक्ता कि झूठ ह या सच पर कोद काई मुझे देखकर कहते
 हैं कि यह रामजी का ह' और मैं भी आपही का' कहनाया चाहता हूँ । हे देव ! तब फिर
 अपने वान की लाज रखकर इस तुलसीदास का आप अपना हाँ लाजिए (क्योंकि यदि
 इससे, अब आपने मुझे न अपनाया तो मैं किसका होकर रहूँगा ? मेरी बलई खून जाने
 पर न कोई भुक्त पर विश्वास करेगा और न अपनी शरण में ही लेगा । इसलिए आप ही

और कहें ठोर रघुवस भनि मेरे ।
 पतित-पावन, प्रनत-पाल, असरन सरन,
 बाकुरो बिरद विरुदैत केहि केरे ॥१॥
 समुझि जिय दोष अति रोष करि राम जो,
 करत नहि कान विनती बदन फेरे ।
 तदपि ह्वै निडर हौं कही करुना सिधु ।
 क्याअ रहि जात सुनि बात विन हेरे ॥२॥
 मुख्य रुचि होत घसिबे की पुर रावरे,
 राम ! तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे ।
 अगम अपवग, अरु स्वग सुकृतैक फल,
 नाम बल क्यो वसौं जम नगर नेरे ॥३॥
 कतहुँ नहि ठाउँ, फहँ जाउँ कौसलनाथ ।
 दीन बितहीन हौ, विकल विनु डेरे ।
 दास तुलसिहि वास देहु अब करि कृपा
 बसत गज गीध व्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

भाषा—हे रघुवशमणि ! मेरे लिए और कहा स्थान है ? (आपके चरणों को छोड़कर, बताओ और कहाँ जाऊँ ?) पापियों को पवित्र करनेवाले, शरणागतों को पालनेवाले एवं प्रार्थनों को शरण देनेवाले तो एक आप ही हैं । आपका सा बाँका बाना और किस बाने वाले का है ? ॥१॥

हे रघुनाथजी ! अपने मन में मेरे अपराधों को समझकर क्रोध से यद्यपि आप मेरी विनती पर ध्यान नहीं देते हैं और मेरी ओर से अपना महँ केर हुए हैं, तो भी मैं निभय होकर हे कल्याण सागर ! यही कहूँगा कि मेरी बात सुनकर उस पर ध्यान दिये बिना आपने कस रहा जायगा ! (क्याकि जब आप किसी दीन की पुकार सुनते हैं तो तुरन्त उस पर ध्यान देने हैं पर मेरी हा बार टाल-टूट कर रहे हैं, इसीमें मुझ प्रार्थन होता ॥ १) ॥२॥

(यदि आप मेरा इच्छा पूछत हैं तो सुनिज) स्वयं प्रमृग कामना तो मेरी यही है कि मैं आपके धाम (सबल सागर) में जाकर रहूँ किन्तु हे नाथ ! उम रुचि का काम क्रोध साध और मोह धर हुए हैं (य दुष्ट उम इच्छा का दसा नैन हैं) । माच तो महा दुःख है (क्याकि कामनाया का समूच नाश नहीं हुआ) । स्वयं मित्रता भी कठिन है क्याकि वह बचन मत्तमों के पत्र में प्राप्त होता है (मन मत्तम तो कोई किया नहीं, स्वयं कम जा मजता है ?) । अब रहा नरक तो आपका नाम के वन मरग पर वहाँ भी नहीं जा सक्ता है ! (क्याकि जो राम-नाम का स्मरण करता है, वह नरक-मार्गता से छूट जाता है ॥ १) ॥३॥

अब मुझे कही भी रहने के लिए ठोर नहीं रहा । कहाँ जाऊँ ? हे कोशलनाथ ! मैं

निघन और दीन हूँ (घनादम होता तो बही रहने का घर बनवा लेता) । निवास स्थान के न होने से ध्यातुन हो रहा हूँ । अतः हे नाथ ! इस तुलसीदास को कृपाकर उसी गाव में रहने को स्थान दे दीजिए जहाँ गजेन्द्र, जटायु, व्याध (वाल्मीकि) आदि रहते हैं ॥४॥

गदाय — बाँकुरो = बाँका, निराला । विरुत = बानावाला । क्याअब = क्या + अब । अपवग = मोच । खेर = खडे म गाव में ।

विनय—(१) 'करत नहिं फेरे'—ऐसा न कीजिए क्योंकि—

'सुरति करी मेरे साइयाँ, हम हैं भव जल भाहि ।

आपे ही बहि जायेंगे जो नहिं पकरी बाहि ॥'

(२) 'स्वग नेरे'—स्वग जाने में मेरे से पाप बाधक हूँ और नरक जाने में आपका राम-नाम । साधक तो बही भी कोई नहीं दिखाई देता ।

(३) 'याध'—वाल्मीकि से आशय है । पहले यह एक बहेलिया थे । नाम रत्ना कर ॥। पीछे धर्षि नारद के उपदेश से जीव हिंसा त्यागकर 'मरा मरा' जपने लगे, और मुक्त हो गये । कहा ह—

उलटा नाम जपत जग जाना ।

वाल्मीकि भे ग्रह समाना ॥'

श्रीकृष्ण के चरण म बाण मारनेवाले 'जरा' नामक व्याध से भी आशय हो सकता है ।

श्रीदवनारायण द्विवेदी ने अपनी टाका में एक तीसरे ही पुराण प्रसिद्ध 'याध से आशय लिया है, जिसका नाम 'धम' था ।

२११

कवहूँ रघुवममनि । सो कृपा करहुने ।

जेहि कृपा याध गज, विप्र, खल नरतर,

तिहहि सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुने ॥१॥

जोनि बहु जनमि किये करम खल विविध विधि,

अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुने ।

दीनहित । अजित सगम्य समरथ प्रनतपाल

चित मृदुल निज गुननि अनुसगहुने ॥२॥

मोह मद मान कामादि खल मण्टली

सबुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुने ।

जोग-जप-जग्य विनान ते अधिक अति,

अमल हट भगति दै परम सुख भगहुने ॥३॥

मन्दजन-मौलिमनि सखल मान-हीन,

कुटिल मन, मलिनजिय, जानि जा उरहुने ।

दासतुलसी वेद मिदित निरुदावली,

प्रिमल जग नाथ । केहि भाति निस्तरहुने ॥४॥

कमल का एक फूल लेकर आपकी शरण में गया, तब उसके दीन वचन सुनकर चक्र सुदर्शन लेकर आप गरुड की बनी छोड़ सुरग (दौड़ते हुए) चले आये (प्रह चण भी उसका प्राप्त वचन न सुन सके) ॥२॥

जब (भरी सभा में) दुष्ट दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारने लगा, तब जबल उसके श्रुति कहने पर ही कि 'हाय ! भगवान् मरी लाज रखिए' आपने विविध रंगों के वस्त्रों का ढेर लगा दिया (उसको साडी इतनी लम्बी बना दी कि खींचते-खींचते दुःशासन थक गया, पर उस उसका छार न मिला) ॥३॥

यह समझ-बूझकर देव मनुष्य, मुनि और विद्वज्जन आपके चरणों की सेवा करते हैं । राजा लग्न का उद्धार करने वाले समय भगवान् न किसका अभय नहीं बिधा ? (जो उनकी शरण में गया उसका को अभय कर दिया) ॥४॥

शब्दाथ—सुनाम=चक्र । पाहि=रक्षा करो । वरन=रण । नृप = एक राजा का नाम ।

विशेष—(१) 'सुनाम—श्रीयुग भट्टजी ने इसका अर्थ नामि लिखा है, अर्थात् नामि का धारण करनेवाले भगवान् सुनाम । इस अर्थ में शकित्य है । सुनाम' का अर्थ चक्र होता है । यही अर्थ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'तुलसीदासजी' में भी माना गया है ।

राग कल्याण

२१४

एसी कवन प्रभु की रीति ?

प्रिय हनु पुनीत परिहरि पावरनि पर प्रीति ॥१॥

गई मारन पूतना कुच बालकूट लगाइ ।

मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥२॥

धाम माहित गोपिकनि पर कृपा अनुतिन गीन्ह ।

जगत पिता प्रियहि जिह्व चरन की रज लीन्ह ॥३॥

नेम नैं निमुपाल दिनप्रति दन गनि-गनि गारि ।

त्रियो लीन मु आपु म हरि राज-ममा मेसारी ॥४॥

ध्याय चित दे चरन मार्या भूटमनि मृग जानि ।

मो मदह स्वतार पठयो प्रगट करि निज बानि ॥५॥

पौन निहरी कहै जिह्व मुहन अर अर दाउ ।

प्रगट पातक-प तुलसी मरन राख्या माउ ॥६॥

भावार्थ—(भगवान् के शिष्य, और जिस रामायण का ऐसी रात्रि है जो अपने बाने की मात्र रगन के निज पवित्र जावा का त्याग कर पावन जना पर प्रेम करता है ? ॥१॥

पूतना स्त्रियाँ में जिस मणिकर —हैं (भगवान् कृष्ण का) मारन गई था, किन्तु कृष्ण माया-महिम्न ने उन माता का-भी मुक्ति (मर्त्य) प्रदान की ॥२॥

आपने जान-बूझ कर गति पर हा गया कृष्ण का कि उनके चरणों की धुनि

जगत्पिता ब्रह्मा ने भी अपने मस्तक पर चढ़ाई (क्याकि प्रेमस्वरूपा गोपियो का आपने अपना ही स्वरूप दे दिया था) ॥३॥

जो शिशुपाल नित्य नियम से गिन गिनकर गालियाँ दता था (नित्य श्रीकृष्ण को सो गालियाँ देने का उसका सनल्प था), उस भगवान् ने राजाश्री की समा में देखते देखते अपने स्वरूप में लीन कर लिया ॥४॥

मूल बहेलिये ने तो हिरण्य समझकर आपके चरखा में निशाना लगाकर (ग्राण) मारा, पर उसे आपने, अपने दयालु स्वभाव ने सहेह गोलोक भंज दिया ॥५॥

जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों ही किये ह उनके लिए तो क्या कहा जाय ? (क्योंकि उनका सद्गति पाने का कुछ-न कुछ तो अधिकार था ही) किन्तु उहाने तो प्रत्यक्ष पापमूर्ति तुलसी को भी शरण में रख लिया ह, यही भाश्चय ह ॥६॥

गदाय — कालकूट = विष । बानि = स्वभाव । मुकुट = पुण्य ।

विनय—(१) 'पूतना — कहत ह कि यह किसी पूज्य-म में अक्सरा थी । वामन रूपधारी विष्णु का रूप देखकर, वात्सल्य स्नेह स, उनके मन में आया कि इस बालक को पुत्र मानकर अपने स्तना का दूध पिनाऊँ । अतयाभी भगवान् उसके मन की इच्छा ताड गये । वही अक्सरा पूतना के नाम से जिनरी घोर पाप व कारण, गच्छसी हुई । भगवान् कृष्ण ने मातृ भक्ति प्रदर्शित कर उसे स्वयं भोज दिया ।

(२) 'काम-मोहित गोपिकनि पर' श्रीमद्भागवत में महाराज परीक्षित ने ब्रह्मर्षि शुक्देव से जब यह प्रश्न किया कि गोपिया तो काम माहित थी उन्हें परमपद कये प्राप्त हुआ तब शुक्देव ने यह उत्तर दिया, कि जिहाने समस्त ससार को भी श्रान-वन-दन पर योद्धावर कर उनसे निष्काम प्रीति जोणी, भला वे काम मोहित हो सक्ती ह ? गोपियो की उपमा किससे दी जाय ? एक प्रेमदीवानी गोपी कहती ह —

‘सौं क पहिरावौ, पाँव बेड़ी ल भरावौ,
गाढ़े बघन बंधावौ औ लिखावौ कावौ खाल सों ।
विष ल पितावौ ताप मूठ भी चलावौ, मास
घार में बहावौ बाँधि पत्थर ‘कमाल सों ॥
बिछू ल बिछावौ ताप मोहि ल सुसावौ केरि
आग भी लगावौ बाँधि कापड दुसाल सों ।
गिरि से गिरावौ, बाले भाग से डसावौ,
हा हा, प्रीति ना छुड़ावौ गिरिधारी न-दसाल सा ॥’

तथा—

‘कोउ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोउ कहौ रकिनि, कलकिनि कुनारी हों ॥
कंसो देवलोक, परलोक, नरलोक, भैं तो
लीनी है अलीक, लोक-लीकन ते प्यारी हों ॥
उन जावौ घन जावौ देव गुरुजन जावौ,
जीव क्यों न जावौ टेक टरति न टारी हों ॥

गुलाबगारी गिरिपारी की मुकुटपार,

पीतलपारी चारी मुरति प चारी ही ॥'

तभी तो प्रेम परा मरिचका गात्रिका के निनय में बहा गया यह पं प्रसिद्ध

ह—

गोपी प्रेम की गुजा ।

जिन गुपाल बीरों बस धरपो उर परि स्याम भुजा ॥

सुक मुनि स्यास प्रससा बीनी उदय सात तराही ।

भूरि भाग्य गोबुल की यनिता अनि पुनीत जगमाही ॥

बहा भयो जु बिप्र कुल जनम्यो सेवा-मुमिरन माही ।

स्वयं पुनीत बात परमानंद जो हरि-नानपुत्र जाही ॥

—परमानन्ददास

(३) व्याप — बहुत है कि पूव जन्म में यह बानि बानर था । बदना चुकाने के लिए इसने भी धारण रत, भगवान् कृष्ण के चरण पर प्रहार किया । चरण में पद्म के चिह्न से मग के नेत्र का भ्रम हो जान से इसने बाण चला दिया । बाण को पाठ माने पर इस भारी दुःख और परवात्ताप हुआ, किन्तु भगवान् ने उसे सखेह स्वयं भेज दिया ।

(४) उदारहृदय गोसाइजी ने इस पद में श्रीकृष्ण भगवान् का ही गुणानुवाग गायो है । आश्चर्य है कि अनय (?) रामभक्त बजनावली ने अपनी टीका में यह सिद्ध करने के लिए कि इस पं में श्रीकृष्ण का महत्त्व गौण है और ध्वनि से श्रीरामजी का ही प्राधान्य सिद्ध होता है अथवा हो पुंठ रग डाल है । इस पद में से तो वही भी ऐसा कोई अर्थ निकलता ही नहीं है । श्रीकृष्ण-गोसावली के रचयिता गोसाइजी के हृदय में कभी ऐसी संकीर्णता के भाव उद्भूत नहीं हुए होंगे ।

२१५

श्रीरघुवीर की यह बानि ।

नीचहू सो करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥१॥

परम अधम निपाद पावर, कौन ताकी कानि ?

लियो सो उर लाइ सुत ज्यो प्रेम को पहिचानि ॥२॥

गीध कौन दयालु, जो बिधि रच्यो हिंसा सानि ?

जनक ज्यो रघुनाथ तावहें दियो जल निज पानि ॥३॥

प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि ।

सात ताके दिये फन अति रुचि बखानि-बखानि ॥४॥

रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि ।

भरत-ज्यो उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ॥५॥

कौन सुभग सुसील बानर जिनीहि सुमिरत हानि ।

किये हैं सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥६॥

राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिनदानि ।

भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥७॥

भावाध—धीरपुनापजी का स्वभाव ही ऐसा है, कि व मन में विशुद्ध और अनय प्रेम समझकर गाँव जना के प्रति भी स्नेह करत है ॥१॥

गृह निषाद महान नाच और पापी था, उसका क्या प्रतिष्ठा थी ? किन्तु रघुनाथ जी ने उसका प्रेम पहचानकर उस पुत्र की तरह छाती से लगा लिया ॥२॥

जटायु गीध जिसे ब्रह्मा न हिंसामय हा रचा था, कौन-सा दयालु था ? किन्तु रघुनाथजी ने, अपने पिता के समान, उसे अपने हाथ से जनार्जनि दा ॥३॥

शत्रु स्वभाव से ही मली-कुचली थी नीच जाति की था और सभी भवगुणों का सानि थी, परन्तु (उसकी सच्ची प्रीति देखकर) उसका हाथ के फल आपने स्वाद बखान बखानकर वही प्रेम से खाये (भूरदासजी ने तो यहाँ तक लिखा है कि उसके जूठे बैर खाये, क्योंकि वह चल चलकर मोठे बर देती थी, और चटटे फेंक देती थी) ॥४॥

राजस एव शत्रु विभीषण को शरण में आया देख, आपने उठकर उसे भरत के समान हृदय में लगा लिया, उस समय प्रमादिवश के कारण अपने शरीर की मुच-बुध भी भूल गये ॥५॥

बदर कौन-से सुन्दर और शील-स्वभाववाले थे ? जिनका नाम लेने से भी घनिष्ट हाता है, उन्हें भी आपने अपना मित्र बना लिया । (इतना ही नहीं, वरन्) जब अपने घर पर, अयोध्या में, आये, तब उनका भारी आदर-भक्तार भी किया ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजी प्रकृति से ही श्यालु, कोमल स्वभाववाले गरीबों के हित और सदा दान देनेवाले हैं । इसलिये, हे तुलसी ! तू तो इस कपट त्यागकर ऐसे ही स्वामी का भजन कर (निकपट भाव से, अनय प्रेम से सदा भजन किया कर) ॥७॥

शब्दाध—कानि=प्रतिष्ठा । पानि=हाथ । दिन=नित्य ।

विनय—(१) 'गीध श्रीरामचन्द्रजी ने जटायु के साथ वास्तव में पिता के जसा ही व्यवहार किया था । गद में धायल मरणासन जटायु को लेकर आप कहते हैं—

मेरे जान, साथ ! कुछ दिन जीज ।

वैल्लिभ आप सुवन-सेवा-मुख, मोहि पितु की सुख दीज ॥

विष्णु देह इच्छा जीवन जग त्रिधि भगद भगि लीज ।

हरिहर-मुजस सुनाइ, बरस ब लाग कृठारय कीज ॥

देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन जल भीज ।

बोली बिहग बिहंसि, 'रघुवर बलि कहीं सुभाय पतोज ॥

मेरे मरिबे-सम न चारि फल होहि तो क्यों न फहीजे ।'

तुलसी प्रभु दियो उत्तम मौन ही परी मनु प्रेम सहोज ॥'

(२) जिनहि सुमिरत हानि—स्वयं हनुमान कहते हैं—

प्रात लेइ जो नाम हमारा । ताकिन ताहि न मिल अहारा ॥

(३) दिनदानि—महान् उदार । श्रीभगवद्गुणपण्डित भ 'मोदाय्य' गुण का यह लक्षण मिलता है—

‘पात्रापात्रविवेकेन देगवानाद्युपेक्षणात् ।
यदायत्नं विदुर्वेदा जीदाय्य वचसा हरे ॥’

(४) इस पद में गामाङ्गो न रघुनाथजी के मोक्षोत्प, श्रीगम्य, पतिन-यावनता, वात्सल्य गाम्भीर्य आदि सद्गुणों का वर्णन किया है ।

२१६

हरि तजि और भजिय चाहि ?

नाहिनै कोउ राम सो, ममता प्रनत पर जाहि ॥१॥

वनकवसिपु निरचि का जन करम, मन अरु वात ।

सुर्ताहि दुखवत विधि न बरज्यो, काल के घर जात ॥२॥

सम्भु सेवक जान जग बहु बार दिय दस सीस ।

करत राम विरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥३॥

और देवन की कहा वही, स्वारयहि के भीत ।

कवहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ समीत ॥४॥

को न सेवत देत सम्पति, लोकहुँ यह रीति ।

दासतुलसी दीन पर एक राम ही की प्रीति ॥५॥

भाषाय — भगवान श्रीहरि को छोड़कर और किसका भजन करें ? श्रीरघुनाथजी के समान ऐसा कोई भी नहीं, जिसकी धीन शरणागतता पर ममता हो, जिसने उन्हें प्रेम से प्रपन्नाया हो ॥१॥

(उदाहरण लीजिए) हिरण्यकशिपु ब्रह्मा का भक्त था । वह कम, मन और वचन से उनकी भक्ति करता था । किन्तु ब्रह्मा ने उसे पुनः का ताड़ना देने हुए न रोका । (कृपया यह हुआ कि) वह यमलोक चला गया (और ब्रह्मा खड़े खड़े देखने लगे । यदि वह पहले से उम्मे मना कर दते, उसे उसका अपना हित सुझा देत तो क्या वह काल का प्राप्ति घनता ? यह तो हुई ब्रह्मा की करतूत अब शिवजी का देखिए) ॥२॥

सारा सारा जानता है कि रावण शिवजी का भक्त था, और उसने कई बार अपने सिर काट-काटकर उनकी अर्पित किए थे, किन्तु जब उसने श्रीरघुनाथजी के साथ धर बिसाहा, तब आपने उम्मे स्वप्न में भी न रोका (चुन वठे वठे देखते रहे और उम यम-धाम भेजवा दिया ।) ॥३॥

(ब्रह्मा और शिव का जब यह हाल है, तब) और देवताओं के विषय में क्या कहा जाय ? वे तो मत्तलकी मित्र हैं ही । किसी ने भी मध्यमोत्त शरणागत की रक्षा नहीं की (जब स्वयं ही वे निभम नहीं हैं, तब दूसरों की क्या रक्षा करेंगे ? ऐसा की शरण में जाना बेकार है ।) ॥४॥

खुशामद करने से कौन धन-दीनत नहीं देता है ? यह दुनिया का चलन ही है (जो सेवा करेगा, वह मेत्रा पायेगा) । किन्तु हे तुलसीदास ! दीन पर तो एक श्रीरघुनाथजी का ही स्नेह है ॥५॥

नदार्थ — वनकसिपु = हिरण्यकशिपु नामक दत्त । जन = भक्त । वात =

धचन । वरज्यो = राका । ईशु = शिवजी ।

विशेष—(१) 'देवन मीत'—रामचरितमानस में भा कहा ह—

'सुर नर मुनि सब ही की रोती । स्वारथ लागि करहि ये प्रीती ॥'

(२) 'सरन गये समीति'—'समीत शान्त का अर्थ भूयु के भय से डरे हुए जीव का ह । मृ पु भय से बचानेवाला भगवान् के अतिरिक्त और कोई भी नहीं ।

२१७

जो पै दूसरो कोउ होइ ।

तौ हो बारहि बार प्रभु कत दुख सुनावी रोइ ॥१॥

काहि ममता दीन पर, काको पतितपावन नाम ।

पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ॥२॥

रहे सभु विरचि, सुरपति, लोकपाल अनेक ।

सोव सरि बूझत करीसहि दई काहु न टेक ॥३॥

विपुलभूपति सदसि महें नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि' ।

सकल समरथ रहे, काहु न वसन दीहा ताहि ॥४॥

एक मुख क्या कही कछनासिंधु के गुन गाथ ?

भगतहित धरि देह काह न किया कोसलनाथ ॥५॥

आपने कहैं सौपिये मोहि जापे अतिहि घिनात ।

दामतुलसी और त्रिधि क्यों चरन परिहरि जात ॥६॥

भाषाय—हे नाथ ! यदि कोई दूसरा होता, तो मैं बार बार रोकर अपना दुख आपको ही क्यों सुनाता ? (मैं उसी के आगे अपना रोना रोता, आपको कष्ट न देता । पर क्या कहें, आपको छोड़कर ऐसा कोई ही नहीं जो दोन जनों के कष्ट दूर करे) ॥१॥

(आपका छोड़कर) दीना पर किसकी ममता है ? कौन गरीबों को अपनाता ॥ ? पापियों का उद्धार करनेवाला नाम किसका है ? और महापापी अजामेल को (घोखे से अपने पुत्र नारायण का नाम लेने पर) किसने अपना परम धाम दिया ? (ऐसे तो एक आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं है) ॥२॥

शिव ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक लोकपाल ये पर दु सख्यो नदी में डूबते हुए गजेन्द्र को किसी ने भी सहारा न दिया (आप ही गहड़ को छोड़कर पदन दौड़े) ॥३॥

जब अनेक राजाओं की सभा में अजुन की पत्नी द्रौपदी ने (दु सख्यन द्वारा लाज जाते समय) कहा कि हे नाथ ! मेरी रक्षा कीजिए तब सभी तो समय थे, पर किसने उसे वस्त्र-दान दिया (सब लोग बड़े बड़े देखते ही रहे), किसी ने भी उस भवला की लाज न बचाई) ॥४॥

हे कृष्णमागर ! आपके चरित्र की क्या एक मुह से कने कह सकता हूँ ? (आपने अनन्त गुणा का बखान अनन्त मुखा से ही हो सकता है एक मुख से नहीं) हे कोशला पीथ ! आपने नर शरीर धारण करके भक्तों का क्या-क्या हित-साधन नहीं किया ? ॥५॥

यदि आप भूभग बहुत ही धिनात ह, तो मुझे किसी एस क हाथ सोंप दीजिए, जो आपके ही समान हो (पर, यह अशभव है क्योंकि आपके समान तो ससार में कोई है ही नहीं)। तुलसीदास किगा और तरह आपके चरणा का त्याग कर क्या जाने लगा। भाव यह है, कि मैं आपका क चरणा का शरण में रहूंगा ॥६॥

शब्दाथ—विपुल = बहुत से। सदसि = समा में। नर नारि = अजुन की पत्नी, द्रोपदी। पाहि = रक्षा करो। करीस = गजेन्द्र। गाथ = बया।

विशेष—(१) विनय भूपति ताहि—‘श्रीकृष्णगीतावली’ में द्रोपदी-वत्स-हरण का यह पद प्रसिद्ध है—

कहा अयो कपट जुआ जो हों हारी ?

समरधीर महावीर पाव पति, क्या देहें भाहि होन उधारी ॥
राजसमाज सभासद समरय भीषम दान घमघुरधारी ॥
अबला अनघ अनवसर अनुचित होति हरि करिहैं रखवारी ॥
यो मन गुनति दुसासन दुरजन समक्षी तकि गहि दुहैं कर सारी ॥
सकुचि गात मोवति कमठी ज्यो हहरी ह्वम, बिकल भई भारी ॥
अपनेनि को अपना बिलोकि बल सबल आस प्रिस्थात बिसारी ॥
हाथ उठाइ अनाथ नाथ सा पाहि पाहि प्रभु पाहि ? पुकारा ॥
तुलसी परलि प्रतीति प्रातिगति, आरतपाल कृपासु मुरारि ॥
घसन वेध राखी बिलेखि लखि बिरदावलि मूरति नर नारी ॥

(२) आप सतिहि धिनात — धिन क्यों लगया ? धिन तो तब नहीं लगी जब गृह निपा का हृदय में लगा गया। कविर मैं तब हुए जटायु की गोद में बठा लिया, सत्र भी धिन नहीं लगी। शबरी के जूठ बर छाने समय भी धिन नहीं लगी। तब तुलसी नाम की हो दण्डक क्या धिन लग्यो ? टाक-टूट का तो कोई और हो कारण होगा, जिस स्वामी श्रीराम ही जानत होग।

२१८।

क्याहि देयाइही हरि धरन ?

समन सरल मलेस कलिमल सकल मगल करन ॥१॥
सरद भव मुन्दर तरुनतर अरन दारिज धरन ।
लब्धि लानित लनित करनल छवि अनूपम धरन ॥२॥
गगनजनक, अनम अरि-पिय, वपटु बटु बलि धरन ।
प्रप्रतिप नृग बधिक कं दुख-दाप दारन दरन ॥३॥
मिद्ध गुर मुनि वृद्ध-वदित सुखद सत्र कहें मरन ।
महन उर आनन निहि जन हात तारन तरन ॥४॥
वृष्णिगु मुनान गृधर प्रान आरनि हरन ।
दरस - आर - पियाम तुलसीदास चाहन मरन ॥५॥

भावार्थ—हे हरि ! क्या मैं जो आप भजन उन चरणा का ज्ञान करायेंगे जो समस्त

दु खों और बलि के समस्त पापा का नाश करनेवाले और सबकल्याण के कारण हैं ॥१॥

जिनका रंग शरद् ऋतु में उत्पन्न, सुन्दर और ताजे लाल-लाल कमलों के समान है, जिन्हें लक्ष्मी अपनी सुन्दर हथेलियां से दबाया करती हैं, और जो अनुपम लावण्यमय हैं ॥२॥

जो गंगा के पिता हैं, (अर्थात् जिन चरणा से गंगा की उत्पत्ति हुई है), जो कामदेव को मस्म करनेवाले शिवजी के प्यारे हैं, तथा जिन्होंने कपट-ब्रह्मचारी का रूप धारणकर राजा बलि को छेदा है। जिन्होंने (गौतम) ब्राह्मण को पत्नी महत्या को शाप विमुक्त कर दिया, राजा नृग को दिव्य देह प्रदान की और हिसक निपाद (अथवा बाल्मोकि) के सारे दु ख और घोर पापा को दूर कर दिया ॥३॥

सिद्ध, देवता और मुनियों के समूह जिनकी सदा वन्दना किया करते हैं, जो सभी को सुख और शरण देनेवाले हैं, और एक बार भी जिनका हृदय में ध्यान करने से जीव स्वयं तर जाता है तथा दूसरा को भी तार देता है ॥४॥

हे कृपासागर सुखसुर रघुनाथजी ! आप शरणागतों के दु ख दूर करनेवाले हैं। यह तुलसीदास आपके उन चरणों के दशन को आशास्पी प्यास के मारे मरनेवाला ही है। (अथ आप शायं ही अपने चरण-कमल दिखाकर इसकी रक्षा कीजिए) ॥५॥

गङ्गाय—तत्पुनरुत्तर=अत्यन्त नवीन। लच्छि=(लक्ष्मी)। लालित=प्यार किये गये। जनक=पिता, उत्पत्तिकर्ता। अनग भरि=कामदेव के शत्रु शिवजी। बटु=ब्रह्मचारी। धरन=छलनेवाले। दशन=दलनेवाले नाशकर्ता। सकृत्=एक बार।

विशेष—(१) २१७ पद व अन्तिम चरण क्या चरण परिहरि जात' और इस पद के बर्हि देलाइही हरि, चरण' में सिंहावलोकन सम्बन्ध है। यहाँ गासाइजी प्रेमाधीर हाथर चरणा का अविलम्ब दशन करना चाहते हैं।

(२) 'लच्छि करतल'—इस पंक्ति में स्वाभाविक सुन्दर अनुप्रास की छटा के साथ-साथ भाव भी अति कामल और मनोहर अभिव्यक्त हुआ है।

(३) गासाइजी की श्रीरामचरणारविन्दा के प्रति कैसी सुबद्ध भक्ति भावना थी यह इस पद से भलीभाँति प्रकट होता है।

२१६

द्वार हों भीर ही को आजु।

रटत रिरिहा आरि और न, कोर ही तें बाजु ॥१॥

बलि बराल दुवाल दारुन, सब कुभाति कुसाजु।

नीच जन, मन ऊँच, जैसी बाढ मे की खाजु ॥२॥

हहरि हिय मे सद्य बूझ्यो जाइ साबु ममाजु।

मोहु से बट्टैं बतहुँ बाउ, तिह बह्यो, कोसलराजु ॥४॥

दीनता दारिद दले को कृपा-चारिधि बाजु।

दानि दसरथराय के, तुम वानइत सिरताजु ॥६॥

जनम यो भूखो भित्तारी हो गरीब निवाजु ।

पेट भरि तुलसिहि जेवाइय भगति-सुधा सुनाजु ॥५॥

भावाय—हे प्रभो ! आज म सवेरे से ही आपने द्वार पर घडकर बठा है । रें रें करके रट रहा है । गिडगिडाकर माँग रहा है । मुझे भीर किंगी वस्तु के लिए हठ नहीं ॥ एक कौर टुकड़ से ही मेरा काम बन जायगा । जरा-भी कृपादृष्टि कर देने से ही मेरी बिगड़ी करनी सुधर जायगी ॥१॥

(यदि आप यह कहें कि तू काई उद्यम क्या नहीं करता ? तो इसका जवाब यही है, कि) इस भयकर कलियुग में बड़ा ही विकराल दुर्मिच्छ पड़ गया है जितने उद्यम या उपाय हूँ, सभी बुरे हैं । इस युग में घम घम कुछ भी निर्विघ्न पूरा नहीं हो पाता, इसलिए आपसे भीख मागना ही मने उचित समझा है । हूँ तो (कलियुगी) मनुष्य नीचकर्मा, पर मन है उनका ऊँची वस्तु पाने का । यह तो वही बात हुई, जम कोढ़ में छाज हा जाय ॥२॥

(जो-जो पाप कर चुका था, उनके फल भागने का दुःख तो बिलकुल ही भूल गया, और नये-नये विषया के क्षणिक सुखा में मग्न हो गया इसका भी कुछ खयाल नहीं रहा, कि इस 'कोढ़ में छाज' से होनेवाला परिणामरूप दुःख अभी और क्या क्या भोगना पड़ेगा । जब म इन कष्टों से 'याकुल' हो गया, तब) धबराकर कृपालु सत समाज से पूछा कि कहिए मुझ सरीखे पापी को भी कोई शरण में लेनेवाला है ? सन्तो ने तब यही उत्तर दिया, कि एक कोशलेश्वर महाराजा रामचन्द्रजी ही ऐसे हैं, जो तुम्हें अपनी शरण में ले सकते हैं ॥३॥

कृपासिन्धु रघुनाथजी को छोड़कर और कौन दीनता और दरिद्रता को दूर कर सकता है ? महाराजा दशरथ के पुत्र राम राजा ही (सच्चे) दानी हैं, तथा दानिया का बाना रखनेवाला मैं थोड़ा हूँ ॥४॥

(सत समाज के मुख से श्रीरामजी का यश इस भाँति सुनकर) म आज्ञा-म का भूखा, भिखमगा आपके द्वार पर आया है । आप गरीब को निहाल कर देनेवाले हैं । बस अब इस तुलसी को भक्तिरूपी अमृत के समान सुंदर भोजन पेटभर खिला दीजिए (अपने चरणा में इतनी अधिक भक्ति दे दीजिए कि फिर मुझे कभी सासारिक भोगों की ओर न दीडना पड़े) ॥५॥

शब्दाय—रिरिहा—रें रें करके या गिडगिडाकर मागनेवाला । भरि—घड़, हठ । हहरि—हरकर । बाजु = छोड़कर, सिवाय ।

विशेष—(१) 'भीर—जीव के चरम होने की मगल वेला, विषय विरक्ति के प्रादुर्भाव का समय, जो 'भीर ही से सावधान हो गया वही वस्तुतः सचेत है—

'पाव पलक' की सुधि नहीं कर काहू का साज !

बाल अचानक मारसी, ज्यों तीतर की बाज ॥

[कवीर

(२) 'कलि बरान कुसाज—पूणस्पक इस प्रकार कि, कलि = अवृद्धि घम

चैन सत्कम—कृपि अघम—दुर्मिच्छ भयदा—उद्यम का अभाव ।

(३) कृपा-वारिधि बाजु—श्रीवज्रनाथजी का धनुसरण करते हुए श्रीमदृजी ने इसका यह अर्थ किया है—

‘वे गरीबी और दरिद्रता (रूपी पक्षिया) के नाश करने को वानरूप हैं (जो कहो कि बाज तो निंद्यो हाता है, सो नहीं) वे दया के समुद्र हैं, अर्थात् जीव मात्र पर दया करते हैं) ।

फिर भी बाजु का स्वाभाविक तात्पर्य सिद्ध नहीं हुआ । ‘बाजु का अर्थ बाज चिड़िया नहीं, किन्तु ‘छाड़कर, बिना’ यह है ।

२२०

करिय सँभार, कोसलराय ।

और ठौर न और गति, अवलम्ब नाम विहाय ॥१॥

तूझि अपनी, आपना हितु, आप घाप न माय ।

राम । राठर नाम गुर सुर, स्वामि, सखा, सहाय ॥२॥

रामराज न चले मानस मलिन के छल छाय ।

कोप तेहि कलिनाल कायर मुएहि धालत घाय ॥३॥

लेत केहरि को वयर ज्यो भेक हनि गोमाय ।

त्योहि राम गुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥४॥

अकनि याके कपट-करतब अमित अनय अपाय ।

सुखी हरिपुर वसत होत परीछितहि पछिताय ॥५॥

कृपासि-धु । बिलौकिये जन मन की सासति साय ।

सरन आयो देव । दीनदयालु । देखन पाय ॥६॥

निकट बोलि न वरजिये, बलि जाउँ, हनिय न हाय ।

देविहैं हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय ॥७॥

अवन मुख, भ्रू विकट, पिंगल नयन रोष कपाय ।

वीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥८॥

विनय सुनि बिहूँसे अनुज सो वचन के कहि भाय ।

‘मली कही’ कह्यो लपन हैं हँसि, वन सकल बनाय ॥९॥

दर्ई दीनहि दादि सो सुनि सुजन-सदन बघाय ।

मिटे सकट-सोच पाच प्रपच पाप निकाय ॥१०॥

पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय ।

दासतुलसी कहत मुनिगन, जयति जय उरगाय ॥११॥

भाषा—हे कोजवेन्द्र ! मेरी रक्षा कीजिए । आपके नाम को छोड़कर मुझे न तो कहीं और ठिकाना है, और न किसी का सहारा ही (मेरी तो आपके नाम तक ही दोट है, सा आप नाम के नाते से मुझे बचा लीजिए ॥१॥

आप स्वयं समझ बूझकर अपने भेवका का ऐसा क'याण कर देते हं, जैसा (सगे) माता पिता भी नहीं करते । (क्याकि माता पिता मोक्ष का परमानन्द नहीं दे सकते ।) हे रघुनाथजी ! आपका नाम ही मेरे लिए गुप्त देवता, स्वामी मित्र और बल ह । (आपका नाम मेरे लिए जीवन सबस्व ह) ॥२॥

हे नाथ ! आपके 'रामराज्य' में भनिन मनवाले कलिकाल क कपट की छाया भी नहीं पड़ सकती । किन्तु यह कायर कलिकाल उसी क्रोध के कारण मुझ मरे हुए को भी अपनी ओटो से घायल कर रहा ह । (एक तो या हो म अपने दुष्कर्मों के मारे मर रहा हूँ, दूसरे यह दुष्ट विषय-वासनारूपी माघता से मुझे असह्य पीडा दे रहा ह । इसे इतना भी तो भय नहीं कि म 'राम राज्य' म बस रहा हूँ) ॥३॥

जैसे गीदम मेडक को मारकर शेर के बर का बदला चुकाता ह वैसा ही यह मेरे साथ बर्ताव कर रहा ह अर्थात् जब इसकी दाल आपक सामने न गली तब आपके छोटे-छोटे दासा को यह सताने लगा । ॥४॥

यद्यपि महाराजा परीक्षित आनन्दपूर्वक भगवान के परमधाम बहुल में वास कर रहे हं, पर इसके कपट भरे काम, अनीति और अनेक विघ्न-बाधाएँ सुनकर उन्हें भी पछतावा हो रहा ह (इसलिए पछतावा हो रहा ह कि इस पकड़कर हमन क्यों जीवित छोड़ दिया ?) ॥५॥

हे कृपासागर ! तनिक कृपादृष्टि तो कीजिए जिससे इस दास के चित्त की पीडा शांत हो जाय । हे दीनदयालो ! हे देव ! म आपके चरणों का दर्शन करने के लिए आपकी शरण आया हूँ ॥६॥

यदि आप (दयावश) उसे (कलियुग का) पास बुलाकर रोकना नहीं चाहते या उसकी हाय हाय की पुकार सुनकर उसे मारना नहीं चाहते तो हनुमान्जी को ही थोड़ा सा सन्देश कर दीजिए । वे इसकी ओर वैसे ही तानेंगे जैसे सिंह गाय के मुख की ओर घूरता ह ॥७॥

जब हनुमान्जी सास मुँह, टेढ़ी भौंहें और पीली आँखों को क्रोध से लाल कर लेंगे तब पवन कुमार वीर हनुमान् का स्मरणकर इस सबल चित्तवाले कलि का सारा भाव धसा जायगा (अपना सारा पीरप भूल जायगा ॥८॥

मेरी यह विनय सुनकर श्रीरघुनाथजी मुस्कराये और अपने अनुज लक्ष्मण को इन बातों का आशय समझाया (कि, देखा, तुनसी कसा चतुर हूँ ! कसी-कसी बात बना रहा ह ।) । लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा कि यह ठीक तो कहता ह ।' बस अब मेरी सारी बात बन गई (क्योंकि वहाँ सिफारिश भी पहुँच चुकी ह, और सिफारिश भी किसकी, सगे छोटे भाई की) ॥९॥

भगवान् रामचन्द्रजी ने इस शरीर का त्याग कर दिया । (कलियुग की डाँट छपट कर सामने स हटा लिया और अपने रुक्म को अपनी शरण में रख लिया) यह सुनकर सन्तों के घर वषाई बजने लगी (कलि की बाधाधा स छूटकर सब आनन्द उत्सव मनाने लगे) । दुःख चित्ता धन-कपट और पाप-गुन सार नष्ट हो गये ॥१०॥

गुहातीत (मायात्मक तीन गुणा स पर) पवित्र और निष्कण्ट प्रेम एवं विरवास अपने सेवक पर देखकर हे तुनगीदास ! मुनि लोग कहने लगे—उत्तर कीर्तिमाने

भगवान् को जय हो, जय हो ॥११॥

गदाय—सोभार = रत्ना । बिहाय = छोड़कर । भक = भेड़क । गोमाय = गोदड़ । कुदाय = कुघात । साय = शात हो । अकनि = सुाकर । यषाय = विघ्न । सिंगल = पीला । कषाय = लाल । दादि = इसाफ । धमाय = निष्कप । उरुगाय = विष्णु भगवान् का एक नाम ।

विशेष—(१) 'आप माय'

‘त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बभ्रुश्च सखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव, त्वमेव सख मम देवमेव ॥

(२) 'परोक्षित'—एक दिन महाराजा परोक्षित शिखर खेलते खेलते एक ऐसे जंगल में जा पहुँचे, जहाँ एक वृक्षकाय पुरुष एक माय और एक लँगने बँल को मारता हुआ खड़े रहा था । पुरुष ने परना चला कि माय पथिवी ह लँगडा बल धम ह और काला पुरुष ह कलियुग । राजा ने क्या हा कलि का मारने के लिए तनवार स्थान से खींची वह गिड़गिड़ाकर उनक पैरा पर गिर पड़ा । शरणागत जानकर उसे राजा ने छोड़ दिया । पर उसने अपने रहने के लिए राजा से १४ स्थान माँग लिये, जिनमें एक सुवर्ण भी था । राजा जब कि सोच रहे थे प्यास कं मार क्याकुल एक ध्यानावस्थित ऋषि के पास पहुँच । जब ऋषि ने कुछ उत्तर न दिया तब राजा उसे पायलड़ी समझकर उसके गले में एक मग हुआ साँप डालकर चले गये । मुनि के पुत्र ने जब यह सुना तो उसने यह शाप दिया कि वह मदाय राजा साँप के डमने से सातवें दिन मर जाय । उस दिन राजा परोक्षित सिर पर साने का मुकुट धारण किए हुए थे, और सोने में था कलि का वास । इसी स उनकी बुद्धि मारी गई । श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण सुनकर महाराजा सातवें दिन स्वर्गस्थ हो गये । यह कथा श्रीमद्भागवत पुराण में पाती ह ।

(३) 'उरुगाय'—इसका 'उर गाय' पाठ मानकर श्रीवज्रनाथजी तथा कुछ टीकाकारा ने यह ग्रन्थ किया ॥ कि 'हृदय में राम के गुण गाकर किन्तु 'उरुगाय' पाठ ही ठीक है न कि 'उर गाय' । उरुगाय भवान् विष्णु भगवान् को जय हो जय हा'—ऐसा मुनिजन कह रहे हैं । उरुगाय पाठ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी प्रभावली की विनयपत्रिका में पाया जाता है । यही पाठ शुद्ध ह ।

(४) 'विनय मुनि'—यहाँ से लेकर पत्र के अन्त तक गोसाइजी ने अपने मनो राग्य का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया ह और उसमें रहस्यमय विचरण भी । ऊँचे पाठित्य एवं कामकला की अभिव्यक्ति भी अनुपम हुई ह ।

२२१

नाथ ! कृपा ही को पथ चितवत दीन हौं दिनराति ।

होइ धौं बेहि काल दीनदयालु । जानि न जाति ॥१॥

सुगुन, ग्यान बिराम भगनि सुमाधननि की पाति ।

भजे जिनल तिलोकि कलि भष अवगुननि की याति ॥२॥

अति अनीनि-कुरीति भइ भुईं तरनि हूँ ते ताति ।

जाउँ कहूँ ? बलि जाउँ, कहूँ न ठाउँ, मति अकुलाति ॥३॥

आप सहित न आपनो कोउ, वाप ! कठिन कुभाति ।
स्यामघन ! सीचिये तुलसी, सालि सफल सुखाति ॥४॥

भावाप—हे नाथ ! म दोन दिनरात आपकी कृपा की ही बाट जोहता रहता हूँ (यही टक लगाये बठा रहता हूँ कि कब इस दोन पर आप कृपा कर दें) हे दोन दयालो ! पता नहीं कि किस घड़ी आपकी वह कृपा-दृष्टि मुझ पर हागी ॥१॥

सदगुण ज्ञान वराम्य और भवित तथा अच्छे-बच्छे साधनो के समूह कलि को दखत ही व्याकुल हो भाग गया । रह गये पापो और दुगुणा क समूह ॥२॥

बड़-बड़े अयायो और अनाचारो से पथिवी सूर से भी अधिक तप्त हो गई ह । (एही अगार के समान पथिवी पर कोई कसे रह सकता ह ?) अब म कहा जाऊँ : आपकी बलया से रहा हूँ मुझे रहने का कही ठौर ठिकाना नहीं रहा । बुद्धि बड़ी माकुस हो रही ह (कही भागते भी नहीं बनता कि इस पापपूण पथिवी की असह्य ज्वाला से बच सकूँ) ॥१॥

हे पिता ! जब अपनी दह ही अपनी नहीं ह तब दूसरे क्या अपने होंगे ? (साराश, अपना सगा-सम्बन्धी यहा कोई भी नहीं ह ।) सब कठोर दुराचारी ही दिखाई देते ह । (म तो किसी में दया ह और न सदाचार ही) । हे धनरयाम ! तुलसी ज्यो पूनी-फली धान की खेती सूखी जा रही ह अब भी मघ बनकर (भवित जल से) उस सीध दीजिए ॥४॥

शब्दाप—पाति = धरोहर । भुइ = भूमि । तरनि = सूर । सालि = धान । सफल = फला दृष्टा ।

विनय—(१) पथ चितवन —

माँछडियाँ माई परीं, पथ निहारि निहारि ।
जाहूँडियाँ छासा परा, नाम पुकारि-पुकारि ॥
बहुत दिनन की जोबती रतत मुंहारो नाम ।
जिउ तरस सुब मिसन को मन नाहो विधाम ॥

(२) जाउँ कहँ मकुलाति — भक्तवर नितकिशाराजो भो दुनिया स उब कर ऐसा ही कह गय ह—

‘वृंदावन अब रमते हँ दिस दुनिया से धबराया है ।
मानुष-गण्य न भाती है, सग भरकट मोर मुहाना है ॥

२२२

वज्रि जाउँ, और कासा कहौं ?

सदगुनमिधु स्वामि सेवक दिन कहैं न कृपानिधि-सो लही ॥१॥
जहँ-जहँ लोभ लाल लालचबस निरहित चित चाहनि चहौं ।
तहँ-तहँ तरनि तवन उतूव ज्या भटकि कुनरुकाटर गहौं ॥२॥
बाल-मुभाव-वरम विचित्र फनदायक मुनि सिर घुनि रहौं ।
मोका तो मकन सदा एवहि रम दुमह दाह दारन दहौं ॥२॥

उचित अनाथ होइ दुखभाजन, भयो नाथ ! बिबर न हौं ।
अरु रावरो कहाइ न बुझिये, सरनपाल ! सामति सहौ ॥४॥
महाराज ! राजीवबिलोचन ! मगन पाप सताप हौं ।
तुलसी प्रभु जब-तब जेहि-तेहि विधि राम निवाहे निरवहौं ॥५॥

भावाच—बलिहारी ! और किसे जाकर सुनाऊँ ? (अपना राग और किसके प्राण रोऊँ ?) आपके समान सद्गुणों का समुद्र सबका को भलाई करनेवाला और कृपानिधान स्वामी अथवा कहाँ भी नहीं मिलन का (जो आपको समान ही कोई दूसरा मालिक मिल जाता, तो मैं उसी का अपनी सारी यथा क्या सुना देता, आपको कष्ट न होता, पर ऐसा कोई मिलता ही नहीं ।) ॥१॥

जहाँ-जहाँ सोम और लालच से चंचल चित्त में अपने कल्याण की कामना करता हूँ, वहाँ-तहाँ मैं इस तरह निराश होकर लौट आता हूँ जैसे मूय को देखते ही उल्लू भटकता हुआ पेड़ के कोटर में घुस जाता है ॥२॥

जब यह सुनता हूँ कि काल स्वभाव और कम विचित्र फल देनेवाले हैं, तब फिर पटक-पटककर रह जाता हूँ (कुछ उद्यम करने का साहस नहीं होता । इसलिए, कि वहाँ कुछ-का कुछ फल न भागना पड़े, क्योंकि कर्मों की गति बड़ी विचित्र है) । मैं तो सदा एक ही असहनीय और दारुण दाह से जका करता हूँ । (काल, स्वभाव और कम कभी मेरे अनुकूल नहीं हुए सदा प्रतिकूल ही रहे हैं) ॥३॥

मैं दुखों का पात्र रहा सो ठीक ही है क्योंकि हे नाथ ! मैं अनाथ था मेरा कोई धनी धीरा नहीं था और न मैं आपका सेवक हो बना था, किन्तु हे शरणागत रक्षक ! अब आपका कहाकर मैं मैं, न जाने क्या दुःख भाग रहा हूँ, यह समझ में नहीं आ रहा ॥४॥

हे महाराज ! हे कमननेत्र ! मैं पाप-सन्ताप में डूब रहा हूँ । हे नाथ ! तुलसी दास का तो तभी निवाह हो सकता है, जब आप उस तसे उसका निवाह करेंगे ॥५॥

गदाच—लाल=चंचल । तरनि=मूय । कोटर=पेड़ की पोल । सामति=कष्ट ।

विनय—(१) वह-तहाँ कोटर वहाँ—इसका यह भी अर्थ हो सकता है—
'मैं ससाररूपी वृक्ष में रहनेवाला हूँ । अनीति राजि मैं धूमना फिरता हूँ । सरस गवश कभी बाहर भी निकलता हूँ तो शानरूपी प्रचण्ड मूय के सामने नहीं जा सकता । चका चौध लगने से फिर अपने उसी विषय-वासना के कोटर में आ घुसता हूँ ।'

२२३

आपना कचहूँ करि जानिहौ ।

राम गरीबनिवाज राज-मनि, विरद लाज उर आनिहौ ॥१॥

सील सिधु सुन्दर सजलायक, समरथु सद्गुन-भानि हौ ।

पाल्यो है, पालत, पालहुगे, प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ ॥२॥

भरोसो और आइहै उर ताके । ॥१॥

कै कहै लहै जो रामहि सो साहिव, वै आपना बल जाके ॥१॥

वै बलिकाल कइल न सूझत, माह मार मद ठाके ।

कै सुनि स्वामि सुभाउ न रह्यो चित जो हित सब अंग थाके ॥२॥

हो जानत भलिभाति अपनपौ, प्रभु सो सुयो न साके ।

उपल, भोल, खग, मृग, रजनीचर, भले भये करतव ताके ॥३॥

मोको भलो रामनाम सुरतरु सो, रामप्रसाद कृपालु कृपा के ।

तुलसी सुखी निसोच राज, ज्या बालक भाय बवा के ॥४॥

भाषा—उसी व्यक्ति के मन में किसी दूसरे का बल भरोसा हागा जिसे या तो वही श्रीरामचंद्रजी के समान कोई मालिक मिल गया हो या जिसे अपने स्वयं के पुष्पाय का बल हो (मुझे न तो कोई वसा मालिक मिला है जो श्रीरघुनाथजी के समान समर्थ हो और न अपने खुद के पुष्पाय पर रक्तो भर भरोसा है। इसलिए मेरी दौड़ तो एक रामजी तक ही है) ॥१॥

अथवा जिस अज्ञान काम और भ्रमकार में मगलाला हो जाने के कारण भाषण बलिकाल में भूलता हो (क्योंकि मदाघा का सामने उपस्थित मत्स्य भी नहीं दिखाई देती है। मुझ पर माह प्रादि मानक पदार्थों की इतनी कृपा है कि उन्होंने अज्ञान नहीं किया बलिकाल मुझे भूल रहा है और उसके विकारों में से डरकर मैं भगवान् की शरण ले चुका हूँ), अथवा जिसके चित्त पर सब प्रकार से बंधे हुए नागा व हितकारी प्रभु रामचंद्रजी का स्वभाव सुनने पर भी ठीक ठाक न जना हो (भगवान् की पतित-भावना, जन-व्यसता प्रादि कुछ जिसके हृदय-मन्त्र पर अंकित न हुए हो, किन्तु भगवत्कृपा से भर सम्बन्ध में यह बात मैं नहीं कह सकता) मुझे तो सदा ही अपने दीनदयानु स्वामी के स्वभाव का ध्यान बना रहता है ॥२॥

मैं अपना पुष्पाय अपना बल भलीभाँति जानता हूँ (यह मुझे अच्छी प्रकार पता है कि मैं अपने परिमित पुष्पाय से अतिरिक्त हरि भक्ति प्राप्ति नहीं कर सकता हूँ)। और मन श्रीरघुनाथजी के अनिरिक्त और किता स्वामी की ऐसी कीर्ति-भाषा भी नहीं सुनी है (जो इस प्रकार महाप्राप्ति का उद्धार करता हो) पापाणो (महत्या) भोल पछा (जटाप) मृग (मारोच) और राक्षस (विभाषण) इन सब में से किसने शुभकर्म किया है? (मैं सभी धार पापा ये, किन्तु भगवान् ने इन सबका उद्धार कर दिया) ॥३॥

मैंने तो एक राक्षस ही बन्धुवृक्ष के समान सुख देनेवाला बन गया है और यह कृपालु रामचंद्रजी का कृपा में हुआ। (इसमें मैं मरा कोई पुष्पाय नहीं, कि राम नाम पर बन्धुवृक्ष के समान मरी थोड़ा भक्ति हो गई है। यह मैं भगवत्कृपा से हो बना है)। अब तुमका इस अनुग्रह के कारण ऐसा मुग्धा और निरिच्छा हो जो कोई बात अपने माता पिता के राज्य में होता है ॥४॥

भाषा—गुरु भक्त=सब प्रकार से। सारा=यह भाँति। उदर=रक्षक

यहाँ प्रहत्या से तात्पर्य है । निषाच = निश्चित । बचा = बाप ।

विशेष—(१) इस पद में गोसाइजी ने स्मृततया जीव की पीछेपछीनता और भगवदनुग्रह का प्राशय प्रतिपादित किया है । इस पीछेपछीनता में निराशावाद अपना कामरता का लेशमात्र भी नहीं है, प्रत्युत आशावाद और वीरता की ही झलक दोखती है ।

(२) 'मग' मारीच—यह रावण का मामा था । रावण की घाना से मारीच माया-मृग बनकर पंचवटी में पहुँचा । वहाँ इसका अत्यन्त मनाहर रूप देखकर सीताजी ने इसका स्वर्णोपम चम साने के लिए श्रीरामचन्द्रजी से कहा । जब इसे मारने के लिए रामचन्द्रजी गये, और बाद में इसके मरण समय का आत्तनाद सुनकर सीताजी ने लक्ष्मण की भी वही आग्रहपूर्वक भेज दिया, तब धबधब पाकर रावण माश्रम में पहुँचा और सीताजी की रथ पर बिठाकर लका से गया । मारीच श्रीराम का भवन था, किन्तु रावण की प्रेरणा से उसे यह माया रचनी पड़ी । मायामृग के प्रसंग का गीतावली में निम्न लिखित पद बड़ा ही भावमय है

धटे हैं राम, लयन अब सीता ।

पंचवटी बर परनकुटी तर, कह कुछ क्या पुनीता ॥
नपट-कुरंग वनक मनमय सखि प्रिय सो कहति हँसि बाला ।
पाये पालिवेजोग मनु मृग, मारेह मजुल छाला ॥
प्रिया-वचन सुनि विहसि प्रेमवस गवाहि चाप सर लीहें ।
बल्यो भाजि फिरि फिरि चितवत मुनि मख रखवारे चीह ॥
सोहति मधुर मनीहर मुरति हेम हरिन के पाछे ।
पावनि नवनि, त्रिलोकनि, बियकनि बस तुलसी उर आछे ॥

२२६)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।

मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्याण फरा ॥१॥
करम, उपासन, ग्यान, वेदमत, सो सब भाति खरो ।
मोहि तो 'सावन के अर्घहि' ज्यो सूझत रग हरो ॥२॥
घाटत रह्या स्वानि पातरि ज्यो कबहुँ न पेटे भरो ।
सो हौ सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो ॥३॥
स्वारथ औ परमारथ हूँ को 'नहिँ कुजरो नरो ।'
सुनियत सेतु पयोधि पपाननि करि कपि-कपट तरो ॥४॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको बाज सरो ।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौ सिमु भरनि अरो ॥५॥
सकर साखि जो राखि कहौ कछु तो जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम-नामहिँ तें तुलसिहिँ समुझि परो ॥६॥
भाषाय—जिसे किसी दूसरे का भरोसा हो, सो (घोर साधन) करे । मेरे लिए—

तो इस कल्पयुग में कल्याणरूपी फना स फना एक राम नाम ही कल्पयुग ह । तात्पर्य यह कि मुझे तो राम नाम-द्वारा ही भगवद्भक्ति प्राप्त हुई ह । किसी को यदि किसी अथ साधन का भरोसा हो, तो वह भले ही उसे साधे ॥१॥

कमवाएड, उपासनाकाएड ज्ञानकाएड एव वैदिक मिथान्त ये सभी सध प्रकार से सच्चे ह पर मुझे तो सावन के अघे की भाँति जहाँ भी देखता हूँ हरा ही हरा रंग दोखता ह । भाव यह है कि जैसे यदि कोई सावन में हरी-हरी घास देखता हुआ अघा हो जाय, तो उस सदा हरियाली का ही भास रहेगा । उसी प्रकार मुझे सदा सवत्र श्रीराम-नाम ही सूझ रहा है । ज्ञान कम आदि मेरे ध्यान में ही नहीं आ रहे, यद्यपि व भी सच्चे हैं ॥२॥

म कुत्ते की नाद धनेक जूठी पतला की आटाता फिरा, पर कभी पेट नहीं भरा । आज मैं नाम-स्मरण करने से अमरतरस परोसा हुआ देखता हूँ । भाव यह ह कि मने अनेक साधन साधे पर किसी से भी परमानन्द की प्राप्ति नहीं हुई । अब राम-नाम के प्रभाव से मुझे ब्रह्मानन्द रस-मान करने को मिल गया है ॥३॥

मेरे लिए राम नाम स्वाय सथा परमाय दोनों काही माधक ॥ यह बात कुजर ह अथवा नर' की-सी दुविधा भरी नहीं है (क्याकि मुझे तो प्रत्यक्ष प्राप्त ह) । सुना ह, कि राम-नाम के प्रभाव से बन्दरा की सेना पत्थर का पुन बनाकर समुद्र को पार कर गई थी ॥४॥

जहाँ जिसका प्रेम और विश्वास है, वही उसका काम पूरा हुआ ह (यह अमिट सिद्धांत ह) मेरे माँ आप तो ये दोना अक्षर 'र' और म —ह । इन्ही के आगे म बाज हठ मे आ रहा है, मचल रहा है (ओ भी माँगू गा, ये दोना अक्षर मुझे वही देंगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं) ॥५॥

यदि म कुछ भी छिपाकर कहता होऊँ तो भगवान शिव साक्षी हैं मेरी जीम मनकर गिर जाय । अर्थात् मने यहाँ कोई 'कवि-कल्पना' से काम नहीं लिया मच सच सुनाया ह । वम सुनसीदास ने तो अपना कल्याण एक रामनाम म ही समझा ह ॥६॥

गब्दाय—करो=फला है । पातरि=पतल । परसि = परोसा हुआ । नहि कुजरो नरो = नरा वा कुजरो वा अर्थात् हाथी ह वा मनुष्य, एभी कोई दुविधा इसमें नहीं । सरो=पूरा हुआ । आखर = अक्षर । अरनि = हठ । अरो = घट गया है, जित पकड़ बठाहू ।

विनय—(१) गृहि कुजरो नरो —गुरुक्षेत्र में जब द्राणाचार्य, कौरवा का पथ लेकर पाडवा की सेना का अघाघुष सहार करने लगे, तब कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा कि अब द्राणाचार्य का वध करना ही उचित होगा । गुरु-हत्या करने से अर्जुन कुछ हिचका । जब यह न हो सका तब श्रीकृष्ण की सलाह से भीमसेन ने अश्वत्थामा नामक एक हाथी को मार गिराया । अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के पुत्र का भा नाम था और वह उन्हें बड़ा प्यारा था । यह सुनते ही द्राणाचार्य ने धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा कि कौन अश्वत्थामा मारा गया है ? धर्मराज ने दबी जवान से कहा—'अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुजरो वा अथवा अश्वत्थामा नर मारा गया था हाथी । नर मारा गया तो आर से कह दया और कुजर यह धीरे से । नीति का पालन करते हुए धर्मराज ने सत्य की रक्षा करने की चाही पर यह न हो सका । राजनीति और धर्म में भारी अंतर ह । असत्य बोलने का कब कब धर्मराज पर लाग ही गया । पुत्र का मरण सुनकर ज्योंही द्रोणाचार्य मूर्च्छित-मे

हुए, त्योंही धृष्टद्युम्न ने उनका मस्तक काट लिया। तभी से 'नरो वा कुजरो वा' यह लोकोक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ।

(२) दाढ़ आखर — रकार' और मकार। थोरामानुजाचार्य ने राममंत्र के 'र' और म इन दोनों अक्षरों का यह अर्थ किया है

रकारार्थो राम सगुणपरमश्रव्यजलधि—

मकारार्थो जीव सकलविधि ककयनिपुण ।

तयोमध्याकारो युगलमयसद्वयमनयो—

रमयाह द्यूते त्रिनिपमसुसारोऽयमनुस ॥

२२७ १५

नाम राम, रावरोई हित मेरे।

स्वारथ-परमारथ-सायिहू सो भजु उठाइ कहौ टेरे ॥
जननी जन्म तज्यो जनमि, करम बिनु विधिहु सृज्यो भवडेरे।
मोहौ सो कोउ-कोउ कहत रामहि को, सो प्रसग बेहि बेरे ॥२॥
फिरयो जलात बिनु नाम उदरलगि, दुखउ दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रमाल फल भव ही बबुर बहेरे ॥३॥
साधत साधु लोर-परलोकाहि सुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के भवलम्ब नाम बो, एक गांठि कइ फरे ॥४॥

भावार्थ—हे रामजी ! आपका नाम ही मेरा (सच्चा) हित करनेवाला है। यह बात मैं हाथ उठाकर स्वाथ के और परमाथ के सभी सगी सायिया से पुकार पुकारकर कहता हूँ (धोपणा कर रहा हूँ) ॥१॥

मात पिता ने मुझे जन्म देकर ही ध्याइ दिया था। और ब्रह्मा ने भी अभाग और कुछ धैर्य सा बनाया था। फिर भी कोई कोई मुझे 'राम का' कहते हैं, सो यह किस नाते से कहते हैं ? (क्याचित् इसी राम-नाम के प्रताप से क्याकि राम नाम स्मरण करने से ही 'भागवत' का पद मिलता है, शयथा नहीं) ॥२॥

जब मैं राम नाम के शरण नहीं हुआ था तब मैं भरने को मैं (द्वार द्वार पर) लनाता फिरता था। मेरी आद देखकर दुःख को भी दुःख होता था (मेरी बड़ी ही दय नोय दशा थी) पहले मेरे लिए जो बबुर और बहू के वृक्ष थे आज उन्हीं पेड़ों से आम के फल मिल रहे हैं। (अभिप्राय यह, कि जो लोग पहले मेरा विरादर करते थे, वे ही आज राम-नाम के प्रभाव से मेरा आदर कर रहे हैं) ॥३॥

सतजन तो (शास्त्रों को) सुनकर और मनन कर अनेक साधना से, अपना लोक और परलोक बना लेते हैं (शास्त्रों को सुनते हैं उन पर विचार करते हैं, अनुशीलन करते हैं और तदनुसार चलते हैं तब नहीं वे अपना साह-परलोक सुधार सकते हैं), किन्तु तुमसो को तो एक राम-नाम का ही सहारा है। उसे गाँठ तो एक ही हाता है, लपेटे चाहे जितने हों (साधन चाहे अनेक हों, पर सबका आधार एक राम-नाम ही है) ॥४॥

भावार्थ—रावरोई = आपका ही। भवदर = बटव। चाते फिरया = लवनाता

हुया दीन-सा जहाँ-नहाँ धूमता रहा । बबुर = बबुन । बहेर = बहटा । रमान = राम ।

विनय—(१) 'जननी भवडर—यह किंवदन्ती बहुत कुछ प्रसिद्ध है, कि गोसाइजी की जन्म पत्नी में कुछ एम प्रतिष्ठाकारी ग्रह था गये थे, जिससे उनका माता पिता ने, ज्योतिषी की राय से उन्हें बचपन में ही त्याग दिया था । 'अनिष्ट ग्रहों के कारण त्याग देना यह मत ज्योतिष के किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं पाया जाता केवल 'महोत्तम-वितामणि' नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख है । 'महोत्तम-वितामणि' गोसाइजी के बाद की रचना है । इस पद तथा विनय ऐसे ही पद्यों से लोका न यह भय लगा दिया कि गोसाइजी माता पिता द्वारा पतित्यक्त बानर था । साधन का बात है । कब ही प्रतिष्ठा ग्रह गया न हो, कोई माँ-बाप अपनी सत्ता की या नहीं त्याग देता है । यह सम्भव है कि इन्हें छाहकर इनका माता पिता बचपन में ही परसाङ्गामां हा गया हो, और यह निराश्रय होकर इधर उधर भटकते फिर रहे । और विधिद्वारा सुजया भवडर' इसका भय साधारणतया यही है कि कहा न भी मुझे ऊपट्याङ्ग-सा बनाया भाग्यहीन रहा ।

(२) 'किरयो हेर—इसी प्रसंग का 'कवितावली' में निम्नलिखित कवित्त मिलता ॥ देखिए—

'जायो कुल मगन, यथावना बजायो मुनि
भयो परित्याप पाप जननी जनक की ।
झारे तैं सत्तात बिचलात द्वार द्वार दीन
जानत हों चारफल चार ही जनक की ॥
तुलसी, सो साहिब समथ को सुसेवक है
मुनत सिहात सोच विधिहू गनक की ।
नाम राम ! रावरा समानो किषी बाबरी
जो करत गिरी तैं गुह नून ते तनक की ॥

(३) 'लहत रसात बहरे—श्रीवज्रनाथजी इसका यह भय करते हैं बबुर बहेरा के बूच तैं रसात फल पाया । भाव पूर्व पिशाच विधि द्वारा राम भक्ति लाभ भई, यह भक्तमाल में प्रसिद्ध है ।

(४) 'एक गाँठि बड़ फेर—राम-नाम के आधार पर ही सारे साधन इन्ता-पूवक अवलम्बित हैं ।

॥ २२८

प्रिय रामनाम तैं जाहि न रामो ।

ताकी भलो कठिन कलिकालहूँ आभिष्य-परिनामो ॥१॥

सकुचत समुझि नाम महिमा मद-लोभ मोह कोह कामा ।

राम-नाम जप निरत मुजन पर करत द्यह घोर घामो ॥२॥

नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सराहूँ जामो ।

जो मुनि सुमिरि भाग भाजन भइ मुकुटमोल भीन भामो ॥३॥

वाल्मीकि भजामिल के कहु हूँ तो न साधन-सामो ।

उलटे, पलटे नाम महातम गुजनि जितो ललामो ॥४॥

राम तें अधिक नाम-वरतव जेहि किये नगर गत गामो ।

भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से वामो ॥१॥

भावाय—जिसे राम-नाम की अपत्ता श्रीरामचन्द्रजी भी प्यार नहीं ह (जिस स्वयं श्रीरामचन्द्रजी २० उनका नाम अधिक प्रिय ह) उसका इम करान कलिकाल में, आदि, मध्य और अन्त तानों हा कालों में कल्याण हागा (क्याकि कलियुग में मुक्ति का देनेवाता हरि-नाम-स्मरण ही ह । जो नामानुय हागा, वह सदा सर्वथा सुखी रहेगा ॥) ॥१॥

नाम की महिमा ममभक्त अहकार, लोभ, अज्ञान क्रोध और काम भी सकुचा जाते ह, सामने नहीं आते । जो सज्जन सदा राम-नाम-स्मरण करते ह उन पर कटी घूप भी छाया कर देती ह । (कठिन-से-कठिन अविष्ट भी इष्ट हा जात ह, बर उडे दुख भी सुख में परिणत हा जात हैं ॥) ॥२॥

यदि कोई कहे, कि नाम के प्रभाव से पत्थर पर कमल अकुरित हुमा ह, तो उसे सच ही मानना चाहिए । (नाम के प्रभाव से असम्भव वानें भी सम्भव हो जाती ह ॥) जिस नाम की सुनकर और जपकर भीलनी शबरी भी भाग्यवती शीलवती और पुण्य मयी बन गई (तो क्या शिला-कमल वाली असम्भव घटना क्या सम्भव नहीं हा सकती ?) ॥३॥

वाल्मीकि और अजामेल के पाम न तो कोई साधन था और न कोई सामग्री ही (न योगाभ्यास किया था, न यज्ञ-यागान्त्रिक ही) किन्तु उहाने भी, उठते पुण्डे राम-नाम के माहारम्य से, धुषकिया से जबाहरास जीत लिये ॥४॥

नाम का शक्ति श्रीरघुनाथजी से भी बढी ह । उसने प्रामोण मनुष्य की चतुर नागर बना लिया (जिनकी बोलने रहन, उठन, बैठने की भी माग्यता नहीं थी, व शिष्ट, ब्रह्म और महात्मा हो गये) । अधिक क्या, जिस जपकर तुलसीदास मरीछे घुरे जीव भी डन की चोट से, अछड़ हो गये (वीर्या भी अग्नियाँ हो गई ॥) ॥५॥

भावाय—परिनामो=(परिणाम) अन्त । कोह=क्रोध । शिला=पत्थर । सरोरह=कमल । जामो=जम उठा, अकुरित हुमा । भाग भाजन=भाग्यवती । भीन भामो=भील की स्त्री शबरी । सामो=सामान । जितो=प्राप्त कर लिया । ललामो=(ललाम) यहाँ रत्न से तापय ह । नगर-रत=नागर शहर म रहनवाने चतुर मनुष्य । गामो=ग्रामीण । बजाइ=बजा बजाकर ।

विनय—(१) प्रिय रामो—भक्तपुण्य हनुमान्जी ने भी यही बात कही ह—
राम त्वत्तोऽयि नाम, इति मे निश्चला मनि ।

त्वया तु स्तारिताऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रम् ॥

रामचरितमानस में—

निगु न ते इहि भानि बड, नाम प्रनाय अपार ।

बहुरे नाम बड राम ते, निज विचार अनुसार ॥

राम भक्तहित भरतनु घारी । सति सज्जुट किय साधु सुपारी ॥

माम सप्रेम जपत अनयासा । भक्त होहि मुद मगत दासा ॥

राम एव तापत तिय सारी । नाम कोटि खल कुमनि सुपारी ॥

रिपिहित राम गुह्य गुप्त ॥ सति गत गुप्त कीन विचारो ॥
 सति शेष गुप्त शत दुरागा ॥ सति रामतिनि रवि विनि गंगा ॥
 भजेउ राम भाव भव भाव ॥ भवभवभवता नाम प्रभा ॥
 दक्ष यो प्रभु वात गुहाया ॥ जनमन अविन राम विष दान ॥
 तिसिपर निजर दम गुहाया ॥ नाम सारसनि-वगुण निर-दा ॥

सबरो गोप गुणधरनि गुमनि दात गुहाय ॥

नाम उपादे तिमन रात, बरविदिग गुहाय ॥

राम गुह्य विभीषा शोक ॥ रागे सरा जान तय शोक ॥

राम अश्व मरीच निषाणे ॥ सोच येर यर विरद विराते ॥

राम भावु वपि-वटव बनोरा ॥ सेनुयेनु राम कीन न घोरा ॥

नाम सेत भव सिधु गुहाही ॥ बरह विचार गुप्त मन माही ॥

राम सकुल रन रावन मारा ॥ सोय सहित निरुपुर वगु घारा ॥

राजा राम अवध रजधानी ॥ गायत गुन गुर मुनि बरवानी ॥

सेयव सुमिरतनाम सप्रोती ॥ विदुलम प्रवत मोह दल जीती ॥

किरतसनेहमगन गुप्त अपने ॥ नाम प्रसाद सोय गहि तपने ॥

गोसादजी ने ही महो भनव अनुभवो साधु सदा न राम-नाम का एसा ही प्रभाव
 कहा ह । महाप्रभु भक्त य देन ॥ नाम-कीर्तन को हा सबस अधिक महत्त्व दिया ह । कबीर
 साहब ने भी नाम की भारी महिमा गाई ह

राम का नाम ससार में सार है राम का नाम है अमल घानी ।

राम के नाम से कीटि पातक टरें राम का नाम बिश्वास्त भानी ॥

×

×

×

कहाँलीं कहीं अगाध लीला रची, राम का नाम काहू न जानी ।

राम का नाम त कृष्णगीता कभी बांधिया सेत सब मम जानी ॥

ब्रह्म सनकादि कोई पार पाव नहीं तानु का नाम कह राम राया ।

कहू कबीर कह गुरु सतहू कीक कर राम का नाम जो पृथो साया ॥'

अ-म-त्र—

सू म मर अजपा मर अनहद ह मरि जाय ।

नाम सनेही ना मर कह कबीर सप्रभाय ॥'

(२) वरत छाह घोर घामो —प्रमाण ह—

'किये जाहि छाया जलद सुखद बहे बर आत ।

सस मय भयउ न राम कहें जस भा भरतहि जात ॥

[रामचरितमानस

(३) 'उलटे ललामो

उलटा नाम जपत गग जावा । बाल्मीकि भे बहू समाना ॥'

[रामचरितमानस

उलटे नाम की कथा सस्कृत के किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं पाई जाती ह ।
 सस्कृत के अनुसार मरा मरा' का कुछ अर्थ भी नहीं होता । आपा म भी 'मारो, मारो

होता है, 'मरा मरा' नहीं। था दबनारायण दिवने का यह अर्थ ठीक जचना है कि जीवों की रक्षा करना तो सीधा नाम अपने का सार है, और हिंसा करना या बुरा करना उल्टे नाम का जप है।

(४) दाहिने बायो'—कवितावली में अपने विषय में गोताइजी ने स्वयं कहा है—

‘राम-नाम की प्रभाव पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागन न रामपद,
सूझ एतो बडो अचरजु बेखि सुनी सो ॥’

२२६ GmE

गरेगी जीह जो कहीं और को हों।

जानकी-जीवन। जनम-जनम जग ज्यायोतिहारेहि कोर को हों ॥१॥

तीन लोक, तिहुँ काल न देखत सुहुद रावरे जोर को हों।

तुम सो कपट करि कलप कलप इमि हूँ ही नरक घोर को हों ॥२॥

वहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियो भौतुवा भौर को हों।

तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बडे ठेकान ठौर को हों ॥३॥

भाषा—यदि मैं यह कहूँ, कि मैं रामजी का छोड़कर किसी दूसरे का हूँ, तो मेरी यह जीम गन जाय। हे श्रीजानकीवल्लभ। मैं तो इस ससार में आपके ही दुबडा से (जूटन से) जी रहा हूँ ॥१॥

तीनों लोकों और तीनों कालों में (पृथिवी पाताल और स्वर्ग में, तथा भूत वर्तमान और भविष्यत में) आपकी बराबरी का कोई दूसरा हिस्सा नहीं दिखाई दिया। यदि मैं आपके साथ छल कपट करूँगा तो मुझे धार नरक का, कल्प-कल्प में बीता होना पड़ेगा (क्योंकि आप सब-बायी के आगे कपट जान बूझ तक चल सकेगा ?) ॥२॥

क्या कहा जो कलियुग ने मिनकर मेरे मन का भँवर का भौतुवा बना दिया ? भाग्य यह है कि भौतुवा जन्म जन्म में रहता हुआ भी जल के ऊपर ही तरता रहता है उसमें डूब नहीं सकता। वैसे हाँ कलि ने यद्यपि मुझे भव नदी में डाल दिया है तो भी मैं आपके प्रताप से, उसमें बहूँगा नहीं, ऊपर ऊपर ही तरता रहूँगा। विषय भाग मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेगा। इसी बल भराध पर तुलसीदास सदा शान्त रहता है, कि वह बड ठौर-ठिकाने का रहनेवाला है। (श्रीरघुनाथजी के राजदरबार का गुलाम है। कलियुग उसका क्या बिगाड़ सकता है) ॥ ॥

भाषा—गरगा=गन जायगी। ज्याया=जिनाया हुआ। जार=(जो) बराबरी। भौतुवा=छोटा-सा बाना बाड़ा जो प्रायः जन्म में नावा के पास रहा करता है।

विशेष—(१) 'जानका' को हों—यदि जीव श्रीजानकी-जीवन का गुलाम होकर नहीं रहा, तो उसका जीना न जाना बराबर ही है—

‘ति’ह सँ सर सुखर स्वान भले, जइयावत जे न बहें बछुय ।
सुसतो जेहि राम सों गेट गरी सों सरी पगु बूछ विषा न इ ॥
जननी बत भार मुई दस मास, गई बिन बास, गई बिन छ ।
जरि जाउ सो जोबा, जानबोताय । जिय जग में तुम्हरा दिन हू ॥’

[कवितावली

भक्त-र प्रह्लाद न कहा ह —

नास त्रिजस्य वैषत्वमृषित्य वा गुरात्मना ।
प्राणनाथ मुकुटस्य न यन न महंमता ॥
न दान न तपो नेज्या न गोच न व्रतानि च ।
श्रीयतेऽमलपाभवत्वा हरिपदविदम्बाम् ॥

[श्रीमद्भागवत

(२) ‘मुद्द — श्रीरामजी के समान कोई दूसरा यथा और हित कहाँ है ?

हनुमान्जी कहत ह—

‘बह हम पगु सावामृग चचल बात कहों में विद्यमान की ।
कहें हरि सिव-अज पूज्य ध्यानधन कहि बिसरत वह लगनि दान की ॥’

[गीतावली

अकारन को हित और को है

विरद ‘गरीब निवाज’ कौन का भौह जासु जन जोहै ॥१॥

छोटे बडो चहत सब स्वारथ जा विरचि विरचो है ।

कोल कुटिल कपि भालु पालिको कौन कृपातुहि सोहै ॥२॥

काको नाम अनख भालस कह अथ अवगुननि विछोहै ।

को तुलसी-से कुसेवक सग्राहो, सठ सब दिन साइ-द्रोहै ॥३॥

भावाध—विना ही किसी कारण के हित करनेवाला (श्रीरामचन्द्रजी का छोड़ कर) और कौन ॥ ? गरीबों को निहाल कर देन का बाना किसका ह कि जिसकी भूकुटी की ओर यह जन देखा करे ? ॥१॥

छोटे या बडे जो भी ब्रह्मा के रचे हुए ह वे सभी अपना स्वाध साधना चाहते हैं (विना स्वाध के कोई किसी का भला नहीं करता) भला भोल, बदर और रीष प्रादि का पालन पोषण करना किस कृपालु स्वामी को शोभा देता ह ? ॥२॥

ऐसा किसका नाम ह जिसे आगत्य या क्रोध के साथ भी सेन से पाप और दाप दूर हो जाते ह ? (श्रीराम नाम ही ऐसा ह) जिसने सदा मूलतावश अपने स्वामी से द्रोह किया ह, ऐसे तुलसी-सरीखे नोच सेवक को भी किसन अपना लिया ? ॥३॥

न दाप — जोह—देखे । सोह—शोभा देता ह । भगवत्—क्रोध ।

विनोद—(१) भौह जोह — भौह जोहन का अर्थ कृपा कटाक्ष की प्रतीक्षा करनी, अनुग्रहीत होने की आशा करनी ।

(२) 'छोटो विरघो ह—कहा भी ह—

सुर नर मुनि सब ही की रीती । स्वारथ लागि करहि ये प्रीती ॥

तथा—

'जगत में झूठी देखी प्रीति ।

अपने ही सुख सों सब लागे, क्या दारा क्या मीत ॥

मेरो मेरो सभी कहत हैं, हित सो बांध्यो चीत ।

अतकाल सगी नहि कोऊ, यह अचरज की रीत ॥

मन मूरख अजहै नहि समुझत, सिख द हारयो मीत ।

'नानक' भव जल पार पर जो, गाव प्रभु के गीत ॥'

(३) 'कोल'—यहाँ निपाद और शबरी दोनों से ही तात्पर्य है ।

(४) 'अमल आलस'—कहा भी ह—

'भाव कुभाष अनख आलसहू । नाम जपत मगल दिसि बसहू ॥'

[रामचरितमानस]

२३१

और मोहि को है, काहि कहिहौ ?

रकराज ज्यो मन का नाराध बेहि सुनाइ सुख लहिहौ ॥१॥

जम-जातना, जोनि सबट सेव सहै दुमह अर सहिहौ ।

मोरो अगम, सुगम तुमको प्रभु । तउ फलचारि न चहिहौ ॥२॥

खेलिये को खग मग, तरु किंकर ह्वै रावरो राम ही रहिहौ ।

यहि नाते नरकहुँ सचु पैहीं, या विनु परमपदहुँ दुख दहिहौ ॥३॥

इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौ ।

दीजे बचन कि हृदय आनिये तुलसी को पन निबहिहौ ॥४॥

भाषा—हे नाथ । मेरे दूसरा कौन हूँ मैं (तुम्हें छोड़कर) जिससे (अपनी बात) कहूँ ? मेरी कामना तो ऐसी है जगो रक की राजा बनने की होती है (प्रथवा मैं तो मैं निपट बगल, पर ममूवे राजाभा के अगे बाँध रहा हूँ । तात्पर्य यह कि साधन तो एक भी नहीं, पर चाहता हूँ मोक्ष से भी महान् ध्यान ।) तो यह मनोरथ किसे सुनाऊँ, कौन मेरी सुनकर पूरी करेगा ? ॥१॥

यम-यातनाएँ एवं अनेक योनियों में दास्य दुःख भोगे हूँ और भोगूँगा । हे प्रभो ! मुझे अथ, यम काम और मोक्ष की लालसा नहीं है । मेरे लिए तो ये परम दुःख हैं पर तुम यदि चाहो, तो सहज में ही दे सकते हो ॥२॥

(ता मुझे चाहिए क्या गो सुनिए) हे रामजी । मैं तो तुम्हारे विहार करने का पक्षी, पशु, वृक्ष और बकल पर्यटन करने में रत चाहता हूँ । इस जाने से मुझे नरक में भी सुख मिलेगा और यदि यह कामना पूरी न हुई तो मुझे मोक्ष की भी लालसा नहीं, क्योंकि बिना इस सुख के मैं स्वर्ग भी नहीं जाऊँगा ॥३॥

इस दास के मन में, बस, यही एक कामना है कि वह सदा तुम्हारा जूती पकड़े

रहे, (शरण में पना रहे) या तो मङ्ग वचन में (कि हम तरो मङ्ग गावा पूरो पर देंगे) या हम बात का भा में निरम्य कर गा कि हम तुनगा का मङ्ग प्रण पूरा कर देंगे ॥४॥

शवाय — राचु=गुग रिथाम । पानही=जूनी ।

विशेष—(१) सलिव रहिहो — मुक्त जा रिहग-यानि में जम सेना पडे तो तुम्हारे खेलने के शुभ सारिका, मार धादि हाऊ जा पनु यानि में जाना पडे, तो तुम्हारा घोडा, हाथी, हिरण धादि हाऊ, और यानि किसी वृक्ष का ज म लना पडे, तो तुम्हारे विहार-स्थल का बढम्ब, रसाल, तमान धादि बनू । मङ्गतर सलिउकिशोरो कहते ह—

‘जमुना पुलिन कुज गहवर की बोकिल ह्व ड्रुम कूक मचाऊँ ।
पद पकज प्रिय ताल मधुप ह्व मधुरे मधुरे गुन गुनाऊँ ॥
कूकर ह्व अन बोयिन डोली, बचे सीप रसिकन के पाऊँ ।
सलितकिशोरी’ भास यही अज रज तज अनत न जाऊँ ॥

और रसखानि का भी यह मनोरंज्य जरा देविए

मानुष हीं तो बही रसखानि बसो अज गोकुल पाव के ग्वारन ।
जो पनु हीं तो कहा प्रमु मेरो, चरीं नित न द की धेनु मँसारन ॥
पाहन हीं तो वही गिरि को जो घरपी कर छत्र पुरंदर धारन ।
जो लग हीं तो बसेरो करीं मिलि कासि-दी कूल बढव की डारन ॥

(२) यहि नात दहिहो — बनिवर विहारो का न्यो भाव पर एक सरस

बोहा ह

जो न जुगति पिय मिलन की धूरि भुक्ति दुख दीन ।
जो सहिये सग सजन तो घरक नरक हैं बीन ॥

सुकवि अहमद भी अपना स्वर मिला रह ह—

अहमद टाक सराहिये जो प्रीतम गल बाह ।
कहा करी बकुल ल, कलपकूट की छाह ॥

२३२

दीनवधु दूसरो कहें पावो ?

को तुल विनु पर पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावो ॥१॥
प्रभु अकृपालु कृपालु भलायक जहँ-जहँ चितहि डालावो ।
इहै समुक्ति सुनि रही मौन ही कहि भ्रम कहा गँवावो ॥२॥
गोपद डूडिव-जोग करम करी वातनि जलधि थहावो ।
अनिलालची काम किंकर मन, मुम रावरो कहावो ॥३॥
तुलसी प्रभु जिय की जानत मग, अपनो कछुव जनावो ।
सो कीजे जेहि भाति छाडि छल, द्वार परो गुन गावा ॥४॥

भावाय — दीना का बधु आपके (जमा) दूसरा वहाँ मिलेगा ? हे नाथ ! आपके

छात्र पराई पोर मममनेवाना शीर की है ? जिसने धागे में अपनी दुःख रोजा फिरे ? (मिवा श्रीरामजी वं न कोई परोपकार करनेवाला है, न दूसर का दुःख जाननेवाला और उसे साधना देनेवाला है) ॥१॥

जहाँ जहाँ मैं अपने मन को दोलाना हूँ, वहाँ-वहाँ कहाँ तो ऐसे स्वामी मिलत ह जिन हृदय में दया नहीं, और कहाँ ऐसे जादयावान तो ह परतु प्रसमय ह । (नाममा की वृत्त से क्या लाभ ?) यह मुन पमककर चुन हो रहता है क्योंकि ऐसा के धागे कुछ कहना अपना मरम गैवाना ह । (मेद सुल जायगा और कुछ हागा भी नहीं, इसमें मोन धारण किए बड़ा रहता हूँ) ॥२॥

कम तो ऐसे ऐसे किया करता हू कि गाय के खुर भर जल में डूब जाऊँ (चु लू भर पानी में डूब मऊँ), पर बातें बनाकर समुद्र का बाहल रहा हूँ । (कोरी कयनी हो कयनी ह, करनी रती भर भी नहीं) । मेरा मन बड़ा ही लातुप ह और काम का दास ह किंतु मुख से धापका सेवक बनता फिरता हूँ (हृदय में कामदास हूँ और ऊपर से रामदास । इस पावड का भी कोई ठिकाना !) ॥३॥

हे नाथ ! धाप तुनसी के मन की ता सभी (दुरी भरी) बातें जानने हो ह, तो भी मैं अपनी कुछ बातें बतलाना चाहता हूँ । कुछ ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें कपट छोड़ कर सच्चे हृदय से आपन द्वार पर पडा पडा केवल आपके हा गुण गाय कऊ ॥४॥

गवदाय—पात्र—पमक सकेगा । प्रवायक—प्रवाय ।

विनय—(१) 'अनि साधनी कहाया —कशीर साह्य कहन है—

'साधु भया तो क्या भया भला पहिरी चार ।

चाहर भेय बनाइया, भीतर भरी भंगार ॥'

(२) द्वार गाथा कविश्वर त्रिहारी भी ऐसा ही कहन ह—

हरि, कीजत तुम सो यहै, तिनती बार हजार ।

जेहि नहि भाति डरयो रहौ, परयो रहौ बरवार ॥

२३३ *Importat*

मनोरथ मन को एके भाति ।

चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल, मनसा अथ न अधाति ॥१॥

करमभूमि कलि जनम, कुसंगति, मति विमाह मद माति ।

परत पुजाग कोटि क्या पैयत परमारथ पद साति ॥२॥

मेइ साधु गुरु, सुनि पुरान सुति नूतनो गग राजी तांति ।

तुलसी प्रभु मुमाउ सुरत सो ज्यो दरपन मुख काति ॥३॥

भावय—मन की अभिलाषा भी एक ही प्रकार की ह । वह ऐसे पुण्यों के फल की इच्छा करता ह, तो मुनिषा के मन का भी दुःख ह जयात त्रिम परमपद के विषय में मुनिजन मन में विचार भा नहीं करने । किंतु पाप करने से तपनि रहा हा रही ह (दोना काम एक साथ कैसे हा ? पाप भी बमाता जाय और पुण्य पत्र का भी इच्छा करे) ॥१॥

वमभूमि भारतवर्ष में जन्म भी लिया, तो क्या हुआ ? क्याकि बलिपुत्र में जन्म,

नीचा का सग और ग्रहकार तथा अज्ञान से मतवाली बुद्धि एवं बराडा बुर-बुर कर्म, इन सब बुयोगा स परमपद और पराशान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? (इन अनिष्टों का कारण शान्ति-पद दुलभ हो दीखता है) ॥२॥

सत्ता और गुरु की सेवा करने तथा वन पुराणों के पारायण स परम शान्ति का ऐसा निश्चय हो जाता है, जमे सारगो के बजत ही राग पहचान लिया जाता है । (पर्याप्त जैरा सारगो छेड़त ही गानशाला राग का स्वरूप पहचान लेता है उसम तनिक भी सन्देह नहीं रहता, उसी प्रकार भुरजना की सेवा से तथा बदन-पुराणों के सुनने से मुझे वन विश्वास हो गया है कि मुझे परमपद प्राप्त हो जायगा) हे तुलसी । प्रभु रामचन्द्रजी का स्वभाव तो कल्पवृक्ष के समान अवश्य है (जो उनसे मांगा जाता है वह मिल जाता है) किंतु साथ ही वह ऐसा है जैसे शीश म चेहर का प्रतिबिम्ब । (भाव यह है कि जसा मुह बनाकर या बिगाड़कर हम वपण में देखेंगे वसा ही वह दिखाई देगा । इसी प्रकार भगवान का पबुच तो अवश्य है किन्तु उस वृक्ष के नीचे बैठकर हम जसी इच्छा करेंगे वैसा ही फल मिलेगा) ॥३॥

नवाथ — सुकृत=पुण्य । माति=मतवाली । शान्ति=शान्ति । कांति=कांति, सौंदर्य ।

विशेष — इस पद में भगवत्कृपा और जीव के पुण्याय का साथ साथ विवचन किया गया है । एक ओर कर्मों का विवचन हुआ है तो दूसरी ओर भगवत्कृपा का सुदृढ विश्वास प्रकट किया जाता है । भक्तिमाग म यह मिथ्यात बड़ा उचा माना गया है । पहले अंत करण शुद्ध करके ही भगवान के सम्मुख जाना चाहिए भगवत्कृपा दीय वपण में स्वच्छ मुख का दखना चाहिए । पालडियो का ता उस वपण से दूर हो रहना अच्छा । कबीर साहब कहते हैं—

‘मुखड़ा क्या बेले दरपन में तेरे क्या घरम नहि मन म ?

२३४ गुंजर

जनम गयो वार्दिहि वर बीति ।

परमारथ पाले न परया कछ, अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥

खेलत खात लरिखपन गा चलि, जावन जुवतिन लियो जीति ।

रोग वियोग साग स्रम सकुल बडि वय बृयहि अतीति ॥२॥

राग दोष इरपा प्रिमोह वस रुची न साधु ममीति ।

कहे न मुने गुनगन रघुवर के, भइ न रामपद प्रीति ॥३॥

हृदय देहत पछिताय अनल अय सुनत दुसह भवभीति ।

तुलसी प्रभु तें हाइ सो कीजिय समुझि प्रियद की रीति ॥४॥

भाषा—एसा म र यह (मनुष्य) जीवन दय हा बीत गया । परमाथ तनिक भी हाथ न लगा । इन दया राग चीगुनी अनीति बढ़ती ही गई ॥१॥

सडरपन ता पवन चान बोन गया और योवन का स्त्रिया न जीत लिया । (जिस योवन म प्रीति और बुद्धि का विकास हुआ है इन्द्रियां चरन्य रहता है चित्त में उमग

और उत्साह बढ़ता है, उसे युवनियो ने नयन बाण से छिन भिन कर दिया, सौंदर्य के पाश में बाँधकर गुलाम बना दिया ।) अब रहा बुढ़ापा, सो वह रोग, विधोष और शोक तथा परिश्रम से परिपूर्ण रहने के कारण अकारण बीत गया ॥२॥

राग द्वेष, ईर्ष्या और मोह के कारण न तो सत्ता की सभा भञ्जो लगी और न रघुनाथजी की गुणावली का ही कहा और न सुना । श्रीरामजी के चरणा में प्रेम ही नहीं हुआ (साराश, आत्म कल्याण के जितने भी माग हो सकते हैं वे सभी विफल रहे ।) ॥३॥

अब यह हृदय परचात्ताप की भाग में जला जा रहा है, क्योंकि भ्रष्टहनीय संसार के भय को सुन रहा है । इस तुलसी के लिए अब तो अपने विरह की रीति को सोच समझकर जो कुछ भी प्रभु से हो सके सो करें । भाव यह है कि मुझमें तो कोई साधन बना नहीं, पर सुना है कि मेरे प्रभु पतित पावन हैं सा व अपने इस नाम के नाते मुझ पापी का भी उद्धार कर ही देंगे ॥४॥

शब्दाय—बादिहिं = यद्य ही । पाले न परयो = हाथ न लगा । सोग = शोक । समीति = (समिति) सभा । पछिनाय = परचात्ताप ।

विशेष—(१) 'जनम गयो' बीति—कबीर साहब भी चेतावनी दे रहे हैं —

रात भँवाई सोय कर दिवस गवायो लाय ।
हीरा जनम जमोल या कौडी बदले जाय ॥
आछे दिन पाछे गये गुह मे किया न हत ।
अब पछिताया क्या कर, बिड़िया भुग गइ खेत ॥

(२) 'खलत' अतीति—श्रीशकराचार्य भी चता गये हैं—
'बालस्तावत्त्रीडासवत्स्तदणस्तावत्तदणीरक्त ।
बृद्धस्तावच्चितामन पारेब्रह्मणि कोऽपि न लभ ॥'

(४) 'प्रभु' कीजिय'—सो अब तो—
जबगुन मेरे बापजी बकस गरीबनिबाज ।
जो मैं भूत कपूत हों, तऊ पिता को लाय ॥
तुम तो समरथ साइयाँ बड़ करि पकरो बाहु ।
भुरहीलों पहुँचाइयो जनि छाशे भय माहँ ॥'

—कबीर

२१५ gmfb

ऐमेहि जनम समूह गिराने ।

प्राननाथ रघुनाथ-मे प्रभु तजि मेवन चरन गिराने ॥१॥
जे जड़ जीव कुटिन कायर खल, केवल बलि मल-माने ।
सूसन बदन प्रमसन तिह वहे, हरि तें अधिक करि माने ॥२॥
सुरा हित कोटि उपाय निरतर करन न पाय गिराने ।
सदा मलीन पथ के मल ज्यो, पगहुँ न हृदय गिराने ॥३॥
यह दीनता दूर करिये को अमित जतन उर आने ।
तुलसी चित चिता न मिटे बिनु चितामनि पहिचाने ॥४॥

भाषा—एक ही अनाराम (मर्ग) बीत गया। प्राणनाथ रघुनाथजी मरीसे स्वामी की छात्र-दूसरा व चरणा की गवा करता रहा (नगर द्वार पर जाकर सारी सुशामद करता फिरा याचना की उनकी मान-कमलें गहरी फिर भी निरुपद्रवता के कारण बराबर का उदय न हुआ)। ॥१॥

जो मूल जीव कपटी कायर और दुष्ट हैं और जा केवल बर्तन का पापा में हो लिप्त हो रहे हैं, ऐसा की प्रशंसा करने करते मुझ मूय गया ह (जिन रात उनकी प्रशंसा की) उन्हें भगवान से भी बड़ा समझ रहा ह ॥२॥

सुख पाने के लिए सदा करोड़ा यत्न करते करते पैर नहीं दुनै (दिन रात झूठे विषयभोगों के पीछे इधर उधर भटकता फिरा)। रास्ते के जल की तरह अंतर सदा मैला बना रहा, कभी निमल या स्थिर नहीं हुआ (जैसे रास्ते का जन हमेशा उस पर चलते रहने के कारण, कभी स्थिर नहीं होता वैसे ही निरन्तर विषय-वासनाओं की उथल-पुथल से हृदय निर्विकार और स्वच्छ नहीं हो पाता)। ॥३॥

जीव की इस दीनता को दूर करने के लिए मन में अगणित उपाय सोचे पर हे तुलसी ! चित्त की चिन्ता बिना चित्तमणि (श्रीरघुनाथजी) की पहचाने, दूर होने की नहीं। (परमात्मा का यथाय ज्ञान होने से ही सारी चिन्ताओं का समूल नाश होगा)।

गदाध—सिरान = बीत गये। बिराने = पराये दूसरे के। बिराने-बीटा हुई।
बिराने = स्थिर हुए।

बिनेय—(१) ऐमहि सिरान—कैसे बीत गया सो मूरदास ने सुनिए —
सब दिन गये विषय के हेत।

तीनों मन ऐसे ही बीते केत भये तिर सेत ॥

हँधी साँस मुन बन न आवत, चन्द्र ग्रस्थी तिमि केत ।

तजि गयोदक अपयत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत ॥

करि प्रमाद गोविन्द बिसारयो मूडयो कुटुम सनेत ।

मूरदास कुछ खरब न लागत रामनाम मुन लेत ॥

कुछ भी तो न बन पडा —

रचिक सवार नाहि अग भग स्वामा स्वाम

एरी पिक्कार और माना कम कीध प ।

पायन की धोय निज कर तें न पान कियो

आली अगार पर सीतल पय पीव प ।

बिचरे न वृ गवन कुञ्जन लतान तरे

गाज गिर जय फुलवारी—मुख सीव प ।

ललित बिसोरी बीते बरस अनेक हम—

देखे नाहि प्रानप्यारे छार ऐत जीये प ।

(२) 'यह दानना — तब तक जानता जान की नहीं जब तक कि प्राणा ने बिंद महा छोटा, कहा है —

आगा रागस्य ये दासास्ते दासा जगनामपि ।

आगा दासीकृता येन तस्य दासायने जगन ॥

२३६

जोपे जिय जानकी-नाथ न जाने ।

तौ सब करम धरम समदायक ऐसेइ कहत सयाने ॥१॥

जे सुर सिद्ध, मुनीम, जोगविद वद पुरान बसाने ।

पूजा लेत, देत पलटे सुख, हानि-लाभ अनुमान ॥२॥

बाको नाम धोखेहूँ सुमिरत पातकपुज पराने ।

विप्र, बधिक, गज, गीघ, कोटि खल बोन के पेट समाने ॥३॥

मरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आने ।

तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहूँ अग्राने ॥४॥

भाषाय—अरे जीव ! यदि तूने श्रीजानकी जीवन रघुनाथजी का नहीं जाना, तो तेरे सारे धम धम केवल परिश्रम ही देनेवाले ह (उन्हे तुम्हें कोई सच्चा लाभ होने का नहीं, सारा किया धरा बेकार जायगा) ऐसा जानी पुरुष ने कहा ह (श्रीरामचन्द्रजी को तत्त्वत जान लेना ही समस्त कम उम का सिद्ध कर लेना ह ।) ॥१॥

वेद एव पुराण कहते हैं कि जिनने देवता सिद्ध बड़ बड़े मुनि प्रौर यागाम्यासी हैं, वे सब पजा लेकर उसके बदले में (अनित्य) सुख देने ह । और ऐसा वे अपनी हानि और लाभ का विचार करके करते ह, (या ही बिना विचारे नहीं द जानने) ॥२॥

वह किसका नाम ह जिसे घाव से भी लने से पापा के समूह भाग जाने ह ? अजामेल ब्राह्मण, वाल्मीकि गजेन्द्र, जटायु गोघ आदि करोड़ा दुष्टा का किसने अप-नाया ? ॥३॥

जिहाने अपने सबका के सुमेरु पर्वत क समान (महान) अपराधा को भुलाकर उनके बालू के कण क समान (छोटे छोटे) गुणा को अपने हृदय में रख लिया ह, हे तुनसीदाम ! हे मूख ! सारी आशाएँ छोड़कर, तू उही का क्यों नहीं भजता ? ॥४॥

भाषाय—जोगविद=योगक्रिया जाननेवाले । पराने=दूर हो गये । विप्र=अजामेल से तात्पर्य ह । बधिक=बहेनिया, वाल्मीकि से तात्पर्य ह । बोन के पेट समाने=किसने शरण म लिया । मरु=सुमेरु पर्वत । रेनु=रज का कण । अग्राने=मूख ।

बिनेय—(१) जो प जाने—इसी भाव के पक्ष कवितावली में भी मिलते हैं । श्रीजानकी-जीवन के म जानने स जीव की क्या दशा होती ह—

राम से रूप प्रताप दिनेस से, सोम से सील यनेस से माने ।

हरिचन्द्र से सन्धि, बड़े विधि-से मधवा से महोप विधि सुख साने ॥

सुक-से मुनि सरद से वक्ता, चिरजीवन सोमस से अधिकाने ।

ऐमे भये तो कहा तुलसी जो राखिलोचन राम न जाने ॥

X

X

X

सुरराज-सो राज समाज समृद्धि बिरचि घनाधिप सो धन भो ।

पवमान सो पावक सो जस सोम सा दूषन सो भवभूषन भा ॥

करि जोग समीरन साधि समाधि क धोर बढी, बसहू मन भो ।

सब जाय सुभाय कहैं तुलसी जो न जानकी जीवन को जन भो ॥

निज अवगुन, गुन राम राखे लखि सुनि मति मन रुझै ।

रहनि वहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै ॥२॥

भावार्थ — हे श्रीराम ! हे नाथ ! इस जीव को यदि यह सूझ जाय कि उसकी भलाई आपस प्रीति जोड़ने में ही है, तो वह शरीर पर स्थिर रहते हुए तथा स्मरण रहते हुए ब्रह्म की तरह क्या लड़ता फिर ? (भाव यह है कि जैसे वीर पुरुष का मस्तक बिहोने लड़ ही जो उसके आगे आता है उसे मारता चला जाता है चेतना रहित होने के कारण यह नहीं दखता कि किस मारना चाहिए और किसे नहीं, वैसे ही यह जीव कामादि होकर अपना हित तो समझता नहीं, किन्तु सभी के साथ बर बाँधता फिरता है, इसे इस बात का ज्ञान ही नहीं, कि मेरा हित मेरा कल्याण आपकी कृपा से ही हो सकता है । इसीलिए यह अपने को तरह ग्रह पीयूष को छोड़कर विषय विष का पान कर रहा है) ॥१॥

अपने दोष और आपके गुणों को देख सुनकर हे रघुनाथजी ! मेरा बुद्धि और मन रुक जाते हैं ! (जी में तो आता है कि आपके चरणारविन्दों की शरण में जाऊँ, पर अपने दाया की ओर देखकर बुद्धि पगु हो जाती है मन सकाच में पड़ जाता है । सोचता हूँ कि मुझ-सरीखे पापी को वहाँ कस स्थान मिल सकेगा ?) तुलसी का आचरण, कथन और रहस्य आपको छोड़कर, हे कृपालो ! और कौन समझ सकता है ? (आप घट घट की बात जाननेवाले हैं, सो अपनी कृपा-दृष्टि से इसका उद्धार कीजिए) ॥२॥

शब्दार्थ—अद्यत = (अद्यत) जिसका नाश न हो अमर । ब्रह्म = धृष्ट, लड़ । जूझ = लड़ । रुझै = उसल जाय ।

विनय—(१) निज अवगुन — श्रीव्रजनाथजी ने पतित जीव के निम्न मुख्य मुख्य दोष गिनाये हैं—

काम बोध-युत कृपाहत दुर्बादी अति लोभ ।
लपट लग्नाहीन गनि विद्याहीन, असोभ ॥
आलस्य अति निद्रा बहुत दुष्ट इया कर हीन ।
सुप्त इच्छि जानिये रागी सदा मसीन ॥
केन कृपात्रहि दान पुनि, भरण दान दृढ़ नाहि ।
भोगी सब न समुझाई कुछ सास्त्रन के माहि ॥
अनि अहार प्रिय जानिये, अहंकारयुत देव ।
महा असच्छन पुरुष के ये अटठाइत सपु ॥'

(२) गुन राम राखर — वात्सनाथ रामायण में श्रीराम के शिष्य गुण का वर्णन इस प्रकार किया गया है —

इत्यादि वगैरहो रामो नाम जन श्रुत ।
नियताभा महाशयो दृढिभावनिमाचनी ॥

तुष्टिमानोतिमात्राम्नी, श्रीमाञ्छनुनिबहण ।
 धमन सत्यसचदच प्रजाना च हिते रत ॥
 यगस्वी ज्ञानसम्पन्न गुचिरय समाधिमा ।
 प्रजापतिसम श्रीमाघाता रिपुनिषूदन ॥
 रक्षिता जीवन्मोक्षस्य धमस्य परिरक्षिता ।
 वेदवेदागनत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठित ॥

× × ×

स च सचगुणोपेत कोऽल्पानदनपद्धन ।

समुद्र इव माभोर्ये धर्येण हिमवानिव ॥^१

(३) 'रहिन' ब्रूक — क्याकि भन्तर्जामी हो हृदय की वान जानकर उसका पयेष्ट प्रतीकार कर सकता ह । कबीर साहब विनती करत हैं —

'म अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिचार ।

तुम दाता दुखभाना मेरी करो सम्हार ॥

अतरजामी एक तुम आतम के आधार ।

जो तुम छोडो हाथ तो कौन उतार पार ॥'

२३६

जाको हरि दृढ करि अग करयो ।^१

सोइ सुसील पुनीत वेदविद, विद्या गुननि भरयो ॥१॥

उतपति पाहु-तनय की करनी सुनि सतपथ डरयो ।

ते त्रैलोक्य-भूज्य, पावन जसु, सुनि सुनि लोक तरयो ॥२॥

जो निज घरम वेद-बोधित सा करत न कछु बिसरयो ।

बिनु भवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उधरयो ॥३॥

१ इसी भाव का सूरदासजी का भी यह पद ह

जाको मनमोहन अग कर्यो ।

ताको केस लस्यो नहि सिर तें जो जग बर परयो ॥

हिरनयसिपु परिहारि बक्यो प्रह्लाद न नेकु डर्यो ।

अजहें तो उत्तानपाद-सुत राज करत न मर्यो ॥

राखी लाज द्रुपद-तनया की कापित घोर हरयो ।

दुरजोधन की मान भग करि बसन प्रवाह भर्यो ॥

विप्र भक्त नृप अक्षकूप दिष बलि पढ़ि वेद छरयो ।

दीनदयालु कृपानिधि की गुन काप नह्यो पर्यो ॥

जो सुरपति कोप्यो ब्रज उपर कहिषीं क्यु न सरयो ।

राखे ब्रजजन नद के साला गिरिपर निरद धरयो ॥

जाको, विरद है गरवप्रहारी, सो कैसे बिसरयो ।

सूरदास' भगवत भजन करि सरन गहे उधर्यो ॥

ब्रह्म विसिद्ध ब्रह्माण्ड-रहन दम गम न नृपति जरयो ।
 प्रजर घमर, कुलिसहै नाहिन बघ, सौ पुनि फन मरयो ॥४॥
 त्रिप्र अजामिल अर सुरपति तें कहा जो नहिं त्रिगर्ग्यो ।
 उनरो किये सहाय बहुत, उर का सताप हरयो ॥५॥
 गनिवा अरु कदर्य तें जग मेंह अथ न करत उतरयो ।
 तिनको चंगित पवित्र जाति हरि निज हृदि भवन दरयो ॥६॥
 केहि आचरण भला माने प्रभु सा तो न जानि परयो ।
 तुलसिदाम रघुनाथ कृपा को जीवन पय मरयो ॥७॥

भाषा — जिसे श्रीहरि ने ददतापूर्वक भगीकार कर लिया वही सुशोभ ह, पवित्र ह, वैद्य ह और समस्त विद्या एव सद्गुणों से परिपूर्ण ह (क्योंकि वह राम का प्यारा ह इसलिए बिना बुनाय ही सबगुण उसकी सेवा में उपस्थित रहते ह) ॥ ॥

पाटु के पुत्रों की उत्पत्ति और उनकी करतूत का सुनकर समाग तक डर गया था, किन्तु वे श्रीहरि-कृपा से तीनों लोकों में पूजनीय हो गये और उनका पवित्र यश सुन सुनकर लोग (ससार सागर से) सर गये (मुक्त हो गये) ॥२॥

जो राजा नृग वेद विहित वलाधम धर्म से तनिक भी विचलित नहीं हुआ था, और जो बिना ही किसी दाप के गिरगिट होकर कुएं में पड़ा हुआ था, उसे आपन हाथ पकड़कर बाहर निकाल लिया और उसका उद्धार कर दिया (गिरगिट को घोंघ से छुड़ाकर दिपलोक को भज दिया) ॥३॥

ब्रह्माण्ड तक की भ्रम कर देनेवाले (भ्रमवत्यामा के) ब्रह्मात्म से राजा (परीक्षित) गम में नहीं जल सका और अंतर एव घमर (नमस्वि) दय जो बस स भी न मरा था फेन से मर गया ॥४॥

प्रजामेल ब्राह्मण और इन्द्र से ऐसी कौन सी बात था जो न त्रिगर्गी हो ? किन्तु आपने उनका भारी सहायता का और उनका कष्ट दूर कर दिया ॥५॥

वरया और कामदेव ने ससार में ऐसा कौन सा पार ह जान किया ह किन्तु भगवान् ने उनका अत्रि पवित्र समझकर उन्हें भी अपने हृदय मन्दिर में स्थान दिया ॥६॥

भगवान् जिस आचरण से प्रमत्त होते ह, यह समझ में नहीं आता । तुलसीदास सा श्रीरघुनाथजी की कृपा का ही माग सदा-गुहा देवता रहता ह (वह और कुछ नहीं जानता, केवल कृपा का ही बात जाहता रहता ह) ॥७॥

गदाय — भग करयो = भगना किया पक्ष किया । वाचित = विहित । कुत्रास = गिरगिट । घम = (चम) समय । नृपति = मन्तराज्ञा परीक्षित स आशय ह । कदर्य = कामदेव । उतरयो = वधा । मरयो = मरना ।

विशेष — (१) उत्पत्ति पाटु-तनय का — पाटु के पाँच पुत्र पाँच देवताओं के बीच से उत्पन्न हुए थे । मुषिष्टिर घमरात्र म भीम वायु स प्रजुन इन्द्र स और ननुन-सहस्र परिवर्तनकुमार स उत्पन्न माने जाते हैं ।

(२) 'करनी'—सबसे बुरी करनी तो यही है, कि पावा भाइयो ने एक ही स्त्री द्रौपदी के साथ पत्नी सम्बन्ध जोड़ा ।

(३) 'ब्रह्म' जरयो अश्वत्थामा ने, पांडवों को निवर्ण करने के लिए परीक्षित को गम में ही ब्रह्मास्त्र से मारना चाहा था, परन्तु भगवत्कृपा से वह ब्रह्मास्त्र से भी बाल-बाल बच गये ।

(४) 'अजर' मरयो—नमूनि दैत्य ने ब्रह्मा से यह वर माग लिया था कि मैं किसी भी अस्त्र शस्त्र से न मारा जाऊँ न शुष्क पत्थर से घेरी मृत्यु हो न आदर से ही । देवासुर-संग्राम में इसने बड़ा घोर उत्पात किया । इन्द्र इस जय न मार सका, तब आकाशवाणी हुई कि यह किसी भी अस्त्र शस्त्र से नहीं मारा जा सकता । इसकी मृत्यु तो समुद्र के फेन से हो सकेगी, क्योंकि वह न शुष्क है और न आदर । अतः वह फेन से मारा गया ।

(५) 'सुरपति'—इन्द्र ने ऋषि परमेश्वर ब्रह्मा के साथ सभोग किया, विश्वरूप ब्राह्मण का वध किया, तथा और भी कई पातक भगाव होकर किए । इन्द्र की अनेक पापमयी कथाएँ पुराणा में प्रसिद्ध हैं ।

(६) 'गनिका'—पिंगला से आशय है श्रीमुख से मपवान् ने उद्वेग के प्रति इसकी प्रशंसा की है ।

२४०

सोइ सुकृती, सुचि, साचो जाहि राम ! तुम रीझे ।

गनिका, गीध, वधिक हरिपुर गये, लै करसी प्रयाग कब सीझे ॥१॥

कवहुँ न डग्यो निगम मग ते पग, मग जग जानि जिते दुख पाये ।

गज धा कौन दिछित जाके सुमिरत, नै सुनाम वाहन तजि धाये ॥२॥

सुर मृनि विप्र जिहाय बडे कुल, गोकुल जनम गोपगृह लीहा ।

बायो दियो बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ त्रिदुर घर की हो ॥३॥

मानत भलहि भलो भगतनि ते, कहुँ रीति पारथहि जनाई ।

तुलसी सहज सनेहु राम वस, और सने जल की चिरनाई ॥४॥

भावाध—हे रामजी ! जिस पर आप प्रसन्न हो गये वही सच्चा पुण्यात्मा है और वही पवित्रात्मा । वरया (पिंगला) गाध (जटाघु) और वहलिमा (वासीकि) जा बकुल धाम बन गये जहाँ कब प्रयाग में जाकर घोर तप किया, और कण्डा की आग में जलकर मर ? (पश्चाग्नि तप करते हुए मर) ॥१॥

राजा नृप कभी तन्त्राक्त माग पर मे नहीं हटा था किन्तु ससार जानना है कि उसने कितने दुःख भोगे (विरगित की योनि पाकर हजारों वष कुएँ में पड़ा सटता रहा) ! और वह हाथी वहाँ का बल दीक्षित था जिसका एक बार स्मरण करते ही आप अपने याहन गड्ढ को छोड़कर चक्र सुमशन लिये दौड़ प्राय ॥२॥

देवता भुनि और ब्राह्मणा के ऊँचे पुत्र को धाँवर आपने गोकुल में एक स्वाले के घर में जन्म लिया । कौरवश महाराजा दुर्योधन के ऐश्वर्य का टुकड़ाकर आपने दीन

विदुर के घर जाकर (साग माजी का) भोजन किया ॥३॥

भगवान् अपने अनन्य भक्तों के साथ प्रेम का ही गता मानते हैं । (भाव, भक्त का प्रेमाधीन रहत है अथ साधना द्वारा वश न मही होत ।) इस अनन्य प्रेम भक्ति की रीति कुछ कुछ आपने (अपन सया) भजुन का बताया थी । हे तुलसीदास ! श्रीरघु पति जी तो सरल सहज प्रेम के अधीन हैं दूसरे जितने भी साधन हैं, वे एस हैं, जस पानी की चिकनाई । भाव यह है कि पानी पड़त ही थोड़ा देर के लिए, शरीर चिकना सा मालूम दता है पर सूखन पर फिर ज्वा का त्यों रूखा हा जाता है । इसी प्रकार साधन से क्षणिक सुख मिल जाता है, किन्तु दूसरी वासना पैदा होती ही, माया की हुवा लगते ही वह सुख मिट जाता है ॥४॥

गन्दाय—सुहृती = पुण्यकमा । करसी = कड़ो । विधित = (दीक्षित) गुरुमुख । सुनाभ = चक्र । बाहन = गड से आराय है । पारय = पदापुत्र भजुन ।

विनय—(१) ल करसी सीधे — करसी के स्थान पर काशी' पाठ मानने वाले इसका यो अर्थ करते हैं —

वेरया गिद्ध, निपाद को बहुत से गये सो इहाने काशी और प्रयाग में कब शान्त किए थे ?

(२) वाया दियो कीन्हा — एक बार अभिमानी दुर्योधन ने अपना राज्य वसव दिलाव के लिए श्रीकृष्ण को निमन्त्रण दिया । भगवान् उसका अपट भाव ताड़ गये । उसके महा न जाकर वे गरीब विदुर के घर चल गये । विदुर की साध्वी स्त्री से जब कुछ खाने को मागा तो सूखी साग भाजी खाकर वहाँ परम सतोष माना । कहते हैं कि विदुर की स्त्री ने परमावश में कल का गुण तो फेंक दिया और छिलके श्रीकृष्ण के हाथ में दे दिये । गुरुदासजी कहते हैं —

सत्तन भवत मित्र हितकारी स्थान विदुर गृह भाये ।

अनिरस थायो प्रीति निरंतर, साग भजन हूँ लाये ॥'

(३) रीति पारवर्हि जनाई — श्रीकृष्ण भगवान् ने सारथी बनकर भजुन का रथ हाँका, समय समय पर उनकी भली बुरी बात सुनी फिर भी सदा मन्त्री का निर्वाह किया ।

(४) श्रीगुरुदासजी भी इसी रीति पर गा रहे हैं —

जाय दीनानाथ दरै ।

सोइ कुलीन, बडा सुंदर सोइ जापर कृपा कर ।

राजा कीन बडो रावन तें गवहि गन गर ॥

रक सु कीन सुदामा है तें आप समान कर ।

रूप कीन अधिक साता तें जनम वियोग भर ॥

अपि कुरूप कीन कुचजा तें हरि पति पाइ घर ।

जोगी कीन बडा सजर तें, ताकह काम छर ॥

कीन विरह अधिक नारत तें निशिनि अमत फिर ।

अपम ॥ कीन अजामिनू तें, जम तह जान डर ॥

गुरुदास भगवत भजन दिनु फिरि फिरि जठर पर ।

२४१

तब तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति देते ।^१

कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर, सुनि आदर आग हूँ लेते ॥१॥

पाप खानि जिय जानि अजामिल, जमगन समझि तये ताको भेते ।

लियो^२ ढाड़, चले कर मीजत, पीसत दात गये रिस रेते ॥२॥

गोतम तिय, गज, गीध, विटप कपि, ह नाथहि नीके मालुम जेते ।^३

तिन्ह तिह काजनि साधु सभा^४ तजि कृपासिधु तब-तब उठि गेते ॥३॥

अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे, पतित पुनीत होन नहि केते ।

मेरे पासगहु न पूजिहैं हूँ गये, है, होने खल जेते ॥४॥

हौं अवलो करतूति तिहारिय चितवत हुतो, न रावरे चेते ।

अब तुलसी पूसरौ बाधिहै, सहि न जात भोपै परिहास एते ॥५॥

भावार्थ — तो आप मुझ-जैसे दुष्ट को भी हठपूर्वक परमगति देते । (जबकि आपने अनेक दुष्ट को परमगति दी है । कोई कसा हो पापी क्यों न हो, पर ज्योही वह आपका (राम) नाम लता है आप आदर के साथ उसे आगे जाकर लेते हैं (यह तो सिद्ध हो चुका कि आप बड़े बड़े पापियों और दुष्टों की शरण में लेते हैं, उन्हें ससार से मुक्त कर देते हैं । पर मुझे अभी तक क्या सुगति नहीं दी ? क्या मैं वसा दुष्ट नहीं हूँ ? सा तो नहा कुछ और ही कारण होगा ।) ॥१॥

(पापियों के उद्धार के प्रमाण लीजिए) यमदूत ने अपने मन में, अजामिल को पापा की खानि समझकर, उस डाँट डपटकर मर दिखाने हुए कष्ट दिया, किन्तु आपने उसे उनके हाथ से छुड़ा लिया । नेवारे यमदूत हाथ मलते और दाँत पीसते हुए काध भरे चले गये । (कुछ भी बश न चला) ॥२॥

गोतम की स्त्री (ग्रहत्या) हाथी, गीध (जटायु) वृष (यमलाञ्जल), बानर और जो जो आपको भनीभाँति मालूम हूँ, उन सबका जब कोई काम पड़ा, तब आप सत् समाज को भा छोड़कर वहाँ से चल दिये (उनका कष्ट आपको क्षण मात्र भी सहन न हो सका ।) ॥३॥

आपने दरवाज पर आज भी पापियों का बड़ा आनर है । न जाने कितने पापी महा नित्य पवित्र बनाये जाते हैं । ससार में जितने भी पापी हुए हैं, मौजूद हैं, और आगे होंगे वे सब मेरे पासग में भी पूरे रहेंगे । (तब तो मेरा उद्धार सबसे पहले होना चाहिए था, पर अमा सक हुआ नहीं, इसका कारण क्या है ?) ॥४॥

अब तक तो मैं आपसे करतब की ओर टक लगाये देख रहा था (कि कब आप मुझे शरण में लेते हैं) पर आपने इधर कुछ भी ध्यान नहा दिया । इसलिए अब

१ पाठान्तर 'तो तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति न देते ।'

२ पाठान्तर 'लिये ।'

३ पाठान्तर 'ते ते' ।

४ पाठान्तर 'तिहने काज साधु-सभाज ।'

तुलसीदास आपन नाम का पुतला बांधेगा, क्योंकि मुमय सब इतना अधिक उपहास सहन नहीं हो सकता । (सोच तालियाँ पीट-पीटकर कहते हैं, कि देखा, यह नसा पाखंडी है ! बनने चला था रामदास यह । यदि यह रामदास होता, तो क्या इस तरह मारा-मारा फिरा करता ?) ॥१॥

शब्दाय—गति=मोक्ष । पामर=पापी । तमकि=क्रोध बरके । रिस रते=क्रोधित । विटप=यमलाज्जुन से भाषण है । ग ते=वे गय थे । पासग=तराज के पनढा की नसर ।

बिनेय—(१) 'कसेहूँ लेते'—विभीषण इस प्रसंग का प्रमाण है । शरण में जाते ही भगवान ने उसका कसा आदर सत्कार किया यह किसी से छिपा नहीं है —

‘रामहि करत प्रनाम निहारिक ।

उठे उमगि आन ह प्रेम परिपुरन बिरद बितारिक ॥
भयो द्विदेह विभीषन उत इस प्रभु अपुनपो बिसारिक ।
भली भांति भावते भरत ज्यों भेंटयो भुजा पसारिक ॥
सादर सर्वांह मिलाइ समार्जाह, निपट निकट बठारिक ।
हूमत छेम कुसल सप्रम अपनाइ भरोसे भारिक ॥
नाथ ! कुसल कल्याण सुमयल बिधि सुख सकल सुधारिक ।
देत लेत जे नाम रावरी विनय करत भुल्य चारिक ॥
जो सुरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन भारिक ।
तुलसी तेहि हीं सियो अक भरि कहत कनू न सँवारिक ॥

[गीतावली

(२) पुतरा बांधि है—जब नटा का खो दिगाने पर कुछ भी गहा मिलता, सब से बड़े का पुतला बाँस पर लटकाकर कहते हैं कि देखो यह सूम है । सूम इस नकल से लज्जित होकर उनकी कुछ-न कुछ द हो देता है । इसी तरह मैं भी एक पुतला बना कर लिय किन्ना । लोग जन पूछेंगे कि यह क्या है तो यहाँ उतर दूँगा कि यह सूम शिरोमणि मयोध्याधिप महाराजा रामचन्द्रजी हैं । इससे आप अवश्य लज्जित हो जायेंगे, और सब मुझे अपनाता हो प्यारा ।

२४२

तुम सम दीनवन्तु न दीन कोउ मोसम, सुनहु नपति रघुराई ।
मोसम कुटिल मौलिमन नहि जग, तुमसम हरि न हरा कुटिलाई ॥१॥
हों मन बचन करम पातक रत, तुम वृषालु पतितन-गतिदाई ।
हों अनाथ प्रभु । तुम अनाथ हित, चित यहि सुरति वत्रहूँ नहि जाई ॥२॥
हों आरत आरति-नासक तुम, कोरति निगम पुराननि गाई ।
हों समीत, तुम हरन सकल मय, वरन कवन वृषा बिसराई ॥३॥
तुम सुखधाम राम सम भजन, हों अति दुखित त्रिनिध छम पाई ।
यह जिय जानि दासनुलमी कहै रागहु सरन समुक्ति प्रभुताई ॥४॥

भावाप—हे महाराज रामचन्द्रजी ! आपने समान तो कोई भा दीनजना का भला करनेवाला बंधु नहीं ह, और मेरे समान कोई दीन नहीं । ससार में मेरी बराबरी का दूसरा कोई कुटिल शिरोमणि नहीं ह, और आपके बराबर हे नाथ ! कुटिलता का नाश करनेवाला कोई नहीं ह ॥१॥

म मन से, बचन से और कम से पापों में निरस्त रहता हूँ और हे कृपालो ! आप पापिया को मात्त देनेवाले ह । हे प्रभो ! मैं अनाथ हूँ मेरा कोई धनी घोरी नहीं, और आप अनाथों का हित करनेवाले ह । यह बात मेरे मन से कभी नहीं जाती ॥२॥

म दुखी हूँ ता आप दुःखा का निवारण करनेवाले हैं ! आपका यह यश वेदा और पुराणा ने गाया ह । म ससार से डरा हुआ हूँ (जन्म मरण के अट्टहा दुःख से डरा रहा हूँ) और आप सब भय नाश करनेवाले ह । (जब आपके और मर इतने सारे नाते हैं तब) क्या कारण ह कि आप मुझ पर कृपा नहीं करते ? ॥३॥

हे श्रीरामजी ! आप आनन्द के धाम तथा अम के हरनेवाले ह । म भी ससार के तीना (दहिक दहिक और भौतिक) यमों से अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ । सो, अपने मन में इन सब बातों पर विचार करने और अपनी प्रभुता को समझकर तुलसीदास को अपनी शरण में अब रख ही लीजिए ॥४॥

सम्बन्ध—रत = लगा हुआ । गति = मोक्ष । त्रिविध स्वम = दहिक भौतिक और दहिक दुःख ।

विशेष—(१) स्वम पद में गोसाइजी ने जीव और ब्रह्म के, दास्यभाव के अनुसार, अनेक सम्बन्ध गिनाये ह । कवितावली में इसी अनेकविध सम्बन्ध को दूसरे ढंग से कहा ह —

‘राम भातु पितु, बधु, सुजन गुरु, पूज्य परमहित ।
साहिब, सखा सहाय, नेह नाते पुनीत चित ॥
देस कोस कुल वंश, धर्म, धन, धाम परनि गति ।
जाति पाति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति ॥
परमारथ, स्वारथ, सुजस सुलभ राम ते सकल फल ।
बस तुलसिदास अब जब कबहुँ एक राम ते मोर भल ।’

२४३

यहै जानि चरनहि चित लायो ।

नाहिन नाथ ! अकारन को हितु, तुम समान पुरान स्रुति गायो ॥१॥
जननि, जनक, सुत दार, बधुजन भये बहुत जहँ-जहँ हों जायो ।
सब स्वारथहिन प्रीति कपट चित बाहू नहि हरिभजन सिखायो ॥२॥
सुर-मुनि मनुा दनुज अहि विनर में तनवरिमिर बाहि न नायो ।
जगत फिरत त्रयताप पापवस बाहु न हरि । करि कृपा जुड़ायो ॥३॥
जतन अनेक किये सुखकारन हरिपद त्रिमुख सदा दुख पायो ।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यो देखत विपति जाल जग छाया ॥४॥

मो कहें नाथ ! तूनिमे यह गति सुग निधान निज पति विगराया ।

अथ तजि रोग मरहू बरणा हरि ! तुलसिदास भगवान् भ्राया ॥५॥

भाषार्थ—यहो जागर मन धारन परणा में पित्त समाया है, जि है माप ! आपने समाया, बिना ही कारण हिन बरावाना बाई दूसरा कहा ह एगा यनों घोर पुराणा ने कहा ह (आपको ही भा निष्कारण हिन मुना है अब सब धार से मन को हटाकर आपन परणारविदों में समा लिया ह) ॥१॥

जहाँ-जहाँ (जिस जग योनि में) भा जग लिया यहाँ-यहाँ मेरे बहुत स निता माता पुत्र स्त्री घोर भाई बंधु हुए । य सब अपना स्वाध साधन के लिए हा प्रेय करते रहे, पर मा में उनके घत-वपत रहा । किसी ने भा मुझ हरिभग्न का उपदेश नहीं दिया (सत्कार-ज्ञान म पता की ही सलाह का घटन की बिना न भी ग दा ।) ॥२॥

शरीर धारण कर दवता मुनि मनुष्य राघव सप बिचर आदि विने मैने सिर नहीं मवाया किसक पैरो पर गरी पना ? बितु ह हरे ! पाप व परिणामस्वरूप दोनों तापा से जलत हुए मुझे किसी न तो दयाकर शीतलता प्रदान गरी की (वे बेचारे स्वय ही जब जले जा रहे ह तो मुझे क्या शीतलता देंगे ?) ॥३॥

मने सुत प्राप्ति के अथ अनन्य उपाय किए पर हरि परणा स विमुख होने के कारण सदा दुःख ही मिला । सत्कार में विपत्तिया का जान बिना हुमा दक्कर अब मैं (सब साधना स) ऐसा बक गया हूँ, जैसे बिना पानी के बीजा थक जाती ह (नाथ तो सभी चल सकती ह जब पानी हो बिना पानी के वह कैसे चलेगी ? इसी तरह भगवद् भक्ति रूपी यदि जल का आधार ह, तो साधनरूपी बीजा चलगी । बिना इस आधार के बीजा का चलना सम्भव नहीं) ॥४॥

हे नाथ ! मेरी यह दशा इसीलिए हुई ह कि मैने अपने सुग निधान स्वामी को भुला दिया । हे हरे ! अब मेरे दोषों का विचार छोड़कर इस शरणागत तुलसीदास पर दया कीजिए ॥५॥

शब्दाथ—जायो=जग लिया । जुड़ायो=ठठा किया शांत किया ।

बिगैप—(६) जननि हों जायो—एसे स्वामी माता पिता व भाई-बंधुओं के विषय में गोसाइजी ने कहा ह —

जरउ सो सपति सदन, सुख, सुहृद भातु पितु, भाइ ।

सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ॥'

[दोहावली

(२) हरिप पायो—

बितु गुरु होइ कि ग्यान ग्यान की होइ विराग गितु ?

भावहि वेद-पुराण सुख कि सहिय हरिभगति बितु ?

[रामचरितमानस

(३) सुगनिधान निज पति—वास्तव में इस जीव का सच्चा पति तो परमात्मा ही ह । निज पति का भुला देने से जाय का विषया की तरह, कसो-कसी यातनाएँ भोगनी पड़ती ह । कबीर साहन परम विरहाकुल होकर सुगनिधान निजपति' स मिलने

के लिए कसे अधीर हो रहे ह —

‘अविनासी दुलहा कब मिलिहो भक्तन के रछपाल ।
जल उपजी जल ही सो नेहा, रटत पियास पियास ।
मे ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊ, प्रियतम तुमरी आस ॥
छोड़े नेह नेह लगि तुम सो, भई चरन लोलन ।
तालाबेलि होत घट भीतर, जसे जल बिन मीन ॥
दिवस न भूख रन नहि निद्रिया, घर अगना न सुहाय ।
सेजरिया धरि न भई हमको, जागन रन बिहाय ॥
हम ता तुमरी दासी, सजना तुम हमरे भरतार ।
दीनदयाल दया कर छाधो, समरथ सिरजनहार ॥
क हम प्रान तजत हैं प्यारे, क अपनी कर लेय ।
घास कबीर बिरह अनिघाडयो, हमको दरसन देब ॥’

२४४ Gm

याहि तैं मैं हरि । ग्यान गैवायो ।

परिहरि हृदय कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत विकल भयो धायो ॥१॥
ज्या कुरंग निज अग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहि पायो ।
खोजत गिरि, तरु, लता भूमि, त्रिल परमसुगव कहा तैं आया ॥२॥
ज्यो सर त्रिमलवारि-परिपूरन, ऊपर बछु सिवार तून आया ।
जागत हियो ताहि तजि हीं सठ, चाहन यहि विधि तूपा बुझायो ॥३॥
व्यापत त्रिविध ताप तनु दाहल तापर दुसह दरिद्र सनायो ।
अपनेहि धाम नाम-सुरतह तजि विषय-बबूरबाग मन लाया ॥४॥
तुम सम ग्यान निधान, मोहि सम मूढ न आन पुराननि गायो ।
तुलसिदास प्रभु ! यह विचारि जिय कीजे नाथ उचित मन भायो ॥५॥

भाषा—हे हरे ! अपने हृदय कमल में स्थित वस्तु को छोड़कर जो मैं बाहर, इधर इधर अनेक साधनों के पीछे ‘चाकुल हाकर दीबता फिरा, यही कारण है कि मने (आत्म) ज्ञान की खा गिया (अज्ञान में पड़ गया, जिसका फल यह हुआ कि आज तक आपने दर्शन नहीं हुए ।) ॥१॥

जैसे महामूय मुग अपने ही शरीर में (नाभि के भीतर) सुन्दर कस्तूरी के होने हुए भी उसका रहस्य नहीं जानता और पहाड़, पेड़, लता, घरती और तिला में खोजता फिरता है, कि यह उत्तम सुगन्ध आ कहाँ से रहो है । (जसा प्रकार में इधर उधर सुख पाने के लिए दौड़ रहा है, यद्यपि भयङ्क अनादिरूप परमात्मा मेरे अन्दर में ही निवास कर रहे हैं । यह मेरा भ्रम नहीं तो और क्या है ?) ॥२॥

सरावर निमल पानी से पूरा भरा हुआ है, पर ऊपर से कुछ निवार घास छापी हुई है । उस ताताव का स्वच्छ जल छाड़कर मैं दुष्ट अज्ञान हृदय जता रहा हूँ और इस प्रकार अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ । (भाव यह है कि हृदय-सरोवर में आत्मा-

नदरूपी जल अगाध भरा ह पर भाया मोह की सिवार ऊपर छा जाने से यह दिखायो नहीं देता और यह जीव आनंद जल की उत्पत्ति से 'पानुल हो रहा ह, त्रिविध ताप से जला जा रहा ह ॥३॥

एक तो बने हो शरीर में त्रिविध ताप याप रहे ह जो भ्रम है और तिस पर दारुण दरिद्रता सता रही ह । यह इसलिए हुआ कि अपने ही घर में राम नामरूपी कल्प वृक्ष की छोड़कर मने त्रिपयस्वी बनून के बाग में अपना मन लगा रखा ह ॥४॥

आपके समान तो गानराशि और भरे समान मुख कोई दूसरा नहीं ह यह बात पुराणा ने कही ह । हे नाथ ! इस बात को ध्यान में रखकर आपका जो उचित लगे, वही इस सुनसीदास के लिए कीजिए ॥५॥

शब्दाथ—मद=वस्तुओं से आशय ह । सिवार = पानी में होनेवाली एक प्रकार की घास ।

विनय—(१) 'बाहर फिरत घायो—किसी किसी टीकाकार के मत से बाहर शब्द का अर्थ तीर्थ यात्रा मूर्ति पूजा आदि ह । पर यह ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि गासाइजी ने तीर्थ-यात्रा और मूर्ति पूजा का खंडन नहीं किया बल्कि उन्हें भगवत्प्राप्ति का साधन बताया ह । 'बाहर से तो आशय यह ह, कि भ्रमपूर्ण सासारिक सुखों में परमात्मन की इच्छा करना कसे बन सकता ह ? अतः विषयासक्ति' ही यहा बाहर ह ।

(२) कुरग —कबीर साहब कहते ह —

तेरा साह तुझ में, जया पुहुपन न बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर दूबे घास ॥'

॥ २४५ ॥ ५

मोहि मूढ मन बहुत विगोयो ।

याके लिये सुनहु करुनामय, मे जग जनमि-जनमि दुख रोयो ॥१॥

सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटाहि रहत, दूर जनु खोयो ।

बहु भातिन लम करत मोहवस, वृथाहि मदमति बारि बिलोयो ॥२॥

करम कीच जिय जानि, सानिचित, चाहत कुटिल मलहिमल धोयो ।

तृपावत सुरसरि विहाय सठ फिरि फिरि निवल अकास निचोयो । ३॥

तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मैं निज दाप कटू नहि गोयो ।

डासत ही गइ वीति निसा सब कबहुँ न नाथ ! नीद भरि सायो ॥४॥

भावाथ—इस मूढ मन ने मेरा खूब ही नाश किया । सुनिह करुणामय । इसीके कारण मैं बार-बार जगत में जन्म लेकर राना राता फिरा ॥१॥

सीतल मधुर अमृत के समान सहज आमान का जा संपाद ही रहता ह, मने हमके फेर में पटक यों मुता दिया जग वह बहुत दूर ह । अनानवश मन अनेक प्रकार से लम किया । मम मूढ न 'यह हा पाना का मया । (त्रिपय वासनाघ्रा का जल भयकर उसमें न आत्म-शनरूपा भक्षण निकानना चाहता । पर कही पानों में स भी भक्षण निकानता ह ? वह तो भगवद्भक्तिरूपा दूध स हा निकलता ।) ॥२॥

यद्यपि यह जानता था कि कम काचड़ है, फिर भी चित्त को उसी में सान दिया और मल से ही मल को धोया चाहा। (लेखते हुए भी अंध की तरह विषय वासना के पक् में जा फँसा)। मैं ऐसा दुष्ट और मूर्ख हूँ कि प्यास के मारे गंगा को छोड़कर बार बार श्यामल हा आवास को निचाड़ रहा हूँ। (दुःखरूप विषया से चिपटकर आत्मा नन्द प्राप्त करने की चेष्टा करता फिरता हूँ।) ॥३॥

ह नाथ ! मने अपना एक भी अपराध नहीं दिखाया, अतः भव इस तुलसीदास पर कृपा कीजिए। बिस्तर बिछान बिछान ही सागरान बीत गई पर हे नाथ ! कभी नोदभर नहीं सोया। (सुख प्राप्ति के उपाय करते करते ही सारा जीवन बीत गया पर सच्चा भरपूर सुख आज तक कभी न मिला। यह प्रसन्न सुख निद्रा कबल आपकी कृपा से ही प्राप्त होती है अन्यथा नहीं) ॥४॥

शब्दाथ—विगोयो=विगडा। सहजमुख=मात्मानन्द। त्रिलोयो=मगन किया। कीच=काचड़। निचोयो=निचाड़ा। गोयो=छिपाया। दासत=विघ्नीना बिछाने हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विशेष—(१) माहि विगोयो—बबाद करेगा ही, क्याकि—
बाजीगर का बबरा ऐसा जिउ मन साध।
माना माच नचाहक राख अपने हाथ ॥'

—कबीरदास

(२) 'कम कीच—इस पद में यह न समझ लिया जाय कि गोसाइजी ने कम योग का सहन किया है। निष्काम कम का आश्रय तो वह यथार्थ ही रहे है। यहाँ सकाम और विषयासवन कम में तात्पर्य है, जो वास्तव में बधन का कारण है।

(३) मनहि मल घोयो—

'मल की जाइ मनहि के घोये ?'

[रामचरितमानस]

यह तो—

'राम भक्ति जल बिनु खगराई। अभ्यतर मल कबहुँ न जाई।'

(४) तपावत निचोयो—यो भा कहा है—

तृपितो जाह्नवीतीरे कूप वाञ्छति दुभग ।'

किन्तु गोसाइजी की यह उक्ति इससे भा बढ़कर है। 'आकाश निचोयो' में एक निराला ही चमत्कार है।

२४६

लोक-वेद हैं विदित धातु सुनि समुझि

मोह माहित विकल मति यिति न सहति ।

छोटे बड़े, खोटे-सरे, माटेऊँ दूवरे,

राम ! रावरे निगाह सवही की नियहति ॥१॥

होती जा आपा बग रहती जा ही रग,
हुता १ हग-भात मीमति मरति ।
सहो जा जोई-जाइ सहो गो माइ माइ
वह मीति वाह गो १ वाइमा रहति ॥२॥
वरम, वात मुभाउ गुन-दोष जीन जग माया तें
सा माय गीत चरित-वहति ।
ईमति, दिगीमति जागीमति, मुनीमति है,
होमति छागय तें गहाय नें गहति ॥३॥
सारज का गो राज पाठ का मय समाज,
महाराज बाजी गीत प्रथम १ हति ।
तुलसी प्रभु व हाथ हारिवा-जीनिरो ताय ।
वहु यप, वहु मुग सारदा वटति ॥४॥

भाषा—छोटे-बड़े घुरे भल भागे घोर दुवल, इन सबका है धारमश ।
आपके ही निमान स निभगी ह—यह बात सार घोर वग में प्रवृत्त ह । किन्तु इन सुन
वर घोर विचारवर भी मोहवश मरा बुद्धि एषी व्याकुल हा रही है कि वह स्मर
नही हो रही ह ॥१॥

जो यह अपने वश में हुना तो सदा एव रह हो न रहती । न किसी को हर्ष
होता न शोक । और न यातना हा भागनी पड़ती । जो जिस वस्तु की इच्छा करता वही
उत्ते मित जाती । किसी की वार्त्ता भा इच्छा बाकी न रहनी (सारी कामनाएँ पूरी हो
जाती) ॥२॥

किन्तु ऐसा ह नही । कम बाल स्वमान गुण घोर दोष ये सब आपके माया से
ह घोर वह माया भी मारे डर के भौंवरकी गो हाकर आपका भ्रष्टुटि की घोर देखना
रहती ह (आपके दल पर चलती ह) । वह माया शत्रु, ब्रह्मा और दिगमला की, योगी
श्वरो और मुनीश्वरो को आपके हा छुटान स छोड़ती ह और आपके ही पकडान स पकड
कती ह ॥३॥

इस माया का सारा समाज शतरज का-भा राज्य ह (भूटा ह) सब पाठ का बना
है । असल में न तो कोई राजा ह, न कोई बजोर । महाराज । शतरज की यह बाजी
आपकी ही रकी हुई है । यह पहल नहा थी । तुलसीदास कहते ह, कि हे प्रभो ! इस
धामा की हार जीत आपके ही हाथ म है (बाहू हराइए चाहे जिनाइए चाहे बचन में
खल दीजिए चाहे मूक बन दीजिए) यह बाल सरस्वती न अनरु रुद धारणकर, अनरु
मुखो से बहती ह ॥४॥

शब्दाय—मिति = (मिति) स्थिरता, शाति । हुनी=दुनिया । सीमति=रूप ।
लालसा=इच्छा । हति = वा ।

विशेष—(१) 'राम निबहति कहा ह
है हे वहि जो राम रवि राधा । को करि तक बड़ावहि साधा ॥'
X X X

‘राम जीह चाह सो होई । जर अयथा अस नहि कोई ॥’

(२) ‘छोटति गहति’—प्रमाण ह,

‘आमयन् सर्वसुतानि यत्राट्ठानि मायया ।’

[भगवद्गीता

तथा,

‘उमा वारु-जोषित को नाई । सउ नचावत राम गासाइ ॥

(१) ‘सतरज हति’—श्रीवैजनाथजी का निम्नलिखित प्रथम प्रकार द्रष्टव्य

ह

‘हे रघुनन्दन ! हे महाराज ! मोह दन लव माया, तथा विवेक दल सैव जीव
बोझ बाजी रचे खलि रहे है, तथा प्रथम जो मोह का सेना ह सो न हति नही मारे जाते
है अरु पीछे कहे जो विवेक सेना सो मरत जाती ह अथान शकल, त्वचा नेत्र, रसना,
नासिका, हाथ, पद सिंग इति आठ कोठा ह, पुन प्रकृति बुद्धि अहंकार शब्द स्पर्श,
रूप, रस, गन्ध इति आठ पानि के चौंसठि कोठा मये पुन माया के दिशि माह
बाँधाह साकी मिथ्या दष्टि आठह दिशि की चान विवक-दन को नाश करता ह । काम
बजीर पर-स्त्री म रति टेकी चाल विवेक नाश करता ह ।’ इत्यादि ।

(४) बहु बेप बहु मुख —अनेक भाषाभाषी और युक्तिया स तात्पर्य ह ।

२४७

राम जपु, जीह ! जानि, प्रीति सो प्रतीति मानि,

रामनाम जपे जैहै जिय की जरनि ।

रामनाम सो रहनि, रामनाम की कहनि ।

कुटिल-कलि मल-सोक सकट-हरनि ॥१॥

रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ,

कियो न दुराव, कही आपनी करनि ।

भव-सागर को सेतु, बासी है सुगति हतु

जपत सादर सम्भु सहित घरनि ॥२॥

बालमीकि व्याध है, अगाध अपराध निधि,

‘मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि ।

रोक्यो विध्य, सोख्यो सिधु घटजहै नाम-वल

हार्यो हिये, सारो भयो भूधुर डरनि ॥३॥

नाम महिमा अपार सेप सुख वाग-वार

मति अनुसार बुध वेदहै वगनि ।

नामरति-कामधेनु तुलसी को कामतरु

रामनाम है बिमोह तिमिर-तरनि ॥४॥

भाषाय—हे जीम ! ॥ राम-नाम का जप कर, उसे (यथाथ) जान । (नाम-

सम्ब धी यथेष्ट तत्त्व को प्राप्त कर और प्रेमपूर्वक उसमें विरवास कर । एक राम-नाम के जप से ही तर हृदय की जलन शांत हो सकेगी । राम नाम के परायण हो (मात्रत आचरण रामनाम के अनुमूल कर) और राम-नाम ही का कथन किया कर । कुटिल कलि युग के पापा दु रा और अनिष्टों को हरनवाली यह राम-नाम की प्रपन्नता है ॥१॥

राम-नाम के प्रभाव से गणेश (सर्वप्रथम) पूज जात हैं । गणेशजी ने अपनी करनी को स्वयं कहा है कुछ छिपाव नहीं रखा (किस प्रकार वह सर्वप्रथम पूज्य मान गये यह क्या स्वयं उन्होंने अपने मुख से सुनाई है ।) यह राम नाम समारूपी समुद्र का पुत्र है (इस पर चढ़कर भक्तजन सहज ही भव-सागर पार हो जात हैं) । काशी में भगवान शंकर भा पावती के सहित जोषा का मोक्ष प्रदान करने के लिए राम-नाम को जपा करते हैं ॥२॥

वासीकि कहलिये क अगणित पाप थे किन्तु उठा भी नाम मरा-मरा जप कर न एस (महामा) हो गये कि मुनियों और देवतामा न भी उनकी पूजा की । भगवत् ऋषि न भी इसी नाम के बल पर विध्यावल का (मसाम बड़ने से) रोक दिया और समुद्र को सुखा दिया था । पीछे वह समुद्र उन्ही ब्राह्मण (भगवत्) से मन में द्वार मानकर लारा हो गया ॥३॥

नाम की महिमा अपार है । शप शुकदेव कहा और पण्डिता ने बारबार अपनी बुद्धि के अनुसार इसका वणन किया है । राम-नाम से प्रीति का होना तुलसीदास के लिए मानो कामधनु है और कल्पवृक्ष है । भविष्य कहा रामनाम भजानाधिकार नष्ट करने के लिए साक्षात् सूप है ॥४॥

शब्दाय—गनराउ = गणेश । धरनि = श्री पावती से वात्सल्य है । ह = म । घटज = घट से उत्पन्न भगवत् ऋषि ।

विनय—(१) राम जपु जरनि — दोहावती ने गोसाइजी ने राम-नाम की भूरि भूरि महिमा गाई है । इस सिद्धांत के पुष्करूप कई दोहे मिलते हैं । जैसे

रामनाम रति राम गति, राम नाम बिस्वास ।
 सुमिरत सुभमगत कुसल कुहुँ बिसि तुलसीदास ॥
 प्रीति प्रतीति सुराति सो, रामनाम जपु राम ।
 तुलसी तेरी है भली आदि भय, परिनाम ॥
 सकल कामनाहीन जे, राम भगति रसतीन ।
 नाम प्रम पीपूष हूँ तिनहुँ किये मन मोन ॥
 हिम निगुनमघनहि सगुन रसना नाम सुनाम ।
 मनहुँ पुरट सपुट लगत तुलसी सनित सताम ॥

(२) पृथिवी गनराउ = कहत है कि वानकपन भगणेश बड़ उत्पाती थे । एक तो हमी के जे भगवान दूसरे शिवजी के गणेश के नामक । इहान सकल मुनिया को मारा वृण गिरा न्य जगत उत्रा डाल । शिवजी बहो बिता म पड गये । श्रीराम का स्मरण किया । प्रकट होकर भगवान न शंकर से अपने आवाहन का कारण पूछा । शंकरजी ने धन पुत्र गणेश का क्या कह सुनाई । वान—कुत्र एसा उपाय बतराई जिससे मरा पुत्र ब्रह्मदया से मक्त हो जाय । भगवान ने गणेशजी का रामसंन्यास जान का उन देा दिया । धनय नि-अ म श्रीराम-नाम-स्मरण मे गणेशजी कुत्र हा जान म भगन

मूर्ति माने जाने लगे । गणेशजी ने स्वयं कहा है—

‘ततस्तद्गृह्णादेव निष्पापोऽस्मि तदथ हि ।

तदादिसर्वदेवानां पूज्योऽस्मि मुनिरुत्तम ॥’

इस कथा का ब्रह्मपुराण में उल्लेख है ।

(३) ‘सभु सहित धरति —शिवजी ने स्वयं कहा है—

अहो भवनाम जपन कृतार्यो वसामि काश्यामनिग भवाया ।

मुमुक्षुमाणस्य विमुक्तयेऽहं विशामि भवत तव रामनाम ॥’

[अध्यात्म रामायण]

(४) ‘रोक्या विध्य’—एक पुराण कथा है कि विध्यावल भरपूर ऊँचा पत्रक था । सूर्य के प्रचण्ड तेज के कारण जब उसके वृक्ष जलने लगे, तब उसे बड़ा क्रोध आया और सूर्य को दक देने के लिए वह अपना शरीर बड़ाने लगा । देवता घबराए । भगस्त्य अपि से उन्हाने प्रार्थना की । महर्षि ने राम-नाम का स्मरण कर विध्याचक्र को मस्तक पर ह्राप रखकर उससे कहा, ‘देख जब तक मैं लौट न आऊँ, तब तक तू यहाँ ऐसा ही पड़ा रह ।’ भगस्त्य फिर कभी न लौटे और न वह उठा । वैसे ही पड़ा रहा । यह राम नाम का प्रभाव है ।

(५) सोक्यो सिन्धु —पौराणिक कथा है कि एक दिन संध्या समय महर्षि भगस्त्य समुद्र तट पर पाठ-पूजा कर रहे थे । दिन पूर्णिमा का था । समुद्र का ज्वार प्रतिपक्ष बढने लगा । उसकी ऊँची ऊँची सहारे महर्षि की पूजा सामग्री बहा ले गई । उन्हें बड़ा क्रोध आया और राम’ ऐसा कहकर तीन प्राचमन से सारे समुद्र को सुत्वा लिया । पीछे देवनाभा के सविनय आग्रह से मूत्र के माग से, खारा बनाकर, उसे बाहर निकाल दिया ।

(६) कामतव रामनाम’—

रामनाम कलि कामतव सकल सुखसकल ।

सुमिरत करतल सिद्धि सब पग-पग परमानंद ॥

नाम राम की कलपतव कलि कल्पान निवास ।

जो सुमिरत भयो भाग तेँ तुलसी तुलसीदास ॥

[दोहावली]

२४८

पाहि पाहि राम । पाहि रामभद्र, रामचंद्र ।

सुजस सवन सुनि आयो हौ सरन ।

दीनवधु । दीनता दरिद्र दाह-दोष दुख

दारुन दुसह दरदुरित—हरन ॥१॥

जव जग जग-जाल-व्याकुल करम काल

सब खल भूप भये सुतल भरन ।

तव-तव तनु धरि भूमिभार दूरि करि

थापे मुनि, सुर, साधु, आसम-चरन ॥२॥

१ पाठांतर ‘दरप

वेद लोव, सत्र सासी, काहू की रती न रासी,
 रावन की बदि लागे अमर मरन ।
 ओक दे विसोव बिये लोकपति लावनाय
 रामराज भयो घरम चाखि चरन ॥३॥
 सिला, गुह, गोध, कपि, भील, भालु, रातिचर,
 रयाल ही कृपालु कीहे तारन-नरन ।
 पील उद्धरन । सीलसिंधु । ढील देखियतु
 तुलसी पे चाहत गलानि ही गरन ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! कल्याणस्वरूप रघुनाथजी ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । आपका सुयश सुनकर मैं शरण भागा हूँ । हे दीनबन्धो ! आप दीनता, दयित्वा, सहाय, दाय भक्त हूँ दुःख, भय तथा पापों का नाश करनेवाले हूँ । मैं भी दीन हूँ, दयित्व हूँ, निताप से जल रहा हूँ, अपराधी हूँ भयान्त दुखी हूँ ससार से भयभीत हूँ और महान् पापी हूँ । विरवात हूँ आप मुझे इन दोषों से छुटकारा देकर भगीकार कर लेंगे ससार सागर से मार उतार देंगे ॥१॥

जब-जब आपके भक्त जगज्जाल में फँसकर दुखी हुए, काल और कम वे बरा में जा पड़ और पथिवी पर दुष्ट राजे भाररूप हो गये तब तब आपने अवतार ले-लेकर पथिवी पर का भार दूर किया (दुष्टों का नाश कर दिया) और मुनि देव, साधु सत्त एवं वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की ॥२॥

वेदों और ससार दोनों में ही प्रसिद्ध है, कि जब रावण न किसी का भी मान न रहने दिया, सबको निस्तेज्य व ऐश्वर्यहान कर दिया और उसके कारागृह में पड़-पड़े कभी न मरनेवाले दैवता भी मरने लगे तब हे भगवन ! आपने ही लोक-पथियों का, इन्द्र, कुबेर आदि का आश्रय देकर निश्चित किया और उन्हें फिर से लोकों का अधिष्ठाता बनाया (जिसका जो लाव था, उस वह दिला दिया) । आपके राज्य में तब धर्म चारा चरणों से युक्त हो गया (सत्य, तप दया और दान वनप उठे) ॥३॥

हे कृपामूर्ते ! आपने सीतापूर्वक ही भूहत्या, निषाद, जटायु वानर भील, भालु और राक्षसों को तरण-तारण बना दिया (उन्हें तो मुक्त किया ही, साथ ही उन्हें ऐसा पवित्र बना दिया कि उनके ससग मात्र से दूसरे भी ससार-बन्धन से छूट गए) । हे गजेन्द्र छेदारक ! हे शीलसागर ! इस तुलसी पर जो आपकी ओर से बोल सी दिलाई देती है, उससे वह ग्लानि के मार गया चाहता है । (उसे इस बात पर सज्जा आ रही है कि बड़े-बड़े पापी तो तर गये, वहीं क्यों अभी तक बन्धन में पड़ा सड़ रहा है) अतएव कृपाकर शीघ्र ही उसे अपनी लीजिए ॥४॥

गणाय—गहि=रक्षा करो । दुस्ति=पाप । मरन=भाररूप । पापे=स्थापित किए । रती=तत्र । अमर=दैवता । ओक=आश्रय । सिला=पत्थर यहाँ भूहत्या से तात्पर्य है । रातिचर=राक्षस । रयाल ही=सीतापूर्वक, या हो । पील=दायी ।

विनय—(१) 'जब जब वरन—यह शीता के निम्नलिखित श्लोकों का

छायानुवाद जान पता है—

‘यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सज्जाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय समवामि युगे युगे ॥’

२४६

भली भाँति पहिचाने-जाने साहिब जहा लो जग
जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम ।
प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीति के मलीन,
मायाघीन सब किये कालहूँ करम ॥१॥
दानव-दनुज बड़े महामूढ़ मूढ़ चड़े
जीते सोवनाथ नाथ बलनि भरम ।
रीति रीति दिये वर खोझि-खोझि धाले घर,
आपने निवाजे की न काहूँ को सरम ॥२॥
सेवा सावधान तू सुजान समस्य साचो
सदगुन धाम राम । पावन परम ।
सुख, मुमुख, एवरस एकरूप, तोहि
विदित विसेपि घटघट के मरम ॥३॥
तोसो नतपाल न भूपाल, न कँगाल मो सो
दया म वसत देव सकल धरम ।
राम कामत-पेटाह चाहूँ रवि मन माह
तुलसी बिकल, बलि, बलि कुधरम ॥४॥

भाषा—दुनिया में जहाँ तक मानिब हैं, उन्हें मने अच्छी तरह समझ और पहचान लिया है । वे पाठ में ही प्रसन्न हो जाते हैं और पाठ में ही नाराज हो उठते हैं । (यह बात नहीं, कि जिसे बना दिया उसे फिर बिगाड़ना क्या ? जरा-सा भून हो जाने पर, वे अपने सेवकों का सबनाश तक कर सकते हैं) । न तो वे प्रेम व निभान में ही कुरल हैं, और न नीति को ही समझते हैं । उनका बर्ताव कपट से भरा है, क्योंकि जान, कम और माया ने उन्हें धरने अधान कर रखा है ॥१॥

हे नाथ ! बल के भ्रम में मग्न मूढ़ बड़े-बड़े दत्त गानव शिर पर चढ़ गये थे और उन्होंने सावधानता का भी ध्यान रिया था । इन लोगों का इनके स्वामियों ने (ब्रह्मा, शिव आदि ने) पहले तो प्रशन्न होकर वरदान दिये पर बाद इनके घर का सत्यानाश कर दिया । अपने कृतज्ञता का बिगाड़न समय कियों का सम न धार् ॥२॥

हे रामजी ! सबको को आप ही बना भाँति पहचानते हैं, क्योंकि सच्चे, समय, सद्गुणों के स्थान और परम अनुर एक भाव ही है । धार सब पर कृपा करनेवाले, प्रशन्न

गुण महा एव रम (न हर्षे मे यमुनिन म शाह म निनिन) लीर वरु गुर है ।
आपको विराज रानि म गत पट का हाम मागुप है । (जा जेवा हागा है उग वगा हो
पय दन है, बहन का बाबरवका हा गरी पदना) ॥३॥

आपका समाप्त जगन्नाथ पावन कृपानु रमाया कोई दूधम मगा है पीर मुक्त-
सरागा कोई बगान गता ह । हृदय म हा मार धमी का निशान हाता है । (पनः
आप मुक्त दयापाव पर दया कोजित आप बलपुत्र ह । धरी अभिताता है वि भागी
छाया में सग रू है । (सरण म पदा रू मनिहार । रू सुन ॥ गन कनिगु के धमी
(हिवा सरण पागम धामि) म मगा व्याकुल हा रता ह (इरावर दनरी रदा
कोजित महा हा यह बचन का गरी) ॥४॥

गन्धाय — जू = शोचन प्रमन । गरम = धर्मगुण । पाम = गत लिए ।
गुण = कृपा करनेवाण । प्रनपाव = शरणागत का पावनवाण ।

विशेष—(१) । 'हिव गरम'—गग मत्तसका यारो पर गिरिधर बिराम ग
क्या लूय कहा ह —

साह मा सतार में मनसब का व्यवहार ।
जब लगि पसा गीठ में सब लगि ताबो यार ॥
सब लगि ताबो यार यार सर्गह सग बात ।
पसा रहान मात यार मुन स नहि सोल ॥
बह गिरिधर बिराम जगन हहि लेखा भई ।
करत बेगरी भी श्रोति यार बिरता कोई साई ॥

एव स्वार्थी मित्रा म ऊबवर मुकवि ललिराम कहत ह —

भरम गवान सरबेरो सग नीचन नै कटित बेल बेतकीन प गिरत है ।
परिहरि मानसी सु भावपी सप्तसदनि भ्रम भ्रम के भव भ्रमिन् है ।
'ललिराम सोभा सरवर म मित्रात हरि मूल मलिन् मन पल न बिरत है ।
रामचन्द्र बाध चरनाम्बुज बिसारि देस बन वन बेलिन-बहूर में किरत है ॥

(२) सद्गुणधाम — श्रीराम व मनक सद्गुण का वात्साकि रामायण म
गिनाया गया —

इवाकुवशप्रभवो रामो नाम जन धृत ।
नियतात्मा महावायो छुतिमाधतिमाचनी ॥
बुद्धिमा नीतिमान भाग्यो श्रीमान गनुनिबहण ।
धमन सत्यसधर प्रजाना च हितैरत ॥
यशस्वी ज्ञानसप न गुविन्स्य समाधिमान ।
सवसाकप्रिय साधुरदोनात्मा विचक्षण ॥

२५०

तो ही बार बार प्रभहि पुकारिके बिखावतो न
जा पे माका हीतो कहूँ ठाकुर ठहर ।
आलसी अमागे मोसे त कृपानु पाले पोसे
राजा मरे राजाराम अवध सह ॥१॥

सेये न दिगीस, न दिनेस न गनेस, गौरी ।
 हित वै न माने विवि, हरिउ न हर ।
 रामनाम ही सा जोग छेम, नेम, प्रेम पन,
 सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहर ॥२॥
 समाचार साथ के अनाथ नाथ । कासो वही,
 नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहर ।
 निज काज, सुरकाज आरत के काज राज ।
 बुझिये बिलब कहा कहूँ न गहर ॥३॥
 रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सो,
 डरत हो दखि बलिकाल को वहर ।
 कहैही वनेगी, वै कहाये, बलि जाउँ, राम,
 'तुलसी ! तू मेरो हारि हिये न हहर' ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ । यदि मुझे वही कोई दूसरा स्वामी या (प्राश्रम) स्थान मिल जाता, तो मैं बार बार आपकी पुकारकर नाराज न करता (पर कहे क्या, ऐसा कोई मिलता ही नहीं, जिसकी शरण में आकर निभय रह सकूँ। इसीलिए बार बार आपकी पुकारता हूँ) । हे महाराज रामचन्द्रजी । मुझ-सरीखे भ्रातृसियों और प्रभागों को तो आपने ही पाला पोसा है अतः हे कृपालो ! आप ही मेरे राजा हैं और प्रयोध्या ही मेरे रहने के लिए एक नगर है ॥१॥

म तो मैंने दिक्पाल (कुबर वरुण आदि), सूर्य, गणेश और पावती की प्रेमपूर्वक सेवा की है, और न थका सहित ब्रह्मा, शिव और विष्णु की ही आराधना । मेरा तो योग छेम एक राम नाम से ही है । उसी से मेरा नेम है, उसी से प्रेम है और उसी में मेरी भग्न-मत्ता है । उसका भरोसा मेरे लिए अमृत के समान है और दूसरे साधन हैं विष के समान ॥२॥

हे अनाथा के नाथ ! मेरे साथी और श्रीकीदार सब आप ही के हाथ में हैं (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोरों को आप भगाकर विवेक परामर्शनी श्रीश्रीदारों की सचेत कर देंगे, तो मेरा राम नाम प्रेमरूपी घन बच जाएगा) । हे महाराज ! तनिक विचारिए तो, आपने अपने कामों में देवताओं के कामों में और दान-दुनिया के कामों में क्या कभी देरी की है ? फिर मेरे ही लिए क्यों इतना विलम्ब हो रहा है ? ॥३॥

आपकी रीति (पतिव्रताव्रता, जन-वत्सलता आदि) सुनकर आप पर मेरी प्रतीति और प्रीति हो गई है, किन्तु बलियुग की प्रतीति को देखकर मैं बहुत डरता हूँ (कि वहाँ वह मुझे आपसे विमुख कराकर विषया में न पँसा दे) । हे रघुनाथजी ! मैं आपकी बलियाँ सेता हूँ, मेरी तो आपने इतना कहने से या किसी के द्वारा कहलाने से ही वनेगी कि 'तुलसी ! तू मेरा है निराश होकर तू मत घबरा ॥४॥

पदार्थ—टहर = स्थान । सहर = शहर । हर = हर, शिव । जोग-छेम =

भाराय—हे रामजी ! जिनके हृदयरूपी सुंदर धाहे में हरि भक्तिरूपी ऐसा कल्पवृक्ष सुशोभित हो रहा है जिसमें परम सुख के सरग फूल फूलते और मधुर फल पतते हैं ऐसा शिव हनुमान सम्मेलन और भरत आपके स्वभाव, गुण, शील और महिमा का प्रभाव (तत्पर) जाते हैं ॥

आपने अपने स्वभाव के वश होकर शिवजी का स्वामी, हनुमान् को मित्र और लक्ष्मण एवं भरत का अपना भाई माना है, पर व सब आपका अपना स्वामी हो मानते हैं प्रेम में सदा सावधान रहते हैं और आपसे डरा करते हैं (कि वही सवा में कोई धूक न पड़ जाय) । यदि स्वामी और सबकुछ इस रीति से प्रेम करते रहें, नीति और नियमा को सदा निबाहते रहें और अपनी टेक से न टर्नें, तो उनकी प्रीति परम सीमा तक पहुँच जाती है ॥२॥

परम विरक्त होने से ही श्रीरघुनाथजी की महती भक्ति मिलती है—यह शुकदेव, सनकादिक प्रह्लाद, नारद प्रभृति भक्ता ने कहा है । और (परमात्मा के तात्त्विक) ज्ञान के बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती किंतु वह ज्ञान, हे नाथ ! आपके हाथ में है (आपकी ही कृपा से जीव को 'स्वरूप' का ज्ञान प्राप्त होता है) इसी बात को खूब सोच-समझकर चतुर लोग आपने चरखा पर आकर गिरते हैं, (जिन्हें आपकी भक्ति एवं आपके स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा है, वे सब छोड़-छाड़कर आपकी ही शरण में आते हैं) ॥३॥

यह शास्त्रों के सिद्धांत भिन्न भिन्न हैं, पुराणों का भी मत एक-सा नहीं है और वेद भी नियम निति, नेति ही कहते रहने हैं । (परमेश्वर के स्वरूप का यथायथ बोध वेद शास्त्र और पुराण नहीं कर सकते) । तब भीरा के सम्बंध में तो कहना ही क्या ? मुझे तो बस एक ही बात अच्छी समझ पड़ती है, और उसी से भला हो सकता है । वह यह, कि राम-नाम स्मरण करने से तुमही मरीखे भी (मसार सागर से) बर गये हैं । (राम नाम स्मरण ही सर्वप्रधान साधन है) ॥४॥

गवदाय—परत = फलता है । विरति निरत = वैराग्य में अनुरक्त या परम विरक्त होने से । मत = यह शास्त्रों का मत । विमत = प्रतिकूल मत ।

विशेष—(१) 'हर'—श्रीरघुनाथजी के ऐश्वर्य को शिवजी ही जानते हैं । ऐश्वर्य का बखान करत हुए आप कहते हैं —

'आदि अंत कीड़ जासु ना पावा । भति अनुमान निपन अस पावा ॥
पग बिनु चल सुन बिनु जाना । कर बिनु करम कर विधिनाना ॥
ज्ञान रहित सकल रस भोगी । बिनु बाजी बक्ता ब्रह्मजोगी ॥
तनु बिनु परस, नयन बिनु देखा । गहै ध्यान बिनु बास असेला ॥
अस सब भाति अनीतिक करनी । महिमा जासु जाइ नहि धरनी ॥

जेहि हनि गार्वाह बेद बुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान ।

सोइ बसरयसुत भक्तहित, कोसलपति भगवान ॥'

(२) 'हनुमान'—भगवान के सौशील्य के विषय में हनुमान्जी का यह कथन पर्याप्त है —

[रामचरितमानस

१८८ । विष्णु-विराज

‘बहु हम् वसु सागामुग धनम् वाय करो मे विदमान की ।
बहु हरि भक्त तिय-गुरु ग्यायन म’ह विगतिन वर सार्जन करी ॥

(३) ‘मगन’—नव भारामनी मे मगन को मम मोर म’ह का उठो’ हिन्ना,
तव उठो’ मम विद्वान् हावर कहा —
‘परम भीति जगैगिय तागी । बीरनि भुक्ति, मुक्ति जिय पागी ॥
मे तियु प्रभु तोट प्रजतापा । महर म’ह वि बाण मराणा ॥

(४) मरन — श्रीरामजी के शरणा को तब मरनता हा जागे है —
‘मे जागो रिज स्वाभिन-नुभाऊ । मरन-पिठ पर कोर न काऊ ॥
मे प्रभु-दया रीति जिय कोटी । हारेहु लेन जिजाबहि मोटी ॥

अछि मोने है कुमानु ले हू भाई भनि बोबी ।
सनमुग गये सारन राखहिने रुपति परम गबोबी ॥

(५) ‘माग मान’ — माइ — शिवजी को श्रीरामजी पूर्य भाव न मानते ॥
यथा — [गीतावली

‘भीरो एक गुप्त मत सबहि कटौ कर जोरि ।
सबर भजन बिन नर, भक्ति न पाव मोरि ॥

भौर सख्यभाव से हनुमान्जी त कहते हैं — [रामचरितमानस
प्रभुपकार करौं का सोरा । सनमुग हूँ न सबत मन मोरा ॥

श्रीराम का लक्ष्मण पर जो वात्सल्य था वह अनुपम था शक्ति-बाहुन, सम्मन
को गोद में लिये श्रीराम कहते हैं — [रामचरितमानस

‘भौर निबाहि भली विधि भायप, धत्यो सयन-सो भाई ।
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बनविपति बँटाई ॥
सा संग ही सुरलोच सोच सजि सख्यो न प्रान पठाई ।
जानत ही था सब कठोर तें कुत्सित बडिन्ता पाई ॥
सुमिरि सनेह सुमिश्रा-युत की दरकि दरार न जाई ।
सात मरन, तिय-हरन भीष-अप, भुज दाहिनी गवाई ।
सुलसी में सब भाँति आपने कुल कात्तिमा लगाई ॥

(६) ‘शुक्’ — परमहंस शुक्देव कहते हैं — [गीतावली

‘भजति ये विष्णु मन-यचेतसस्तथैव तत्त्वमपरायणा जना ।
बिनष्टरागाविमलतरा नरास्तरति सतारतमुन्नमश्वयम् ॥’

[श्रीमद्भागवत

(७) 'प्रह्लाद'—भक्तवर प्रह्लाद का यह सिद्धान्त है—

वस्मादमूस्तनुभृतामहमाग्निषोक्त आयु श्रिय विभवमद्रियमाविरञ्चयात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुवविष्मेण कालात्मनोपनय [मा निजभृत्यपाश्वम् ॥'

[श्रीमद्भागवत

(८) 'धर्म'—साख्य, योग, धर्मोपेक्ष 'याय पवमीमासा और उत्तरमीमासा ।

२५२

बाप, आपने करत मेरी घनी घटि गई ।
लालची लवार की सुधारिये वारक, बलि,
रावरी भलाई सबही की भली भई ॥१॥
रोगवस तनु, कुमनोरथ मलिन भनु,
पर अपवाद मिथ्या-वाद बानी हुई ।
साधन की ऐसी विधि, साधन बिना न सिधि,
बिगरी बनावे कृपानिधि की कृपा नई ॥२॥
पतित पावन, हित भारत भनायनि को,
निराधार को आधार दीनबधु दी ।
इन्ह मे न एकौ भयो, बूझि न जूझयो न जयो
ताहिने त्रिताप-तयो, लुनियत बई ॥३॥
स्वाग सूघो साधु को, नृचालिकलिते अधिक,
परलोक फीकी मति, लोक रग रई ।
बडे कुसमाज राज । आजुलों जो पाये दिन
महाराज । केहू भाति नाम भोट लई ॥४॥
राम । नाम को प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न विधि निरमई ।
खीझिये लायक करतव कोटि-कोटि कटु,
रीझिये लायक तुलसी की निलजई ॥५॥

भावाय—हे बापजी ! मैं आपने ही हाथा अपनी करनी बहुत बिगाड डाली हूँ । मैं आपकी बलियाँ लेता हूँ इस लोभो और भूटे की बात एक बार सो सुधार दीजिए, क्योंकि जिस जिसके साथ आपने भलाई की उसी उसी की बात बन गई (सो आज मेरी भी बिगड़ी को बना दीजिए) ॥१॥

शरीर रोगी हूँ मन बुरी-बुरा वासनाप्राप्त से मैला हो गया है और बाणी दूसरों की निंदा और बकवाद करते-करते नष्ट हो गई हूँ रहे कुछ साधन, सो वे भी बिना साधे सिद्ध नहीं होते । अतः हे कृपानिधि ! आपकी एक कृपा हो ऐसी अनूठी हूँ, जो मेरी बिगड़ी बात को बना देगी ॥२॥

आप पापियो का उद्धार करनेवाले और दुष्टिया और घनापा ब हित ह, जिनका वही ठौर ठिकाना नहीं, उन्हें आप आश्रय दते हैं और दोना का भला करत ह। पर मैं तो इनम स एक भी नहीं हूँ। (मुझ पर आप क्या कृपा करेंगे ?)। न ता मने विवक उल से अपने शत्रुओ (वाम मोघ लोभ, माह) ब ही साथ युद्ध किया और न उन पर विजय ही प्राप्त की। इसीसे म दहिव भौतिक और दविव इन तीना तापा से जल रहा हूँ। जो बोया सो काट रहा हूँ (किते दोष हूँ ?) ॥३॥

मन स्वाग ता सीध सादे साधु बं जसा बना लिया ह परन्तु पाप करन में कलि भी मेरे सामन नगण्य ह। मेरी बुद्धि को परमाय की बातें नीरस जान पड़ती ह क्योंकि वह ससार की वाता म रगी हुई ह (विषय आसनाए हा उस अच्छी लगती ह)। हे महाराज ! इस भारी दुष्ट समाज के साथ आज तक जितने दिन बीत, ब व्यय ही गये। आज किसी तरह आपके नाम का सहारा लिया ह (इससे समय पड़ता ह कि भव मेरे दिन किरेंगे और करनी सुधर जायगा) ॥४॥

भलीभांति आप जानत ह कि आपने नाम का क्या प्रताप ह। सिवाय आपके नामरूपी विधाता ने मेरे लिए तो दूसरो गति ही नहीं रची ह। आपको भक्तनुष्ट करने लायक मेर करोडा कुकर्म ह किन्तु सनुष्ट करन लायक तो मेरी एक यह नितजता ही ह। (मेरी नितजता पर ही प्रसन्न होकर कृपा कर दीजिए) ॥५॥

गव्वाय — लवार = मूठा। बारक = (बार + एक) एक बार। हुई = नष्ट की। जायो = जीता। जूझ्या = युद्ध किया। रई = रंग गई। निरमई = रचा। निलजई = नितजता ही।

विनये—(१) स्वाग सूषा साधु को हरिराम पास न एक बड़ा चुटोला पक कहा ह — रई — कनियुगी साधुमा पर श्री सापत बरागी जड भग।

पातु रत्तायन भीषण सेवत, नितिदिन बढत भनग ॥
सुख बचनन को रंग न लाग्यो भयो न ससय भग ॥
बिष बिकार गुन उपज बित सगि सब करत बित भग ॥
वन में रहत गहत कामिनि कुछ सेवत पीन उतग ॥
घनि पनि साधु । बभ की मूरति, दियो छाडि हरि सग ॥
सोभ-बचन वाननि अंग-अगनि सोभित निबर निलग ॥
ग्यास भास जमपास गरे तिहि भाव राग न रग ॥

(२) लुनियत वई —

तुमसा कहा न होय, हा हा ! तुमये मोहि ।
हो है र्हो मोन ही, व्यो सो जानि लुनिए ॥'

राम ! रामिय सरन, राखि आये सज दिन ।
विदित तिलाज तिहूँ कान न दयालु दुजा,
भारत प्रनत-पाल को है प्रभु विन ? ॥१॥

लाले पाले, पोपे-तोपे, आलसी, अभागो, अधी,
 नाथ । पै अनाथनि सो भये न उरिन ।
 स्वामी समर्थ ऐसो, हों तिहारो जैसो तैसो,
 काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥२॥
 खीझि रीझि त्रिहेंसि अनख क्या हूँ एक बार,
 'तुलसी तू मेरो' बलि, कहियत किन ?
 जाहि सूल निरमूल, होहि सुखद अनुकूल,
 महाराज राम । रावरी सा, तेहि छिन ॥३॥

भाषा—हे रघुनाथजी मुझे अपनी हा शरण में रखिए क्योंकि आप सदा से (मुझ-जड़ा का) अपनात आये हैं । यह सबका विदित है, कि सीना लोको और सीना काना में आने समान दयालु कोई दूसरा नहीं है । हे नाथ । आपका छाँवर दुखियों और सीना की रक्षा करनेवाला और कौन है ॥१॥

आपने आलसी अभागो और पापा लोग का लालन पालन किया उन्हें पाला पोसा और प्रसन्न रखा, तब पर भी आप उनमें कभी उच्छ्रय नहीं हुए, कजदार हा बने रहे । हे प्रभो ! आपनी समर्थ ह, पर म जसा कुछ है आपका ही हूँ । बनिजाल की कुटिल चाल देखकर मेरे हृदय में बनी घिन हा रहा है (यह शक है कि कही यह दुष्ट आपके धरणा की ओर से मर मन का फेर न दे, ता सारी बनी बनाई बात मिट्टी में मिल जाय) ॥२॥

बलिहारी ! एक बार माराजी से अथवा राजो से मुस्कराकर या तेवरी चढा कर किसी भी तरह सही इतना आप क्या नहीं कह दते कि 'तुलसी तू मेरा है ?' इतना कह देन मात्र से ही मेरा सारा दुःख जट मून से नष्ट हो जायगा । हे महाराज रामचन्द्रजी ! मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ उसी क्षण समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायेंगे ॥३॥

पदार्थ—अधी—पापी । उरिन—(उच्छ्रय) बेवाक । घनी—बहुत । घिन = श्रेय ।

विशेष—(१) 'काल चाल' घिन—बनिजाल की माया देखकर भवतवर हरिराम व्यास धवराकर कहते हैं —

‘धम दुर्यो कलिराम दिखाई ।

धीनो प्रगट प्रताप आपुनो, सर विपरीत चलाई ॥

धन भी भीत, धम भी बरी पतितन सों हितवाई ।

जोगी, जती, सपी, सयासी बत छाँट्यो अकुलाई ॥

बरनासम की बीन चलाय, सतनह में आई ।

देउत सत भयानक लागत भावत सगुर जमाई ॥—

सम्पति मुकृत, सनेह मान चित गृह-योहार बझाई ।

कियो कुमारी सोम आपुनो, महामोह जु सहाई ॥

वाम त्रयो मद सोह अह मत्सर बीहों देस दुहाई ।
दान लेन को बडे पातकी, मचलन की बँभनाई ॥
सरन मरन को बडे तामसी बारों कीटि कसाई ।
'ध्यासदास के सुकृत सावरे मे गोपाल सहाई ॥'
(२) जाहि दिन—ब्याकि—

भिद्यते हृदयप्रिय छिद्यते सबसंगया ।
क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

[धीमद्भागवत

२५४

सुजन राम । रावरो नाम मेरो मातु पितु है ।
राम सनेही गुरु साहिब सखा सुहृद
राम नाम प्रेम-पन अविचल वितु है ॥१॥
सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मधि
लियो बाडि वामदेव नाम-धृतु है ।
नाम को भरोसो बल चारिहूँ फल को फल,
सुमिरिये छाडि छल, भलो कृतु है ॥२॥
स्वारथ साधक, परमारथ साधक नाम,
राम-नाम सारिखो न और दूजो हितु है ।
तुलसी सुभाव वही, साचिये परेगी सही,
सीतानाथ-नाम नित चितहूँ को चितु है ॥३॥

भावार्थ—हरिबुनापजी । आपका नाम ही मेरा माता पिता सगा सम्बन्धी
सही गुरु स्वामी मित्र और सखा है । आपके नाम में जो मेरा प्रेम का प्रण है वही
मेरा घटल घन है (और घन तो खच करन से कम हो जात है पर आपका नाम घन
दिन-पर दिन बढ़ता है) ॥१॥

शिवजी ने सी कराड चरित्ररूपी भगवत दधि भागर स नामरूपी भी मयनर
निकाल लिया है (आपका समस्त चरित्र का सार रामनाम ही माना है) । आपके नाम
का बल मरोसा चारा फना का फन भर्षात् भय घन वाम और मोक्ष का साररूप
है । प्रत्येक कर्माभाव धारण इसी का स्मरण करना चाहिए । यहाँ सर्वोत्तम घन है ।
(कलियुग में नाम कीर्तन कृत्य कोई भी घन नहीं है) ॥२॥

आपका नाम श्याम का साधनकाला एव परमाथ प्रान्न करनेवाला है । आराम
नाम के समान हिन्दू दूधरा बोई भी घन नहीं है । यदि यह बात तुमगी-गल न स्वभाव से है
कही है तो सचमच है इस पर सही पड्या । हे जानकारमण ! आपका नाम नि य है
और चित का भी चितु है ॥३॥

गङ्गाय—वितु = (चित) घन । दधिनिधि = दही का समुद्र । वामदेव = शिवजी ।
कृतु = कर्म घन । स्वारथ = व्यवहार । परमारथ = मोक्ष ।

विशेष—(१) 'नामवा भरोसी'—गोसाइजी ने अथय कहा है —

'राम नाम पर राम तैं प्रीति प्रतीति भरोस ।
सो तुलसी सुमिरत सकल, संगुन सुभगल-कोस ॥
राम नाम जयलब बिनु, परमारय की आस ।
बरपत चारिद बूद गहि चाहत छडन अवास ॥'

(२) 'भलो कृतु है — राम नामरूपी यन सद्य गुणलदायक है —

हुतसी प्रीति प्रतीति सा, राम नाम जप जाग ।
किये कोइ बिधि बाहिनो, बेइ अभायेहि भाग ॥'

(३) 'परमारय—दायक'—यथा—

'अधिकारी बिकारी था, सबदोषकभाजन ।
परमेशपद याति, रामनामानुकीतनात ॥'

[विष्णुपुराण

२४४ ५म-५

राम । रावरो नाम साधु सुरतर है ।
सुमिरे त्रिविध घाम हरत, पूरत काम,
सकल मुकृत सरसिज को सर है ॥१॥
लाभहू को लाभ, सुखहू का सुख, सबस
पतित पावन, डरहू को डर है ।
नीचे हू को, ऊँच हू को, रक् हू को, राव हू को,
सुलभ, सुखद अपनो - सा घर है ॥२॥
बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो,
नाम - प्रेम - चारिफल हू को फर है ।
ऐसे राम-नाम सो न प्रीति न प्रतीति मन,
मेरे जान, जानिबो सोई नर खर है ॥३॥
नाम सो न मातु - पितु भीत हित, बधु, गुरु,
साहिब सुधी सुमील सुधाकर है ।
नामसो निबाह नेहू दीन को दयालु दहू,
दासतुलसी को बलि, बडो बर है ॥४॥

भावाय—हे श्रीरामजी ! आपका (राम) नाम साधुओं के लिए मानो कल्पवृक्ष है, क्योंकि उसके स्मरण करते ही लोग तप (दहिक भौतिक और दैविक) दूर हो जाते हैं । चित्त शान्त और सुखी हो जाता है सारी कामनाएँ सफल हो जाती हैं । यह पुण्य रूपी कमला का सरावर ॥ (पुण्य के प्रताप से ही त्रिविध तप दूर होता है और चित्त में सुख-शान्ति आती है) ॥१॥

यह लाभ का भी लाभ, सुख का भी सुख और (भक्तों का) सयस्व है । यह

३६४ । विनय-प्रतिपा

पापियों का पापों कराना और भय का भी भय, अर्थात् मनु का भी भयभीत करने
 माना है । यह बात का ऊँचा, रीत का गति का समा का सुख । समा का गुण
 देनसत्ता है, और धर्म निजा घर के समा धारण माना है ॥२॥

य । १, गुणाना १ और शिखर । १ गुणाना गुणाना गुण है कि रामान स
 प्राप्ति जोन्ना चांग वना का पत्र है (यद्यपि यम का और मान का मा सार है) ।
 ऐसे श्रीराम नाम पर निगता प्रम और विरभाव ता, मरी समान में उम मनुष्य का
 गया समानता चाटि (जम गंध का नि रान पाठ पर मार सागर चना पडा है,
 उसी प्रकार यह मनुष्य जीवन का मार राना हुमा रान नि दधर न उपर भक्तता
 विरता है) ॥३॥

पिता माता मित्र, रिशु भाई, गुण और रानी हामें स का नाम श्रीराम नाम
 के धृष्ट गुण देनेवाता १ है । यह परम गुणान चामा के समान गुणान स्वामी है ।
 हे कृपाल ! बलिहारा, गुणाना का यदा दान दाजित कि चांग नाम के साय मरा
 जो प्रेम है वह निभ जाय । (बलिहारा । दया दान गुणान १ । नए चांग यदा सखे
 पडा वरदान है ।) ॥४॥

गन्धाध—सम्मानान । पुरारि—पुर द य के शत्रु शिखी । पत्र = पत्र ।
 सुधी = बुद्धिमान । वर = वरदान ।

विनय—(१) साध गुरतर ॥ —इमका यह भाष्य हो सकता है कि श्रीराम
 नाम सत्त और कल्पवृक्ष दाता के हों समान शत्रु फना का माना है । सत्त से जा गुण
 भी माँगा जाय यह दे दता है । यदा स्वभाव चामा का है ।

(२) 'पुरारि हू कहा—पुणिए कासी की बाबिया म एव जटिल तपस्वी
 क्या कहता हुमा घूम रहा है --

वेद्य वेद्य ध्वजगुटके रामनामाभिरामम
 ध्येय ध्येय मनसि सतत तारक बहुरूपम ।
 जल्प जल्प प्रकृति विवृती प्राणिना कलमूल,
 वीर्या वीर्या अटति जटिल कोऽपि काशी निवासी ॥

(३) 'सोई तर छरुह —भगवद्धिमुख जीव को गंध की उभया धाम्भावकत
 म भी स्वय श्रीमुख से भगवान ने दी है —

'यमा खरद्वज दन भारवाही भारस्थ चेतानतु चदनस्य ।
 तयाहि विद्या पटगात्रपुक्ता मद्भक्तिहीना खरवद्वहति ॥

२५६

वह विनु रह्या न परत वहे राम । रस न रहत
 तुमसे सुसाहिब की ओट जन खाटा सरो
 काल की करम की कुसासति सहत ॥१॥

करत विचार सार पैयत न बहूँ कहु,
 सकल बडाई सब कहाँ तें लहत ?
 नाथ की महिमा सुनि, समुधि आपनी ओर,
 हेरि हारिके हहरि हृदय दहत ॥२॥
 सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु, आप
 माय-वाप तुही साचो तुलसी कहत ।
 मेरी तो थोरी ही है सुघरेगी गिरियो,
 बलि, राम रावरी साँ, रही रावरी चहत ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! जिना कहे ता रहा नहा जाना, और कह देने पर कुछ रस नहीं रह जाता (मजा बिरकिरा हो जाता है) । आप सरोवे सुंदर स्वामी का आश्रम पाकर भी आपका यह सबक—भने ही वह घुरा हाँ या भला—गण्ड दु ख भाग रहा हूँ, (यही बात है जो मुह से रोकने पर भी बरबस निकल ही आती है । यदि किसी दूसरे का यह सुनाऊँ तो उसमें क्या रस रहेगा ? क्योंकि कोई मेरा केश तो हरेगा नहीं, उलटे हँसी ही उड़ाएगा) ॥१॥

विचार किया करता हूँ, पर कही रहस्य का कुछ पता नहीं मिलता, कि इन सब शोका ने कहाँ से बडप्पन पाया है (वह कौन मा साधन है जहाँ से ये लाग बडे घन बनकर आते हैं) । आपकी महिमा सुन-समझकर जब अपनी दशा की ओर देखता हूँ तो निराश हो जाता हूँ और पत्रराहत ने हृदय जलने लगता है (यह मुनकर कि आप पतित पावन हैं मैं आपकी शरण में आना चाहता हूँ पर जब आपकी ओर मे कौरा जवाब मिलता है, तब जी में हार मानकर निराश बठ जाता हूँ और हृदय में जलन होने से कुछ-ना कुछ कह बठता हूँ) ॥२॥

सुनिध, मैं तो मेरा कोई मित्र है न सच्चा सेवक है और न मुलबणा स्त्री है, और न कोई स्वामी है । मरेछो सच्चे माई बाप आप ही हैं तुलसी यह भव बात कह रहा है (बि-कल्पना न समझिगा) । मेरी तो बाड़ी हो बात है बिपहने पर भी सुघर जायगी । किंतु बलिहारी ! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ मैं आपकी बात हो रखना चाहता हूँ (कही संसार में आपकी जन वत्सलता और पतित पावनता को लाज में चरी जाये, भव यदि आपकी शपथ विरद की लाज रखनी है तो मुझे शपथ तो दीजिए) ॥३॥

गद्याय—तुसांसति—प्रसह्य कष्ट । हहरि—धनराकर ।

२५७

दीनबधु ! दूरि बिये दीन को न दूगरी सरन ।
 आपकी भले हैं भन, आपन को कोऊ बहूँ
 सब का भला है राम ! रावरी चरन ॥१॥

लिए दुष्ट को मार डालना ही अच्छा है)। धाप धव इन दोनों बातों पर विचार कर लीजिए। मैं धापना धव नि। ग। १ बन्ना। बार बार उकार गीतकर तुनगी ने यह सच्ची बात कह दी है। जो धाप (मरा पगना करने में) दरो बरग, ता म धाप नाम की महिमा को गोरा को टुबो दूंगा। (मेरी दुर्गति का दगतर धाप नाम पर लागे का श्रद्धा उठ जायगा) ॥४॥

गदाय—गारि=दाय। दोस कोस=धारापा का सदाना। मुन कोस=धौला साको स तात्य है। टकटारि धाय=गाज धाया। सार=भूटा। गहगारिहो=मयकर बना कर दूंगा।

विशेष—(१) 'भासो टकटोरिहो—सूरदासजी भी ऐसा ही कह रहे हैं—
'हरि, हों सय पवितन को राय।

को करि सकै बराबरि मेरी सोयीं मोहि धताय ॥
व्याप, गोप अव पतित पूतना तिनमें बड़ि जी भीर।
तिनमे अजामेल गतिवा पति, उनमें मैं तिरमौर ॥
जहँ-तहँ सुनियत यहै बडाई सो समान रहि मान।
सय रहे आज-बालिह के राजा, हों तिनमें सुमतान ॥
अबलौं तो तुम बिरद बोलायो भई न मोता भेंट।
सजी बिरद, कै मोहि उषारी सूर गही बटि कंट ॥

(२) डील बिय धारिहो—जीव धणु होन के कारण स्वभाव से ही धवीर है। गोसाइजी ने तो धमकी ही दी है कि मुझे जल्दी हो तार दा नहीं तो मैं नाम महिमा का नौका का डुबा दूंगा पर कविवर विहारो का धीरज न बधा और यहाँ तक गुस्ताखी कर डाली—

'बब की टेरत दीन हूँ, होत न स्पाम सहाय।
तुम हूँ लागो जगतगुरु जगनायक। जगदाय ?'
२५६

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरेगी मेरी,
वही, बलि, वेद की न, लोक कहा कहैगो ?
प्रभु को उदास भाव जन को पाप प्रभाव
दुहैं भाति दीनबधु। दीन दुख दहैगो ॥१॥
मैं तो दियो छाती पवि, लयो कलिकाल दवि,
सासति सहत परबस को १ सहैगो ?
बाकी विरदावली बनेगी पाले ही कृपालु।
अत मेरो हाल हेरि यो न मन रहैगो ? ॥२॥
बरमी धरमी, साधु मेवक विरत रत,
आपनी बनाई थल कहा कौन लहैगो ?
तेरे मुह फरे मासे कायर कपूत कूर
लटे लटपटनि को कौन परिगहैगो ॥३॥

बाल पाय फिरत दसा दयालु । सब ही की,
तोहि विनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो ।
वचन करम हिये कहीं राम । साह किये,
तुलसी पै नाथ के निगहेइ निगहैगो ॥४॥

भावाय—यदि तुम्हारी बनाई हुई मेरी बात मेरे विधाने स विगड जायगी, तो तुम्हारी बलया लेता हूँ, कहा ता ससार क्या कहेगा ? वद का बात नहीं कहता हूँ । (बल में चाहे जा लिखा हो, उससे कोई मतलब नहा पर ससार क्या कहेगा ? यही कहगा न कि परमेश्वर तुलसी ही ह, क्योंकि रामजी की बनाई बात उसने विगाड दी । पर, ऐसा हा कस सकता ह ? मेरी जिंसात क्या कि म तुम्हारी बात का विगाड सकू ?) स्वामी की उपासीनता और मुझ सेवक का पात्र प्रभाव यदि ये दाना ही मिन गये ता हे दीनबन्धो । यह दोन दुख के मार जल भरगा (सारास यह कि म तो महापानी हूँ ही, पर तुम मेरे प्रति उपासीन न हो जाओ, तुम्हें ऐसा करना शोभा न देगा) ॥१॥

मने ता अपनी छाती पर वज्र रख लिया ह (हृदय का दुख सहने क लिए वज्र के समान कठोर कर लिया ह) कारण कि कनियुग ने मुझे दबोच दिया ह और भव पराधान होकर असह्य कष्ट सह रहा हूँ । (म हो क्या) जा भी परतन्त्र होगा, वह कष्ट सहगा ही । किन्तु हे कृपानिधान ! तुम्हें अपनी बाँकी विरदावली के बरा होकर मुझे पालना ही हागा (यदि मेरा रक्षा न करोग, ता लोग तुम्हें झूठा कहेंगे) । और, अन्त समय ता मेरा हाल देखकर तुम्हारा यह उदासान भाव रह ही नहीं सकता तुम्हें भवश्य ही पिघलना पड़ेगा ॥२॥

कमकाण्डी धमात्मा, सानु, सेवक, विरक्त और ससारी जीव, ये सब अपने कर्मों क अनुसार कहीं-न-कहीं स्थान पा हा जायेंगे । परन्तु तुम्हारे मुँह फेर लेने स, उदासीन हो जाने स मुझ-जैसे कायर, कुपूत, दुष्ट नीच और गिर-पडे जीवा की कौन प्रगौरार करेगा ? ॥३॥

हे दयालौ ! समय भाने पर सभी की दशा फिरती ह पर तुम्हें छोडकर मुझे तो कभी कोई नहा चाहेगा । हे रघुनाथजी ! तुम्हारा शपथ खाकर म वचन, कम और मन से कहता ॥ कि यह जन ता तुम्हारे ही निगहे निमेगा । तुलसी का निर्वाह तो तुम्हारे ही हाथ में ह ॥४॥

गद्याय — पवि=वज्र । सांसति=कष्ट । करमी=कमकाण्डी । लटे=नीच, सोटे । लटपटेनि = लयनय, गिरे-पडे ।

विशेष—(१) बाँकी विरदावली 'कृपानु'—यदि शरण म नहा लोगे, तो प्रापकी विरदावली पर लोग विरवास नहा करये, और यह सुनना पड़ेगा कि—

वेद औ पुराणन में की हा हे वज्रान ऐमो
सतजुग बीच ध्रुव प्रह्लाद की तूटे ही ।
प्रेता जीव नीच कुल की न करो जानि कछु,
भासनी के साथ प्रभु खावे केर कूटे ही ॥

हाथर के अंत तुम झीपड़ी की रागी साज,
 पांय के बाज बस बीरय ब डटे ही ।
 अथ कतिबाल में जो बरो १ सहाय मेरी
 तुर्रें लोग हतिरें कहेंगे 'हरि भूटे ही ॥'

२६०

साहिय उदास भये दास दास ग्योम हान
 मरी बहा चली ? हौं बजाय जाय रह्यो हौं ।
 लार मे न ठाउँ, परलाव का भरोसो बीन ?
 हौं तो बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥१॥
 करम, सुभाउ, बाल बाम, बाह, लोभ, मोह
 ग्राह भति गहनि गरीबी गाढे गह्यो हौं ।
 छोरिबे को महाराज, बाधिबे को काटि भट,
 पाहि, प्रभु ! पाहि तिहूँ पाप नाप-दह्यो हौं ॥२॥
 रीझि बूझि सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार,
 दूध को जरघो पियत फूँकि फूँकि मल्यो हौं ।
 रटत रटत लटघो, जाति-पाति भाँति घटघो
 जूठनि को लालची बहो न दूध नह्यो हौं ॥३॥
 अन्त बह्यो न भलो, सुपथ सुवाल चत्यो
 नीके जिय जानि इहा भलो अनचह्यो हौं ।
 तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार
 अपनो सो नाथ है सो कहि निरबह्यो हौं ॥४॥

भावाय—जब मालिक अपना रुख फेर लेता है तब खास नीकर भी बरबाद हो जाता है, फिर मेरा तो पूछना ही क्या ? मैं तो डके की चोट दु खों में बहा चला जा रहा हूँ, जब मेरे लिए इस दुनिया में ही कहीं ठीर ठिकाना नहीं तब परलोक का क्या भरोसा कहें ? हे माय ! मैं आपकी बलया लेता हूँ, मैं तो एक राम नाम ही के साथ बिक चुका हूँ (वही मेरे लिए लोक है और वही परलोक) ॥१॥

कम, स्वभाव काल काम क्रोध, लोभ और मोह रूपी बड़े बड़े ग्राह ने और (साधनहीनतारूपी) दरिद्रता ने जोर से पकड़ रखा है । (तात्पर्य यह, कि जयने आपने गजेन्द्र को ग्राह से छुड़ा लिया था वैसे ही मुझे भी इस विकराल ग्राह से उबार लीजिए, क्याकि) हे महाराज ! बचन काटने के लिए तो सबल एक आप हैं और बाँधने के लिए करोड़ो योद्धा हैं । मतएव हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिए । मैं पापरूपी बीना तारों से जल रहा हूँ (अपनी कृपा-श्रुति से इस अग्नि को बुझा दीजिए) ॥२॥

(बदाचित्त आप यह कहें, कि हमारे ही पास तु बारबार आ जाता है, और कहीं क्यों नहीं जाता, तो) हे प्रभो ! सबका विश्वास और अट्ठा तथा रोम-बूझ तो एक आपसे

हो द्वार पर ह । म दूध का जला मट्टा भी फूँक फूँकवर पीता हूँ । (भाव यह कि मुझे सभी ने धोवा दिया ह इसलिये बहुत ही सावधान होकर चन रहा ॥ १) चिन्ताते चिल्लाते म हार गया हूँ । जाति पानि और चाल चरन सभी से हाथ धो बठा हूँ । अब तो केवल आपके जूठन का ही लालची हूँ । म दूध से नहीं नहाना चाहता । भाव, मुझे स्वर्ग के एवम की इच्छा नहीं ह म तो केवल आपके प्रेम प्रसाद चाहता हूँ ॥३॥

म और वही सुख-सुभाग पर अन्धवी चाल चतकर अपना भला नहीं चाहता हूँ । और यहाँ आपके द्वार पर म तिरस्कृत होकर भी अन्धवी तरह रह रहा हूँ । (तात्पर्य यह कि और किसी दबो देवता के समीप रहकर घम-पालन करता हुमा भी नि शक नहीं रह सकता, क्योंकि वह तनिष सी भून पर दृष्ट हाकर मुझे गिरा देगा पर आप निरादर भी करेंगे तो भी मुझे प्रसन्नता ही होगी, क्योंकि मा-बाप की नाराजगी कल्याण के लिए ही होती ह) । तुमसी ने समझकर अपने मन को धार धार ममसा दिया ह और वह अपने स्वामी से भी कहकर निश्चित हो गया ह कि उसका निर्वाह आपके ही हाथ में ह ॥४॥

शब्दाय—लीस होत = बरबाद हो जाने ह । बन्नाय = डके की चाट से । जाय रह्यो हूँ = बिगडा जा रहा हूँ । गाडे = दबता से । मल्यो = मट्टा । नल्यो न चही = नहाना नहीं चाहता । घनत = भयन ।

विशेष—(१) दूध—नल्यो—श्रीवज्रनाथजी दूधा प्यो हो, यह पाठ मानकर यह ग्रथ करते ह कि—दूध घृतादि उत्तम भोजन चात्ता नहीं । और श्रीरामेश्वर भट्टजी ने न दूधो नल्यो हूँ' ऐसा पाठ मानकर यह ग्रथ किया ह कि कुछ दूध मनाई नहीं चाहता हूँ । नल्यो का ग्रथ मनाई लिखा गया ह । हमें नागरीप्रबोधिनी सभी की प्रति ही अधिक शुद्ध जान पड़ती ह । उसमें 'दूध-नल्यो' पाठ ह, मुहावरा भी ह, कि वह तो दूध से नहा रहा ह अर्थात् बड़ा भाग्यशाली ह । आशीर्वाद देता हुई बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ बहू बेटिया से बहा करती ह, 'दूधों नहाओ, पतो फनो ।'

(२) 'जूठन की लालची'—इस दुलभ 'जूठन पर भक्तवर हरिराम यास का यह पद कितना भावपूर्ण ह —

‘ऐसे ही मलिये ब्रज बीधिन ।

साधुन के पनवारे जुनि जुनि, उदर पोषिए सीधिन ॥

धूरन में के बीन विनगटा रण्डा कीज सीतन ।

कुज-कुज प्रति लोटि सगे रज उडि ब्रज की अयोतन ॥

नितप्रति दास स्याम स्यामा की नित जमुना जल पीतन ।

ऐसेहि 'ध्यास' रुचै तन पावन ऐसेहि मिसत अतीतन ॥’

२६०

मेरी न बने, बनाये मेरे कोटि कल्प लो

राम । रावरे बनाये बने पल पाठ में ।

निपट सयाने ही कृपानिधान । कहा कहाँ ?

लिये वेर बदलि अमोल मन घाउ हैं ॥११॥

मानस मलीन, वरतन बलिमल - पीन
 जीह हूँ न जप्यो नाम, वक्ष्यो आउ-चाउ मैं ।
 कुपथ कुचाल चल्थो, भयो न भूलेहूँ भला,
 पाल इसा हूँ न खेत्यो खेलत सुदाउ मैं ॥२॥
 देखा देसी दम तैं, कि सग तैं भई भलाई,
 प्रगटि जनाई, कियो दुरित दुराउ मैं ।
 राग रोप-ढेप पोषे भोगन समेत मन,
 इनकी भगति कीही इनही वो भाउ मैं ॥३॥
 आगिली पाछिली, अजहूँ की अनुमान ही तैं
 वृत्तियत गति, कछु कीही तो न बाउ मैं ।
 जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसी हूँ
 झूठे साथ आसरो साहव रघुराउ मैं ॥४॥

भाषा—मेरी करभी मर बनाने स कराछा कल्प तक भी न बनेगी । किन्तु, हे रघुनाथजी ! आप चाहें तो पाउ पल में ही उस बना दे सकते हैं । हे कृपानिधान ! म क्या कहूँ आप तो स्वयं परम चतुर हैं मने अनमोल भण्ड के समान प्रायु के बदले में (विषमरूप) बेर बिसाह लिये । ॥१॥

मन मलीन हो गया और कम कलियुग के कारण और भी पुष्ट हो गये (नित्य नये-नये पाप बढ़ते गये) रही जाँझ सो उसने भी आकाश नाम नहीं जपा सता प्राये वामें साथ ही बकती रही (इस प्रकार मन, वचन और काम तीनों स ही बेकार हो गया) बुर बुरे मार्गों पर बुरी चालें चलता रहा । (काम श्रेष्ठ में ही निष्ठ रहा) भूलकर भी कभी कोई अच्छा काम नहीं बन पड़ा । बचपन में भी कभी खेलत समय मने अच्छा दाव नहीं खना ॥२॥

हाँ किसी की देखा देखी या सत्संग से कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उस जिनोरा पीन्ता हुआ कहता फिरा और पापों को छिपा लिया । राग द्वेष, क्रोध और इन्द्रियो के सहित मन का खूब पोषण किया । इन्हीं की भक्ति का, और इन्हीं का भाव (सदा शत्रियन्नालुपत ही रहा) । ॥३॥

मैंने धीत हुए का भय का और आनेवाले का अनुमान कर लिया है, कि मन कभी कोई अच्छा काम नहीं बिगा कि तु ससार कह रहा है कि तुलसी रामजी का हूँ और भुक्त भी आप पर पूरा विश्वास और प्रेम है । अब चाहें भूठ हों, चाहें सच, हे स्वामिन् ! मैं तो आपका ही भावर पड़ा हुआ हूँ ॥४॥

गद्यांश—आउ = प्रायु । पीन = पुष्ट । जीह = जीभ । आउ बाउ = प्राय वार्ध घट सत । दुरित = पाप । भोगन = इन्द्रियों का समूह । काउ = कर्मा ।

विशेष—(१) मेरी न कल्प लों ज्यादा पारमार्थिक साधन साध साधकर छूटने का उपाय करता हूँ तथा या माया-माह में और भी अधिक उत्तमता जाता हूँ । इस प्रम से मैं कम अपनी करनी बना सकता हूँ ?

‘ज्यों ज्यों सुरस्रन को चहत, त्यों-त्यों उरस्रत जात ।’

२६२

कह्यो न परत, विनु बहे न रह्यो परत
 बडो सुख कहत बडे सो, बलि, दीनता ।
 प्रभु की बडाई बडी, आपनी छोटाई छोटी,
 प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता ॥१॥
 दुहै ओर समुद्धि सकुचि सहमत मन,
 सनमुख होत सुनि स्वामि समीचीनता ।
 नाथ-भुनगाय गाये, हाथ जोरि माथ नाये,
 नीचरु निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता ॥२॥
 एही दरबार है गरब तैं सरब हानि,
 लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता ।
 मोटो दसकष सो न, दूबरो विभीषन-सो,
 बृद्धि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता ॥३॥
 यहा को सयानप अयानप सहस सम,
 सूघी सतभाय कहै मिटति मसीनता ।
 गीघ सिला, सवरी की सुधि सब दिन किये
 होइगी न साइ सो सनेह हित-हीनता ॥४॥
 सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु
 सुमिरत होत कलिमल - छल - छीनता ।
 करुनानिधान । वरदान तुलसी चहत,
 सीतापति भक्ति सुरसरि नीर मीनता ॥५॥

भाषाय—हे नाथ ! कुछ कहा भी नहीं जाता और बिना कहे रहा भी नहीं जाता । आपकी बलयाँ सत्ता हैं ! यद्यपि अपनी गरीबी बडा के धागे सुनाने में बडा धानद भाता ह (क्याकि, यह भाशा रहती ह न, कि बडे लोग गरीबी दूर कर देंगे), तथापि वहाँ सो स्वामी का महान बढप्पन और कहाँ मेरी अत्यन्त खुदता, कहाँ स्वामी की पवित्रता और कहाँ मेर पापा की अधिकता ॥१॥

दीना और की इन बातों पर विचार करके मन सकाच के मारे सहम जाता ह (कुछ कहने का साहम नहीं पडता) । किन्तु स्वामी की मुन्दर साधुता (पवित्र पावनता, जन-वत्सलता आदि) का सुनकर यह मन फिर फिर सम्मुख जाता ह । हे नाथ ! जो धापवे गुणा और चरित्रा का गान बरता और हाथ जोडकर प्रणाम करता ह उस नीच को भी आप, अपनी प्राप्ति और चतुरता से, निहान कर देते ह ॥२॥

इस दरबार में गव करने से सबनाश हो जाता ह । यहाँ सो गरीबी और गल्लता

से ही योग छेम प्राप्त हो सकता है। रावण-सरीखा तो कोई महाप्रतापी नहीं था और विभीषण के समान कोई दुबल या दीन नहीं था। किंतु यहाँ आपकी प्रेमाधीनता ही स्पष्ट समझ में आती है। (अर्थात् शरणापन भक्त विभीषण को अपनाकर लंका का राज्य दे दिया और रावण का मरनाश कर डाला) ॥३॥

आपके सामने जो चतुर बनता है वह हजारों मुखों का ममान है। यहाँ तो सीधे सादे सच्चे भाव में अपना दोष स्वीकार कर लेने से ही मलिनता मिटती है। यदि तू निंद्य जगत् अहत्या और शत्रुओं की स्थिति को स्मरण किए रहना तो स्वामी के प्रति तेरा प्रेम कभी कम न होगा। भाव यह कि उन बेचारों में अहंकार का संशय भी नहीं था इसीलिए भगवान् ने उन्हें अपना भक्त और कृपापात्र बनाया ॥४॥

आपका नाम कपवृक्ष की तरह सारी कामनाएँ सफल कर देता है। उसका स्मरण करते ही कलियुग के कपट और पाप खोने लगे हैं। हे कल्याणनिधान! तुमसे यही वर चाहता है कि वह श्रीसोत्तारमण रामचंद्रजी की भक्ति भागीरथी के जल में मछली की तरह सदा डूबा रहे ॥५॥

शब्दार्थ—वीनता = पुष्टि, मोर्गई। सहमत्त = डर जाता है पिछड़ जाता है। छेम = (छेम) रखा। मिसकीनता = गरीबी नम्रता। भयानप = अज्ञान।

विशेष—(१) गरीबी — गरीबी पर एक कवि ने क्या सुंदर कहा है —

‘करी है गरीबी तो विभीषण ने राज पायो
राजन ने करी खुदी खोई लूबी जान की।
ध्रुव ने गरीबी के अटल पद राज पायो
केसी बस ऐसो, सुधि न रही गुमान की ॥
झीपड़ी गरीबी करी जगन न होन पाई
हारे पवि कौरी देखि सोला भगवार की ॥
गरीबी और बढ़गी की चारों बेद स्तुति करें
बहै की गरीबी यह बीबी है जहान की ॥’

और भी—

ऊँचे ऊँचे सब चल नीचे चल न बीय।
जोप, जोउ नीचे चल ध्रुव तें ऊँचे होय ॥’

(२) मिसकीनता—मिसकीन शब्दों का रङ्ग है।

(३) नाम जाग-छेम का — जो सारा अविमान छोड़कर भगवान् की शरण में रहत है उन्हें भगवान् यह वचन दे चुक है —

अनयाचिन्त्यतो माम ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभिपुष्टानां योगयोग ब्रह्मस्य ॥’

[मोठा

२६३

नाथ । नीचे के जानिवी ठीक जन जीय की ।

रावरो भरोसा नाह के सुप्रेम नेम लियो
रुचिर रहनि रुचि मति, गति, तीय की ॥१॥

कुटुत सुकृत बस सबही सो सग पर्यो,
परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की ।

मेरे भले को गोसाइ । पोच को, न सोच सक,
होहूँ किये वहाँ सोह साची सिय-पीय की ॥२॥

ग्यानहू गिरा के स्वामी बाहर भन्तरजामी,
यहा क्यों दुरेगी बात मुख की श्री हीय की ?

तुलसी तिहारो तुमही पे तुलसी के हित,
राखि कहौ हौ जो पे, हूँ ही माखी घीय की ॥३॥

भाषाय—हे नाथ ! आप अपने इस दास के मन की बात ठीक ठीक समझ लीजिए । मेरी बुद्धि एषी सुन्दर (पतिव्रता) स्त्री ने आपके विश्वास को अपना स्वामी मानकर उसी के साथ शुद्ध प्रीति करने का प्रण किया है ॥१॥

पाप और पुण्य के अधीन होकर मुझे सभी के साथ रहना पड़ा, इसमें मैं अपनी और पराई दाना की चाला को जींच चुका हूँ । हे प्रभो ! मुझे अपनी भलाई या बुराई की कोई चिन्ता नहीं न कुछ डर है । क्योंकि मेरा तो सभी तरह से मेरे स्वामी ने भला कर दिया । यह मैं श्रीजानकी वल्लभजी की शपथ खाकर सच सच कह रहा हूँ ॥२॥

(यदि मैं बात बनाकर कहता तो वह चलनेवाली नहीं क्योंकि) आप नाम और वाणी के अधिष्ठाता हैं । बाहर और भीतर दोनों की बात जाननेवाले हैं । आपके घाने मुँह की और हृदय की बात कस छिप सकती है ? तुलसी आपका है और आप ही उसका हित करनेवाले हैं । मैं कुछ कपट भरी बात कहता होऊँ, तो धी की मक्खी हो जाऊँ । (भाव, जिस मक्खी धी में गिरकर तुरन्त मर जाती है, उसी प्रकार मेरा भी सवनाश हो जाय) ॥३॥

पदार्थ—नाह = नाथ, पति । कुटुत = कुवम, पाप । सुकृत = सत्कर्म, पुण्य । कीय की = किए हुए की । पाच = पोच । सोह = शपथ ।

विशेष—(१) गिरा' क्योंकि—

जापर कृपा करहि जन जानी । बरि उर-अजर बचावहि बानी ॥

(२) 'ग्यान'—इसी प्रकार—

सो जानहि जेहि बेदु जनार्द ।'

२६४

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावे ताहि वरि सो ।

चारिहैं विलोचन विलोषु तू विलोक महें

तरो तिहैं काल बहू को है हितु हरि-सो ॥१॥ -

नये गये नेह अनुभये देह नेह वसि,
 परमे प्रपची प्रेम परत उधरि सो ।
 मुहुद समाज दगावाजि ही को सौदा सत,
 जब जाओ काज तज मिलै पायँ परि सा ॥२॥
 त्रिबुध सयाने पहिचान केधा नाहीं नीवे,
 देत एक गुन, लेत कोटिगुन भरि सो ।
 करम धरम सम-फल रघुबर विनु,
 राख को सो होम है, ऊमर केमो बरिसो ॥३॥
 आदि अत बीच भलो भलो करे सजही को,
 जाको जस लोक वेद रह्यो है बगरि सो ।
 सीतापति सारिखो न साहिज साल निधान,
 कैसे बल परे सठ ! वेढो सो विसरि सो ॥४॥
 जीव को जीवन प्रान, प्रान को परमहित
 प्रीतम, पुनीतवृत्त नीचन निदरि सो ।
 तुलसी ! तोको कृपालु जो कियो कोसलपानु,
 चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥

गदाध—र मन ! एक बार तो मरी बात सुन ग फिर जा अच्छा लग सी
 करना । तू अपने चारा नत्रा (दो चार क और भा मुट्ठिणी दो भीतर के) से देखकर
 बता कि सीता साको और सीता बान म बही भी को दूसरा भगवान् के समान तेरा
 हित करनेवाला ? ॥१॥

तूने शरीर कपी गृह म रहकर नय-नय (सम्प्रविषा के) प्रेम का अनुभव लिया ।
 और उनक कपट भर प्रेम का भी परत लिया । अत म सबके प्रेम का भेद पुन गया ।
 और, मित्रा का समाज क्या ह ? घोवराजा का अनन्य ह । जेन जिसका काम बटकना
 है तब वह परा पर गिरन लगता ह (पर काम निरन्तर जान पर उधर दखता भी
 नहीं ।) ॥२॥

तूने दयताया का मन्त्रा भीति बहाना मा नहा ? व भी वन बनुर ह । देते तो
 एक गुला ह पर न सज ह करोड गुणा । अब रह कम धम तो मित्रा श्रीरामजी
 (पाधार) व व भी परिश्रम मान व ह । उनका करना कराना ऐसा ह जस राग में
 हवन करता मा ऊपर जमान पर पाना का बरमाना ॥ ॥

जा आदि म मध्य में और अन्त म तन न और समा का मन्त्र वंदाण करत
 है तथा तिनका बीते-बीतना माव और व म दियक रही ह एव आनानवा-अनम
 रपुतापत्री व समान शाननिधान स्वाभा दूसरा का, नहा ह । भर मूय ! तू उध भुता
 सा बैग ह । फिर तुम्ह कौन बन पड रहा ह ? ॥५॥

अर ! जा जीव का भा जावन, प्राण का भी प्राण परमहित, अथवा प्रिय और

नीचों को भी पवित्र करनेवाला ह, उसना तू निरादर कर रहा ह ' तुमगा ! काशनेन्द्र
कृपालु श्रीरामजा ने तर लिए चित्रकूट म जा सीला रची था, उमे पित्त में तू स्मरण
कर ॥१॥

भावाय—प्रनुभव=प्रनुभव किए । सीदा-पूत=नेन दन का प्रवहार । वरिषा
=वर्षा । धरि-सो=फला-गा । पतु =याद कर ।

विशेष—(१) 'नये नेह उधरि पा —नागरीदासजी ने क्या खूब चनावनी
दी ह —

'कहाँ वे सुत नाती हय, हायी ।

चले निसान घजाइ अकेले तहँ वोउ सग न सायी ॥
रहे दास दासी मुल जीवन कर भीउँ सब लोग ।
काल गह्यो सब सबहीं छाँड्यो, धरे रहे सग भोग ॥
जहाँ-तहाँ निसिबिन प्रियम वो भट्ट कहत बिरहल ।
सो सब बिसरि गये एक रट राय नाम कही सत' ॥
बटन देत टुते नाँहि मापी अहुँ दिसि खँवर सवान ।
लिये हाथ में लटठा साकौ ब्रूत मित्र बपाल ॥
सौपा भीगी गात जारिक करि भाये बन देरी ।
खर आये तँ भूलि गये सब धनि सापा हरि तेरी ॥
नागरिदास बिसरिये माहीं यह गति अनि असुहानी ।
काल पान वी बरट निवारन भजि हरि जनम सधानी ॥'

(२) चित्रकूट को चरित्र—क्या ह कि एक दिन चित्रकूट में तुनसी-सासजा
को घोड़ों पर सवार दो प्रत्यक्ष सुन्दर राजकुमार लिवाई दिये । गोसाइजी कुछ व्याना-
वस्थित से थे । ध्यान म विघ्न पडन की आशका से उहाने अपना नेत्रा का बन्द कर
भूमि की ओर कर लिया । कुछ दर बाद हनुमान्जी ने दशन देकर पूछा, 'क्या श्रीराम-
लक्ष्मण के दशन मिले या नहीं ? जो दा राजकुमार अभी घोड़ों पर सवार इतर से निकले
हैं, वे ही तो श्रीराम और लक्ष्मण ह । गामाइजी पछताने लगे —

'लोचन रहे बरी होय ।

जान वूस अकाज कीना गये भू ॥ गोय ॥
अविगन जु तेरी गनि न जानी, रह्यो जागन सोय ।
सब छवि की अवधि में हैं निकसि गे ॥ होय ॥
बरम हीन मे पाइ होरा दिया पत ॥ खाय ।
'दास तुलसी राम बिछुरे, कहो कसी होय ॥

इसी प्रत्यक्ष दशन का आर गामाइजी का इस पत्र म सकेत जान पता ह ।

तन सुचि मन रचि मुख कहा जन हौं मिय पी को' ।

केहि प्रमाण जायो नहीं जो न होइ नाथ सो नानो नेह न नीचो ॥१॥

जल चाहत पावक लहो, विष होत अमी को ।

कलि युचाल सतनि कही सोइ सही, मोहि बछु फरम न तरनि तमी को ॥२॥

जानि अघ अजन कहै वन-वाघिनि धी को ।

सुनि उपचार विकार को सुबिचार करौ जब-तब बुधि बल हरे ही को ॥३॥

प्रभु सो कहत सवुचत हौं, परो जनि फिरि पीको ।

निवट दोनि, कलि बरजिये परिहरे ख्याल अत्र तुलसिदास जड जीवो ॥४॥

भाषाय—हे प्रभो ! मैं शरीर को पवित्र रखता हूँ मन् में भी रुचि है और मुझ से भी कहता हूँ, कि मैं श्रीजानकीवल्लभ का सेवक हूँ किन्तु समझ में नहीं आता, कि किस दुर्भाग्य के कारण नाथ के साथ भली भाँति मेरा सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध और प्रेम नहीं हो रहा । (तब मन वचन से घापका बनना चाहता हूँ और यथाशक्ति बनता भी हूँ, पर मैं जान कि किस दुर्भाग्य से विघ्न बाधाएँ बीच में आ जाती हैं, जो सारा किया कराना मिट्टी में मिटा देती हैं) ॥१॥

चाहता हूँ पानी पर मिलती है घाग (शान्ति जन के बन्ने में अशान्ति का दाह मिलता है) । इसी प्रकार अमृत का विष बन जाता है (अमृत लोभी सरकम वन में सपक में विपाक हो जाते हैं) । सता न कलियुग की शिवनी कुछ कुटिल बात कही है वह सच ठीक हो है । मैं यह नहीं जानता कि क्या तो मूय है और क्या रात्रि (मैं जान और ज्ञान को ठीक-ठीक नहीं पहचान पाता । मुझ से सता का क्या ही सच जचना है) ॥२॥

कलियुग मुझ सम्राट् सम्राज्य का की सिद्धि के धी का अजन भाजन की सताह देता है । (मिट्टी से जान हाँ ला जायमी । धी उसके दूध का कहीं मैं मिलना और कने-मन अजन कमला ? सारा जानन मैं माया लो सिद्धिवा रहनी है । काम-वायना ही उगा दूध का पूत है । कम अजन मैं क्या काई बचता ? कलियुग उपचार क्या बता रहा है ? (गुरुशानक विष का प्रयोग) । जब मैं यह विचार भरा उपचार सुना हूँ और इस पर विचार करता हूँ तब धार का बुद्धि बन नष्ट हो जाता है घायल घूर जाता है बुद्धि भट्ट हो जाती है और बन पराक्रम खीन हो जाता है ॥३॥

(बुद्धि कम हो भट्ट हो जान मैं भरे कलियुग का बनाया उपचार अच्छा लगता है । माया में पड़ जाता हूँ । बापी हाथ विषयावमोग करता हूँ । इतिहास आने का निश्चिन्त नाता रही जुड़ जाता और न आने के कारणों में प्रेम ही होता है) हे नाथ ! आपण कृप कृप कहता है पर कन्ने सुझाव जाता है कि कन्ना मर जाय जोही न पड़ जाय । इसमें मैं आपका बनती मना हूँ (बान यही कहती है कि) पास बुझाकर इस (कलियुग को) राह गाविए जिसमें यह तुलना मरने मराना जीवा का ध्यान छोड़ दे ॥४॥

भाषा—अमी=अमृत । वरम=जान समझ । तमी=अपराध, रात्रि । उपचार=पराय ।

विशेष—(१) 'मूय' में यह शिवाया गया है, कि भगवन्शान्ति का उपाय करता पर नारायण शिव और भागवत शास्त्रों में प्रत्यक्ष मन्त्र में 'मूय' शब्द का उपाय है । यह मूय शब्द है कि इस मूय शब्द

रहे हैं किन्तु हमारे मुञ्चत-यस्त्र का छिपे छिपे भूमिमान भूषक कुतर-काट डालता है या कमन्गी दोषों उसे छिन्न भिन्न कर देता है। छिप छिपे ये कुचारों कलियुग धन रहा है। अतएव जने-तम भगवन्वरणा की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है।

ग्रहा ।

‘यस्यामल वृषादस्तु यगोऽघनापि गाय त्यघघ्नभृषयो दिग्भेदपट्टम ।

तनाकपाल प्रमुपाल किरीट शुष्ट पादाम्बुज रघुपते गरण प्रपद्ये ॥

[श्रीमदभागवत

२६६

ज्यो-ज्यो निकट भयो चहों कृपातु त्यो त्या दूरि परयो हों ।

तुम चहुँजुग रम एव राम । होंहूँ रावरा, जदपि अघ भवगुननि भरयो हों ॥१॥

बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो ही ।

हों सुनरन कुवरन कियो, नृप तें भित्तिारि करि सुमति तें कुमति करयो हों ॥२॥

अगनित गिरि वानन फिरयो, बिनु भागि जरयो ही ।

चित्रकूट गये ही लखी कलि की कुचाल सब अघ अपहरनि डरयो हों ॥३॥

माथ नाइ नाथ सो वहाँ हाथ जोरि खरयो ही ।

चीन्हा चोर जिय मारिहै तुलसी सो क्या मुनि प्रभु सा गुदरि निवरयो ही ॥४॥

भावाय—ह कृपानिधान ! ज्यो-ज्यो मैं आपके निकट घाना चाहता हूँ त्या-त्या दूर हाता जाना हूँ (आपका सान्निध्य पान के जितने भी उपाय करता हूँ वे माया मोह के मसग से एने बाधक हो जाने हैं कि मैं जल प्रतिगण पीछे रह जाना हूँ) है रामजी ! आप बारा युगों में सदा एक मे हूँ और मैं भी आपका रहा माया हूँ, यद्यपि मैं पापा और दोषों में भरा हूँ ॥१॥

आपमें पयक रहने का मौका पाकर इस नीच कलियुग ने मुझे बीच हा में छलों से धन लिया (या हा में जीवत्व प्राप्त कर अविद्यावश भगवान से विमुख हुआ इसी दुष्ट कलि ने अपना इद्रजाल फनाकर मुझे भूल भुलया में डाल दिया) । मैं सुवर्ण था पर इतने कुवर्ण कर दिया सारे स रौने में परिणत कर दिया । राजा से रक बना डाला, और गानों से भगवती कर डाला । (पहले मैं शुद्ध सच्चिदानन्द का भगवत्स्वरूप था, पर कलि ने इन्द्रियपरामर्श करके दो कौड़ी का कर डाला) ॥२॥

तब से ॥ (अनेक योनियों में) अगणित पहाड़ों और जंगलों में भटकता फिरा और वहाँ बिना ही भाग के जलता रहा । परन्तु जब ॥ चित्रकूट गया, तब इस कलि की सारी कुचारों तो समझ गया तो भी अब मैं अपने ही डर से डर रहा हूँ ॥३॥

मैं हाथ जोड़कर प्रभु के सम्मुख स्वयं मस्तक नवाकर कह रहा हूँ कि पहचाना हुआ चोर जीता नहीं छोड़ता मार ही डालता है (कलियुग पहचाना हुआ चोर है, वह मौके की ताक में बड़ा है) इस बात को सुनकर तुलसी अपने स्वामी से विनय प्रार्थना कर चुका (अब माये जी आपकी मरजी हो सो उपाय कीजिए) ॥४॥

शब्दाय—छरनि छरयो हों = धलो से धला गया हूँ । अपहरनि = अपने अंगों

मरगा, धीर हानि-लाभ धीर सुख दुःख सबका एक समान देखेगा भलाई बुराई में समभाव रखेगा धीर कतिबाल का कुचात्ता का छाड़ देगा, ॥३॥

जब मेरा मन प्रभु का गुणानुवाद सुनकर पुलकित होने लगेगा धीर नेत्रों से प्रेमाश्रुपार बहने लगेगी, तभी तुलसीदास का यह विश्वास होगा, कि अब वह धीरामजी का दाम हो गया । तब उस अनय प्रेम का दमकर धान-इ रस हृदय में उमड़कर फूला नहीं समायेगा ॥४॥

गव्दाय—फिर परिहृ=फिर जायगा । दरिहृ=बहायगा ।

विनये—(१) 'तुम परिहृ —जा जोव भगवान् की अनय भक्ति को प्राप्त कर सता है, उसकी मनादशा भलीकक हो जाती है उसका सभी कुछ बदल जाता है । न वह तन रहता है न वह मन । मुख पर उसके दिव्य सौंदर्य झनझने लगता है । वाणी अमृतमयी हो जाती है । आँखों में प्रेमाभा की लहर उठती दिखाई देनी है । विषया की झार से मन एकत्र फिर जाना है । वह दया विलक्षण धीर भगवत्कर है ।

(२) चातक दरिहृ —चातक का प्रेमानयता पर मोताइजी की प्रत्येक झनूठी भावगुण उत्तिया मिलती है, जग—

‘डोलत विपुल बिहग बन पियन पीछरनि आरि ।

गुप्त घवल चातक चल, तुहो भुवन बसचारि ॥

अम्मा अपि पदयो पुन्यजल उत्ति उठाई चोव ।

तुलसी चानक प्रेम पट भरतहु संगी न खोव ॥’

(३) प्रभु गुन दरिहृ —नागरीदामजी न प्रेम ग्या का क्या ही समीय विन सीपा है ।

कब दुलवाई होमो मोना विरह अपार ?

राय रोय उठि दोरिहो बहि-बहि रित मुकुवारि ॥

ता गिन हा तैं छूटिहैं लान-वान अव सन ।

छीन बेह जोरन बगन, किरिही हिये न चीन ॥

मन इव लमघार बह टिन टिन सत उतात ।

रनि भयेरी दानिहो पावन गुणन उपात ॥

हरन-देरन होतिहो बहि-बहि स्याम मुजान ।

दिरन गिरत बन सपन में योही छुटिहैं प्रान ॥

राम ! कब प्रिय नागरी, तैम नीर भीन का ?

गुन नीरन ज्या जीन का मति ज्या पनि का हितु ज्या घन लाम-नीन को ॥१॥

ज्या मुनाय प्रिय मति नागरी तगर नवीन का ।

रदा मेर मा लानन बगिह रगनार । पावन प्रेम भीन का ॥२॥

मनगा का दाना कब मुक्ति प्रभु प्रसीत का ।

गुन-दान को मानन बनि ताते स्पर्शनधि । नीचे मन दीन को ॥३॥

भावाय—हे श्रीरामजी ! क्या कभी मुझे ऐसे प्यारे लगेँगे, जैसे मछली को जल प्यारा लगता है, जीव को सुखमय जीवन प्यारा लगता है अथवा मणि साँप का प्रिय जान पड़ता है या अत्यन्त बज्रुग को धन ? ॥१॥

अथवा, जैसे किसी नवयुवक नायक को स्वभाव से ही नवयुवती नायिका प्यारी लगती है, उसी प्रकार, हे कल्याण ! मेरे मन में अपने चरणारवि दा में पवित्र श्रीराम-य प्रेम की ही एकमात्र उत्कृष्ट उत्पन्न करदें ॥२॥

वेद कहते हैं कि प्रभु मनोवाञ्छित फल देनेवाले हैं, और वह ही चतुर है (वे मन की वान्तुरस्त ताड़ लेते हैं कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती) । हे दयानिधि ! मैं आपकी बलवाई लेता हूँ, इस दीन तुलसीदास को भी उसकी मनचाही वस्तु दे दीजिए ॥३॥

पञ्चाय—पनि=साप । सुभाय=स्वभाव से ही । पीन=पुष्ट, मोटा । भावतो=मनचाहा ।

विनय—(१) 'जैसे नीर मोन को—मछली को जल के साथ कभी अनन्य-प्रीति है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं । और पशु पक्षी तो जल के सूखते ही मर पड़ जाते हैं, पर मछलियाँ उसीके साथ सूखकर प्राण दे देती हैं । कविवर रहीम ने क्या कहा है —

‘सर सूखे, पछी उड़, और सरनि समाहि ।

दीन मोन बिन पख के, कहू रहीम कहें जाहि ॥

गोसाइजी ने मोन की मन-यता का दाहावली में दण्डन इस प्रकार किया है —

देउ आपने हाथ जल भीनहि मातुर घोरि ।

तुलसी जिय जा वारि बिनु तो तु बेहि कबि खोरि ॥

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह ।

‘तुलसी’ एकै भीन को है साबितो सनेह ॥

(२) इस पं का निचोड़ गोसाइजी ने इस दोहे में भर दिया है —

‘कामिहि नारि पियारि जिनि लोभी के जिनि दाम ।

तिनि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहुँ मोहि राम ॥’

२७०

बचहुँ कृपा करि रघुबीर । मोहैं चितेहो ।

भलो बुरा जन आपनो जिय जानि दयानिधि । अबगुन समित बितेहो ॥१॥

जनम जनम हूँ मन जित्यो, अब मोहिं जितेहो ।

हा सनाथ हूँहो सही, तुमहैं अनाथपति जो लघुतहि न भितेहो ॥२॥

विनय करो अपभयहु तैं तुम्ह परम हितेहो ।

तुलसिदास कासा कहै तुमही सब मेरे प्रभु-गुरु मातु पितेहो ॥३॥

भावाय—हे रघुबीर ! मेरी ओर भी कभी कृपाकर आप देखेंगे ? हे दयानिधान ! भला या बुरा जो कुछ भी हूँ आपका सबक हूँ, अपने मन में ऐसा समझूँ

क्या मेरे अपार दोषा को न ट कर देंगे ? ॥१॥

अनेक जन्मा मे मुझे यह मेरा मन जीतता चना आया है (मुझे अपने वश में चलाता आया है), अबकी बार क्या आप मुझे भी जितायेंगे ? (क्या वह आपकी कृपा से मेरे वश में होगा ?) तब तो मैं सचमुच ही सनाथ ही जाऊँगा । पर यदि आप भी मेरी क्षुद्रता से नहीं डरते तो आप भी 'अनाथ प्रति पुरार जाने लगेंगे' (भाव, मेरी क्षुद्रता पर ध्यान न देकर मुझ अगोकार कर 'जीजिए और 'अनाथपति' यह उपाधि भी धारण कर लें) ॥२॥

मैं अपने हाँ डर मैं इस प्रकार आपसे विनय कर रहा हूँ । आप तो मेरे परमहित हैं । यह तुलसीदास अपना राना और जिसके आगे राने जाय ? (ससार में कोई सुनने वाला भी तो नहीं है सब हैंसी ही उड़ानेवाले हैं) । मर तो स्वामी गुरु, माता, पिता आदि सब आप ही हैं ॥३॥

गन्धाय—जित्थो = जीता गया । भित्तो = डरते । अपभ्रष्ट हैं = अपने ही भय से ।

२७१

जैसी ही तैसी राम । रावरो जन जानि परिहरिये ।

कृपासिंधु कोसलधनी । सरनागत-पालक, डरति आपनी डरिये ॥१॥

हाँ तो विगरायल और को विगरो न विगरिये ।

तुम सुधारि आये सदा सज्जकी सबही विधि, अब मेरियो सुधारिये ॥२॥

जग हँसिहै मेरे सगहे वत इहि डर डरिये ।

कपि, केवट कीहे सखा जेहि सील, सरलचित्त, तेहि सुभाउ अनुसरिये ॥३॥

अपराधी तउ आपनी तुलसी न बिसरिये ।

दूटियो बाह गरे परे पूटेहुँ तिलाचन पीर होत हित करिये ॥४॥

भाषाय—हे रघुनाथजी ! मैं (अच्छा बुरा) बसा भी हूँ पर हूँ तो आपका दास ही । इसलिए मुझे त्यागिए नहीं । हे कोसलेन्द्र ! आप कृपा के समुद्र और शरण में आये हुए जीवा की रक्षा करनेवाले हैं । अपनी इस शरणागतवत्सलता की रीति पर ही चलिए ॥१॥

मैं तो औरों के हाथ से बिगाड़ा हुआ पहल से ही हूँ (माया मोह मुझे पहले ही बन्दा कर चुक है इन्द्रिया और मन ने मेरा सबनाश कर ही डाला है), अब आप इस बिगड़ हुए का धीर न बिगाड़िए, आप तो सदा से ही सबकी करनी सब तरह से सुधारते आये हैं सो अब मेरी भी सुधार दायिए ॥२॥

क्यों आप हम डर में डर रहे हैं कि मुझे अगाकार करने से ससार आपका उपहान परण (हि, क्या कहना इस 'दास पर' बही तुलसी मरोगे पापिया का भी अपनाना उचित था ? पर आप हम डर में डरें नहीं, क्योंकि आपके लिए पापियों का अपनाना बार्हन् दास (है) आपन जिस शान और सरल भाव से बन्दर और केवट का अपना निज बनाया था उसी स्वभाव से मुझे भी अपना लीजिए ॥३॥

यद्यपि मैं अपराधी हूँ, तथापि हूँ तो आपका ही । तुलसी को माप न भुलाइए । अपना टूटा हुमा भी हाथ गने बध जाता ॥ (कोई उमे काटकर फेंक नहीं देता) और फूटी हुई भ्रांति में भी जय पोडा होती है तब उसका भी इलाज किया जाता है (इसी प्रकार मैं यद्यपि आपके किसी काम का नहीं हूँ, पर हूँ तो आपका ही भ्राता । अतएव उस या हा न छोड़ दोजिए) ॥१॥

न दाय—हरिनि—बुधा करने की प्रकृति । विगरायल—विगडा हुमा । सग्रहे =सग्रह करने से, अगीवार करने से । गरे परै—गने बंध जाती है ।

विनय—(१) 'जसी परिहरिय—भगवच्चरणारवि दो स एक क्षण के लिए भी पयक होना असह्य हो जाता है । जमे मछली पलमात्र भी जल से अलग नहीं होना चाहती बने ही भवत भगवान से अलग होने में दाखल दुख का अनुभव करता है । मुनिए, एक अज्ञाना क्या कह रही है —

‘गिरि से गिरावो, कारे नाग से उसावो हाहा
श्रीति ना छुडावो प्रानप्यारे नबलात सौं ।’

कविवर विहारा भी यही प्रापना करते हैं —

हरि बीजत तुम सो यहै, बिनतो बार हजार ।
जेहि-तेहि भांति डरयो रह्यो परयो रह्यो दरबार ॥’

२७२

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो ।
सुनहु राम । विनु रावरे लोकहु परलोकहु काउ न कहूँ हितु मेरो ॥१॥
अगुन अलायक आलसी जानि अघम अनेरो ।
स्वारथ के साथिहु तज्यो तिजराको सो टोटक, औचट उलटि न हेरो ॥२॥
भगतिहीन, वेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।
देवन हू, देव । परिहरयो, अयाव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो ॥३॥
नाम की ओट ले पेट भरत ही पे कहावत चेरो ।
जगत विदित बात हूँ परी, समुझिये धो अपने, लोक कि वेद बडेरो ॥४॥
हूँ है जब तब तुम्हहि तैं तुलसी की भलेरो ।
दिन दिनहुँ देव । विगिरिहै, बलि जाउँ, बिलव बिये, अपनाइये सवेरो ॥५॥

भावार्थ—हे श्रीरामजा ! आप मेरे लिए मन को मत्ता न करें, मेरी ओर से अपनी नजर न फेंकें । हे नाथ ! इस लोक में और परलोक में भी आपको धाडकर मेरा ब्यापण करनेवाला कही कोई दूसरा नही ॥१॥

स्वार्थी मित्र ने मुझे मूख, नागायक, आनसा नीच और निक्कमा समझकर, तिजारी के टोटके की तरह छोड़ दिया, और फिर मूलकर भी पलटकर मेरी ओर नहीं देखा । (ऐसा छोटा वि फिर कभी मेरी याद तक नही की) ॥२॥

मुझे भविष्यहीन, वेदोक्त माग से बहिष्कृत एवं कविकान्त के पापा से घिरा हुमा देखकर, हे नाथ ! दयानाथों ने भी छोड़ दिया (यदि मैं आपका भक्त होता, बंदी,

भाग पर चलता होता और कलि के पापा से विमुक्त होता तो देखता मेरी बलियाँ लते, खुशामद करते, पर मैं बैसा नहीं हूँ। इसलिए उन लोका ने मैं मुझे त्याग दिया) यह उनका कोई अत्याय भी नहीं है क्योंकि मैं सभी का अपराधी हूँ ॥३॥

यद्यपि मैं आपके नाम की आद लहर पेट भरता हूँ, इतने पर भी लोग मुझे 'रामदास' कहते हैं। यह जान जगत्प्रसिद्ध हो गई है। आप विचार लो कोजिए, कि सत्तार बड़ा है या येद ? (वेदो को देखा जाय तो मैं आपका सेवक नहीं हूँ किन्तु सत्तार जब मुझे आपका सेवक कहता है, तो कोई हठार में एक मिलेगा पर लोक की रीति प्रायः सभी मानते हैं। जब लोक मैं यह द्विदोरा पिट चुका है कि—तुलसी रामदास है तब आपकी यहो सिद्ध करना होगा झूठो बात भी सब साबित करनी पड़गी) ॥४॥

तुलसी का भला चाहे जब हो और जसे हो, पर होगा आपके ही हाथ से। (जब आपकी भला करता ही है, तो शीघ्र कर देना अच्छा है।) मैं आपकी बलियाँ लेता हूँ यदि आप देर करेंगे तो यह गरीब दिन पर दिन बिगड़ता ही जायगा। ('याधि का उच्चारण आरम्भ में ही कर लेना अच्छा है पीछे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है) अतएव मुझे शीघ्र ही अपना लोजिए ॥५॥

नम्राय—अगुन=मूर्ख। अलायक=तालायक अयोग्य। अनेरो=बकाम। तिजरा=तिजारी। टोटक=टोटका। भलेरो=भला कल्याण। सवेरो=जल्द ही।

विनय—(१) तिजरा को-सो टोटक—जिसे तिजारी प्यार आता है उसके ऊपर मिट्टी के कूड़े में आटे के साथ घोषक जमाकर और उसमें खीर हलदी सेंदुर और सफेद पत्तन रखकर आधी रात के समय लोग उतारत है और उस कूड़े को चौराहे पर रखकर चल आते हैं। उसकी तरफ नोटकर देखना भी नहीं होता है। कहते हैं यदि उस टोटक की धार रखनवाला देखने, तो उसे तिजारी माने लगता है। कुछ हैर-केर के साथ भारत में प्रायः कई प्रांतों में ऐसे ऐसे टोटके प्रचलित हैं।

२७३

तुम तजि हों कामो, वहाँ और का हितु मेरे ?
दीनप्रभु ! सेवक, सत्ता, भारत अनाथ पर सहज छाह बेहि वेरे ॥१॥

बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि त्रिनु वेरे ।
कृपा कोप-सतिभाय हूँ धोखेहूँ निरछहूँ राम । तिहारेहि हेरे ॥२॥
जो चितवनि सीधी लगे, चितइये सवेरे ।

तुलसिदास अपनाइय, कीजे न ढील, अत्र जीवन अवधि अति मेरे ॥३॥

भावाय—हे नाथ ! आपका छोटकर मैं और किसमें कहूँ ? मेरा सच्चा हितु और कौन है ? (जहाँ-उहाँ स्वार्थ ही मिलेगा। व दूसरों का मम कैसे समझेंगे ? मेरा भला ठा भान्से ही होगा। इसीसे मैं बार बार आपमें ही कहता हूँ) हे दीनप्रभु ! सेवक पर मित्र पर, दुनिया पर और अनाथ पर स्वभाव मैं ही किसी का हूँ, निन्कारण और निन्नाम स्नेह और बोन करता हूँ ? ॥१॥

बहुत मारे पापा इस सत्तार सागर का बिना ही नाव और बिना ही बेड़े के पार

कर गये । हे रामजी ! उनको भोर कृपा से या क्रोध से, सच्चे भाव से या तिरछी दृष्टि से ही आपने देख भर लिया था ॥२॥

इन दृष्टियाँ में से जो भी आपको अच्छी लगे उसीसे देख दोजिए (चाहे कृपा दृष्टि से, चाहे काप दृष्टि से अथवा प्रेम दृष्टि से या तिरछी दृष्टि से जो आपको पसंद हो, उससे मुझे देखिए । मेरी बात तो किसी भी दृष्टि से देख देने मात्र से बन जायगी) । तुलसीदास को सब प्रपन्ना ही लोजिए । दर न कोजिए, क्योंकि अब जीवन का अन्त बहुत समीप आ गया ॥ (जीवन-ज्योति टिमटिमा रही है, न जाने किस क्षण बुझ जाय) ॥३॥

भाषाय—छाह = कृपा । तरि = नौका । वर = बेड़ा । सौधी = मली ।

विनय—'कृपा काप हेर—

कृपा-दृष्टि से ग्रहत्या जटायु आदि को मुक्त किया कोप-दृष्टि से, रावण, कुम्भकण आदि को मुक्त किया । सतिभाव प्रपन्न सत्यभाव से निराद सुश्रीव विभीषण आदि को अपनाया और धामे की दृष्टि से यवन आदि का अगीकार कर दिया ।

(२) 'चित्तद्वय—नरे —न जाने किस घने क्या भी जाय, इसलिये हे नाथ ! मुझे शीघ्र ही शरण में लाजिए । कबोर साहज कह्य हूँ —

'साथी हमारे चनि गये हम भी आनन्दहार ।

कागद में बाकी रही लानें लागे बार ॥

'कबिरा रसरी पाव में, कह सोय सुख-पैन ।

स्वास्त नगाडा बूच का बाजत है दिन रन ॥'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भा जीवन अवधि समाप्त जानकर अपने प्राणुनाथ प्रियतम कृष्ण से अत्यन्त प्रेमाधीर होकर कह रहे हैं —

'पाकी गति भग्न की मति परि गई मद,

सब क्षाँसरी सी हूँ क देह लागी पिपरान ।

मावरी सी बुद्धि भई हसी काहू छोन लई

सुख क समाज जित तित लागे दूर जान ॥

हरीचंद रावरे बिरह जग दुखमयो

भयो कछु भीर होनहार लागे दिवसान ।

नैन बुझि नान लागे, बनहु अयान लागे,

आओ प्राननाथ ! अब प्रान लागे मुग्धान ॥

२७४

जाऊँ कहा, ठोर है कहा दव । दुखित गीन की !

को कृपालु स्वामी सारंग्यो राखै सरनागत सत्र अंग त्रन त्रिगिन को ॥१॥

गनिहि गुनिहि माहिज लहै, सेवा ममोपाय गा ।

अधन, अगुन आलसिन को पालिवा फनि आया मृगयायक नवीन को ॥२॥

मुग के कहा वहाँ त्रिदित है जी की प्रभु प्रसीन का ।

तिहूँ बाल, तिहूँ लोन म एक टक राखी नुनगी म मन मलीन को

भावाय—हे दह ! वहाँ जाऊँ ? मुझ दुनो घोर दान व लिए छ दह वहाँ टोर
टिराता है । धावर समात दयालु रत्नाभा और वहाँ मिले, आ गब गापों में छब
भी त य-हाय गबन का धापी हरण म धावय द ? ॥१॥

गगार म जो दुनो रत्नाभा मिले, म मय ग्या गबन का धावना है, आ धापी
ह। दुनो हा धोर म भीमोति गबा जगा जाउता है। एन मरोम निपाता, दुनो घोर
काहिता का गापता ता तिम उगाहा औरपुतापता का हा रत्नाभा दता है ॥२॥

रहता वया वहाँ ! प्रमा ! धाव ता स्वयं चतुर । धावता मरी गाछ करनी
प्रवट है । गुगयो सराग मविन मनवान व लिए धापो साह (हरण पुनिनी और पाताव)
तया छीता बापता म छब रत्नाभा ही गहाता है ॥३॥

भावाय—गहिहि = (गती) पती का । गधाचाय = दह ॥

विनैद—(१) जाउ वहाँ—मनवर हरिदाम रत्नाभा भी गगार व प्रपचा ते
उपर वहन ह —

अए कीन के अय द्वार ।

जो जिघ होय भीति बाहू व दुल सहिय सौ बार ॥
पर पर राजता तामरा बाधो घन जीवन की गार ।
काम विमल रु दान देत नीकन की होउ उजार ॥
साधु म सुखत घात न मूरत, यह बलि के स्वीकार ।
ध्यातदाता वत भाजि उबरिये, वरिये मारी बार ॥

(२) गहिहि —गना यह धरवा भापा का शब्द ह ।

(३) विनित ह जीवो —आपने क्या दिया ह ? काई अच्छी करनी की हा
तो धावते वहाँ भी ! वन ता एम एग नारकीय कम किए ह कि बहुत लज्जा धाती
ह । म अपनी बात क्या मुह लेकर वहाँ ? धाव स्वय ही चतुर ह मन की बात स्वय
हा जान जायेंगे ।

३२७५ :

द्वार द्वार दीनता वही काढि रव परि पाहैं ।

हे दयालु दुनी दम दिसा दुख-दोष इतन दम

क्रिया न समापन बाहू ॥१॥

तनु जयो* कुटिल कीट ज्या तज्यो मातु पिता हूँ ।

काह नो रोष, दोष काहि धौ मेरे ही

अभाग मोसो मकुचत छुइ सब छाहैं ॥२॥

दुमित दखि सतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ ।

तामे पसु पावर पातकी पगिहरे न,

सरन गये रघुवर और निवाहूँ ॥३॥

* पाठान्तर अनतेउ तनु तनेउ ।

तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिना है ।

नाक की महिमा, सील नाथ को,
मेरो भलो जिलोकि अवतें सकुचाहुँ, सिहाहुँ ॥४॥

भावाय—हे नाथ ! म द्वार द्वार पर दौत निकालकर और पैर पठ पठकर अपने दोनता कहता फिरा । (यह बात नहीं, कि ससार में कोई मेरो गरीबी दूर करने योग्य नहीं ह) ससार में ऐसे ऐसे दयावन्त मौजूद हैं, जो दशा दिशामा के दुष्टों और दोषों का नाश करने में समर्थ ह, किंतु मुझ तो किसी ने बात भी नहीं की (माँख उठाकर भी मेरी घोर न दशा) ॥१॥

माता पिता ने मुझे ऐसा त्याग दिया, जमे कुटिल कोड़ा अपात सपिणो अपने ही शरीर से जने हुए (बच्चे) को त्याग देती ह । किसलिए तब काय कर्ल, और किसे धाप लगाऊँ ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्य से हुआ । आज लोग मेरी छाया तक छूने में संकोच करते हैं ॥२॥

(मेरी यह दुदशा हाने पर) सता ने मुझे खबर कहा 'तू अपने मन में चिन्ता न कर । तेर समान अधम और पापी पशु पक्षियों तक का शरण में जान पर शोरघुनाथजी ने अत तक निर्वाह किया ह । (भाव तू भी उन्ही की शरण में जा, वे तरो करनी सुधार देंगे और अत तक तुझे निभाएँगे) ॥३॥

मैं (तुलसी) आपका हा गया और जब से आपका हुआ हूँ, तब से म सुख में हूँ मद्यपि मेरी प्रीति और प्रतीति नहीं ह (जो वही प्रीति प्रतापि हो जाय सब तो आनन्द का कोई सीमा ही न रहे) हे नाथ ! आपके नाम की महिमा तथा शील से मेरा जो भला हुआ उस दशकर म लजित होता हूँ (इसलिए कि मने कृपा-पान होने योग्य तो एक भी काम नहीं किया फिर भी मुझ कृतघ्न पर प्रभु की ऐसी कृपा ह) और प्रशंसा करता हूँ (कि भय पतित-पानन प्रभा ! जिस तुलसी का कहीं ठौर ठिकाना भी न था, उसे भी आपने कृपाय कर दिया ।) ॥४॥

गणदाय—काठि रद—दौत निकालकर दोन बनकर । पा—पैर । दुनी—दुनिया । धम—(धम) समय । ओर—अत तक । विहाहुँ—सराहना करता हूँ ।

विनय—(१) तनु जया—आ बजनाय जा ने 'त्वचा तजत' और भट्टजी ने 'तनु तजेत पाठ मानतर यह भय किया, कि जमे साँप अपने कँचुन को छोड़ देता है । बगतापजी ने ता 'त्वचा लिखकर स्पष्ट हो कर लिया ह । भट्टजी तनु का अप 'काँची कर रहे ह । नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति व अनुसार हमने तनु जया पाठ शुद्ध माना है । सपिणो अपने बच्चे को जनते ही छोड़ देती ह । प्रचार ता यह ह कि सपिणो उन्हें जमन हा न्या जाती है जो भागकर निकल जाते ह वे हो बच्चे ह ।

श्रीत्वनारायण द्विवेदी ने दूसरा यह भय किया ह— माता-पिता ॥ मुझे अपने शरीर म इस प्रकार पदा किया जम दुष्ट कोड़ा अर्थात् माना मैं दुष्ट कोड़ा था कि माता पिता न अपने शरीर म पदा करके मुझे छोड़ लिया, स्वयं सिधार गये । ' यह भी समीचीन भय हा सकता ह ।

(२) काहे भभाग—सच्चे बच्चे न ता किसी का

न दोष देत ह । वैष्णवा के ससृष्ट भवनवर भगवतरमिकजा न इम प्रकार बहे ह—

‘हिता, सोम, दम छल त्याग, विष-मम देत माया ।
हरि की भजन, साधु की सेवा, सबभूत पर दाया ॥
सहनसोल आसप उदार यति धीरज सहित ब्रिजेकी ।
सत्य बचन सबको सुखदायक गहि अनम व्रत पकी ॥

(३) ‘दुखित कहा’—क्याकि स्वभाव स हा सत दयालु होत ह—

बोमल वाली सत की दब अपतमय जाइ ।
‘तुलसी साहि कठोर मन, मुनित मन होइ जाइ ॥
जइ जीवन की कर सचेता । जगमाहीं बिबरत एहि हेता ॥’
[वैराग्य-सदीपिनी

२७६

कहा न कियो, कहा न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम । राखरे बिन भये जन जनमि जनमि,
जग दुख दसहैं दिसि पायो ॥१॥
आम ब्रिजस खास दास हूँ नीच प्रभुनि जनाया ।
हाहा करि दोनता कही द्वार-द्वार बार बार
परी न छार मुह बाया ॥२॥
असन वसन बिनु थावरो जहँ तहँ उठि धायो ।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोनि खलनि,
आगे जिनु सिनु पेट खलायो ॥३॥
नाथ ! हाथ कहु नाहि लग्यो लालच ललचायो ।
साच कही, माच वीन सा जा न मोहि सोम,
लघु हौं निरलज्ज नचायो ॥४॥
सब नयन-मन मग लगे, सब थलपति ताया ।
भूड मारि, हिय हारिके हित हरि,
हहरि अब चरन सरन तकि आयो ॥५॥
दसरथ के समरथ तुही, निभुवन जसु गायो ।
तुलसी नमत अवलोकिये, बलि,
वांह बोल ते विरदावली बुलायो ॥६॥

भावार्थ—मने क्या करन को छाडा ? वीन सी जगह थी जो जाने का वची ?
घोर किसके आगे सिर नहीं झुकाया ? (जितने भी उपाय हा सकत ह वे सभी कर
चुका हूँ ।) किंतु हे श्रीरामजी ! जब तक आपका सबक नहीं हुआ तब तक समार में
जम सनकर मने दसा दिशाभा में कबन रुक हो पाया (सुख किस कहत ह यह आज
तक नहीं जाना) ॥१॥

आपका खास दास होकर भी सुख पाने की आशा से अपने माता का चुद्र प्रभुआ के आगे जताता फिरा, (यद्यपि जन्म से ही मैं आपका दास हूँ, तत्त्वतः जीव परमात्मा का अश्वस्वरूप है किन्तु झूठा आशा को लेकर चुद्र मनुष्या को अपना स्वामी मान उनसे अपनी रामकहानी सुनाता फिरा ।) द्वार-द्वार पर अपनी गरीबी सुनायी, पर सत्र पथ गया ॥२॥

भोजन और वस्त्र के बिना पागल के जसा जहाँ-तहाँ दौड़ता फिरा । प्राणा से भी प्यारी मानप्रतिष्ठा का भी त्यागकर दुष्टों के आगे क्षण क्षण पर यह पेट खोल-खान-कर दिवाया ॥३॥

हे प्रभो ! लोभ के भारे बहुत लालच की पर हाथ कुछ भी न लगा । सब कहता हूँ ऐसा कौन सा नाथ बचा हूँ जो चुद्र लाभ ने मुझ निलज्ज को न नचाया हो ? (जितने पेट भरने के स्वाग रचे और पालण्ड किए उन्हें कहा तक गिनाऊँ !) ॥४॥

काना, माँखो और मन का अपने अपने मार्ग पर लगाया पर सभी जगह गिरावट ही होती गई । (सब राजे महाराजे भी जाँच लिये) जब कही किसी के द्वारा सुख-शान्ति न मिली, (तब) ।सर पीटकर निराश हो गया । भव धवराकर आपके चरणा की शरण तककर आया हूँ, क्योंकि यहाँ पर मुझे अपना हित निश्चिन्त देता हूँ । (मुझे निश्चय हो गया है कि आपकी शरण में जाने से ही मेरी जन्म-जन्मांतर की दरिद्रता दूर हो जायगी) ॥५॥

हे दशरथे ! आपही समय हूँ । त्रिनोक में आपका ही यश गाया जाता है । देखिए, तुलसी आपके चरणा में विनत हो रहा हूँ । मैं आपकी बलया लेता हूँ । आपकी विरदावली मैं ही मुझे बौद्ध और (समय) बचन "कर बनाया हूँ (यह मैं कहिएगा कि मैं बिना बुलाये ही चला आया अतएव उपेक्षणीय हूँ । यदि दाया हूँ, तो आपकी विरदावली क्योंकि वही मुझे यहाँ तक खींचकर लाई है ।) ॥६॥

गदाप—छार=राज धून । असन = भाजन । क्षिनु क्षिनु = क्षण गण ।

विनय—(१) कहा न किया दिसि पाया—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस पर क्या ही मम भरा पद कहा है —

तुम बिन प्यारे, कहुँ सुख नहीं ।

भटवयो बहुत स्वाद रस-लपट ठीर ठीर जग माहीं ॥

प्रथम चाव करि बहुत पियारे, जाइ जहाँ ललचाने ।

तहें तें फिरि ऐसे जिय उचटत आवत उत्तटि ठिकाने ॥

जित देखौ तित स्वारस्य हो की निरस पुरानी बातें ।

अतिहि मनिन व्यवहार देखिक, धिन आवन है तातें ॥

जानत भले तुम्हारे बिनु सब, आदिहि बीतत सातें ।

हरोचर नहि दूटति तउ यह कठिन मोह की कातें ॥

(२) 'सब थलपति ताया — यो वज्रनाथजी ने 'सब थल पतिताया पाठ मानकर

यह भय किया है 'विषयनवश सब थल पतियाया सब स्थान पर अधिक पतित होत गयो ।

यही पाठ माते हुए धोरासेवर भट्ट 'ओ निगा है नि' 'सब जगह पर
वहिले यह आदमिया को लाया पाना ।

२७७

राम राम ! धिनु राखे मेर को हिनु साँगे ?
स्यामी सहित भव मा बहो गुनिगुनि,
विसेनि कोउ रेत दूगरी गाँगे ॥१॥
देह-जीव जोग के सगा मृषा टाँचा टाँगे ।
दिये विचार मार - बदली ज्यों,
मनि बनवसग लघु लसत बीच विच पाँगा ॥२॥
'विनय-पत्रिका' दीन की बापु ! आप ही याँचा ।
हिमे हेरि तुलसी गिरा मो सुभाय,
सही परि बहुरि पूछिण पाँचो ॥३॥

भावार्थ—हे महाराज रामचन्द्री ! आपरो छोड़कर मेरा सच्चा ठिगू दूसरा
कौन है ? मैं अपने स्वामी सहित मनो में कहता हूँ उसे मुन समझकर यदि कोई और
मंडा है, तो दूसरी लकीर लोच दीजिए । (मेरी बात का बाटकर दूसरा सिद्धांत बता
दीजिए, मुझे झूठा साबित कर दीजिए ॥) ॥१॥

(यदि आप यह कहें कि ससार में तर बहुत सग सम्बन्धी है क्या व तेरा हित
में करेंगे, तो) शरीर और जीवात्मा व मध्य के जितने सगा या हितपी मिलते हैं वे
सब मिथ्या टाँको से सिले हुए हैं । (जा टाँके ही मिथ्या हैं, जिनका वास्तविक अस्तित्व
ही नहीं उनसे सिले हुई चीज कहा सब सब हो सकती है ? जसा कारण, वसा फल ।)
विचार करने पर ये सवा' कैले क बुच के सार क समान है । (अपने से दलने पर जान
पड़ता है कि भीतर भूदा भरा हमारा पर छीलने पर अत सब उसमें से सिवा छिलके के
कुछ भी नहीं निकलता कैले ही जान दष्टि से देखने पर ससार के सारे ही सबष वसे ही
हैं) । ये सुंदर जान पड़ते हैं जैसे, मणि सुवर्ण के समीप स बीच बीच में तुच्छ काँच भी
शोभा देता है (यहां, मणि ईश्वर है और सुवर्ण है जीव दोनों के समीप से काचपपी
ससारी सबष भी सुंदर भासित होते हैं वस्तुतः व शुद्ध काँच ही हैं) । मणि तो उनसे
सबषा भिन्न है ॥२॥

हे पिताजी ! इस दीन की लिखी 'विनय पत्रिका' स्वयं आप ही पलिङ्गा (किसी
पेशावर से न पढावाइएगा । समझ है वह कुछ का-कुछ पढ़ जाये या कुछ पढ़ ही छोड़
दे । अत आप ही पाँदए) । तुलसी ने इसमें अपने हृदय की सच्चा सच्चा भाते ही निररी
है । पहले आप अपने स्वभाव से इस पर 'सही बना दीजिएगा । फिर पीछे पचो से
पूछिएगा (क्याकि यदि आपने उनसे पहल ही सलाह ली तो शायद व यह कहें कि
'पत्रिका' का भडमून बिगड़ गया है, यह राजदरबार के माग्य भो है तो मेरा सारा
किया-कराया मिट्टी में मित्र जायगा) ॥३॥

गद्गार्य—टाँचन=टोक । पाँचा=पचो स ;

विनय—(१) देह ठाँवा—इसका यह भय न सगाया जाए कि गोमाइ जो समाज प्रेम, देश प्रेम या विश्व प्रेम के विरोधा थे। प्राशय इतना हो कि ईश्वर प्राप्ति या सत्यावेपण के मायम जो कथक या बाधक हैं, व भयन ह, अतः परित्याज्य ह। किन्तु जो मित्र और भवषी सत्या वेपण के साधक ह, वे सत्य और प्रिय ह। कहा ह—
‘तुलसी सो सब भाति परमहित पुज्य प्राण तें प्यारो।
जास। होय सनेह रामपद एसो मतो हमारो ॥’

२७८

पवन सुवन । रिपुदहन । भरतलाल, लखन । दीन की ।
निज निज भवसर सुधि किये, बलि जाउँ,
दास प्राप्त पूजिहैं दास छीन की ॥१॥
राजन्दार भली सत्र कहैं सानु समीचीन की ।
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ
गति भये गति विहीन की ॥२॥
समय मैभारि सुधारिनी तुलसी मलीन की ।
प्रीति रीति समुपाइनी नतपाल,
कृपालुहि परमिति पराधीन की ॥३॥

भावार्थ—हे पवनकुमार ! हे शत्रुघ्नजी ! हे भरतलालजी ! हे लखनलालजी ! अपने अपने अवसर से इस दीन तुलसी की याद रखता । मैं आप लोग की बलियाँ लेता हूँ । आपके ऐसा करने से इस अत्यन्त दुबल दास की भाशा पूरी हो जायगी (श्रीरघुनाथ जी मेरी 'पत्रिका' पर 'सही कर दये) ॥१॥

राजन्दार में सच्चे सज्जना की बात तो सभी अच्छी कहने ह (इसमें कोई विशेषता नहीं ह) पर यदि आप लोग इस शरत्करहित दीन की सिफारिश कर देंगे तो इसे भगवान् की शरण मिल जायगी आपको पुण्य प्राप्त होगा और आपका सुयश फलगा, आपने स्वामी आप पर कृपा करेंगे (क्याकि जा उनकी पतिव्रता-भावना व विरम में सहायक बनेगा, उनसे मुक्त मरीखे पापिया की सिफारिश करगा उस पर वे और भा कृपा करेंगे) आपके स्वार्थ और परमाथ दोनों बन जायेंगे ॥२॥

इसलिए मौका ग्यकर (क्याकि राजन्दार में वे मौके धान नहीं करना हानी ह) इस पतिव्रत तुलसी की बात सुधार देना (सिफारिश करके मेरी 'विनय-पत्रिका' पर सही लिखवा दान) भक्तवत्सन दयालु रघुनाथजी से मुक्त परतत्र जीव की प्रेम पद्धति की परमिति समझाकर कह दना ॥३॥

भावार्थ—दीन = (छोटा) दुबल । परमिति = मोमा ।

विनय—(१) पवन-सुवन दीन की—इस वद में गासाइजा पत्रिका भेजने के पूव ही अपनी तरफ राज दरबारियों को विनती कर कर मिला रहे हैं। सासल भी उन्हें काफी दो गई ह।

(२) समुभाइवी -- इस शब्द पर थावज्जायत्री लिखते हैं -- "समुभाइवी" यह वाचक स्त्रीलिंग में है, ताते यह प्रायना विशारीजूमा है ।'

यह पुक्ति ठीक नहीं भ्रम रही । समुभाइवी वचनसुखी प्रयोग है । 'करवा', जायपी समुभाइवी' आदि क्रिया प्रयोग आत्र भी वहाँ प्रयुक्त हात है । यह प्रयोग पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए होता है ।

२७६]

भारति मन, रुचि भरत की लखि लपन कही है ।

कनिवालहुँ नाथ । नाम सो प्रतीति प्रीति

एव बिबर की निवही है ॥१॥

सकल सभा मुनि ल उठी, जानी रीति रही है ।

रूपा गरीबनिवाज की, देखत

गरीब की साहच बाहु गही है ॥२॥

विहंसि राम बह्या सत्य है, मुधि मे हूँ लही है ।'

मुदित माय नावत, बनी तुलसी अनाय की

परी रघुनाथ हाथ गही है ॥३॥

भावार्थ -- हनुमान् और भरत की रुचि दृग्गदर सदमण न थोरा मचद्रज्ञा से कहा है नाथ । कलिपुग में भी आये एक सच की आवे नाम न प्रीति और प्रतीति निभ गर्व (दतिग उसकी यह 'विनय पत्रिका भा आद है ।') ॥१॥

यह मुनवर सारी राज-गमा एक स्वर में कह उठा ही यह सच है लाग भी समक रानि की जानत है । गरीबनिवाज थारामचद्रज्ञा की उग पर भारा रूपा है । हनुमान न गदक गगन गगन उसकी बाहु बककर अपना दिया है ॥२॥

१ भी वे अच्छा समझते थे । अतः चर्ची से सिफारिश कराई गई ।

(२) सुधि मैं हूँ सहो हूँ —कदाचित् श्रीजानकी ने कहा होगा, वयाकि गोसाइजी नये पहले ही निवेदन कर चुके थे,

बबट्टैक अब ! अवसर पाइ ।

मेरिओ सुधि छाइवो बल्लु करन-कथा चलाइ ।

विनय-पत्रिका

समाप्त



अन्तर्कथारं

आपस—यह बड़ा लालचारी और प्रबल ईश्वर भक्त था। शिराण्ड का पुत्र था यह। ब्रह्मा से इसे यह शक्ति मिली थी कि जो प्राण हान करे वह इसका शरीर ग्रहण करे। इसके भय से देवगण मन्त्राचमन कर चले गए। पर यह बड़ा भी उद्धमता था। देवताओं की प्रायश्चित्त पर शक्य भगवान् ने उगका विग्रह के साथ शिव विग्रह का मान प्राप्त हुआ, और उसका भय भक्ति का चरमोत्तम पावन गौरव स्थापित किया।

अम्बरीष—महाराजा अम्बरीष परम भक्त थे। शत्रुगोत्र का विपत्तिग्रस्त करवा देने की एक ही चेष्टा। तब बार शत्रुगोत्र का शिव भगवान् का पुत्राग्राह्य था पहुँचे। राजा ने उसे भोजन का सागर निमज्जित किया। अम्बरीष शत्रुगोत्र का शिव ब्राह्मणों की भोजन कराकर बाद में प्रमाण ली। उस शिव शत्रुगोत्र को ही और उग्रता था। इसी लग जानबानी थी। अम्बरीष ने अनुमान शत्रुगोत्र में पारण कर बना पाया। ब्राह्मणों ने शत्रुगोत्र पर राजा ने यह दाव मिटाने के लिए भगवान् का परणोक्त ले लिया। इसमें दुर्वासा था। यह जानकर कि राजा ने शिव मर पाए शत्रुगोत्र कर लिया है यह आगवयूना हो गए, और राजा की शपथ किया कि तबसे जो यह पमड ह कि मैं इसी जन्म में मुक्त हो जाऊँगा, वह मृदा है। अभी जलकर नमकर, अनुप धादि य तुम्हें दख रहूँ शरीर धारण करने लगे। दुर्वासा ने शत्रुगोत्र का एक राक्षसी भी उग्रता था। वह राजा की दान की दीदी। उग्र श्रीहरि ने शत्रुगोत्र को धापा दी। शत्रु ने दूपा की भाँवर दुर्वासा का धोखा किया। श्रद्धा तीता लोको में भागने लगे पर विगी ने भी उन्हें शरण ली। तब लानार होकर अम्बरीष की ही शरण ली। राजा ने शत्रुगोत्र शत्रु को शांत कर दिया। भगवान् ने दुर्वासा ने कहा कि 'तुमने मेरे भक्त की जी शपथ किया है उसे मैं ग्रहण करता हूँ। मैं स्वयं दम शरीर धारण करूँगा।'

अगस्त्य—लिखा है कि समस्त तट पर टिटहरा का एक जोग रहता था। उसके अपने समस्त अपनी सहरो से बहा ले जाता था। मन्त्राचमन से वे समस्त पर कुछ ही गए। अपनी धीव में बालु भर भरकर वे समस्त की पाटन की कोशिश करने लगे। यह देखकर अगस्त्य मुनि का उनकी दशा पर दया था गई। मुनि ने उन्हें सात्वता देने हुए राम कहकर तीव्र आश्रमना से मयु की मुखा दिया। बाद में देवताओं की प्रायश्चित्त पर उस खारा करके पेट से बाहर निकाल दिया।

अगस्त्य मुनि की एक और माँ यथा है। लिखा है कि विष्णु पवत बड़ा ऊँचा था। सूर्य के प्रचण्ड तेज के कारण जब उसके वृक्ष जलने लगे तब मयु की डक देने के लिए वह अपनी शरीर बनाने लगा। देवता यह देखकर बहुत घबराए। अगस्त्य श्रद्धा से पाकर उ हान प्रायश्चित्त की। श्रद्धा ने रामनाम का स्मरण किया और विष्णु पवत के मस्तक पर

हाथ रखकर उससे कहा, 'देख अब तक मैं लौटकर न आऊँ तू यहाँ ऐसे ही पड़ा रहना।' न भगस्त्य कभी लौट और वह न उठा। वैसा ही पड़ा रहा।

अजामिल—यह बड़ा दुराचारी ब्राह्मण था। इसके कनिष्ठ पुत्र का नाम 'नारायण' था। मरते समय जब यम क दूत इन से जाने गये, तब इसने भयभीत होकर चार-पाँच बार 'नारायण' को पुकारा। नारायण तो न आया पर भगवान नारायण के पापद घा पहुँचे। उन्होंने हठपूर्वक यमदूत का डाँटकर इसे धुड़ा लिया, क्योंकि अत समय इसने 'नारायण' का नाम स्मरण किया था।

अनसूया—चित्रकूट में महर्षि अत्रि और उनकी परम पतिव्रता सात्री पत्नी अनसूया ने पुत्र-कामना से घोर तप किया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने उनका दशन दिए और वर माँगे तो कहा। अनसूया ने यह वर माँगा कि मेरे गर्भ से तुम्हारे सत्पा पुत्र जन्म लें। त्रिदेवों को 'तथास्तु' कहना पड़ा। सीता ने भगवती अनसूया के गर्भ से जन्म लिया। ब्रह्मा के अश से चंद्रमा, विष्णु के अश के दत्तात्रेय और शिव के अश से दुर्वासो जन्मे।

अहल्या—अनिन्द्य सुंदरी महर्षि गौतम की पत्नी थी। उनके कृपावर्ण्य पर मुग्ध हो एक दिन इंद्र जब गौतम सध्या-यदन करने के लिए गये हुए थे गौतम का रूप धारण कर अहल्या के पास पहुँचा और उसने उससे रतिदान माँगा। कुसुमय व अहल्या ने पहले तो उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी परन्तु पतिव्रता होने के कारण कपटवशधारी इंद्र के साथ उस अनिच्छा से सभोग करना पड़ा। तबने में गौतम आ गए। उन्होंने योगादृष्टि से सारा रहस्य जानकर इंद्र का यह शाप दिया कि तब शरीर में एक सहस्र भग हो जाएँ। अहल्या का भी शाप दिया कि तू पापाण्य भूति हो जा। बाद में ब्राह्म शास्त्र होने पर होना के शाप का प्रतीकार ऋषि ने इस प्रकार कर दिया कि श्रीराम के चरणों व स्वरा से पापाण्य अहल्या का उद्धार हो जायगा और जब रामचंद्रजी शिव का धनुष तोड़ेंगे, तब इंद्र के सहस्र भग सहस्र नशा में परिणत हो जाएँगे।

उग्रसेन—कस के पिता का नाम उग्रसेन था। यह श्रीकृष्ण के मामा थे। प्रातः साथी कस अपने पिता की कद में डालकर राजसिंहासन पर बठा था। श्रीकृष्ण ने कस को मार्कर उग्रसेन को पुन राजा बनाया और स्वयं उनके द्वारपाल बने।

करनघट—यह ब्राह्मण था और भगवान शिव का भक्त था। शिव के प्रतिरिक्त किसी देवता का नाम तक नहीं सुनना चाहता था। जो कोई विष्णु आदि का नाम उसके आगे ल देता तो वह दूर भाग जाता था। उसने अपने बाना में घट धाँव रख थे, जिससे विष्णु आदि का नाम न सुनाई पड़े। जहाँ वह रहता था उस स्थान को वाशी में मान भी लोग बखूबता के नाम से जानते हैं।

कालकूट—दोनों और दसों ने मिलकर एक बार अमृत निकालन के लिए समुद्र का मंथन किया। सबसे पहले उसमें से हालाहल निकला। विष का प्रचंड ज्वाला सब जलन लगे। सबने एक साथ आत बाणी से शिव का आवाहन किया। शिवा शिव के जिसमें सामर्थ्य था जो उसे पान कर सकता था? उस व पी गय। किंतु तत्काल उन्हें स्मरण आया कि हृदय में तो श्रीराम का निवास है घट हालाहल का कण्ठ के नीचे नहीं उतरने दिया। विष के प्रभाव से कण्ठ नीला हो गया। तभी सब नीलकण्ठ' कहे जाने लगे।

मनवत्सल भगवान् शंकर न इस प्रकार विष की ज्वाला से जलन हुए देवा तथा दैत्या की रक्षा की ।

वासनेमि—यह बड़ा ही भयानकी था । जब तदमण् मधनाय की शक्ति से ग्राह्य हो गये श्रीः हनुमान सजीवनी लेने जा रहा था तब रावण की सलाह से श्मशान में वाराधना कर हनुमान के साथ छेद किया । किन्तु भयंखुल जान पर हनुमान ने इस गूँध में लपेटकर तत्काल घमसाक का भज किया ।

कालिय—यमुना में कालिय नाम का एक भयंकर नाग रहता था । उसके विष से वही का जल सदा सोलता रहता था । श्रीकृष्ण ने कालिय नाम की नागकर भयंकर वाराधना कर लिया और यह यमुना की छाड़कर समुद्र में जाकर रहने लगा ।

कुबरी—यह कस की दासी थी । यह कुबरी थी । जब श्रीकृष्ण मथुरा में राजा कंस के दरबार में जा रहा था तब यह रास्ते में कंस के लिए चन्दन का लप मिये हुए मिली । भविष्यदा चन्दन का वह गुदर रूप श्रीकृष्ण के मस्तक पर लगा दिया । यह कृष्ण-वृत्त हो गई । श्रीकृष्ण ने इसका कूबड़ हटा दिया । गायिका ने सीतिया डाहक से इसे हजारों कूबड़ियाँ और व्यंग्य सुनाए पर प्रेम पथ पर न वह तनिक भी न टिकी ।

गजेन्द्र—एक बार एक सरोवर में एक बड़ा मधो-मत्त हाथी हृदिनिधा के साथ जल विहार कर रहा था । पत्तने में एक मगर ने उसका पर पकड़ लिया । हाथी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी । तब मगर को पकड़ में लि शक्ति और निराश हो उसने श्रीहरि की पुजा । हर कहने ही गहड़ की सवारी छाड़कर भगवान् तुरन्त उस सरोवर पर पहुँच और चक्रमुक्तामय मज्जद्र का कटा काट दिया । गजेन्द्र मुक्त हो गया । श्रीमदभागवत में यह गुदर कथा गजेन्द्र-भाष्य का नाम से आई है ।

गुणनिधि—गुणनिधि नामक एक ब्राह्मण महान् धीर था । एक दिन वह एक शिवालये में घटा चुराने चला । घण्टा बहुत ऊँचा बंधा था । वहाँ तक वह न पहुँच सका था शिवालिक के ऊपर चढ़कर उभे खोलत लगा । भगवान् शिव प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उससे बोले— जा वर तुम मींगना हो मींगल में तुम पर परम प्रमत्त हूँ क्योंकि तूने मरु पर प्रपत्ता सबस्व चढ़ा दिया है । शिव की कृपा से वह कनास-लाक की बन्धा गया और कनक पद्म का अधिकारी हुआ ।

जटायु—गीराणिक कथा के अनुसार यह सयनारायण के सारथी अरुण का पुत्र एवं सम्पत्ति का बड़ा भाई था । इसने रावण द्वारा हरा गई सीता की छुड़ाने के लिए रावण के साथ घोर युद्ध किया और मारा गया । आराम में अपने पिता के समान जटायु का दाह सम्कार स्वयं अर्चन हाथ में किया ।

जयन्त—वज्र का पुत्र जयन्त एक दिन चित्रकूट में सीताजी के दिव्य सोदय पर भागित हो गया । कोड़े का रूप धरकर उसने उनके स्तन पर बाँध मारी । श्वेत में रक्षित रहता देख रघुनाथजी ने उस पर एक मौक का बाण मारा । बाण के भय में वचारा साग वज्राण में भागना निरा, पर वही भी उस बाण में मिला । लाचार रामचन्द्रजी का शरण में आया । प्रभु ने उसका प्राणान्त न कर एक भाग्य फाँकर उसे छान दिया । नृनमादामजी ने रामचरितमानस में स्तन के स्थान पर चरणा में बाँध मारना किया है, जो भाव ही मरणा के अनुकूल है ।

जलधर—इसका जन्म समुद्र से माना जाता है। बड़ा प्रतापी राजा था यह। इसने सार दैवताओं को अपने अधीन कर लिया था। शिवजी इसे मारने के लिए उद्यत हुए पर जीत न सके, क्योंकि इसकी स्त्री वृंदा बड़ी पतिव्रता थी। धन पूर्ण विष्णु न जब इसका सतीत्व नष्ट कर लिया, तब शिव जलधर का वध कर सका। वृंदा ने इस धन पर विष्णु को शाप दिया, कि 'कालांतर में मेरा पति रावण का रूप लेकर तुम्हारी पत्नी का हरण करेगा।

जह्नु-कन्या या जह्नुवी—जब महाराजा भगीरथ गंगा को हिमालय से उतारकर अपने रथ के पीछे-पिछे ला रहे थे उस समय मानस मध्यानावस्थित जह्नु ऋषि घ्रासन लगाए बैठे थे। गंगा न जया ही उनके आश्रम में प्रवेश किया, वह उन्हें चुल्लू में भरकर पा गए। पश्चात् भगीरथ के बहुत अनुनय विनय करने पर ऋषि ने गंगा को जघा के द्वार से निकाल दिया। सभी स गंगा का नाम जह्नुवी या 'जह्नु-वानिका' पड़ गया।

दक्ष यज्ञ—शिवजी की प्रथम पत्नी सती दक्ष प्रजापति की पुत्री थी। एक बार दक्ष ने एक यज्ञ यग रचा। कुछ वमनस्य हा जाने के कारण दक्ष ने अपने जामाता शिव को निमन्त्रण नहीं दिया। पितृ स्नेहवश बिना बुलाए ही सती यग देखने चली गई। वहाँ सत्र देवताओं के बीच में शिव का घनिष्ठ भाग न दक्ष उन्हें अत्यन्त क्रोध प्रयास और पिता को दुर्वचन कहती हुई व योगाग्नि में जनकर मस्म हा गई। यह सुनत हा शिवजी न अपन गणराज वीरभद्र को वहाँ भेजा। वीरभद्र न दक्ष का सपूर्ण यग विध्वंस कर दिया। बाद में शिवजी ने प्रसन्न हाकर यग का पुनरुद्धार किया।

त्रिपुर—दनु का पुत्र त्रिपुर बड़ा अत्याचारी दैत्य था। जब उसके अत्याचारा से तीनों लोकों का नाश दम आ गया, तब प्रायत्ना करन पर भगवान् शंकर ने उस एक ही बाण से मार गिराया। सभी से शिवजी को त्रिपुरारि कहा जान लगा।

द्रौपदी—जब दुर्योधन ने पाण्डवा का सबस्व जुग म जीत लिया तब द्रौपदी का भी दाँव पर रखवा लिया। दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़कर उस भरो सभा म ले प्राया और लगा उसकी सारी छीवन। पाचों पांडव, दोषानाय वरुण आदि सभा चुरचाप धठ रहे किसी ने भी दुर्योधन के डर के मारे द्रौपदी की मर्यादा बचाने का प्रयत्न नहीं किया। तब वह कर्णसिन्धु द्वारकानाथ को बार बार से पुकारने लगा। भगवत्कृपा से उसकी साड़ी दत्तनी लम्बी हो गई कि दुःशासन धावते सीपत बच गया, पर उसका और-छाँद न पा सका। इस प्रसंग पर अनक कवियों ने अतिशयोक्ति का प्रयोग कर अनेक पद्य लिख हैं। ऐसा ही एक कवित्त है—

'पाम अनुमासन दुमासन के कोप धायो

द्रुपद-मुना को चोर गह भीर भारी है।

भीषम, करन, द्रान बैठे अतधारी तहाँ,

कामिनी की और बाह नक न निहारी है॥

सुनिवे पुकार धायो द्वारका तें जदुराई

वादन दुकूल खचे भुजवन हारी है।

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,

कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है॥

ध्रुव—महाराजा उत्तानपात्र की दो रानियाँ थी—एक का नाम था सुनीति और दूसरा का सुर्ग्वि । राजा छोटी राना सुर्ग्वि को ही अधिक मानत थे । एक दिन सुनीति के पुत्र भुव न सुर्ग्वि के पुत्र उत्तम के साथ राजा की गोद में बैठना चाहें । उस पर विमाता सुर्ग्वि ने उसे व्यर्थ के साथ ढाटकर हटा दिया । बेचारा मालक रोता हुआ अपनी माँ सुनीति के पास गया और उनके उपदेश से बड़े तपस्या कर सर्वोच्च पद का अधिकारी हो गया ।

नल—राजा नल जुष्ट में अपना सारा राज्य हार गये और उन्हें वन वन भटकना पड़ा । चित्रकूट में भ्रम पर ही उनकी विपत्ति दूर हुई । बृहदामायण में लिखा है—

दमयन्तोपतिर्वीरो राज्य प्राप्य हनानुभू ।

मदाकिनी पुण्यतमा गता नलोक्तविधुता ॥

निषादराज गृह—यह जाति का कंबट था । रघुनाथजी इसे सखा या भ्राता के समान मानते थे । सप्तमण और भीता के साथ वन जात समय गया पात्र उतारन के लिए जब गृह से नाव मेंगाई तब यह गद्गद बठ में बोला—

मागी नाव, न कंबट आना । कहइ, तुम्हारे मरम में जाना ॥

षग्न-कमल रज कहैं सब कहई । मानुष - करनि मूरि कटु अहई ॥

दुवत मिला भई नारि सुहाई । पाहन ते न बाठ कठिनाई ॥

तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई । बाट परे मोरि नाव उडाई ॥

जो प्रभु पार अवसि गा चहुँ । माहि पद पदुम पखारन कहूँ ॥

×

×

×

‘बह तार भारहु लखन प, जबलनि न पाव पछारिहों ।

तबलनि न ‘तुलसीदास,’ नाथ कृपालु पार उतारिहों ॥’

दुर्ग—राजा नग महान दानी था । यह नित्य एक करोड़ गौबों का दान करता था । एक बार इसने एक ब्राह्मण को एक गाय दान में दी । वह गाय किसी तरह भाग कर फिर राजा की गायों में जा मिली । दूसरे दिन राजा ने उस न पहचानकर एक दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दिया । पहला ब्राह्मण अपनी गाय की ग्राज में धूम ही रहा था । उसने इस ब्राह्मण के पास गाय देखकर इसे चोर समझा और दाना में भ्रमश होने लगा । दाना ही राजा न पाम पाय करने पहुँचे । राजा न उन्हें राजी करना चाहें, पर वह राजी न हुए । गाय छोड़कर यह शाप देकर वन गये कि तू न हमें छोड़ दिया है । जा, गिरगिट की यात्रा का प्राप्त हो । राजा गिरगिट हो गया । एक सहस्र वर्ष तक श्रितिकान्तरी न एक कुएँ में पड़ा रहा । श्रोक्यण न उस निकालकर उसका उद्धार कर दिया और वह नित्य शहर वाकर बैकुण्ठ चला गया ।

पारथ (पांडव)—जब त्र्योम्भ न जुष्ट में पाटवों का सबस्व जीत लिया, और उनका नगर ॥ निकाल दिया तब ववार भटकत भक्त चित्रकूट पहुँच । वहाँ तप सानना पर चित्रकूट न प्रभाव स मुना हुआ । वन्गमायण में लिखा है—

‘चित्रकूटे गुप्ते क्षेत्रे श्रीरामपद भूषिते ।

नपरचचार विधिवदमराज्ञो मुषिष्ठिर ॥’

एक ही स्त्री द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडवा का समाग यही उनके पतन का कारण था । इनका उद्धार श्रीकृष्ण ने सत्यप्रेमवश किया । (पृ० १०६)

पांडवा क हित-साधन क अथ भगवान् कृष्ण ने क्या-क्या नहीं किया । उनके लिए वे दूत बनकर दुर्योधन के पास गये उससे भला-बुरा भी सुना । द्रौपदी की आत्त पुकार सुनकर उसकी सहायता की । भारत-युद्ध में अर्जुन के रथ के स्वयं सारथी बने, और अपना प्रतिज्ञा भी तोड़ी ।

पिंगला—पिंगला नाम की एक बरया थी । एक दिन जब उसका प्रेमी माघी रात तक न आया, और वह शृङ्गार किए उसकी बाट जाहती रही, तब उस मन में भारी ग्लानि हुई । “अतने समय तक मैं इसकी राह देखती रही यदि उतना समय भगवद्भजन में लगाया होता तो मेरा उद्धार ही न हा जाता ।” उस दिन से बरयावत्ति छोड़कर पिंगला सच्चे हृदय से रामनाम जपन लगी । फलतः उस माघ-लाम हा गया ।

पूतना—यह किसी पूर्वजन्म में अप्सरा था । भगवान् वामन का सुंदर रूप देख कर वात्सल्य-स्नेहवश इसके मन में आया, कि मैं इस बालक को पुत्र मानकर अपने स्तना का दूध पिलाऊँ । अन्तर्यामी भगवान् उसका मन की भावना जान गये । वही अप्सरा पूतना नाम से किसी घोर पाप के कारण, राखसी हुई । श्रीकृष्ण ने मान् मक्ति भावना से उसे स्वयं-धाम भेज दिया ।

प्रद्युम्न—श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कामदेव र अवतार थे । कामदेव ने सारे जगत की पाप वासना में निप्ट कर रखा था, तथापि भगवान् ने उसे अपने पुत्र के रूप में वात्सल्य प्रदान किया ।

प्रह्लाद—प्रह्लाद का सत्याग्रह प्रसिद्ध है । पिता हिरण्यकशिपु प्रह्लाद का राम नाम जपने से राक्षता था, पर यह निरंतर ‘राम राम ही कहा करत । यह न माने, न मान । अन्त में, उसने इन्हें एक गरम सन्धे से बांध दिया और तलवार लेकर मारने का तयार हो गया । भक्तवत्सल भगवान् नसिह रूप में लम्मा चारकर निकल पड़े और दबते देखन हिरण्यकशिपु का चौर-कांड टाला । प्रह्लाद की गणना महाभागवता में है । कवित्त रामायण में तुलसीदासजी ॥ प्रह्लाद पर एक सुंदर बरया लिखा है—

भारत-पाल कृपाल जो राम जुही सुमिरे तेहि की तहँ ठाढ़े ।

नाम प्रताप महामहिमा धकड़े किये छोटेउ छोटेउ बाढ़े ॥

सेवक एकते एक अनेक भये तुलसी तिहुँनाप न माड़े ।

प्रेम बडो प्रह्लादहि की जिन पाहन तैं परमेमुर काड़े ॥’

यक (पद १४६)—वा-मीकीय रामायण में उल्लू का प्रसंग आया है, बगुने का नहीं । श्री बदनायजी ने वक के स्थान पर खग पाठ शुद्ध माना है । समझ है वक की क्या का उल्लेख किसी अन्य रामायण में हो । वा-मीकीय रामायण में उल्लू और गीध की क्या इस प्रकार लिखी है—एक वन में एक उल्लू और एक गीध दाना एक ही घर में रहते थे । एक दिन गीध ने, श्रद्धावश घर पर अपना अधिकार करना चाहा । उसने उल्लू से कहा— हमारा घर खाली कर दो, इस पर तुम्हारा कोई हक नहीं । दोनों में भगडा बढ़ गया । अंत में श्रीरामचन्द्रजी से फसला कराने के लिए, दाना, दरबार में

पहुँचे। रामचन्द्रजी ने उल्लू ने पूछा—‘घर किसका है ? तुम उसमें क्यों रहता है ?’
उल्लू ने उत्तर दिया—‘महाराज, जबसे बूढ़ा की सृष्टि हुई तबसे मैं उसी घर में रहता हूँ। गोध ने कहा कि ‘जबसे मनुष्या की सृष्टि हुई, तबसे मैं उसमें रहता हूँ।’
भगवान् ने निश्चय किया कि ‘मनुष्या से बूढ़ा की सृष्टि पहले हुई है, मत वह घर उल्लू का ही हो सकता है, गोध का नहीं।’ घर उल्लू को दिया गया।

बलि—जब राजा बलि ने कामन भगवान् को तीन पग पृथ्वी देने का वचन दिया, तब शुक्राचार्य ने विष्णु भगवान् का छत्र समझकर, बलि को दान देने से बहुत कुछ रोका। परन्तु सत्य-सत्कर्तृकाला राजा बलि अपनी प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हटा। उस समय उसने अपने गुरु शुक्राचार्य का भी सत्य को हत्या होने का कारण, परित्याग कर दिया।

भगीरथ-नदिनी—सुयवशी महाराजा नगर के साठ हजार पुत्र थे। उन्होंने भक्तानुवश योगेश्वर कपिलदेव पर यह दोषारोपण कर दिया कि उन्होंने हमारे पिता का शरवमेघ का छोटा चुरा लिया है, यद्यपि उस चुराया या मायावी इंद्र ने। इस पर कपिलदेव ने उन सबकी अपनी योग ज्ञाना से भस्म कर दिया। उनके उद्धार के लिए उनका पौत्र महाराजा भगीरथ बठोर तपस्या कर शिवजी की जटायों से गंगा को भूमन पर उतार लाये। इसीलिए गंगा का भागारवी कहते हैं।

मय—यहूया तो दत्त पर पूरा भगवान् भक्त था। ‘सकी स्थापत्य राजा की प्रशंसा महाभारत, रामायण आदि ग्रंथों में यत्र-यत्र मिलती है। गरुड का स्वर्ण लका का निर्माण इसीने किया था। इसीने महाभारत में धर्म पांडवा के इंद्रप्रस्थ नगर का निर्माण किया था जिसमें दुर्ध्वज का जल में स्थित का शीर स्वर्ण मय का भ्रम हो गया था।

महिषासुर—यह शिवजी का दश से उपमन हुआ था। बड़ा ही प्रबल और प्रचंड दैत्य था यह। जब इसे दैवगण ने जाल सके, तब कानिका ने इसका संहार कर पृथ्वी पर शान्ति स्थापित की।

माकण्डेय—माकण्डेय कपि ने कठार तप करने के पश्चात् भगवान् ने प्रायना का कि मुक्त प्राय प्रत्यक्ष का दर्शन मिला जोजि। बिना ही कथागत के भक्त उन भगवान् का प्रत्यक्ष-लोला रचनी पड़ी। माकण्डेय ने उस समय सार हाँ प्रह्लाद का जल मय दत्ता, बरत मारायण शिरारूप में एक बट-वन पर खसते हुए दृष्टि-ग्राह्य हो रहे थे।

मयन—विष्णु मयन ने कहते हैं मूर के आधार ने मरत समय द्वारा कहा था। बिना जान ही उस माँ में राम आ जान का उसका मुक्ति हो गई।

रत्नबीज—यह एक कथा थी। इस शिवजी ने यह वर मिला था कि उसका रत्न धरती पर गिरने से उसका प्रत्यक्ष बूट में उसीके समान पराक्रमी हजारों राजस पत्नी हो जायेंगे। इस वर का प्रभाव से तोना लाख मयमोत हो गया। यत्र में, स्वनामा ने भगवती कानिका से प्रायना का। कानिका ने प्रकट होकर रत्नवान से यह किया। एक एक बूट रत्न का गिरने से जब महलों नय राजसपत्नी हान लगे तब भगवती काशी ने अपनी जीम इतना लम्बी बड़ा की कि उसका सारा रत्न मृत्ति पर गिरने से पहुँचे हाँ आम से बाट दिया। इस तरह नय-नय राजसों का उत्पत्ति रत्नकर उन्होंने रत्नबीज का वर दिया।

राहु—जब समुद्र मंथन से धमृत्त निकला, तब देव और दैत्य उस पाने का वि

भगवत् में लडने लगे । विष्णु भगवान् ने मोहिनी रूप धारण कर भगवत् का घटा अपने हाथ में ले लिया । राक्षस उनके अनौकिक रूप पर मोहित हो गये । एक ओर देवता और दूसरी ओर दत्त पत्नियों में बिठा दिये गये । भगवत् का वितरण देवताओं को पत्नियों से आरम्भ किया गया । राहु नामक एक दत्त विष्णु का कपट समझ गया और वह सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ बैठा । घासे से मोहिनी ने उसे भी भगवत् पिला दिया । पर सूर्य चन्द्र के इशारे से कि यह दत्त है, भगवान् ने अपने चक्र से उसका मस्तक उड़ा दिया । भगवत् का वन गया राहु, और राहु का केतु । कहते हैं उसी पुराने बैर से, राहु, ग्रहण के समय चन्द्र और सूर्य को दुःख दिला करता है ।

लवणामुर—यह मथुरा का राजा था । अपने घोर अत्याचारों से इसका गाँववालों की जब बहुत कष्ट दिया तब श्रीराम की आज्ञा से शत्रुघ्न ने जाकर इस अपने भक्त पराक्रम से मार डाला ।

बाणामुर—यह राजा बलि का पुत्र था । इसके एक हजार हाथ थे । यह परम-शिव था । इसकी पुत्री उषा, श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का मनोहारी रूप स्वप्न में देखकर, उन पर मोहित हो गई । अपनी सखी चित्रलेखा के विनोद द्वारा अनिरुद्ध कुमार का पता लगाकर चुपके से उन्हें अपने भक्त पुर में बुला लिया । जब यह बात बाणामुर की मानुस हुई तो उसने अनिरुद्ध को बंध में डाल दिया । श्रीकृष्ण के साथ युद्ध होने पर कटते कटते जब इनके केवल चार हाथ रह गये, तब यह भगवद्भजन हो गया । तत्पश्चात् इसने अनिरुद्ध के साथ उषा का विवाह कर दिया ।

वामन—दानवीर राजा बलि से तीन पद्म भूमि के सबसे त्रिलोक लेने के लिए विष्णु भगवान् ने वामन अवतार धारण किया था । उन्होंने पृथ्वी का साम्राज्य देवताओं का दिया, क्योंकि वे बघाव बलि के जाने तेजवीर हो गये थे । साथ ही बलि को वामन भगवान् ने निद्रा में डालकर अपना परमभक्त बना लिया । उसका सान्निभ्यमान भी धूर धूर हो गया । एक काम के करने में बड़े काम सध गये ।

बाल्मीकि—पहले इनका नाम रत्नाकर था । ब्राह्मण होकर भी यह व्याध का काम करते थे । जंगल में पशुओं का शिकार करने के साथ ही उस माग से जानेवाला भी लूट लिया करते थे । एक दिन दक्षिण देवों ने नारद उधर से जा निकले । उनकी भी लूटना चाहें, पर बाद में जाने उपदेश से जीवहिंसा छोड़कर रत्नाकर भगवद्भजन करने लगे । अम्यास न होने से सीधा 'राम राम' ही जपत बना नहीं, उल्टा 'मरा मरा' उचड़े रहे । किन्तु इसी के प्रताप से वे ब्रह्मपति हो गये । कहा भी है—

'उलटा नाम अपत अज जाना । बाल्मीकि भे ब्रह्म-समाना ॥'

विदुर—यह दासी-पुत्र थे, पर भगवद्भक्त होने के कारण स्वमाय समझे गये । श्रीकृष्ण भगवान् जब हस्तिनापुर गये, तब दुर्योधन के घर पर न जाकर विदुर के ही प्रतिपि हुए । विदुर उस समय घर पर नहीं थे, वहाँ उनकी स्त्री थी । वह प्रेम में इतनी बेसुध हो गई कि भगवान् को जब बिलाले बैठे तो वह छील-छीलकर गोचे गिराता गई और पिलके उनके हाथ में देती गई । भगवान् ने उन छिन्का को बड़े प्रेम से खाया । भगवान् ने विदुर के कुल शील पर ध्यान न देकर उनकी भक्ति भावना का ही प्रशंसा दी ।

को देग हनुमान् उन्हें भी खाने को दी। इतने में इन्द्र ने उसको हनुमान् ठोड़ी पर ऐसे जोर से बन्ध मारा कि वह मुञ्चिष्ठ हो गया। बन्ध भी टूट गया। इसी कारण हनुमान् नाम पड़ गया।

(२) एक बार शिवजी ने श्रीराम से कहा मैं आपकी दास्य भाव से सेवा करना चाहता हूँ मुझ यह वर दीजिए। रघुनाथजी न वर दनिया। कानान्तर में हनुमान् के रूप में शिवजी ने श्रीरामचन्द्र को दास्यभक्ति प्राप्त की। इसीलिए हनुमान् को ग्यारहवाँ वर माना गया है।

(३) हनुमान् न सुयनारायण से विद्या प्राप्त की थी। दक्षिणायाम में सूर्य न हनुमान् से यह वर माँग लिया था कि तुम सदा मर पुन सुप्रिय की रक्षा करना। जब तक सुप्रिय को राज्य नहीं मिला वह बराबर उसकी रक्षा करते रह।

(४) भीम और हनुमान् के सम्बन्ध को महाभारत में दो कथाएँ मिलती हैं—वनवास काल में एक दिन भीमसेन को माग में एक महान् वानर भारा सटा हुआ मिला। भीमसेन की गजना से वानर न आखें खोली। भीमसेन न उससे कहा—भाई रास्त से हट जाओ। वानर का उत्तर था—म वृद्ध हूँ, उठन-बठन में कष्ट होता है तुम्हीं मरों पूछ हटाकर क्यों नहीं चले जाते? भीमसेन न अपनी सारी शक्ति लगाकर पूछ उठाई पर वह टस से मस न हुई। यह जानने पर कि वह वानर साक्षात् हनुमान् हैं भीमसेन न उसे साष्टांग प्रणाम किया।

एक बार भीमसेन ने हनुमान् से कहा—मुझे आप अपना वह रूप दिखाइए जो राम रावण युद्ध में धारण किया था। हनुमान् ने कहा—भरा वह रूप बड़ा ही विकराल है। तुम देखते ही डर जाओगे। भीमसेन न जब बहुत धाग्रह किया तब हनुमान् प्रवरद रूप में देखत देखत प्रकट हो गये। भीमसेन की आँखें बंद हो गई देह धर धर कापन लगी। हाथ जाड़कर वह हनुमान् के चरणों पर गिर पड़ा।

(५) महाभारत के युद्ध में अर्जुन कण के रथ पर बाण चलात तो उनका रथ कोसा दूर हट जाता और कण के बाण से अर्जुन का रथ जरा-सा ही क्षिप्तता। यह देख अर्जुन को अपने बल-वराक्रम पर बड़ा गम हुआ। अन्तर्धामि श्रीकृष्ण इस रहस्य को समझ गये। श्रीकृष्ण ने हनुमान् से रथ की ध्वजा पर स हट जान का कहा। हनुमान् हट गया। अब कण के बाण से अर्जुन का रथ बहुत दूर जा गिरा। अर्जुन न धक्काकर पूछा—यह हुआ क्या? श्रीकृष्ण ने कहा—तुम्हारा बल ही क्षिप्तता है। यह सा-पराक्रम तो हनुमान् का था। इस समय व तुम्हारा रथ की ध्वजा पर नहीं है। यदि भी यहाँ से हट जाता तो न जाने तुम्हारा रथ कहा गिरता। अर्जुन लज्जा से पानी-पान हो गया।

(६) एक बार भगवान् विष्णु न गरुड को हनुमान् को बुला लान की आज्ञा दी। हनुमान् ने गरुड से कहा—‘आप चलिए। मैं पीछे आ रहा हूँ। आपमें पहले ही पहुँच जाऊँगा।’ गरुड को अपनी वायु-शक्ति का बड़ा गम था। उड़ते हुए भगवान् के पास पहुँचे तो देखते क्या है, कि हनुमान् तो वहाँ पहले से ही बैठ हैं। गरुड का सारा गम चूर चूर हो गया। यह कथा स्कन्द पुराण में है।

(७) हनुमान् ने सूर्य भगवान् से विद्याएं पढ़ी थीं । वेदों और शास्त्रों पर माध्य, पिंगल पर टीका, काव्यों पर टिप्पणियाँ तथा वेदाङ्गा पर भी कई ग्रंथ उन्होंने रचे थे । हनुमन्नाटक हनुमत ज्योतिष आदि कुछ ग्रंथ आज भी प्राप्य हैं । कहते हैं, चित्रकाय के आदि आविष्कर्त्ता भी हनुमान् ही थे ।



पद-सूची

अकारन की हित और को ह	३५६	कटु कहिय गाढे परे	७६
अजहुँ आपने राम के वरतब	३०३	कन्हि दिसाइहौ हरि वरन ?	३३८
अति भारत अति स्वारथी	७५	कबहुँक भव अवसर पाइ	८४
अब बित, अति चित्रकूटहि चलु	६३	कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो	२७३
अबलीं नसानो अब न नसैहौं	१७८	कबहुँ कृपा करि रघुवीर	४१३
अस कछु समझि परत रघुरायी	२००	कबहुँ रघुबलमनि ।	३२६
आपनो कबहुँ करि जानिहौं	३४८	कबहुँ समय सुधि लाइबी	८५
आपनो हित रावर सा जो पै सूझ	३६५	कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक	२२६
इह कछो सुत, बेद नित चहुँ	१५७	कबहुँ मन विद्याम न मायो	१५६
इह परमपुत्र परमबडाई	१२५	करिय सभार कोसलराम	३४१
ईस सीम बसति	५८	कनि नाम कामलन राम को	२५०
एक सनहो साँचिलो	२६६	कस न करहु कलना हर	१८३
एक दानि सिरोमनि साँचो	२६०	कस न दीन पर द्वहु उमावर	४३
ऐसी भारती राम रघुवीर की	६३	कहा न किया कहाँ गया	४२०
ऐसी कथा प्रभु की सीति	३२	कहाँ जाऊँ कासो कहीं	
ऐसी सोहि न भूमिमे हनुमान हठीले	७३	घोर डोर न मेरे	२४२
ऐसी भूठता मा मन की	१६१	कहाँ जाऊँ कासा कहीं	
ऐसी हरि वरत दास पर प्राति	१७०	का सुन दीन की	२८२
एस राम दीन हितकारी	२६४	कहु कहि कहिय कृपाधि	१८४
ऐगहि जनम ममूह चिराने	३६१	कहे बिनु रक्षा न परत	३६४
एमह साहब की सेवा	१३६	कहा न परत बिनु कहे	४०३
ऐमा को अन्तर जग माहीं	२५६	कहौँ बीन मुह साँच	२४१
और कह और रघुबल मनि । मर	३२८	काज कहा नरतनु घरि छारयो	३१४
और बाढ़ि माँगिए	१५१	काहे को फिरत मन	३०७
और मोहि को है बाढ़ि कहिहौं	३२७	काह का फिरत मूँ मन	२११
कछु हँ न आप गया	१४४	काहे ते हरि, माहि बिचारो	१६६

बाहे न रमना, रामहिं गावहि ?	३६४	जागु जागु जीव जड	१४२
कीज मोको जम जातनामई	२७१	जांचिये गिरजापति कासी	४२
कृपासिंधु जन दीन दुबारे	२३७	जानकी जीवन जग जीवन	१४८
कृपासिंधु, ताते रहों	२३६	जानकी-जीवन की वलि ज्यों	१७७
कृपा सो घौ कहाँ बिसारो राम	१६८	जानकी नाथ, रघुनाथ	१००
केसव कहि न जाइ का कहिये	१८८	जानकीस की कृपा जगावती	१८३
केसव, कारण कौन गुसाइ	१८६	जानत प्रीति रोति रघुराई	२६१
कहू भाँति कृपासिंधु	२८५	जानि पहिचानि में बिसारे हौ	३६७
कैसे देखें नाथहिं खोरि	२५४	जिय जब सँ हरि ते बिलगाया	२१६
को जाँचिये समु तजि भान	३६	जसो हौ तसो राम	४१४
कोसलापीस जगदीस	१०२	जो अनुराग न राम सनेही सों	३०५
कौन जठन बिनतो करिये	२६२	जो तुम त्यागो राम, हौं तो नहिं	२७६
छोटो खरो रावरा हौं	१४५	जो पै कृपा रघुपति कृपालु की	२२४
गाइये गनपति जगवदन	३७	जो प चेराई राम की	२४५
गरीबी जोहू जा कहीं और को हौं	३५८	जा पै जानकि नाथ सा	३०२
जनम गयो दादिहिं नर सीति	३६०	जो प जिय जानकी-नाथ न जानै	३६३
जमुना ज्यो-ज्यों लागी बाढ़न	५६	जो पै जिय घरिहौ	१६८
जय-जय जगजननि देखि	५४	जो पै दूसरो कोउ होइ	३७
जय जय भगीरथ-नदिनि	५५	जो प रहनि राम सा नाही	२७७
जयति सच्चिद्-वापकानंद	८५	जो पै राम चरन रति होती	२६८
जयति भ्रजनी-नाभ	६८	जो प हरि जन क भौगुन गहते	१६६
जयति जय सुरसरी	५६	जो मन लाग रामचरण अख	३२०
जयति निभरानंद सदाह	७१	जो मोहि राम सागत मोठे	२६६
जयति बातसजात	६६	जो निन मन परिहर विकारा	२०१
जयति मंगलागार	६८	जो मन भयो चहु हरि मुरतख	३२१
जयति मकटापीस	६६	ज्यों ज्या निकट भयो चहों	४०६
जयति लक्ष्मनानंद	७६	तऊ न मेर प्रथ भवगुन गनिहैं	१६७
जयति भूमिजा रमन	८०	तन सुखि, मन रूचि मुख कहों	४०७
जयति जय-सत्रु करि-कैसरी	८२	तब तुम माहैं से सठनि को	३७१
जयति राज राजेंद्र रानीवलोजन	८७	ताकिहू तमकि ताकी ओर को	७२
जहाँ बहूँ ठौर हूँ बहूँ देख ।	४१७	खले हूँ खार-खार दख ।	२११
जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे	१७४	ताहि ॥ आया सरन सबेर	२६३
जाकी गति हूँ हनुमान की	७२	तावे-मो पीठि मनहूँ तनु पाया ।	३१२
जाके प्रिय न राम-बदहो	२७५	तुम अपनायो तब जानिहों	४११
जाको हरि दूढ़ करि अग करयो	३६७	तुम जनि मन मनो करो	४१५

तुम तजि, हौं कासा कहौं	४१६	नाहिन नाथ ! धवसब	३२६
तुम मम दोनबधु न दीन कोउ	३७२	भौमि भारायन, नर, कलनामन	१२०
तू दयालु, दोन हौं	१५०	पन करि हौं हठि धाज तैं	४१०
॥ नर नरक रूप	२२६	पवन-मुवन ! रिपु दवन !	४२३
सा सो प्रभु जो प कहैं बोट होतो	२५८	पावन प्रेम रामचरन कमल	५०६
तो मा हौं निरि निरि	२१०	पाहि पाहि राम ! पाहि,	५८१
तो तू पछितह मन मोजि हाथ	१५६	प्रिय रामनाम तैं जाहि न रामो	३५२
तो हौं बार-बार प्रभुहि पुकारिकै	३८४	बढ़ौं रघुपति कलनामिधान	१३१
दनुज-वन-दहन	६६	बलि जाउँ, हौं राम गुसाइ	३०६
दनुज-मूलन दया मि-वु	११२	बलि जाउँ, और कासों कहौं ?	५४६
दानी कहैं सहर सम नाहो	४०	बाप आपने करत मेरो	३८६
झार झार दीनना कहो	४१८	बारक बिनोकि, बलि,	२८३
झार हौं भोर ही को जानु	३३६	बाबरो रावरो नाह भवानी	४१
दान उठरन रघुवय	११८	बिरद गरीब निवाज राम को	१७१
दीन का दयानु दानि	१४६	बिस्व बिस्पात, बिस्वस	१०८
दीन-प्यानु दिवाकर देवा	२८	मखिब लायक, सुखदायक	३२४
दीन-प्यानु दुरित नारिद	२२६	भयनै उगास राम	२८
दीनरघु दूगरी बट पावो	३५८	भरायो जाहि दूवरा ना करा	३४६
दीनबधु ! दुरि बिय	२६५	भरोनो और छा- उर तार	३४८
दान बधु गुननि-पु	१५२	भरो भौति पदिका-ना	३८३
दुग-दाप-दुग-दरनि	५३	भवो भसो भौति है	१५८
दगा दगा बन बया	५१	भानुहुन-बमय रवि	६८
दव दूगरा कीन ना को दयानु	२५०	भायगातर भैरव	४७
देव बर लना बर सहर बर भार	४३	भग्न-भूरनि भाग्न-भन्न	५७
देह दलन बर बरन	११६	मा इनाई मा तनु का	१२६
देह भग्न निर भग	११४	मन पल्लैहै धरवर बन	३०६
भाव्य हा निर्ग निम भरपा	१६२	मा माव्य का महु निहारिह	१५६
भाद लालाय गुनि	२८६	मन मर मानहि गिन मरा	५०६
भाग गो बोन बिभा बं गुनावो	३२४	माग्य मा का एक भौति	३५६
भा, गुना हा का दय	३४३	महागज रामानरयो धाय गार्द	१७२
भा न दे है भनि,	४०३	माधवतु ! मा-नय मग न काज	१६३
भास राम लखगई शिव मर	३५१	माधव सब न द्रवतु बहि मरा	१८७
भास्य भाव्य भाव भाव	२७६	माधव भौ गुमाय जग माह	१८६
भास्य भाव रवि	३०८	माधव ! मोह-नय का टू	१६०
भास्य और भाव नय भाव	३०१	माधव भवि भुगति महु माया	१६१

मारुति मन, रुचि भरत की	४२४	राम सनेही सा	२१३
मेरी न बन बनाये मेरे	४०१	रामचन्द्र । रघुनाथक ।	२३०
मेर रावरिये गति ह रघुपति	२४६	राम राम, राम राम, राम राम, जपत	२०७
मेरे कहा सुनि पुनि भाव	४०५	राम जपु जीह । जानि प्रीतिमा	३७६
मेरो भनो कियो राम	१४१	राम । रावरो सुभाव गुन	३८६
मेरो मन हरिजू । हठ न तज	१६०	राम ! राखिय सरन	३६०
म केहि कहौ विपति अति भारी	२०३	राम रावरो नाम भरा	३६२
मै जानी हरि-न्द रति नाही	२०५	राम, रावरो नाम साधु-सुरतह	३६३
म तोहि अब जान्यो ससार	२६४	राम ! कबहु प्रिय लागिही	४१२
मैं हरि पलित-पावन सुने	२५७	राम राय ! बिनु रावर	४२२
म हरि, साधन करइ न जानी	१६६	रावरो सुघारी जो विगारो	३६८
माह-जानित मल लाग	१५३	रुचिर रसना तू राम राम	२०७
मोह तम-सरनि,		लाज न आवत दास कहावत	२६०
हरिहर सकर सरन	४५	लाभ कहा मानुष-सनु पाये	३१५
मोहि मूढ मन बहुत बिगामो	७६	माल नादिक सखन हित	७८
यह विनसी रघुबीर गुसाइ	१७६	लोक बेटहैं विदित बात	३७७
यहै जानि चरननि चित लाया	३७३	विस्वास एक राम नाम को	२५१
याहि तैं म हरि । व्यान गवाया	३७५	बीर महा अवराधिय	१८२
यो मन कबहु तुमहि न लाग्यो	२७०	श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन	६०
रघुपति भगति करत कठिनार्थ	२६६	श्रीरघुबीर की यह बानि	३३४
रघुपति विपति दवन	३३०	श्रीहरि मुख पदकमल भजहु	३१५
रघुवर रावरि यह बडाई	२६३	सकल-मुख-कन्द	१२५
रघुवरहि कबहुँ मन लागिह ?	३४६	सकल सोभाय्य प्रद	१०६
राख्या राम सुस्वामा सा	२७८	सकुचत हों अति राम	२
राम राम रटु राम राम रटु	१३२	सकर सप्रद सज्जनान-दद	४६
राम जपु, राम जपु राम जपु बावर	१३४	सग राम जपु, राम जपु	६१
राम नाम जपु जिय	१५५	स-स-साप हर	११०
राम राम राम जीह जीनी	१३६	सब साच बिमोचन चित्रकट	६२
राम मलाई घापनी	२४७	समरथ सुप्रन समीर के	७४
राममद्र । मोहि आपना	२४३	सहज सनही राम सों	२६७
राम प्राति की रीति	२८८	साहिब उगास भय	४००
राम-नाम के जप जाइ	२८६	सिव सिव, होइ प्रसन्न कइ दाया	४४
राम कहत चनु राम कहतु चनु	२६५	सुन मन मूढ । सिखावन मेरो	११८
राम की गुलाम	१४६	सुनि सीतापति-सील-सुभाउ	१७२
राम से प्रीतम की प्रीति रहित	२०६	सुनहु राम रघुबीर गुसा	२३४

